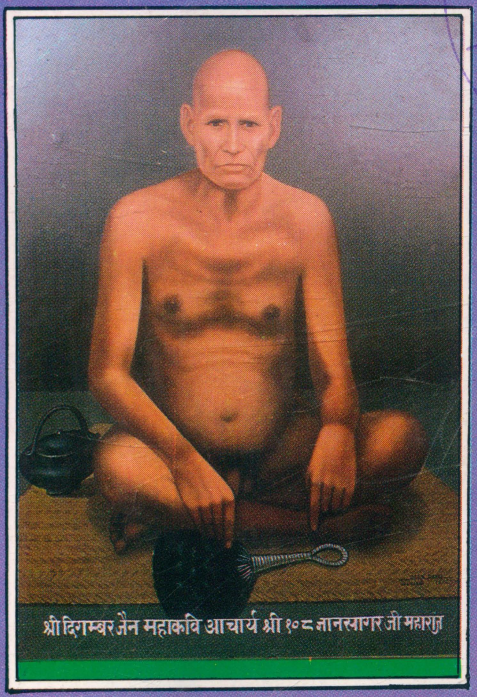
महाकवि
ज्ञानसागर के काव्य
एक अध्ययन



ग्रन्थ परिचय

राजस्थान प्रदेश के राणौली ग्राम में जन्म लेने वाले महाकवि ज्ञानसागर बीसवीं शताब्दी के कवि हैं । दस अध्यायों में विभक्त इस शोधग्रन्थ में उनके त्याग, परोपकार, क्रियाशीलता आदि गुणों से सम्पन्न व्यक्तित्व पर प्रकाशपात करते हुए उनके छः संस्कृत काव्यग्रन्थों - जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्त-चरित, दयोदयचम्पू एवं मुनिमनोरञ्जनशतक- का साहित्यिक मूल्याङ्कन किया गया है । इस सन्दर्भ में इन काव्यग्रन्थों का सारांश, मूलस्रोत, काव्यविधा, पात्र, वर्मनकौशल, भावपक्ष, कलापक्ष आदि को प्रस्तुत करने के पश्चात् कवि का जीवनदर्शन भी प्रस्तुत करने के पश्चात् कवि का जीवनदर्शन भी प्रस्तुत किया गया है । अन्त में कवि को महाकवि और उनके काव्यग्रन्थों को संस्कृतसाहित्य में समुचित स्थान का अधिकार सिद्ध किया गया है ।

प्रस्तुत शोधग्रन्थ को पढ़ने वाले सुधी और सहृदय पाठकों को यह ज्ञात हो जाएगा कि आज भी अश्वघोष के समान हमारे कवि के रूप में ऐसे विद्वान् हैं जिनमें कवि और दार्शनिक का मिल-जुला रूप देखने को मिलता है; आज भी उपमा के प्रयोग में कुशल कालिदास, उत्प्रेक्षा के प्रयोग में कुशल बाणभट्ट एवं धनपाल के समान अनुप्रास के सुष्ठु और सरोपस्कारक प्रयोग में कुशल ज्ञानसागर जैसे कवि विद्यमान है; भारवि और माघ द्वारा संस्थापित चित्रालङ्कारों की परम्परा आज भी ज्ञानसागर जैसे कवियों के द्वारा गतिशील है ; और आज भी ऐसे कवि हैं जो कालिदास, बाण, धनपाल आदि समान भावपक्ष और कलापत्र के मञ्जुल समन्वय को प्रस्तुत करने में समर्थ हैं ।

इतना ही नहीं, शोधग्रन्थ के अन्त में दिए गए परिशिष्टों से पाठक यह भी जान लेंगे कि महाकवि ज्ञानसागर संस्कृत भाषा में विशुद्ध दार्शनिक काव्य कृतियों को रचने के साथ ही साथ हिन्दी भाषा में काव्यकृतियों, दार्शनिक कृतियों और उपदेशात्मक कृतियों की भी संरचना करने में कुशल थे । मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत शोधग्रन्थ महाकवि ज्ञानसागरजी की पूरी जानकारी पाठकों को देने में समर्थ होगा ।

महाकवि
ज्ञानसागर के काव्य
एक अध्ययन

-: लेखिका :-
डॉ. किरण टण्डन

-: प्रकाशक/प्रकाशन :-
आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर
एवं
श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र, नारेली-अजमेर (राज.)

प्रेरक प्रसंग : चारित्र चक्रवर्ती पू. आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के सुशिष्य, तीर्थक्षेत्र समुद्धारक, आगम के प्रामाणिक एवम् सुमधुर प्रवचनकार, युवामनीषी, ज्ञानोदय तार्थ क्षेत्र (नारेली-अजमेर) प्रेरक, आध्यात्मिक एवम् दार्शनिक सन्त मुनि श्री सुधासागरजी महाराज एवम् पू. क्षु. श्री गंभीरसागरजी एवं क्षु. श्री धैर्यसागरजी महाराज के 1996 जयपुर वर्षायोग में महाकवि ज्ञानसागर के साहित्य पर पंचम् विद्वत संगोष्ठी के सुअवसर पर प्रकाशित ।

प्रकाशक : आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र
ब्यावर (राज.)

ग्रन्थमाला : डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर

सम्पादक एवं नियामक पं. अरुणकुमार शास्त्री, ब्यावर

संस्करण : द्वितीय - 1996

प्रति : 1000

मूल्य : [redacted]

प्राप्ति स्थान : **आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र**
"सरस्वती भवन" सेठ जी की नसियाँ
ब्यावर 305 901 (राज.)

श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र
नारेली-अजमेर (राज.) फोन : 33663

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
मन्दिर संघीजी, सांगानेर, (जयपुर-राज.)

महाकवि

ज्ञानसागर के काव्य

एक अध्ययन

–: आशीर्वाद एवं प्रेरणा :–

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

क्षु. श्री गंभीरसागरजी महाराज

क्षु. श्री धैर्यसागरजी महाराज

–: सौजन्य :–

श्री दिगम्बर जैन समिति

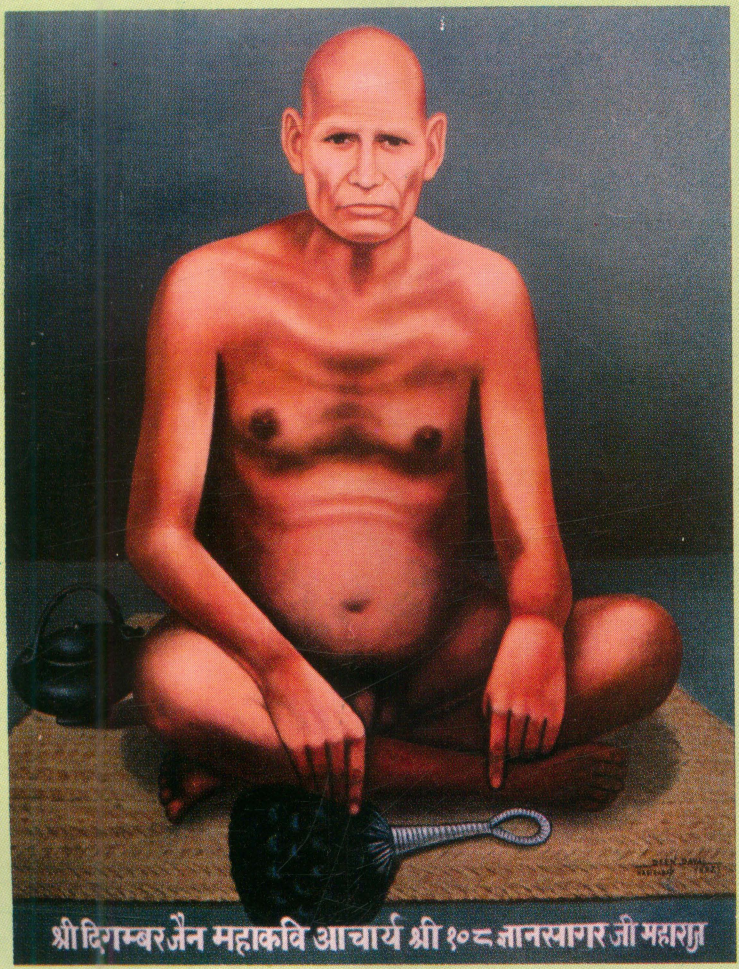
जयपुर (राज.)

–: प्रकाशक/प्रकाशन :–

आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर

एवं

श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र, नारेली-अजमेर (राज.)



श्री दिगम्बर जैन महाकवि आचार्य श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज

ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र - एक दृष्टि

भारतीय संस्कृति आदर्श पुरुषों के आदर्शों से प्रसूत एवं संवर्द्धित/संरक्षित है । प्रत्येक भारतीय अपने आदर्श पुरुषों को जीवन के निकटतम सजोने का प्रयास करता है । भारत की आदर्श शिरोमणी दिगम्बर जैन समाज आध्यात्मिक संस्कृति का कीर्त्तिमान अनादिनिधन सनातन काल से स्थापित करती रही है। इस सनातन प्रभायमान दि. जैन संस्कृति में/प्रत्येक युग में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते रहे हैं, होते रहेंगे । जिनकी सर्वज्ञता से प्रदत्त जीवन को जयवंत बनाने वाले सूत्रों ने इनके व्यक्तित्व को आदर्शता एवं पूज्यता प्रदान की है। वीतरागी, निष्ग्रही, अठारह दोषों से रहित, अनन्त चतुष्ट्य के धनी, इन अरहन्तों ने अपनी दिव्य वाणी से राष्ट्र समाज एवं भव्य जीवों के लिये सर्वोच्च आदर्श प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया है ।

जब इन महान् अरहन्तों का परम् निर्वाण हो जाता है तब इनके अभाव को सद्भाव में अनुभूत करने के लिए दि. जैन संस्कृति में स्थापना निक्षेप से वास्तुकला के रूप में/ मूर्ति के रूप में स्थापित कर जिन बिम्ब संज्ञा से संज्ञित किया जाता है । इन जिन बिम्बों से अनन्त आदर्श प्रतिबिम्बित होकर भव्य प्राणीयों के निधत्त-निकाचित दुष्ट कर्मों को नष्ट करते हैं ।

ऐसे महान् जिन बिम्बों को जिन-भक्त नगर या नगर के निकट उपवन में विराजमान कर उस पवित्र क्षेत्र को आत्मशान्ति का केन्द्र बना लेता है । नगर जिनालयों की अपेक्षा उपवनों में स्थापित तीर्थक्षेत्रों का वातावरण अधिक विशुद्ध होता है । अत: लोग सैकड़ों मीलों से हजारों रूपया खर्च करके तीर्थक्षेत्रों पर तीर्थयात्रा करने जाते हैं । कहा जाता है कि जिस भूमि पर तीर्थ क्षेत्र होते हैं तथा तीर्थ यात्री आकर तीर्थ वन्दना करते हों वह भूमि देवताओं द्वारा भी बन्दनीय हो जाती है । इसलिये प्रत्येक जिला निवासी जैन बन्धु अपने जिले में / किसी सुन्दर उपवन में विशाल जिन-तीर्थ की स्थापना करके सम्पूर्ण राष्ट्र के भव्य जीवों के लिये यात्रा करने का मार्ग प्रशस्त करके अपने जिले की भूमि को पावन बना लेता है । दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि अजमेर जिला दिगम्बर जैन श्रावकों के लिये कर्म स्थली रहा है लेकिन तीर्थक्षेत्र के रूप में धर्म स्थली बनाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सका । अर्थात् अजमेर मण्ड़लान्तर्गत अभी तक एक भी तीर्थ क्षेत्र नहीं है । जिस पर भारतवर्ष के साधर्मी बन्धु तीर्थ यात्री के रूप में आकर जिले की भूमि को पवित्र कर सकें ।

जिले की दिगम्बर जैन समाज के सातिशय पुण्य के उदय से इस राजस्थान की जन्मस्थली, कर्मस्थली बना कर पवित्र करने वाले तथा चार-चार संस्कृत महाकाव्यों सहित 30 ग्रन्थों के सृजेता बाल ब्रह्मचारी महाकवि आ. श्री ज्ञासागरजी महाराज द्वारा श्रमण संस्कृति के उननायक जिन शासन् प्रभावक आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज को दीक्षा देकर अजमेर क्षेत्र को पवित्र किया है । ऐसी इस पावन भूमि पर चिर अन्तराल के बाद संत शिरोमणी आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के परम् शिष्य आध्यात्मिक संत मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, क्षु. श्री गम्भीरसागरजी, क्षु. श्री धैर्यसागरजी का पावन वर्ष 1994 में वर्षायोग हुआ । इसी वर्षा योग में सरकार, समाज एवं साधु की संगति ने इस जिले को आध्यात्मिक वास्तुकला को स्थापित करने के लिए नारेली ग्राम के उपवन को तीर्थक्षेत्र में परिवर्तित करने के लिये चुना । सच्चे पुरुषार्थ में अच्छे फल शीघ्र ही लगते हैं ऐसी कहावत है । तद्नुसार 4 माह के अन्दर ही अजमेर से 10 कि.मी. दूर नारेली ग्राम में किशनगढ़-ब्यावर बाईपास पर एक विशाल पर्वत सहित 127.5 बीघा का भूखण्ड दिगम्बर जैन समाज को सरकार से आवंटित किया गया जिसका नामकरण आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज एवं मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के आशीवाद से "ज्ञानोदय तीर्थ" ऐसा मांगलिक पवित्र नाम रखा गया । इस क्षेत्र का संचालन दिगम्बर जैन समिति (रजि.) अजमेर द्वारा किया जाता है । इस क्षेत्र पर निम्न योजनाओं का संकल्प जिला स्तरीय दिगम्बर जैन समाज ने किया है ।

1. **त्रिमूर्ति जिनालय (मूल जिनालय)** – इस महाजिनालय में अष्टधातु की 11-11 फुट उतंग तीर्थंकर, चक्रवर्ती कामदेव जैसे महा पुण्यशाली पदों को एक साथ प्राप्त कर महा निर्वाण को प्राप्त करने वाले श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ के जिन बिम्ब विराजमान किये जावेंगे । यह जिनालय एस क्षेत्र को मूलनायक के नाम से प्रसिद्ध होगा ।
2. **श्री नन्दीश्वर जिनालय** – यह वही जिनालय है जिसकी वन्दना शायद सम्यग्दृष्टि एक भवतारी सौधर्म इन्द्र अपने परिकर सहित वर्ष की तीनों अष्टानिका पर्व में जाकर निरन्तर ८ दिन तक पूजन अभिषेक कर अपने जीवन को धन्य बनाता है । यह नन्दीश्वर द्वीप जम्बूदीप से आठवें स्थान पर पड़ता है । अत: वहां पर मनुष्यों का जाना सम्भव नहीं है । एतर्थ उस नन्दीश्वर दीप के 52 जिनालयों को स्थापना निक्षेप से इस क्षेत्र में भव्य जीवों के दर्शनार्थ इस जिनालय की स्थापना की जा रही है ।

3. **सहस्त्रकूट** – अरहन्त तीर्थंकरों के शरीर में 1008 सुलक्षण होते हैं । अत: तीर्थंकरों को 1008 नामों से पुकारते हैं । इस एक-एक नाम के लिये एक-एक वास्तु कला में विराजमान कर 1008 बिम्ब एक स्थान पर विराजमान किये जाते हैं । इसलिये इसको सहस्त्रकूट जिनालय कहा जाता है । श्री कोटि भट्ट राजा श्रीपाल के समय सहस्त्रकूट जिनालय के सम्बन्ध में श्रीपाल चरित्र में वर्णित किया गया है कि जब सहस्त्रकूट जिनालय के कपाट स्वत: ही बन्द हो गये तब कोटि भट्ट राजा श्रीपाल एक दिन उसकी वन्दना करने के लिये आते हैं तो उसके शील की महिमा से कपाट एकदम खुल जाते हैं ।

4. **त्रिकाल चौबीसी जिनालय** – यह वह जिनालय है जिनमें भरत क्षेत्र के भूत, वर्तमान व भविष्य की 24-24 जिन प्रतिमायें 5.6 फुट उतंग 24 जिनालयों में विराजमान की जावेगी । भगवान् ऋषभदेव के निर्वाण के बाद शोक मग्न होकर भरत चक्रवर्ती विचारने लगा कि अब तीर्थ का प्रवर्तन कैसे होगा । तब महा मुनिराज गणधर परमेष्ठी कहते हैं कि हे चक्रि, अब धर्म का प्रवर्तन जिन बिम्ब की स्थापना से ही सम्भव है । तब चक्रवर्ती भरत ने मुनि ऋषभ सेन महाराज का आर्शीवाद प्राप्त कर कैलाश पर्वत पर स्वर्णमयी 72 जिनालयों का निर्माण कराकर रत्न खचित 500-500 धनुष प्रमाण 72 जिन बिम्बों की स्थापना की ।

5. **मानस्तम्भ** – जैनागम के अनुसार जब भगवान का साक्षात समवशरण लगता है तब चारों दिशाओं में चार मानस्तम्भ स्थापित किये जाते हैं और मानस्तम्भ में चारों दिशाओं में एक-एक प्रतिमा स्थापित की जाती है अर्थात 1 मानस्तम्भ में कुल चार प्रतिमायें होती हैं । इस मानस्तम्भ को देखकर मिथ्यादृष्टियों का मद (अहंकार) गल जाता है और भव्य जीव सम्यग्दृष्टि होकर समवशरण में प्रवेश कर साक्षात अरहंत भगवान् की वाणी को सुनने का अधिकारी बन जाता है । इस सम्बन्ध में अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के समय एक घटना का उल्लेख जैन शास्त्रों में मिलता है कि इन्द्रभूति गौतम अपने 5 भाई और 500 शिष्यों सहित भगवान् महावीर से प्रतिवाद करने के लिये अहंकार के साथ आता है लेकिन मानस्तम्भ को देखते ही उसका मद गलित हो जाता है और प्रतिवाद का भाव छोड़कर/ सम्यक्त्व को प्राप्त कर । सम्पूर्ण शिष्यों सहित जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर भगवान् महावीर के प्रथम गणधर पद को प्राप्त हो गया अर्थात् इस मानस्तम्भ

की महिमा कितनी अनुपम है कि इन्द्रभूति गौतम कहां तो भगवान् से लड़ने आया था और कहां भगवान् का प्रथम गणधर बन गया । ऐसा यह भव्य मानस्तम्भ इस क्षेत्र पर निर्माण किया जा रहा है ।

6. **तलहटी जिनालय** – इस जिनालय में वृताकार प्रथम मंजिल पर प्रवचन हाल रहेगा । दूसरी मंजिल पर भगवान् बाहुबलि, तीसरी पर भरत और चौथी पर ऋषभदेव भगवान् की प्रतिमायें विराजमान होंगी ।

7. **18 दोषों से रहित तीर्थङ्कर अरिहंत भगवान के द्वारा उपदेश देने की सभा को समवशरण कहते हैं इसकी रचना कुबेर द्वारा होती**– देव, मनुष्य एवं तिर्यञ्चों की 12 सभाऐं होती है । भव्य जीव ही इस समवशरण में प्रवेश करते हैं । ऐसा यह भव्य जीवों का तारण हार समवशरण भी इस क्षेत्र पर स्थापित किया जा रहा है ।

8. **संतशाला** - क्षेत्र हमेशा से साधु सन्तों के धर्म ध्यान करने के आवास स्थान रहे हैं । इस क्षेत्र पर भी आचार्य विद्यासागरजी आदि महाराज जैसे महासन्त संघ के साथ भविष्य में यहां विराजमान होंगे एवं अन्य आचार्य साधुगण वन्दनार्थ, साधनार्थ विराजमान रहेंगे । उनकी साधनानुकूल सन्त वसतिका बनाने का निर्णय लिया गया है ।

9. **गौशाला** – वर्तमान में मानव स्वार्थ पूर्ण होता चला जा रहा है । इसी कारण से गाय, बैल, भैंस आदि जब इसके उपयोगी नहीं होते अथवा दूध देना बन्द कर देते हैं तब व्यक्ति उनकी सेवा सुश्रुसा नहीं करके उनको कसाई अथवा बूचड़खाने में भेज देता है । ऐसे आवारा पशुओं को इस क्षेत्र में रख कर उनके जीवन को अकाल हत्या से/ मरण से बचाया जावेगा। यह क्षेत्र समवशरण है और समवशरण में एक सभा तिर्यञ्चों की होती हैं । अत: यह गौशाला है इस क्षेत्र रूपी समवशरण में एक सभा के रूप में प्रतिष्ठित होगी इस दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र गौशाला का शिलान्यास श्री भैंरूसिंह शेखावत, मुख्य मंत्री राजस्थान सरकार द्वारा किया गया है ।

10. **ज्ञानशाला (विद्यालय)** – मानवीय दृष्टिकोण से विचारने पर जीवन का एक आवश्यक अंग आजीविका भी है । इस आजीविका को कार्यान्वित रूप देने के लिये मनुष्य को लौकिक व शाब्दिक ज्ञान की भी आवश्यकता

है । इस दृष्टिकोण से इस क्षेत्र पर विद्यालय को स्थापित करने की भी योजना है । साथ ही एक विशाल ग्रन्थालय भी स्थापित किया जायेगा।

11. **भाग्यशाला (औषधालय/चिकित्सालय)** – जीव का आधार शरीर है और शरीर बाहरी वातावरणों से प्रभावित होकर जीव को अपने अनुकूल क्रिया करने में बाधा उत्पन्न करता है । तब शरीर में आई हुई विक्रतियों को दूर करने के लिये औषधि की आवश्यकता होती है । अत: इस औषधायल/चिकित्सालय से असहाय गरीबों के लिये नि:शुल्क चिकित्सा कराने के विकल्प से स्थापना की जावेगी ।

12. **धर्मशाला** – क्षेत्र की विशालता को देखते हुये ऐसा लगता है कि भविष्य में यह एक लघु सम्मेद शिखर का रूप ग्रहण कर लेगा । जिस प्रकार दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र श्री सम्मेद शिखरजी, महावीर जी अतिशय क्षेत्र आदि में निरन्तर यात्री आकर दर्शन पूजन आदि का लाभ लेते हैं उसी प्रकार इस क्षेत्र में भी तीर्थ यात्री बहु संख्या में आकर दर्शन पूजन का लाभ लेवेंगे । अत: उनकी सुविधा के लिये 300 कमरों की धर्मशाला आधुनिक सुविधाओं सहित बनाने का निर्णय लिया गया है ।

13. **उदासीन आश्रम** – अपनी गृहस्थी से विरक्त होकर लोग इस क्षेत्र पर आकर अपने जीवन को धर्म साधना में लगा सकें । अत: उदासीन आश्रम के निर्माण करने का निर्णय लिया गया है ।

14. **बाउण्ड्री दीवाल** – सम्पूर्ण क्षेत्र को सुरक्षित करने के लिए 6 फुट ऊंची बाउण्ड्री दीवाल की सर्वप्रथम आवश्यकता थी । पूज्य मुनि श्री के प्रवचनों से प्रभावित होकर अजमेर जिले की दिगम्बर जैन महिलाओं ने इस बाउण्ड्री को बनाने का आर्शीवाद प्राप्त किया ।

15. **पहाडी के लिए सीढ़ी निर्माण** – उबड़-खाबड़ उतङ्ग पहाड़ी पर जाने के लिए सीढ़ियों की आवश्यकता थी । अजमेर जिले के समस्त दिगम्बर जैन युवा वर्ग ने इस सीढ़ियों को बनाने का पूज्य मुनि श्री से आर्शीवाद प्राप्त किया ।

16. **अनुष्ठान विधान** – क्षेत्र शुद्धि हेतु 28.6.95 से 30.6.95 तक समवशरण महामंडल विधान का आयोजन पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज ससंघ सानिध्य में किया गया । तद्नन्तर मुनि श्री के ही ससंघ सानिध्य में 1.12.95 से 10.12.95 तक सर्वतोभद्र महामंडल विधान अर्द्ध-सहस्र

इन्द्र इन्द्राणियों की सम्भागिता में महत् प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ । इसी विधान के अन्तर्गत मूलनायक, त्रिकाल चौबीसी, नंदीश्वर जिनालय एवं मानस्तम्भ का शिलान्यास किया गया । इस महोत्सव में माननीय भैरोसिंह शेखावत मुख्य मंत्री राजस्थान सरकार, श्री ललित किशोर चतुर्वेदी शिक्षा एवं सार्वजनिक निर्माण राज्य मंत्री, श्री गंगाराम चौधरी राजस्व राज्य मंत्री, श्री किशन सोनगरा खादी एवं ग्रामोद्योग राज्य मंत्री, श्री सावंरमल जाट राज्य मंत्री, श्री महावीर प्रसाद जैन सचेतक राज़स्थान विधान सभा, श्री ओंकारसिहं लखावत अध्यक्ष नगर सुधार न्यास अजमेर, सांसद श्री रासासिंह रावत सांसद अजमेर, श्री किशन मोटवानी विधायक अजमेर, श्री कैलाश मेघवाल गृह एवं खान मंत्री राजस्थान सरकार, श्री पुखराज पहाड़िया जिला प्रमुख अजमेर, श्री देवेन्द्र भूषण गुप्ता जिलाधीश अजमेर, श्री वीरकुमार अध्यक्ष नगर परिषद, श्री अदिति मेहता संभागीय आयुक्त अजमेर, कांग्रेस (इ) अध्यक्ष अजमेर माणक चन्द सोगानी । आदि प्रशासनिक अधिकारियों ने इस दस दिवसीय मंडल विधान में अपना महतीय योगदान दिया है ।

17. **सरकारी सहयोग** – इस क्षेत्र स्थापना के पूर्व 26.10.94 को दिगम्बर जैन समिति (रजिस्टर्ड) अजमेर का गठन कर राज. संस्था रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1958 के अर्न्तगत दिनांक 2.11.94 को पंजीकृत कराया गया। नगर सुधार न्यास के अध्यक्ष ओंकारसिंह लखावत एवं कांग्रेस अध्यक्ष अजमेर माणकचन्द सोगानी के विशेष सहयोग से इस नारेली पर्वतीय स्थल का चयन किया गया । तदुपरान्त महाराज श्री ने इस स्थल का निरिक्षण कर इस स्थल को पवित्र किया । समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं, स्थानीय प्रशासन एवं राजस्व राजमंत्री राजस्थान के विशेष सहयोग से रियायती दर पर यह पहाड़ी मैदान-दिगम्बर जैन समाज को दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र स्थापना हेतु स्थाई रूप से अवंटित किया गया। तदुपरान्त आर्चिटेक्ट श्री उम्मेदमल जैन एवं निर्मल कुमार जैन ने क्षेत्र के योजनाओं सहित नक्शे तैयार किये । 10.12.95 को माननीय भैरोसिंह शेखावत मुख्य मंत्री राजस्थान सरकार एवं माननीय ललित किशोर जी चतुर्वेदी शिक्षा एवं सार्वजनिक निर्माण मंत्री जी ने मेन रोड़ से पहाड़ी के ऊपर तक डामर रोड बनाने की घोषणा की । सांसद श्री रासासिंह रावत ने 3 ट्यूबवैल सरकारी स्तर पर लगाने की घोषणा की । राजस्व राज्यमंत्री श्री गंगाराम

चौधरी जी ने क्षेत्र की योजनाओं को देखते हुए लगभग 200 बीघा जमीन और सरकार से दिलाने की घोषणा की जिलाधीश द्वारा प्रशासनिक समस्त कार्यों को करने की घोषणा की । गौशाला में जिला प्रमुख धर्म निष्ठ श्री पुखराज पहाड़िया एवं प्रशासन का विशेष सहयोग देने की घोषणा की गई है । गृह एवं खान मंत्री जी श्री कैलाश मेघवाल ने पुलिस चौकी की घोषणा की । इस प्रकार राज नेताओं द्वारा इस नवोदित तीर्थ क्षेत्र के विकास में हुई घोषणाएं क्रियान्वित होने की प्रतिक्षा कर रही है, माननीय मुख्यमंत्री श्री भैंरुसिंहजी शेखावत ने गौशाला को विशेष सुविधायुक्त बनाने के लिए आयुक्त श्रीमति अदिति मेहता को विशेष निर्देष दिये ।

18. **विशेष सहयोग** – पहाडी आवंटित होने के बाद सबसे बड़ी समस्या थी कि पहाड़ी को समतल कैसे किया जाये । लेकिन यह कार्य धर्म निष्ठ आर.के.मार्बल्स लि. किशनगढ़ वालों ने अपनी मशीन द्वारा पहाड़ी तक का कच्चा मार्ग एवं पहाडी का समतली करण लगभग डेढ़ माह के अन्दर करके क्षेत्र एवं सच्चे देव शास्त्र गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा व्यक्त कर असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाया है ।

पाषाण–टंकोतकीर्ण वास्तु कला – पाषाण टंकोत-कीर्ण वास्तुकला विशेष रूप से प्राय: लुप्त सी हो चुकी थी-लेकिन तीर्थ क्षेत्र जीर्णोद्धारक एवं वास्तुकला के मर्मज्ञ दिगम्बर जैन मुनि श्री सुधासागरजी महाराज की दूर दृष्टि ने उस खोई हुई कला को खोज निकाला, तथा उस जीर्णशीर्ण वास्तुकला का जीर्णोद्धार कर इस संस्कृति को चिर स्थाई बनाने के लिए उपदेश दिया । मुनिराज ने अपने उपदेशों में सद् प्रेरणा दी कि आर.सी.सी. (R.C.C.) के मंदिर बनाने से संएकृति दीर्घकाल तक सुरक्षित नहीं रह सकेगी क्योंकि आर.सी.सी. की उम्र मात्र 100 वर्षो की है । मंदिरों का निर्माण सहस्त्रों वर्षो को ध्यान में रख कर करना चाहिए । दूसरी बात यह है कि जैन प्रतिष्ठा पाठों में लोहे के प्रयोग को प्रशस्त नहीं कहा है । गुरु का यह उपदेश समाज के हृदयों को छू गया तथा पत्थर-चूना के मंदिर बनाने वाले शिल्पियों को खोजा गया। "जिन खोजा तिन पाईया गहरे पानी पेठ-वाली कहावत चरितार्थ हुई परिणाम स्वरुप शिल्पि उपलब्ध हो गये समाज एवं समिति ने मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के चरणों में श्री फल चढ़ाकर संकल्प किया कि इस ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र पर (पहाड़ी पर) जितने भी मंदिर बनेंगे वह सभी खजुराहो, देलवाड़ा, देवगढ़, रणकपुर के समान कलापूर्ण पत्थर के ही बनेंगे । उनमें लोहे का प्रयोग नहीं किया जावेगा अर्थात वह आर.सी.सी. के नहीं बनेंगे ।

जिनालयों का तक्षण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है । पाषाण टंकोत कीर्ण वास्तु कला को पुनरोज्जीवित करने वाला भारत वर्ष का यह अनुपम दिगम्बर तीर्थ क्षेत्र अनोखा कीर्तीमान स्थापित करेगा ।

स्वर्ण अवसर– आइये हम सबके महान् सातिशय पुण्य के उदय से ज्ञानोदय तीर्थ में अनेक मांगलिक शुभ योजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा है। कितना अच्छा अवसर है कि उपरोक्त योजनाओं को आपकी जड़ सम्पदा द्वारा स्थापित करने का । जड़ सम्पदा पुण्य के उदय से आती है लेकिन जाने के दो द्वार होते हैं । एक पाप कार्यों के द्वारा और दूसरी पुण्य कार्यों के द्वारा । भरत चक्रवर्ती ने भी अपने धन का सदुपयोग करके कैलाश पर्वत पर 72 स्वर्णमयी जिनालय बनवाये थे अर्थात चक्री ने भी अपना धन व्यय किया था । और एक रावण था जिसने अपने धन का दुर्पयोग अपने पापोपभोग करके महलों को, लंका को स्वर्णमय बनाकर नष्ट किया था । दोनों के परिणाम आप हम सब जानते है । एक चक्रवर्ती ने अपने धन का सदुपयोग जिनालय बनाने में किया सो वह जिनालय के समान पूज्य जिनेन्द्र देव के पद को प्राप्त हुआ और रावण ने भोग सामग्री में किया तो उसे नरक का वास मिला । आईये- हम सब इश्वाकु वंशी भरत चक्रवर्ती के वंशज हैं। हमें भी परम्परानुसार अपने धन का उपभोग ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र में बनने वाले जिनालयों में करना है और इश्वाकु वंश के कुल दीपक बनने का गौरव प्राप्त करना है । इस तीर्थ की समस्त धार्मिक योजनायें अति शीघ्र करने का संकल्प समाज ने लिया है । अतः शीघ्र विचारिये, सोचिये एवं अपने दान की घोषणा करके चक्रवर्ती के वंश के बनने का गौरव प्राप्त करिये। आप सब के सहयोग से ही यह तीर्थ भारत में दिगम्बर जैन संस्कृति की ध्वजा को फहरा सकेगा और अजमेर जिला भारतीय दिगम्बर जैन संस्कृति में अपना एक ऐतिहासिक अध्याय जोड़ सकेगा ।

भारतवर्ष का प्रथम बहुउद्देशीय नवोदित यह ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र अनेक योजनायें अपने गर्भ में संजोय हुए है । उन्हीं योजनाओं में से पू. मुनि श्री सुधासागर जी के आर्शीवाद प्रेरणा एवं सानिध्ये में "श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र ग्रन्थालय" नाम से एक पुस्तकालय शुभारम्भ किया गया - इस क्षेत्र से प्रसूत इस पुष्प के अन्तर्गत जिनवाणी के प्रचार प्रसार हेतु ग्रन्थों को प्रकाशन कराने के कार्य का भी शुभारम्भ किया जा रहा है ।

श्रुतदेवताय नमः ! प्रस्तुति :

दिगम्बर जैन समिति (रजि.) अजमेर (राज.) **कैलाशचन्द पाटनी, अजमेर**
कार्यालय : श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र नारेली-अजमेर (राज.)
फोन नं. 33663, वीर निर्वाण सं. 2522 ईसवी सन्-1996

संस्थापित : 1 सितम्बर 1996 फोन नं. 384663

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

जैन नशियां, नशियां रोड – सांगानेर
(पंजीयन सं. 320 दिनांक 25–8–96)

प्राचीन समय से ही जयपुर जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है और यहां के विद्वानों ने समय - समय पर जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान दिया है ।

इस क्रम में दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृति महाविद्यालय सौ वर्ष से अधिक समय से प्रयास रत है । परन्तु छात्रावास के अभाव में विद्यालय में जो श्रमण संस्कृति के उपासक विद्वान तैयार होने चाहिए थे वे नहीं हो पा रहे हैं जिसके फलस्वरुप विभिन्न धार्मिक समारोह एवं पर्वो पर विद्वानों की मांग आने पर भी पूर्ति करने में असमर्थता रहती थी जिससे जैन संस्कृति के सिद्धान्तो एवं ज्ञान का वांछित प्रचार प्रसार नहीं हो पा रहा है इसी अभाव की पूर्ति हेतु पूज्य 108 आचार्य संत शिरोमणी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के प्रतिभाशाली शिष्य प्रवर मुनिवर 108 श्री सुधासागर जी महाराज की प्रेरणा और आशीर्वाद से श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान की स्थापन 1 सितम्बर, 1996 को अपार जन समूह के बीच की गई । इस संस्थान के माध्यम से एक छात्रावास जिसमें 200 छात्र रहकर जैन दर्शन का अध्ययन करेंगे और विद्वान बनकर समाज में जैन तत्वज्ञान और श्रमण संस्कृति का प्रचार प्रसार करेंगे ।

इस संस्थान के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं –

1. दिगम्बर जैन धर्म अनादि काल से प्रचलित है जिसकी श्रमण परम्परा भी अनादि काल से शाश्वत रुप से चली आ रही है और वर्तमान में भी विद्यमान है । उसी पवित्र श्रमण परम्परा (28 मूलगुणों को निर्दोष पालेन करने वाली) को संरक्षित करना तथा श्रावकों को उनके कर्तव्य एवं संस्कारों से अलंकृत करांना उन संस्कारों का सिखाने के लिये छात्रों को श्रमण संस्कृ ति रक्षक/उपासक विद्वानों के रुप में तैयार करना इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य है ।

2. जो अध्यात्मवाद के नाम पर वर्तमान साधुओं को आहारदान, वैय्यावृत्ति, विनयादि न करके उनका सम्मान नहीं करते हैं जो यह कहते हैं कि वर्तमान में आचार्य कुन्दकुन्द की मूल-आम्नायानुसार मुनि होते ही नहीं है उन लोगो के द्वारा प्रचारित सन्मार्ग का खण्डन कर अथवा रोक कर सन्मार्ग का प्रचार - प्रसार करना ।

3. वर्तमान में कुछ साधुओं में व्याप्त शिथिलाचार को रोकने तथा समाप्त करने का प्रयास करना ।

4. जो संस्थाएं विद्वान् आगमविरुद्ध विशेषार्थ लिखकर शास्त्रों के भाव को बदलने की कोशिश कर रहे है, चारो अनुयोगों में से द्रव्यानुरोग को विशेष मानकर अनुयोगों को अप्रयोजनीय बतलाते हैं, उनकी उपेक्षा करते हैं, प्रकाशन एवं स्वाध्याय में प्रमुखता नहीं देते, उनके दुष्प्रचार को रोककर चारों अनुयोगो के शास्त्रों का मूल रुप में प्रकाशन, प्रचार-प्रसार एवं स्वाध्याय की प्रेरणा देना ।

5. मूल आगम परम्परा अनुसार विद्वानों को प्रशिक्षित करना, उनको स्थान-स्थान पर भेजकर दिगम्बर जैन धर्म का प्रचार - प्रसार करना, शिविरादि लगाकर लोगो को धर्म व संस्कारों को सिखाना । अप्रकाशित या आवश्यक ग्रन्थों का अनुवाद या प्रकाशन करना, पूजा प्रतिष्ठा विधानादि करना या कराना, स्थान-स्थान पर धर्मप्रसार के लिए श्रमण संस्कृति पाठशालाऐं खोलना ।

6. समाज को सप्त व्यसनों से मुक्त कराकर श्रावकों को उनके चार/षट आवश्यको को करने की प्रेरणा देना, सिखाना, समाज में व्याप्त रात्रि भोजन, मृत्यु भोज एवं दहेज आदि कुरीतियों का निवारण करना ।

7. संस्थान में प्रशिक्षण के लिए प्रविष्ट छात्रों के आवास, भोजन, पठन-पाठन की नि:शुल्क या उचित शुल्क पर व्यवस्था करना व कराना ।

8. आवश्यकतानुसार विभिन्न स्थानों पर अपने निर्देशन में पाठशाला, छात्रावास, विद्यालय आदि खोलना एवं सुचारु रुप से संचालित करना ।

9. विभिन्न अवसरों पर विभिन्न विषयों पर विद्वानों की गोष्ठी सम्मेलन वाचनादि का आयोजन करना ।

10. विभिन्न स्थानों की प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह करना और देश विदेश में श्रमण संस्कृति की रक्षा की उचित व्यवस्था करना तथा शोधकार्य कराने की समुचित व्यवस्था करना ।

11. विदेशो में दिगम्बर जैन धर्म के मूल आम्नय का प्रचार हेतु प्रकाशित ग्रन्थों को भेजना तथा छात्रों और विद्वानों को भेजने, शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ।

12. दिगम्बर जैन मूल - आर्ष आम्नाय में प्रतिपादित धर्म के विरोध में अज्ञान; द्वेष या ईर्ष्यादिवश लिखे गये लेखों, पुस्तकों, व्याख्यानों, शोध - प्रबंधो आदि का येन - केन प्रकारेण निराकरण करना एवं सन्मार्ग का विकास करना ।

13. धार्मिक पठन पाठन के लिए निश्चित पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन कराना, उनके शिक्षण - प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, उनके परीक्षा के लिए परीक्षा बोर्ड की स्थापना एवं व्यवस्था करना ।

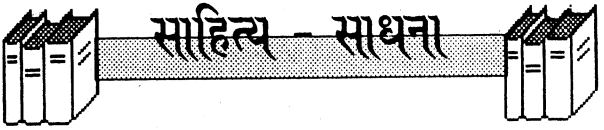
14. जयपुर नगर एवं समस्त भारत में ऐसे संगठनों की रचना करना, उन्हे उचित संरक्षण, प्रोत्साहन, एवं आर्थिक सहायत देना, उनके प्रचार-प्रसार कार्य का संवर्द्धन करना, जिनका उद्देश्य जैन श्रमण संस्कृति को संरक्षित करना एवं मानव कल्याण करना है ।

विनीत :

गणेशकुमार राणा
अध्यक्ष

महावीरप्रसाद पहाड़िया
मंत्री

महाकवि आचार्य ज्ञानसागर महाराज की साहित्य - साधना



लेखक : मुनि 108 श्री सुधासागर जी महाराज

जैन साहित्य में चौहदवीं शताब्दी के बाद संस्कृत महाकाव्यों की विच्छिन्न शृंखला को जोड़ने वाले राजस्थान प्रान्त, सीकर जिला, राणोली ग्राम में पिता चतुर्भुज व माता घृतवरी की कोख से प्रसूत गौर-वर्णीय महाकवि भूरामल शास्त्री हुए हैं।

बचपन में ही ज्ञान अर्जन की ललक होने के कारण संस्कृत विद्या व जैन दर्शन में प्रवेश करने के लिए स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में शास्त्री तक अध्ययन किया। अध्ययन के उपरान्त सृजन साहित्य का लक्ष्य बनाया तथा आत्म उत्थान हेतु बाल ब्रह्मचारी रहने का संकल्प किया।

ब्रह्मचारी बनकर संस्कृत साहित्य के लेखन करने में इतने निमग्न हो गये कि चार-चार महाकाव्यों सहित संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में तीस ग्रन्थ लिखे।

'णाणस्य फलम् उपेक्खा' कुंद-कुंद के इस सूत्र को जीवन में साकार करने के लिए अविरत दशा से आगे कदम बढ़ाते हुए देशव्रत रूप क्षुल्लक दशा को धारण किया। तदुपरांत चरित्र का चरमोत्तम पद महाव्रत-रूप दिगम्बरी दीक्षा धारण की तथा आचार्य वीर सागर, आचार्य शिव सागर महाराज के संघ को पठन-पाठन कराते हुए उपाध्याय पद से सुभोशित हुए। इसके बाद आचार्य पद को ग्रहण करके कई भव्य प्राणियों को मोक्ष-मार्ग का उपदेश प्रदान कर अनेकों मुमुक्षुओं को मुनि दीक्षा से उपकृत किया। इन्हीं शिष्यों में प्रथम शिष्य ऐसी सुयोग्यता को प्राप्त हुए कि आज सारे विश्व के साधुओं में श्रेष्ठता को प्राप्त को गए, जिन्हें दुनियाँ "संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी" के नाम से जानती है।

जीवन के अन्त में अपना आचार्य पद इन्हीं "विद्यासागर" के देकर लगभग 180 दिन की "यम संल्लेखना" धारण की। अन्त में चार दिन तक चतुर्विद आहार के त्याग के साथ 1 जून, 1973 ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को 10 बजकर 20 मिनट पर नसीराबाद में पार्थिव शरीर को छोड़कर संसार का अन्त करने वाली समाधि को प्राप्त हुए अर्थात् समाधिस्थ हो गये।

इनके द्वारा रचित २९ ग्रन्थों की संक्षिप्त समीक्षा यहाँ प्रस्तुत है :

1. जयोदय महाकाव्यम्

यह महाकाव्य रस अलंकार एवं छन्द की त्रिवेणी से पवित्रता को प्राप्त है। साहित्य, दर्शन एवं आध्यात्मिक शैली में देश की ज्वलंत समस्याओं का निराकरण करता है। इस युग के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र प्रथम चक्रवर्ती सेनापति जयकुमार के चारित्रिक जीवन की सरस कथा के आश्रय पूर्वक इस काव्य की रचना हुई है। इस काव्य में श्रृंगार-रस और शान्तरस की समानान्तर प्रवहमान धारा पाठकों को अपूर्व रस से सिक्त कर देती है। जयकुमार और सुलोचना की प्रणय कथा का प्रस्तुत वर्णन नैषधीय चरित्र एवं कालिदास के काव्यों को स्मरण दिला देता है। इस काव्य का प्रकृति चित्रण माघ के काव्यों की तुलना करने के लिए प्रेरित करता है। इस महाकाव्य रूपी सागर की तलहटी साहित्य है तो दर्शन उसके किनारे और रस-अलंकार आदि की छटा अपार जल राशि के रूप में दृष्टिगोचर होती है एवं अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य आदि आचरणपरक अनेक सूत्र रूपी रत्नों का भण्डार इस जयोदय महाकाव्य रूप सिन्धु में भरा पड़ा है। साहित्य जगत में 20वीं शताब्दी का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य तो है ही साथ ही जैन दर्शन में 14वीं शताब्दी के बाद का प्रथम महाकाव्य भी है।

इस महाकाव्य में 3047 श्लोक 28 सर्गों में है।

संस्कृत और हिन्दी टीका सहित दो भागों में (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध) इसका प्रकाशन किया गया है। यह महाकाव्य महाकवि आचार्य ज्ञान सागर महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखा था, जब आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

2. वीरोदय महाकाव्यम्

यह महाकाव्य जयोदय महाकाव्य के समान ही रस-अलंकार एवं शब्दों से परिपूर्ण है। इसे जयोदय महाकाव्य का अनुज कह सकते हैं। दिगम्बर जैन दर्शन के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवन चरित्र का सांगोपांग वर्णन किया गया है। भगवान महावीर के जीवन चरित्र को, देश की आधुनिक समस्याओं के निराकरण को ध्यान में रखते हुए आधुनिक शैली में वर्णन किया है।

994 श्लोक वाला यह महाकाव्य 22 सर्गों में विभाजित है। छः सर्गों पर स्वोपज्ञ संस्कृत एवं एवं समस्त सर्गों पर स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है।

यह महाकाव्य भी महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी ने दीक्षा के पूर्व लिखा था। उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

3. सुदर्शनोदय महाकाव्यम्

यह महाकाव्य जैन दर्शनानुसार चौबीस कामदेवों में से अंन्तिम कामदेव सेठ सुदर्शन के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करता है। इस महाकाव्य में एक गृहस्थ के सदाचार, शील एवं एक पत्नीव्रत की अलौकिक महिमा को प्रदर्शित किया गया है, को व्यभिचारिणी स्त्रियाँ एवं वेश्याएँ अनेक प्रकार की कामुकता से परिपूर्ण अपनी चेष्टाओं से भी स्वदार संतोषव्रती सुदर्शन को शील व्रत से च्युत नहीं कर पाती है।

काव्य नायक जयकुमार के शील व्रत की महिमा के कारण शूली भी सिंहासन में बदल जाती है। यह महाकाव्य रूढ़िक परम्पराओं से हटकर दार्शनिक साहित्य विधा से ओत-प्रोत होकर भक्ति संगीत की अलौकिक छटा प्रस्तुत करता है। एक आर्य श्रावक की दैनिक चर्या को सुचारु ढंग से प्रस्तुत किया गया है। राग की आग में बैठे हुए काव्यानायक को वीतरागता के आनन्द का अनुभव कराया है। काव्यनायक के जीवन के अंतिम चरण को श्रमण संस्कृति के सिद्धान्तों से विभुषित किया है। यूँ कहना चाहिये कि यह काव्य जहाँ साहित्य की छटा को बिखेर कर साहित्यकारों के लिए और दार्शनिकता के कारण दार्शनिकों के लिए अपनी बुद्धि को परिश्रम करने की प्रेरणा देता है, वहीं पर गृहस्थ एवं साधु की आचार संहिता पर भी प्रकाश डालता है। इस काव्य को 481 श्लोकों को लेकर 9 सर्गों में विभाजित किया गया है। स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है।

यह महाकाव्य भी महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी ने दीक्षा के पूर्व लिखा था, जिस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

4. भद्रोदय महाकाव्यम् (समुद्रदत्त चरित्र)

इस काव्य में अस्तेय को मुख्य लक्ष्य करके एक भद्रमित्र नामक व्यक्ति के आदर्श चरित्र को काव्य की भाषा शैली में प्रस्तुत किया गया है। वहीं पर सत्यघोष जैसे मिथ्या ढोंगी के काले कारनामों की कलई खोली गई है। यह काव्य 'सत्यमेव जयते' की उद्घोषणा करता है। इस लघु-महाकाव्य के लक्षणों के साथ-साथ पुराण काव्य एवं चरित्र काव्य के लक्षणों का समन्वय हो जाने के कारण त्रिवेणी संगम के समान पवित्रता को प्राप्त होता है। यह काव्य 344 श्लोकों को लेकर 9 सर्गों में विभाजित है।

यह महाकाव्य भी महाकवि ज्ञानसागर जी ने दीक्षा के पूर्व लिखा था, जिस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था ।

5. दयोदय चम्पू

चम्पू काव्यों की परम्परा बहुत प्राचीन काल से गंगा-जमुना के संगम के समान मानी जाती है । क्योंकि चम्पू काव्य में गद्य एवं पद्य दोनों का ही सम्मिश्रण होता है । इन चम्पू काव्यों की शैली पाठकों के लिए रुचिकर एवं सहज अर्थ बोध कराने में कारण बनती है । यह दयोदय चम्पू काव्य भी बहुत ही सरल है। इस चम्पू काव्य में विषय वस्तु को गागर में सागर के समान भरा गया है । इस काव्य में कवि ने एक मृगसेन धीवर के छोटे से अहिंसाव्रत को लेकर अहिंसा व्रत की महिमा का बखान किया है । काव्य की विषय वस्तु से ज्ञात होता है कि धर्म या आचरण किसी जाति विशेष की बपौदी नहीं है । एक धीवर जैसी तुच्छ जाति के मृगसेन धीवर भी अहिंसा व्रत के फल को पा गया । काव्य में धीवर को भी वेदों का ज्ञान होता है, यह बात भी दर्शायी गयी है । काव्य में कहा है कि पुनर्जन्म, उपकार्य, उपकारी-भाव भव भवान्तरों तक अपना प्रभाव दिखाते है। धीवर का नियम था कि मैं अपने जाल में आयी हुई प्रथम मछली को नहीं मारूंगा। परिणामस्वरुप वही एक मछली पांच बार उसके जाल में फँसी और पाँचो बार उसने छोड़ दिया । इस पर उपकार के कारण अगले भव में पाँच बार उस मछली के जीव ने उस धीवर के प्राण बचाये । इस काव्य का भाव-पक्ष महनीय है । इस काव्य में सात लम्ब हैं तथा स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है ।

यह चम्पू काव्य भी महाकवि ज्ञानसागर जी ने दीक्षा के पूर्व लिखा था, जिस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था ।

6. सम्यकत्व-सार-शतकम्

जैन दर्शनानुसार सम्यग् दर्शन मोक्ष मार्ग की प्रथम सीढ़ी है । अतः सम्यग् दर्शन की महिमा जैन आगमानुकूल इस काव्य में की गई है । कवि के द्वारा रचित आध्यात्मिक काव्यों में यह उच्च श्रेणी का काव्य है । सम्यग्दर्शन के बिना घोर-घोर चरित्र भी मोक्ष का कारण नहीं हो सकता । कवि ने इस बात को विशेष रूप में दर्शाया है । यह काव्य 104 श्लोकों में स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है । यह महाकाव्य भी महाकवि ज्ञानसागर जी ने दीक्षा के पूर्व लिखा था, जिस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था ।

7. मुनि मनोरञ्जनाशीतिः

इस काव्य में उपदेशात्मक शैली प्रयुक्त की गई है। दिगम्बर मान्यतानुसार श्रमणों की पवित्र चर्या का वर्णन किया गया है। तथा वर्तमान काल की भी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आगमानुकूल श्रमण चर्या को सुरक्षित रखा गया है।

यह काव्य साधु सन्तों के लिए प्रतिदिन पाठ करने योग्य है। आर्यिकाओं की चर्या का वर्णन भी इसमें समाविष्ट किया गया है। साधु के प्रवृत्तिपरक मार्ग को प्रदर्शित करते हुए निवृत्ति पर बढ़ने हेतु इस काव्य में विशेष जोर दिया गया है। इस काव्य में 80 पद्य है।

यह काव्य आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा दीक्षा के पूर्व लिखा गया था। उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

8. भक्ति संग्रह

लगभव 2000 वर्ष पूर्व आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी द्वारा 10 भक्तियाँ प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध की गई थीं। उसके बाद पूज्यपाद स्वामी द्वारा संस्कृत भाषा में 10 भक्तियाँ लिखी गईं। इसके बाद किसी भी आचार्य द्वारा 10 भक्तियों को लिखने का उल्लेख मुझे देखने में नहीं आया। 20वीं शताब्दी के महाकवि आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने संस्कृत पद्यों में भक्तियों की रचना करके प्राचीन परम्परा को पुनर्जीवित किया है। 6 श्लोकों में सिद्ध भक्ति, 5 श्लोकों में श्रुत-भक्ति, 6 श्लोकों में चरित्र-भक्ति, 6 श्लोकों में आचार्य-भक्ति, 5 श्लोकों में योगि भक्ति, 5 श्लोकों में परमगुरु-भक्ति, 5 श्लोकों में चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति, 5 श्लोकों में शांति-भक्ति,

. . . . . श्लोकों में समाधि भक्ति, 6 श्लोकों में चैत्य भक्ति, 22 श्लोकों में प्रतिक्रमण भक्ति, 4 श्लोकों में कायोत्सर्ग भक्ति, ये भक्तियाँ पूर्व भक्तियों की अपेक्षा सरल एवं कम श्लोक से ही पूर्ण भावभिव्यक्ति व्यक्त करती है। जैन दर्शन में साधुओं की दैनिक आवश्यक क्रियाओं में यह भक्तियाँ अवश्य ही प्रयोग करनी पड़ती है। लेखक ने नन्दीश्वर एवं निर्माण भक्ति की रचना नहीं की हैं। प्रतिक्रमण एवं कायोत्सर्ग भक्ति की रचना एक नवीन प्रस्तुतीकरण कहा जा सकता है।

यह ग्रन्थ भी आचार्य ज्ञानसागर जी के द्वारा रचित है (श्रमण अवस्था में)।

9. हित–सम्पादकम्

यह काव्य मिथ्या रूढ़ियों का खण्डन करता है। क्रिया-काण्डियों की अविचारित गतानुगतिकताओं के विरुद्ध इस काव्य में क्रान्तिकारी घोषणा की गयी है। जातीयता के अहंकार के मद में डूबने वाले अहंकारियों के लिए अहंकार का खण्डन करने वाला है। व्यक्ति जन्म से नहीं, कर्म से महान् बनता है। व्यक्ति को पापी से नहीं, पाप से घृणा करनी चाहिए। इन सूत्रों को ध्यान में रखकर इस काव्य की रचना हुई है। आज के आधुनिक तर्कशील व्यक्तियों के लिए यह काव्य बहुत ही पसन्द आयेगा। चारों पुरुषार्थों का सटीक वर्णन इस काव्य में है। सामाजिक एवं पारिवारिक रीति-रिवाजों को भी इस काव्य में समाविष्ठ किया गया है। इस काव्य की मुख्य विशेषता है कि अपनी तर्कणाओं की पुष्टि कवि ने पूर्वाचार्यो द्वारा आगम में कथित सटीक उदाहरण देकर की है। जाति के मद में डूबने वाले लोगों ने आगम में कथित जिन बातों को गौण कर दिया था, कवि ने उन बातों को निर्भीक होकर प्रस्तुत कर दिया है। यह लघु काव्य क्रान्तिकारी है एवं मिथ्याकुरीतियों का निराकरण और सम्यक् रीति-रिवाजों की स्थापना करने वाला है। इस काव्य में 159 श्लोक हैं।

यह ग्रन्थ भी महाकवि ज्ञानसागर जी के द्वारा दीक्षा के पूर्व लिखा गया था, जिस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

हिन्दी – साहित्य

10. भाग्य परीक्षा

जैन दर्शन में कथित धन्य कुमार के प्रसिद्ध कथानक के आधार पर इस काव्य को रचा गया है। इस काव्य का काव्यनायक धन्य कुमार है, जिनका जीवन आत्मीयजनों की प्रतिकूलता में पल्लवित होता है। फिर भी अपने पुण्य के कारण अपने प्रतिद्वन्दियों के लिये यह सबक सिखाता है कि जिनके भाग्य में पुण्य की सत्ता है, उसका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। कर्तव्य परायणता एवं परोपकार जीवन का धर्म है। सत्यवादिता एवं सहिष्णुता जीवन का प्राण है। त्याग ही जीवन का व्यसन है एवं कर्मठता मानवीय गुण है। इस समस्त बातों के लिए महाकवि ने इस काव्य में वर्णन करके असहिष्णु मानव के लिए शिक्षा दी है। इस काव्य में 838 पद हैं।

इस काव्य को आचार्य ज्ञानसागर जी ने दीक्षा के पूर्व लिखा। ब्रह्मचारी अवस्था में आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

11. ऋषभ चरित

जैन दर्शन के अनुसार इस युग में आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवनवृत्त के आधार पर यह काव्य लिखा है। भगवान आदिनाथ के अतीत एवं वर्तमान भवों का वर्णन इस काव्य में समाविष्ट है। जिनसेनाचार्य द्वारा रचित महापुराण के सारभूत विषयों को पद्य रूप में इस काव्य में 814 पद है। यह काव्य भी महाकवि ज्ञानसागर महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखा था, उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

12. गुण सुन्दर वृत्तान्त

इस काव्य में शिक्षाप्रद अनेक लघु कथाएँ काव्य रूप में समाविष्ट की गई हैं, जैसे प्रद्युम्न कुमार का जीवन चरित्र, यशोधर की रोमांटिक कथा, सतन कुमार चक्रवर्ती के रूप में अहंकार का दुष्परिणाम तथा द्वारिका के भस्म होने का हृदय-विदारक वर्णन इस काव्य में किया है। कथाओं के प्रस्तुतीकरण के मध्य वर्तमान की ज्वलन्त समस्याओं के निराकरण के लिए शिक्षाप्रद पद्य भी प्रस्तुत किये गये हैं। इस काव्य को 595 पदों में लिखा गया है। यह काव्य भी महाकवि आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखा था, उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

13. पवित्र मानव जीवन

इस काव्य में गृहस्थ को आजीविका किस प्रकार करना चाहिए इसका वर्णन किया गया है जैसे कृषि करना, पशुपालन, पारिवारिक व्यवस्था, समाज-सुधार स्त्री का पारिवारिक दायित्व आदि प्रमुख पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का निदान इस काव्य में किया गया है। यदि गृहस्थ इस काव्य के अनुसार अपने को व्यवस्थित कर ले तो कीचड़ में भी कमल खिल सकता है। गृहस्थी रूपी कीचड़ में भी व्यक्ति काव्य कथित सिद्धान्तों को अपनाकर अपने जीवन को स्वर्णमय बना सकता है। इस काव्य में 193 पद हैं। यह काव्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज ने क्षुल्लक अवस्था में लिखा था। उस समय आपका नाम क्षु. ज्ञान भूषण जी महाराज था।

14. कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन

इस ग्रन्थ में सम्प्रदाय निरपेक्ष जीवन को शिक्षा देने वाली तर्कयुक्त कथायें दी गई है। शिक्षाप्रद विषय वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने छोटी छोटी

कहानियों का आलम्बन लिया है । प्रारम्भिक नैतिक जीवन बनाने के लिए यह पुस्तक पठनीय है । प्रवचन कर्ताओं को यह पुस्तक प्रवचन करने की कला सिखाती है । इस ग्रन्थ को 82 शीर्षकों में विभाजित किया है । एक-एक शीर्षक वर्तमान की ज्वलन्त समस्याओं का निराकरण करता है एवं भगवान महावीर के सिद्धान्तों की स्थापना करता है । इस पुस्तक का अंग्रेजी, कन्नड़, मराठी भाषा में भी अनुवाद किया जा रहा है । यह पुस्तक आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने मुनि अवस्था में लिखी है ।

15. सचित्त विवेचन

जिह्वा इन्द्रिय की चाटुकारिता के वशीभूत होकर, सचित्त वनस्पति खाने वालों को यह पुस्तक सावधान करती है कि थोड़े से रसना इन्द्रिय के स्वाद के कारण वनस्पति एवं जल आदि का सचित्त भक्षण नहीं करना चाहिए अर्थात अचित्त करके ही ग्रहण करना चाहिये । इस पुस्तक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी दृष्टिगोचर होता है क्योंकि आज विज्ञान कह रहा है कि जल एवं वनस्पति आदि को उबाल कर काम में लेना चाहिये । बिना गर्म की हुई वस्तुओं को खाने से वैक्टीरिया अथवा वायरस जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं । अर्थात् यह पुस्तक जहाँ दया धर्म की रक्षा का उपदेश देती है तो दूसरी तरफ अपने स्वास्थ्य लाभ का भी संकेत करती है । यह पुस्तक लगभग 54 पृष्ठीय गद्य रूप में प्रकाशित है । यह पुस्तक महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने क्षुल्लक अवस्था में लिखी थी, उस समय आपका नाम क्षुल्लक ज्ञान भूषण था ।

16. सचित्त विचार

इस पुस्तक में सचित्त विवेचन का ही विषय है । लेखक ने सचित्त विवेचन की प्रस्तावना में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है कि मैंने सबसे पहले सचित्त नामक निबन्ध लिखा था । लोगों ने इस निबन्ध को विस्तार से लिखने को कहा। अतः सचित्त विचार की विषय वस्तु को विस्तार करके सचित्त विवेचन लिखा अर्थात् सचित्त विवेचन के पूर्व सचित्त विचार नामक पुस्तक लिखी गई है । सचित्त विचार बाईस पृष्ठीय पुस्तिका के रूप में प्रकाशित है । यह पुस्तक आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखी थी, उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था ।

17. स्वामी कुन्द–कुन्द और सनातन जैन धर्म

जैन दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी के जीवन वृत्त को लेकर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी के जीवन सम्बन्धित ऐतिहासिक गवाक्ष एवं उनके मूल सिद्धान्तों के भावों को युक्ति-युक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति, वस्त्र एवं स्त्री मुक्ति का निषेध भी इस पुस्तक में किया गया है। आचार्य कुन्द-कुन्द के काल का अवधारण करने वाले शिलालेखों का भी उल्लेख इसमें किया गया है। आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी को शिलालेखों के प्रमाणों के साथ षट्खण्डागमकार, पुष्पदंत, भूतभलि से पूर्व इस पुस्तक में सिद्ध करके विद्वानों की बुद्धि को श्रम करने के लिए प्रेरित किया है। दिगम्बर धर्म में समय-समय पर आये संघ भेदों के वर्णन भी इस पुस्तक में हैं। अस्सी पृष्ठीय यह पुस्तक इतिहास के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। यह पुस्तक महाकवि आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखी थी, उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

18. सरल जैन विवाह विधि

विवाह एक सामाजिक रीति रिवाज है, लेकिन लोगों ने इसे धार्मिक रीति-रिवाज मान लिया है, अर्थात वैवाहिक क्रियाओं का सम्बन्ध धर्म से जोड़ने लगे हैं। अनेक मिथ्या आडम्बरों का निषेध करते हुए गृहीत मिथ्यात्व से बचाने वाली यह पुस्तक जैन दर्शनानुसार विवाह विधि को सम्पन्न कर एक आदर्श गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए मांगलिक विषय प्रस्तुत करती है। विवाह के समय जो मिथ्या कुदेवों को पूजते हैं एवं उनको आह्वान करते हैं तथा बलि आदि मिथ्या क्रियायें करते हैं उनका इस पुस्तक में निषेध किया गया है एवं सच्चे देव, शास्त्र गुरु की साक्षीपूर्वक दाम्पत्य जीवन स्वीकार करने के लिए प्रेरणा दी है गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाले वर-वधू के लिए इस पुस्तक के अनुसार विवाह विधि स्वीकार करना चाहिए। पचपन पृष्ठीय गद्य-पद्य हिन्दी, संस्कृत, मंत्रोच्चार आदि से समन्वित यह पुस्तक है। यह पुस्तक भी महाकवि ज्ञानसागर महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखी थी, उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था।

19. इतिहास के पन्ने

समस्त ऐतिहासिक अवधारणाओं को पलटने यह ऐतिहासिक लघु निबन्ध इतिहास में नया अध्याय जोड़ता है। शिलालेखों की प्रमाणता संहिता इस लेख

में जैन दर्शन के प्रसिद्ध आचार्यो का ऐतिहासिक दृष्टिकोण समाविष्ट किया गया है । इस निबन्ध को लघु पुस्तिका का रूप देकर प्रकाशित किया गया है । यह पुस्तक भी महाकवि ज्ञान सागर जी महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखी थी ।

20. ऋषि कैसा होता है

यह 40 श्लोक प्रमाण अप्रकाशित काव्य है । वैसे इसमें साधुचर्या का वर्णन है । मुझे लगता है कि लेखक ने पहले ऋषि कैसे होता है इस पर लेखनी चलाने का भाव किया होगा, फिर बाद में वही विचार मुनिमनोरञ्जनाशीति के रूप में परिवर्तित हो गए होंगे । इसलिए इसे गौण करके मुनिमनोरञ्जनाशीति के रूप में लिख दिया हो, अत: इस काव्य के समस्त श्लोक मुनिमनोरञ्जनाशीति काव्य में संयवक्त रूप से प्रकाशित कर दिये गये हैं ।

टीका–ग्रन्थ

21. प्रवचनसार

आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी द्वारा अध्यात्म त्रिवेणी में यह दूसरे नम्बर का ग्रन्थ माना जाता है । यह ग्रन्थ सम्यग दर्शन, सम्यग् ज्ञान एवं सम्यग्-चरित्र रूप तीन अधिकारों में विभक्त हैं । श्रमणों के लिए तो यह मूल प्राण है । इस ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी, आचार्य जयसेन स्वामी की संस्कृत टीकायें उपलब्ध हैं । इस ग्रन्थ पर कई विद्वानों की हिन्दी टीकायें भी हैं, लेकिन वह टीकायें निष्पक्ष नहीं कही जा सकती हैं । आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने कुछ मुख्य-मुख्य गाथाओं को लेकर आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी के वास्तविक हृदय को उजागर करने का प्रयास किया है । अध्यात्म प्रेमी बन्धुओं के लिए यह ग्रन्थ विशेष रूप से पठनीय है । यह ग्रन्थ संस्कृत छाया एवं हिन्दी टीका सहित सजिल्द उपलब्ध है । यह टीका ग्रन्थ महाकवि ज्ञानसागर महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखी थी, उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था ।

22. समयसार

आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी दिगम्बर परम्परा के आध्यात्मिक रसिक मुख्य आचार्य माने जाते हैं । भगवान महावीर के गणधर गौतम के बाद कुन्द-कुन्द स्वामी का नाम मंगलाचरण के रूप में लिया जाता है । आपके द्वारा बतायी गयी आम्नाय जिनेन्द्र देव द्वारा कथित आम्नाय मानी जाती है । इसीलिये दिगम्बर आम्नाय में

वर्तमान में कोई भी कार्य किया जाता है तो कुन्द-कुन्द आम्नाय द्वारा किया जाता है, ऐसा कहा जाता है ।

कुन्द-कुन्द स्वामी ने इतिहासकारों के अनुसार चौरासी पाहुड़ लिखे हैं, लेकिन सम्पूर्ण पाहुड़ वर्तमान में उपलब्ध नहीं होते हैं । जितने भी पाहुड़ उपलब्ध होते हैं, उनमें से तीन ग्रन्थ (पाहुड़) मुख्य माने जाते हैं । इन तीन में से भी समय-सार ग्रन्थ, ग्रन्थराज माना जाता है । इस ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्र-सूरि ने आत्मख्याति नाम की दण्डान्वय टीका लिखी है एवं जयसेन स्वामी ने तात्पर्य वृत्ति नाम की खण्डान्वय टीका लिखी है । इन टीकाओं को लेकर कुन्द-कुन्द स्वामी की गाथाओं पर अनेक विद्वानों ने हिन्दी की टीका भी लिखी है लेकिन विद्वान् आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी के हृदय को प्रकट नहीं कर सके । टीकाओं में विशेषार्थों के माध्यम से अपनी भावनाओं को हिन्दी टीकाकारों ने समविष्ट किया है । इन हिन्दी टीकाकारों ने आचार्य अमृतचन्द्र सुरि एवं जयसेन स्वामी की भावनाओं की भी उपेक्षा की है ।

आचार्य ज्ञानसागर महाराज एक क्रान्तिकारी निष्पक्ष लेखक थे । एक दार्शनिक व्यक्ति स्वभावानुसार मूल आचार्यों की भावनाओं की उपेक्षा कैसे बर्दाश्त कर सकता है । परिणामस्वरुप जयसेन स्वामी, जो कि वस्तुत: आगम एवम् कुन्द-कुन्द स्वामी की भावनाओं को पूर्णत: प्रदर्शित करते हैं । यदि आचार्य जयसेन न होते तो कुन्द-कुन्द स्वामी का समयसार है, यह भी ज्ञात नहीं होते अर्थात् आचार्य कुन्द-कुन्द के नाम को उजागर करने वाले जयसेन स्वामी द्वारा लिखित तात्पर्य वृत्ति नाम की टीका को आधार बनाकर समयसार की हिन्दी टीका आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने लिखी है । इस टीका में भी विशेषार्थ दिए गए हैं जो कि तार्किक आगमिक एवम् कुन्द-कुन्द स्वामी के हृदय को प्रकट करने वाले हैं ।

स्वाध्याय बन्धुओं को जिन्हें संस्कृत नहीं आती है, उन्हें यह हिन्दी टीका का स्वाध्याय करके अपनी मिथ्या धारणाओं का विमोचन कर वास्तविक तत्त्व निर्णय कर लेना चाहिए । विद्वानों को निष्पक्ष रूप से एवम् पूर्वाग्रहों का त्याग करके इस टीका का आलोडन करना चाहिए । यह लगभग तीन सौ नब्बे पृष्ठों में सजिल्द प्रकाशित है । इस ग्रन्थ में चार सौ उन्तालिस गाथायें है । जिन पर जयसेन स्वामी द्वारा रजित संस्कृत टीका हैं । मूल गाथाओं का पद्यानुवाद आचार्य विद्यासागर जी एवम् गद्य की हिन्दी टीका आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा लिखित है । इस ग्रन्थ के कई प्रकाशन पूर्व में भी भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित किये जा चुके हैं । यह

टीका ग्रन्थ महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने मुनि अवस्था में लिखा था ।

23. तत्त्वार्थ सूत्र

जैन दर्शन में संस्कृत सूत्र रूप यह ग्रन्थ प्रथम माना जाता है । सारे भारतवर्ष में दशलक्षण पर्व में इसका वाचन होता है । स्वाध्याय प्रेमियों पर इस ग्रन्थ ने बहुत बड़ा उपकार किया है । तत्त्वार्थ सूत्र में कथित विषय वस्तु को अन्य जैनागम, षट्खड़ागम् श्लोक वार्तिक, राजवार्तिक, गोम्मटसार आदि अनेक ग्रन्थों को अपनी टीका में उद्धृत किया है । इनकी हिन्दी टीका पढ़ने से अनेक ग्रन्थों की विषय सामग्री सहज ही उपलब्ध ही जाती है । यह टीका ग्रन्थ महाकवि आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने क्षुल्लक अवस्था में लिखी थी । उस समय आपका नाम क्षु. ज्ञान भूषण था ।

24. मानव धर्म

जैन दर्शन के प्रसिद्ध उद्भट तार्किक आचार्य समन्तभद्र द्वारा रचित रत्नकरण्ड श्रावकाचार के श्लोकों पर मानव धर्म नाम से हिन्दी टीका लिखी गई है । आचार्य समन्तभद्र स्वामी के श्लोकों का अर्थ तो प्रकट किया ही है, साथ ही उस अर्थ के साथ वर्तमान की सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु छोटे-छोटे उदाहरण देकर समन्तभद्र आचार्य के हृदय को उजागर किया है । इस पुस्तक को पढ़ते समय ऐसा लगता है जैसे लेखक समन्तभद्र स्वामी के श्लोकों का प्रवचन कर रहा हो अर्थात् प्रवचन शैली में यह पुस्तक लिखी गई है । यह पुस्तक प्रत्येक मानव के लिए पठनीय है । इसके कई संस्करण विभिन्न स्थानों से निकल चुके हैं । इसका कन्नड़, मराठी एवं अंग्रेजी अनुवाद भी किया जा रहा है । रत्नकरण्ड श्रावकाचार के 150 श्लोकों पर हिन्दी व्याख्या के रूप में प्रकाशित है । यह टीका ग्रन्थ महाकवि ज्ञानसागर महाराज ने दीक्षा के पूर्व लिखा था, उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी पंडित भूरामल शास्त्री था ।

25. विवेकोदय

आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी रचित प्रसिद्ध समयसार की गाथाओं पर हिन्दी गद्य-पद्यात्मक व्याख्या लेखक द्वारा इस ग्रन्थ में की गई है । संक्षिप्त रूप में समयसार के हृदय को समझाने वाला यह विवेकोदय नाम का ग्रन्थ लगभग एक सौ साठ

पृष्ठों में प्रकाशित है। यह ग्रन्थ महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने क्षुल्लक अवस्था में लिखा था, उस समय आपका नाम क्षु. ज्ञान भूषण था।

26. देवागम स्तोत्र

आचार्य समन्तभद्र द्वारा रचित यह देवागमस्तोत्र में जिसे इतिहासवेत्ताओं द्वारा गन्धहस्ती महाकाव्य का मंगलाचरण कहा जाता है, समन्तभद्र स्वामी ने भगवान की भी परीक्षा करके उनके गुणों की महिमा का गुणानुवाद किया है। इस देवागम् स्तोत्र का ब्रह्मचारी पं. भूरामल शास्त्री ने पद्यानुवाद किया था। दुर्भाग्य से यह ना तो अभी तक कहीं प्रकाशित हुआ है और ना ही इसकी मूल पाण्डुलिपि अभी तक उपलब्ध हो पाई है, अन्य साक्ष्यों से पद्यानुवादों की सूचना मिलती है।

27. नियमसार

आचार्य कुन्द-कुन्द द्वारा रचित समयसार प्रवचन-सार, पंचास्तिकाय ग्रन्थों की कठिन गुत्थियों को सुलझाने वाला कुन्द-कुन्द स्वामी द्वारा ही रचित यह नियमसार ग्रन्थ है। इसका पद्यानुवाद भी ब्रह्मचारी पं. भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर जी) द्वारा पद्यानुवाद किया गया। यह भी दुर्भाग्य से अभी तक अप्राप्त है।

28. अष्ट पाहुड़

आचार्य कुन्द-कुन्द द्वारा रचित सम्यक् सन्मार्ग की उद्घोषणा करने वाला यह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ पर भी ब्रह्मचारी पं. भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर जी) द्वारा पद्यानुवाद किया गया। यह भी दुर्भाग्य से अभी तक अप्राप्त है।

29. शान्तिनाथ पूजन विधान

पूर्व आचार्यों द्वारा रचित विधान का पं. भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर जी) ने सम्पादन किया है। जैन दर्शनानुसार प्रत्येक अच्छे कार्य एवम् विघ्न निवारण हेतु शान्ति विधान करने की परम्परा है महाकवि द्वारा सम्पादित इस विधान में अनेक मिथ्या कुदेवों की आराधना का कोई स्थान नहीं दिया है। प्रतिष्ठाचार्य एवं शांति विधान करने वालों के लिए इस पुस्तक से शान्ति विधान करना चाहिए। यह पुस्तक शास्त्राकार रूप में प्रकाशित है।

उपरोक्त 29 ग्रन्थ आचार्य ज्ञानसागर जी की साहित्य साधना है। इस साहित्य साधना को देखकर तथा समकालीन लोगों से जो जनश्रुति सुनने में आती हैं कि महाकवि ने इन 29 ग्रन्थों के अलावा और भी ग्रंथ लिखे हैं, जो यत्र तत्र मन्दिरों

के शास्त्र भण्डारों में पाण्डुलिपि के रूप में पड़े रह सकते हैं, क्योंकि ऐसा सुनने में आता है कि महाकवि जिस प्रान्त में जिस नगर में ग्रन्थ लिखते थे उस ग्रन्थ को पूर्ण करके उसी नगर के जैन मन्दिर के भण्डार में अथवा वहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्ति को दे देते थे। जहाँ-जहाँ इनका विहार हुआ है, वहाँ-वहाँ खोज की जा रही है। सम्भव है, इन ग्रन्थों के अलावा कोई नये ग्रन्थ इतिहास जगत को प्राप्त हो जायें। इन ग्रन्थों के ऊपर अभी तक कई लोग पी. एच. डी. कर चुके हैं, जैसे :

(1) डॉ. हरिनारायण दीक्षित के निर्देशन में डॉ. किरण टण्डन, प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तर प्रदेश) से "महाकवि ज्ञान सागर के काव्यों का एक अध्ययन" नाम से पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। जिनका प्रकाशन इस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825 चन्द्रावल रोड़, जवाहर गंज, दिल्ली-7 से प्रकाशित हुआ है।

(2) डॉ. कैलाशपति पाण्डेय, गोरखपुर विश्वविद्यालय से "जयोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन" शीर्षक से डॉ. दशरथ के निर्देशन में पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। प्रकाशन आचार्य ज्ञान सागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, सरस्वती भवन, सेठजी की नसियाँ, ब्यावर (राज.) से किया गया है।

(3) डॉ. रतनचन्द जी जैन, भोपाल के निर्देशन में डॉ. आराधना जैन, बरकतुल्लहा विश्वविद्यालय, भोपाल से "जयोदय महाकाव्य का शैली वैज्ञानिक अनुशीलन", इसका प्रकाशन मुनि संघ वैय्यावृत्ति समिति, स्टेशन रोड़, गंजबासौदा (विदिशा, मध्यप्रदेश) से हुआ है।

(4) डॉ. शिवा श्रवण ने डॉ. सर हरि सिंह गौड़ विश्वविद्यालय, सागर से श्रीमति कुसुम भुरिया के निर्देशन में चम्पू काव्य पर शोध ग्रन्थ लिखा है, जिसमें दयोदय चम्पू पर विशद प्रकाश डाला है।

(5) वर्तमान में श्रीमती अलका जैन, डॉ. रतनचन्द जी के निर्देशन में आचार्य ज्ञानसागर जी के शान्तरस परक तत्त्वज्ञान के विषय पर पी. एच. डी. कर रही हैं।

(6) दयानन्द ओझा "जयोदय महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय ग्रहण का डॉ. सागरमल जैन एवं डॉ. जे. एस. एल. त्रिपाठी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के निर्देशन में पी. एच. डी. कर रहे हैं।

(7) डॉ. नरेन्द्र सिंह राजपूत ने "संस्कृत वाङ्मय के विकास में बीसवीं सदी के जैन मनीषियों के योगदन" पर पी. एच. डी. की है, जिसमें ज्ञानसागर के संस्कृत साहित्य को विवेचित किया गया है। प्रकाशन आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, सरस्वती भवन, सेठजी की नसियाँ ब्यावर (राज.) से किया गया है।

इस प्रकार और भी अनेक शोध प्रबन्ध किये जा सकते हैं, ऐसा विद्वानों का मत है। महाकवि के एक-एक संस्कृत काव्य को लेकर विगत एक साल से अखिल भारतवर्षीय विद्वत् संगोष्ठी की जा रही हैं, जिनमें सैकड़ों विद्वान एक ही काव्य पर भिन्न भिन्न विषयों पर वाचर कर ज्ञानसागर के साहित्य सागर से रत्नों को निकाल रहे हैं।

प्रथम गोष्ठी अतिशय क्षेत्र साँगानेर, जयपुर में 9 जून से 11 जून, 1994 में हुई।

द्वितीय संगोष्ठी अजमेर नगर में वीरोदय महाकाव्य पर 13 से 15 अक्टूबर, 1994 में हुई।

तृतीय संगोष्ठी ब्यावर (राजस्थान) में 22 से 24 जनवरी, 1995 में हुई।

चतुर्थ संगोष्ठी, 1995 चातुर्मास में किशनगढ़ में हुई, जिससे लगभग 80 जैन-अजैन अन्तराष्ट्रीय विद्वानों ने भाग लिया। यह गोष्ठी ज़योदय महाकाव्य पर थी, सभी विद्वानों ने एकमत से इस महाकाव्य को इस युग का सर्वोच्च महाकाव्य मानकर साहित्य जगत के उच्च सिंहासन पर विराजमान किया है। सभी विद्वानों ने इसे बृहत्-त्रयी (नैषधीय चरित्र, शिशुपाल वध एवं किरातार्जुनीयम्) के समकक्ष मानकर बृहत्रयी के नाम को बृहच्चतुष्टयी के रूप में सज्ञित करके साहित्य जगत को गौरान्वित किया है। मैने अपने कानों से विद्वानों के लेख इन संगोष्ठियों में सुने हैं। बहुत ही प्रशंसनीय एवं श्रमसाध्य लेख विद्वानों ने लिखे हैं। गोष्ठियों के दौरान विद्वानों का मत था कि ज्ञान सागर का समग्र साहित्य एक स्थान से प्रकाशित होना चाहिए। सो वह 1994 के चातुर्मास में अजमेर के दिगम्बर जैन समाज के द्वारा प्रकाशित किये जा चुके है। दूसरा निर्णय लिया गया था कि ज्ञानसागर के साहित्य पर पाठ्यक्रम तैयार किया जाये, यह कार्य विद्वानों को सौंप दिया गया है। तीसरा निर्णय लिया गया था कि आचार्य ज्ञानसागर संस्कृत शब्द कोष तैयार किया जाये, सो यह कार्य भी विद्वानों को सौंप दिया गया है। चौथा निर्णय लिया

गया था कि आचार्य ज्ञानसागर के साहित्य पर पृथक्-पृथक् विद्वानों से पृथक-पृथक विषयों पर लगभग तीन-तीन सौ पेज के महा-निबन्ध लिखाये जायें, जिससे शोध प्रबन्ध करने वालों को सुविधा पड़ सके । यह कार्य लगभग 50 विद्वानों को सौंपा गया था, जिसमें से 40 विद्वानों ने महा-निबन्ध लिखने की स्वीकृति प्रदान कर दी है ।

पाँचवा निर्णय लिया गया है कि इन समस्त कार्यों को कराने हेतु एक निश्चित स्थान पर किसी योग्य विद्वान के निर्देशन में एक संस्था की स्थापना होंनी चाहिए। ब्यावर संगोष्ठी के समय पर ब्यावर में डॉ. रमेशचन्द बिजनौर एवं डॉ. अरुण कुमार शास्त्री के संयोजकत्व में आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र की स्थापना की गई । संस्था का मुख्य कार्य आचार्य ज्ञानसागर से सम्बन्धित निबंध एवं शोध ग्रन्थों का प्रकाशन करना है । साथ ही आचार्य ज्ञान सागर महाराज के साहित्य पर शोध करने वाले छात्रों को निर्देशकों की स्वीकृति पर पाँच सौ रुपये प्रतिमाह शोध छात्रवृत्ति प्रदान करना । इस प्रकार और भी अनेक निर्णय गोष्ठियों में लिए गए हैं, जो पृथक्-पृथक् स्मारिकाओं में प्रकाशित किये जा चुके हैं । सम्पूर्ण गोष्ठियों में वांचे गये सभी लेख प्रकाशित किये जा चुके हैं, शोधार्थी केन्द्र से सम्पर्क कर प्राप्त कर सकते हैं ।

बीसवीं सदी के इस महान् साहित्य साधक की साहित्य साधना का हमें रसास्वादन करना है, यही इस साधक के प्रति सच्ची व अनूठी श्रद्धांजलि होगी। साहित्य जगत् के इस उपकारी साहित्य साधक का साहित्य प्रेमी बुद्धि में उच्चासन प्रदान करें, यही कृतज्ञता होगी ।

"कृतमुपकारम् न विस्मरन्ति साधवा"

अर्थात वर्तमान विद्वान् महाकवि आचार्य ज्ञानसागर द्वारा साहित्य जगत् पर किये गये उपकार को न भूलें, यही मेरी भावना है ।

॥ इति शुभम् ॥

प्रकाशकीय

चिरंतन काल से भारत मानव समाज के लिये मूल्यवान विचारों की खान बना हुआ है। इस भूमि से प्रकट आत्मविद्या एवं तत्व ज्ञान में सम्पूर्ण विश्व का नव उदात्त दृष्टि प्रदान कर उसे पतनोमुखी होने से बचाया है । इस देश से एक के बाद एक प्राणवान प्रवाह प्रकट होते रहे । इस प्रणावान बहूलमून्य प्रवाहों की गति की अविरलता में जैनाचार्यों का महान योगदान रहा है । उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विश्व की आदिम सभ्यता और संस्कृति के जानने के उपक्रम में प्राचीन भारतीय साहित्य की व्यापक खोजबीन एवं गहन अध्यनादि कार्य सम्पादिक किये गये । बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक प्राच्यवाङ्मय की शोध, खोज व अध्ययन अनुशीलनादि में अनेक जैन-अजैन विद्वान भी अग्रणी हुए । फलत: इस शताब्दी के मध्य तक जैनाचार्य विरचित अनेक अंधकाराच्छादिक मूल्यवान ग्रन्थरत्न प्रकाश में आये । इन गहनीय ग्रन्थों में मानव जीवन की युगीन समस्याओं को सुलझाने का अपूर्व सामर्थ्य है । विद्वानों के शोध-अनुसंधान-अनुशीलन कार्यों को प्रकाश में लाने हेतु अनेक साहित्यिक संस्थाए उदित भी हुई, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओं में साहित्य सागर अवगाहनरत अनेक विद्ववानों द्वारा नवसाहित्य भी सृजित हुआ है, किन्तु जैनाचार्य-विरचित विपुल साहित्य के सकल ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ/अनुशीलनार्थ उक्त प्रयास पर्याप्त नहीं हैं । सकल जैन वाङ्मय के अधिकांश ग्रन्थ अब भी अप्रकाशित हैं, जो प्रकाशित भी हो तो सोधार्थियों को बहुपरिश्रमोपरान्त भी प्राप्त नहीं हो पाते हैं । और भी अनेक बाधायें/समस्याऐं जैन ग्रन्थों के शोध-अनुसन्धान-प्रकाशन के मार्ग में है, अत: समस्याओं के समाधान के साथ-साथ विविध संस्थाओं-उपक्रमों के माध्यम से समेकित प्रयासों की आवश्यकता एक लम्बे समय से विद्वानों द्वारा महसूस की जा रही थी ।

राजस्थान प्रान्त के महाकवि ब्र. भूलामल शास्त्री (आ. ज्ञानसागर महाराज) की जन्मस्थली एवं कर्म स्थली रही है । महाकवि ने चार-चार महाकाव्यों के प्रणयन के साथ हिन्दी संस्कृत में जैन दर्शन सिद्धान्त एवं अध्यात्म के लगभग 24 ग्रन्थों की रचना करके अवरुद्ध जैन साहित्य-भागीरथी के प्रवाह को प्रवर्तित किया । यह एक विचित्र संयोग कहा जाना चाहिये कि रससिद्ध कवि की काव्यरस धारा का प्रवाह राजस्थान की मरुधरा से हुआ । इसी राजस्थान के भाग्य से श्रमण परम्परोन्नायक सन्तशिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य जिनवाणी के यर्थाथ उद्‌घोषक, अनेक ऐतिहासिक उपक्रमों के समर्थ सूत्रधार, अध्यात्मयोगी युवामनीषी पू. मुनिपुंगव सुधासागर जी महाराज का यहाँ पदार्पण हुआ । राजस्थान की धरा पर राजस्थान के अमर साहित्यकार के समग्रकृतित्व पर एक अखिल भारतीय विद्वत/संगोष्ठी सागानेर में दिनांक 9 जून से 11 जून, 1994 तथा अजमेर नगर में महाकवि की महनीय कृति "वीरोदय" महाकाव्य पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी दिनांक 13 से 15 अक्टूबर 1994 तक आयौजित हुई व इसी सुअवसर पर दि. जैन समाज, अजमेर ने आचार्य ज्ञानसागर के सम्पूर्ण 24 ग्रन्थ मुनिश्री के 1994 के चार्तुमास के दौरान प्रकाशित कर/लोकार्पण कर अभूतपूर्व

ऐतिहासिक काम करके श्रुत की महत् प्रभावना की। पू. मुनि श्री सान्ध्य में आयोजित इन संगोष्ठियों में महाकवि के कृतित्व पर अनुशीलनात्मक-आलोचनात्मक, शोधपत्रों के वाचन सहित विद्वानों द्वारा जैन साहित्य के शोध क्षेत्र में आगत अनेक समस्याओं पर चिन्ता व्यक्त की गई तथा शोध छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करने, शोधार्थियों को शोध विषय सामग्री उपलब्ध कराने, ज्ञानसागर वाङ्मय सहित सकल जैन विद्या पर प्रख्यात अधिकारी विद्वानों द्वारा निबन्ध लेखन-प्रकाशनादि के विद्वानों द्वारा प्रस्ताव आये। इसके अनन्त मास 22 से 24 जनवरी तक 1995 में ब्यावर (राज.) में मुनिश्री के संघ सानिध्य में आयोजित "आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रीय संगोष्ठी" में पूर्व प्रस्तावों के क्रियान्वन की जोरदार मांग की गई तथा राजस्थान के अमर साहित्यकार, सिद्धसारस्वत महाकवि ब्र. भूरामल जी की स्टेच्यू स्थापना पर भी बल दिया गया, विद्वत् गोष्ठि में उक्त कार्यों के संयोजनार्थ डॉ. रमेशचन्द जैन बिजनौर और मुझे संयोजक चुना गया। मुनिश्री के आशीष से ब्यावर नगर के अनेक उदार दातारों ने उक्त कार्यों हेतु मुक्त हृदय से सहयोग प्रदान करने के भाव व्यक्त किये।

पू. मुनिश्री के मंगल आशिष से दिनांक 18.3.95 को त्रैलोक्य महामण्डल विधान के शुभप्रसंग पर सेठ चम्पालाल रामस्वरूप की नसियाँ में जयोदय महाकाव्य (2 खण्डों में) के प्रकाशन सौजन्य प्रदाता आर. के. मार्बल्स किशनगढ़ के रतनलाल कंवरीलाल पाटनी श्री अशोक कुमार जी एवं जिला प्रमुख श्रीमान् पुखराज पहाड़िया, पीसांगन के करकमलों द्वारा इस संस्था का श्रीगणेश आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र के नाम से किया गया।

आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र के माध्यम से जैनाचार्य प्रणीत ग्रन्थों के साथ जैन संस्कृति के प्रतिपादक ग्रन्थों का प्रकाशन किया जावेगा एवं आचार्य ज्ञानसागर वाङ्मय का व्यापक मूल्यांकन-समीक्षा-अनुशीलनादि कार्य कराये जायेंगे। केन्द्र द्वारा जैन विद्या पर शोध करने वाले शोधार्थी छात्र हेतु 10 छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था की जा रही है।

केन्द्र का अर्थ प्रबन्ध समाज के उदार दातारों के सहयोग से किया जा रहा है। केन्द्र का कार्यालय सेठ चम्पालाल रामस्वरूप की नसियाँ में प्रारम्भ किया जा चुका है। सम्प्रति 10 विद्वानों की विविध विषयों पर शोध निबन्ध लिखने हेतु प्रस्ताव भेजे गये, प्रसन्नता का विषय है 25 विद्वान अपनी स्वीकृति प्रदान कर चुके हैं तथा केन्द्र ने स्थापना के प्रथम मास में ही निम्न पुस्तकें प्रकाशित की -

प्रथम पुष्प - इतिहास के पन्ने - आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा रचित
द्वितीय पुष्प - हित सम्पादक - आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा रचित
तृतीय पुष्प - तीर्थ प्रवर्तक - मुनिश्री सुधासागरजी महाराज के प्रवचनों का संकलन
चतुर्थ पुष्प - लघुत्रयी मन्थन - ब्यावर स्मारिका
पंचम पुष्प - अञ्जना पवनंजयनाटकम् - डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर

षष्टम पुष्प - जैनदर्शन में रत्नत्रय का स्वरूप - डॉ. नरेन्द्रकुमार द्वारा लिखित
सप्तम पुष्प - बौद्ध दर्शन पर शास्त्रीय समिक्षा - डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर
अष्टम पुष्प - जैन राजनैतिक चिन्तन धारा - डॉ. श्रीमति विजयलक्ष्मी जैन
नवम पुष्प - आदि ब्रह्मा ऋषभदेव - बैस्टिर चम्पतराय जैन
दशम पुष्प - मानव धर्म - पं. भूरामलजी शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागरजी)
एकादशं पुष्प - नीतिवाक्यामृत - श्रीमत्सोमदेवसूरि-विरचित
द्वादशम् पुष्प - जयोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन - डॉ. कैलाशपति पाण्डेय
त्रयोदशम् पुष्प - अनेकान्त एवं स्याद्वाद विमर्श - डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर
चर्तुदशम् पुष्प - Humanity A Religion - मानव धर्म का अंग्रेजी अनुवाद
पञ्चदशम् पुष्प - जयोदय महाकाव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन- डॉ. आराधना जैन
षोडदशम् पुष्प - महाकवि ज्ञानसागर और उनके काव्य : एक अध्ययन - नामक यह ग्रन्थ डॉ. किरण टण्डन, संस्कृत विभागाध्यक्ष की अनुपम कृति है, जिस पर आपको कुमायुँ विश्वविद्यालय, नैनीताल द्वारा पी. एच. डी. उपाधि प्रदान की गयी है ।

हमें यह कहते हुए परम गौरव का अनुभव हो रहा है कि आचार्य ज्ञानसागर वाङ्मय पर सर्वप्रथम शोधकार्य करके इस दिशा में नव द्वारों के उद्घाटन का श्रेय आदरणीया बहिन श्री डॉ. किरण टण्डन को जाता है ।

जब इन ग्रन्थों का प्रचार नहीं था, न ही इन पर हिन्दी टीका की गयी थी, उपलब्धता कठिन थी, ऐसे समय में ग्रन्थ के संग्रह में लेखिका को कष्ट साध्य श्रम करना पड़ा और फिर आचार्य श्री के बृहत्त्रयी-काव्य समकक्ष "जयोदय महाकाव्य" का क्लिष्ट, चित्र बन्धमय भाषा को हृदयंगम करने में ही साधारण विद्यार्थियों/विद्वानों की शक्ति चूक जाती है । परन्तु इस महान् महिला रत्न ने साहस नहीं छोड़ा । "कार्यं वा साधयं देहं वा पातेयम्" के मन्त्र से अनुगुंजित रहते हुए आचार्य श्री के समग्र व्यक्तित्व व कृतित्व का सटीक मूल्याङ्कन कर भारतीय संस्कृत साहित्य के इतिहास में नया अध्याय जोड़ा है ।

डॉ. किरण टण्डन का महान आचार्य ज्ञानसागर महाराज के काव्यों पर यह प्रथम शोध कार्य है, बड़े गौरव के साथ कहना होगा कि एक ब्राह्मण कुल में जन्मी हुयी महिला ने एक जैन कवि के ऊपर अपना शोध कार्य करने का मन बनाकर सम्प्रदाय निरपेक्षता की तथा साहित्य जगत को प्रदान कर नया किर्तिमान् स्थापित किया है । डॉ. टण्डन जी स्वयं इस पुस्तक में कहती है कि महाकवि आचार्य ज्ञानसागर महाराज संस्कृत साहित्य को संस्कृत साहित्य जगत धर्म निरपेक्ष दृष्टि से अवलोकन करें तो इस युग के प्रथम संस्कृत महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित होंगे, संस्कृत महाकाव्यों के रहस्यों को बहुत ही सुन्दर एवं गरिमायुक्त शैली में प्रस्तुत किया गया है । महाकवि के साहित्य में से अनमोल रत्नो को निकालकर तथा अपने शोध ग्रन्थ के माध्यम से उन रत्नों को हार का रूप प्रदान कर साहित्य जगत को गौरवान्वित किया है । केन्द्र आपकी भूरी-भूरी प्रशंसा करता है ।

इन दिनों परमपूज्य मुनि पुंगव श्री सुधासागरजी महाराज की प्रेरणा से

पूरे भारत में महाकवि ज्ञानसागर की रचनाओं के अध्ययन/अनुसंधान ने तीव्र गति प्राप्त की तो अनेक शोधार्थियों को इस दिशा में लेम्प पोस्ट की आवश्यकता थी । अनेक विद्वानों के सुझाव भी आये, सभी शोधार्थियों, शोध केन्द्रों को डॉ. किरण टण्डन की आदर्श शोध प्रबन्ध केन्द्र द्वारा उपलब्ध कराया जाय तथा यह महाकवि ज्ञानसागर पर लिखित प्रथम कोटि का प्रथम शोध प्रबन्ध है । अत: इसे प्रकाशित करते हुए हमें परम गौरव का अनुभव हो रहा है ।

मैं इस अवसर पर ग्रन्थ की स्वनामधन्य लेखिका डॉ. किरण टण्डन के प्रति आभार/कृतज्ञता और श्रद्धाभाव ज्ञापित करता हूँ, कि उन्होंने अनेक विसंगतियों/विपत्तियों से संघर्ष करते हुए आचार्य श्री ज्ञानसागर की रचनाओं से संस्कृत जगत् को न केवल परिचित कराया बल्कि आचार्य ज्ञानसागर का अध्ययन अनुशीलन करने के लिये विद्वानों को बाध्य किया है । भारत की विद्यानुरागी समाज आपकी चिर ऋणी रहेगी । केन्द्र को प्रकार्शनार्थ आपने स्वीकृति दी उसके लिये भी हम आपके आभारी है और आभारी है, आपके गुरुवर श्रीयुत हरिनारायण जी दीक्षित के जिन्होनें प्रस्तुत ग्रन्थ पर भूमिका लिखकर ग्रन्थ का गौरव बढ़ाया है ।

केन्द्र पूर्व प्रकाशित सभी ग्रन्थों के प्रकाशन में उदारता प्रदर्शित करने वाले महानुभावों के प्रतिं आभार व्यक्त करता है, जिनके सहयोग से हमारे कार्यों को गति मिली है।

हम नतमस्तक है पूज्य मुनिवर श्री सुधासागर जी के प्रति श्रद्धानवत है उनके तीर्थचरणों में, जिनकी कृपा-कटाक्ष से अल्पकाल में केन्द्र द्वारा अनेक महनीय, परिश्रम साध्य दुसह कार्य सहज रूप में सम्पादित हो गये । केन्द्र के हर कार्य में तथा प्रत्येक प्रगति पक्ष में मुनिश्री का आशीष ही, केन्द्र की सफलता सटीक हेतु है । जग को अनुपम निधियाँ निशदिन लुटाने वाले अनगार के प्रति आभार व्यक्त करने की शक्ति सामर्थ्य इस आकिञ्चन में नहीं ।

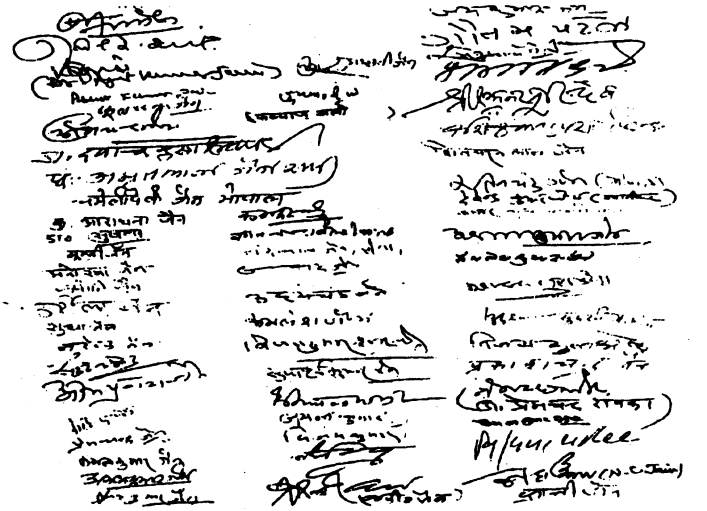
इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली द्वारा किया गया था। प्रकाशक का आभार मानते हुये इस ग्रन्थ की सहज सुलभता हेतु हमारा केन्द्र इसे पुन: प्रकाशित कर रहा है । आशा है पाठक गण इस ग्रंथ को अपने हाथों में पाकर आनन्दित होंगे ।

पं. अरूणकुमार शास्त्री
ब्यावर (राज.)

बृहद्-चतुष्टयी

जयोदय महाकाव्य राष्ट्रिय विद्वत्संगोष्ठी (दिनांक 29.9.95 से 3.10.95) मदनगंज-किशनगढ़ में देश के विविध भागों से समागत हम सब साहित्याध्येता महाकाव्य के अनुशीलन निष्कर्षों पर सामूहित काव्यशास्त्रीय विचारोपरान्त वाणीभूषण महाकवि भूरामल शास्त्री द्वारा प्रणीत जयोदय महाकाव्य को संस्कृत साहित्येतिहास में बृहत्त्रयी संज्ञित शिशुपालवध, किरातार्जुनीय एवं नैषधीयचरित महाकाव्य के समकक्ष पाते हैं। अत: हम सब बृहत्त्रयी संज्ञित तीनों महाकाव्यों के साथ जयोदय महाकाव्य को सम्मिलित कर बृहच्चतुष्टयी के अभिधान से संज्ञित करते हैं ।

हम विद्वज्जगत् से यह अनुरोध करते हैं कि उक्त चारों महाकाव्यों को बृहच्चतुष्टयी संज्ञा से अभिहित करेंगे ।



1. डॉ. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर
2. डॉ. नलिन के शास्त्री, बोधगया
3. डॉ. अजितकुमार जैन, आगरा
4. डॉ. अशोक कुमार जैन, लाडनूं
5. डॉ. फूलचन्द जैन, वाराणसी
6. डॉ. सुरेशचन्द जैन, वाराणसी
7. डॉ. दयाचन्द साहित्याचार्य, सागर
8. पं. अमृतलाल शास्त्री, दमोह
9. श्रीमती चमेली देवी, भोपाल
10. डॉ. (कु.) आराधना जैन, बासौदा
11. डॉ. (कु.) सुषमा, मुजफ्फरनगर
12. डॉ. मुन्नीदेवी जैन, वाराणसी
13. डॉ. मनोरमा जैन, वाराणसी
14. डॉ. ज्योति जैन, खतौली
15. डॉ. उर्मिला जैन, बड़ौत
16. डॉ. सुधा जैन, लाडनूं
17. डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन, सनावद
18. डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन, बुरहानपुर
19. डॉ. ओम प्रकाश जैन, किशनगढ़
20. डॉ. सरोज जैन, बीना
21. डॉ. प्रेमचन्द जैन नाजीबाबाद
22. प्रो. कमलकुमार जैन, बीना
23. प्रो. अभयकुमार जैन, बीना
24. डॉ. सनतकुमार जैन, जयपुर

1. श्रीमती मालती जैन,ब्यावर 2. डॉ. फय्याज अली खाँ, किशनगढ़ 3. डॉ. कस्तूरचन्द सुमन, श्रीमहावीरजी 4. पं. ज्ञानचन्द बिल्टीवाला, जयपुर 5. डॉ. नन्दलाल जैन, रीवा 6. डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली 7. डॉ. उदयचन्द जैन, उदयपुर 8. डॉ. कमलेश जैन, वाराणसी 9. पं. विजयकुमार शास्त्री, श्रीमहावीरजी 10. डॉ.सुपार्श्वकुमार जैन, बड़ौत 11. डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, बड़ौत 12. डॉ. जयन्तकुमार लाड़नूं 13. डॉ. नेमिचन्द जैन, खुरई 14. डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर

1. डॉ. जयकुमार जैन, मुज्फ्फरनगर 2. डॉ. गौतम पटेल, अमहदाबाद 3. डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर 4. डॉ. शीतलचन्द शास्त्री, जयपुर 5. डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना 6. डॉ. वशिष्ठ नारायण सिन्हा, वाराणसी 7. पं. शिवचरणलाल मैनपुरी 8. डॉ. रतनचन्दजैन, भोपाल 9. श्री देवेन्द्रकुमार जैन, ग्वालियर 10. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर 11.पं. अरुणकुमार जैन, ब्यावर 12. डॉ.कमलेशकुमार जैन, वाराणसी 13. पं. मूलचन्द लुहाड़िया, किशनगढ़ 14. डॉ. सुदर्शनलाल जैन, वाराणसी 15. डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ, उदयपुर 16. डॉ. प्रकाशचन्द जैन, दिल्ली 17. डा. प्रेमचन्द रांवका, बीकानेर 18. प्रो. विमलकुमार जैन, जयपुर 19. प्रो. विमलकुमार जैन, जयपुर 20. प्राचार्य निहालचन्द जैन, बीना 21. श्रीमती क्रान्ति जैन, लाड़नूं

भूमिका

लेखक—डॉ० हरिनारायण दीक्षित

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, सांख्ययोगाचार्य, रीडर तथा अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (यू० पी०)

मानवजीवन को सुख-शान्तिमय बनाने के लिए भारतीय मनीषियों ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह नामक पाँच महाव्रतों के परिपालन का उपदेश दिया है। चूँकि मानवजीवन के लिए परमोपयोगी तथा परमावश्यक संयम का सार-सर्वस्व इन्हीं महाव्रतों मे समाया हुआ है और ये किसी भी देश और किसी भी काल की सीमा से बँधे हुए नहीं हैं, अतः विश्व के किसी भी देश और किसी भी समय का कोई भी मानव इन महाव्रतों का पालन करके अपने जीवन को स्पृहणीय एवं लोकप्रिय बना सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु ध्यातव्य है कि इन महाव्रतों का परिपालन बिना किसी प्रतिबन्ध (शर्त) के किया जाना चाहिए; और न केवल कर्म से ही, अपितु वाणी तथा मन से भी किया जाना चाहिए; तभी ये शतप्रतिशत फलदायक होते हैं। तत्त्वद्रष्टाओं का अनुभव रहा है कि सम्पूर्णनिष्ठा के साथ इन महाव्रतों का पालन करने वाले मनुष्य से विश्व का कोई भी प्राणी, कोई भी जीव-जन्तु, यहाँ तक कि प्रकृति भी, वैरभाव नहीं रखता है; उससे कोई भी किसी भी प्रकार का द्रोह, द्वेष, ईर्ष्याभाव, असूयाभाव आदि जैसा कोई भी दुर्भाव नहीं रखता है; सभी उसके मन, वचन और कार्यों की पवित्रता पर विश्वास रखते हैं; अर्थ उसकी वाणी से निकले हुए वाक्यों का अनुगमन करते हैं; उसके योग-क्षेम के लिए सारा समाज जागरूक हो उठता है; उसके उपयोग में आने वाली किसी भी वस्तु का उसे अभाव नहीं रहता है; उसके शरीर में, उसके वचनों में और उसके मन में एक अद्‌भुत शक्ति, एक आदरणीय आकर्षण तथा एक विलक्षण आत्मबल का उदय हो जाता है; जिससे वह अनुपम गुणों का आश्रय बन जाता है और उसके उपदेशों में उसके विचारों की विलक्षण संवाहकता घर कर लेती है; वह त्रिकालज्ञ हो जाता है; दूरदर्शी हो जाता है; उसे अपना अतीत, अपना वर्तमान और अपना भविष्य स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार वह अपने संयमित जीवन से स्वयं सुख-शान्तिपूर्वक रहता हुआ

अपने परिवेश में आने वाले लोगों के जीवन को भी सुख-शान्तिमय बनाता हुआ सबका वन्दनीय बन जाता है।

काश ! भारतीय मनीषियों द्वारा समुपदिष्ट संयमित जीवन के इन तत्त्वों पर मानवसमाज ने ध्यान दिया होता। इनके प्रयोग के परिणामों का प्रचार-प्रसार किया होता। इनका अधिकाधिक पालन किया होता। मेरा विश्वास है कि तब निश्चय ही भारतीय मानवसमाज एवं विश्व मानव समाज में राष्ट्राध्यक्षों के प्रयत्नों के बावजूद भी लोगों में हत्या करने-कराने की होड़ नहीं लगती; सचाई का दिवाला नहीं निकलता; चोर-बाजारी का तथा चोरियों और डकैतियों का बोल-बाला नहीं होता; किसी की अमानत में कोई खयानत नहीं होती; अबलाओं का शीलहरण नहीं होता; और जमाखोरी करने वालों की जाति ऊँची नहीं होती। यही कारण है कि आज मानव का जीवन संघर्ष का पर्याय बन चुका है; और उसे कहीं भी क्षणमात्र के लिए भी पार्यन्तिक सुख-शान्ति का अनुभव नहीं हो पा रहा है।

मानवसमाज की इस अवाञ्छनीय दशा से कलावादी साहित्यकार भले ही प्रभावित न हो, क्योंकि वह 'कला' की उपासना 'कला के लिए' करता है; किन्तु जो साहित्यकार 'कला' की उपासना 'जीवन के लिए' करता है, वह तो निश्चय ही इससे प्रभावित होता है; और अपनी काव्यकला के माध्यम से मानवजीवन की इस उपर्युक्त अवाञ्छनीय दशा में सुधार लाने का प्रयत्न भी करता है। उसके इस साहित्यिक अनुष्ठान में उसकी व्यक्तिगत राष्ट्रीयता, जाति, जीविका, धर्म, दर्शन आदि कुछ भी बाधा नहीं पहुँचाते हैं। क्योंकि वह जानता है कि मानवता से बढ़कर कुछ भी संरक्षणीय नहीं है। इसीलिए वह कान्तासम्मित अपने साहित्यिक सन्देशों से 'मानवमात्र के कल्याण की कामना करने में लग जाता है। ऐसे ही मानवतावादी, सुधारवादी, संवेदनशील साहित्यकारों में महाकवि ज्ञानसागर का नाम, अब तक की उपलब्ध प्रकाशित साहित्यिक सम्पत्ति के आधार पर निश्चय ही कनिष्ठिकाधिष्ठित है। आपका जन्म राजस्थान प्रान्त के सीकर नामक जनपद में राणोली नामक एक ग्राम में सन् १८९२ ईशवीय में हुआ था। आपके पिता का नाम सेठ श्रीचतुर्भुज खण्डेलवाल और माता का नाम घृतवरी देवी था। इनके अतिरिक्त इनके पाँच भाई थे जिनमें एक तो पैदा होने के कुछ ही क्षण बाद कालकवलित हो गया था। यह आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे और संस्कृत वाङ्मय, जैनधर्म तथा जैनदर्शन का विधिवत् अनुशीलन-परिशीलन एवं प्रचार-प्रसार करते रहे। यह आत्मकल्याणहेतु अपनी आध्यात्मिक साधना के साथ ही साथ मानवसमाज का भी कल्याण करने की कामना से साहित्यिक साधना भी अनवरत करते रहे; जिसके फलस्वरूप आज के मानवसमाज को दयोदयचम्पू, समुद्रदत्तचरित्र, वीरोदय, जयोदय और सुदर्शनोदय जैसे पाँच संस्कृतकाव्यग्रन्थ

उपलब्ध हुए हैं। महाकवि ज्ञानसागर ने न केवल संस्कृतभाषा में ही, अपितु हिन्दी भाषा में भी अपनी कल्याणी काव्यकला का कमनीय परिचय दिया है। इस प्रकार आप मानवजाति के कल्याणहेतु आजीवन साहित्यसाधना में लगे रहे; और अन्त में आप दिनाङ्क एक जून सन् उन्नीस सौ तेहत्तर ईशवीय को नसीराबाद में सदा के लिए समाधिष्ट हो गए।

मानवसमाज का कल्याण करने में महाकवि ज्ञानसागर की काव्यसम्पत्ति महाकवि अश्वघोष की काव्यसम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवती है। क्योंकि महाकवि ज्ञानसागर ने भारतीयमनीषाप्रसूत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामक पाँचों ही सार्वभौम महाव्रतों के परिपालन की सत्प्रेरणा देने की इच्छा से एक चम्पूकाव्य और चार महाकाव्यों की सरस सर्जना करके मानवसमाज को संयमपूर्वक अपना जीवन बिताने का सर्वाङ्गीण सन्देश दिया है। उनके दयोदयचम्पू के नायक का जीवन पाठकों के मनःपटल पर अहिंसा की छवि बनाता है; समुद्रदत्तचरित्र का नाटक सत्य और अस्तेय की समुचित शिक्षा देता है; वीरोदय के नायक श्रीमहावीर स्वामी ब्रह्मचर्य के प्रति आस्था जगाते हैं; जयोदय का नायक अपरिग्रह के महत्त्व को अभिव्यक्त करता है; और सुदर्शनोदय के नायक के जीवन में आने वाले घातप्रतिघात इन उपर्युक्त जीवनोपयोगी सभी महाव्रतों (संयमों) के पालन की शिक्षा के साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व की पवित्रता की धीरतापूर्वक रक्षा करते रहने का प्रभविष्णु सन्देश देते हैं। उल्लेखनीय है कि महाकवि ज्ञानसागर आजीवन ब्रह्मचर्य महाव्रत के समानान्तर पर गृहस्थ जीवन के लिए परमोपयोगी परदारविरति को भी नैष्ठिक ब्रह्मचर्य महाव्रत के ही समान मानते हैं। समाज के शाश्वत हितहेतु उनकी यह विचारधारा निश्चय ही उनकी स्वतन्त्र मनीषा एवं दार्शनिक क्रान्ति की परिचायिका है। फलस्वरूप महाकवि ज्ञानसागर के ये काव्य समवेतरूप में मानव समाज का समग्र कल्याण करने में, अभी तक, अनुपम ही हैं। इसके अलावा साहित्यिक दृष्टि से भी ये काव्य कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों से प्रतिस्पर्धा सी करते हुए प्रतीत होते हैं। कथावस्तु, चरित्रचित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, वर्णनविधान, परिवेश आदि की दृष्टि से भी ये काव्य अतीव सजीव और सहृदयहृदयाह्लादकारी हैं। इनसे संस्कृतसाहित्य की अभूतपूर्व श्रीवृद्धि हुई है, यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

मेधा, मनीषा, प्रतिभा, लोकैषणा और संयम से धनी महाकवि ज्ञानसागर के उपर्युक्त संस्कृत काव्यों की सविधि सर्वाङ्गीण समीक्षा भी परमावश्यक थी। क्योंकि स्वर्ण को जब तक कसौटी पर नहीं कसा जाता, तब तक उसकी वास्तविकता सन्दिग्ध ही रहती है। इसी प्रकार चन्दन को जब तक घिसकर नहीं परखा जाता, तब तक उसकी सुगन्धि पर सन्देह बना ही रहता है। इसी कारण से मेरी यह

हार्दिक इच्छा थी कि महाकवि ज्ञानसागर जी के काव्यों की अनुसन्धानात्मक समीक्षा कराई जाय। परन्तु टीका-टिप्पणी के अभाव में इन सभी काव्यों की शोधपरक शुद्ध सर्वाङ्गीण समीक्षा करना निश्चय ही चारों तीर्थ धामों की पैदल पवित्र यात्रा करने के ही समान अत्यन्त कठिन काम था। लेकिन मुझे यह जानकर हार्दिक हर्ष हुआ है कि डॉक्टर (कुमारी) किरण टण्डन, एम० ए०, साहित्याचार्य (प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल) ने महाकवि ज्ञानसागर के इन समस्त संस्कृत काव्यों पर अपनी नीरक्षीरविवेकिनी सहज प्रज्ञा द्वारा शोधग्रन्थ के रूप में अनुसन्धानपरक शुद्ध एवं सर्वाङ्गीण समीक्षा प्रस्तुत करके मेरे उपर्युक्त संकल्प को भलीभाँति साकार कर दिया है। इसके लिए वह निश्चय ही विपुल प्रशंसा तथा बधाई की पात्र हैं।

डॉक्टर टण्डन का यह शोधग्रन्थ इस तथ्य की साक्षी है कि उन्होंने महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों की समस्त विशेषताओं और उपादेयताओं को प्रकाश में लाने के लिए प्रचुर एवं सुनियोजित परिश्रम किया है। उन्होंने इसमें महाकवि के जीवनचरित, काव्यों के कथानकों के स्रोत उनमें महाकविकृत परिवर्तन-परिवर्धन एवं उनका औचित्य, काव्यों की विधाओं का आकलन, वर्गीकरण एवं उनकी सामाजिक उपादेयता, प्राकृतिक तथा वैकृतिक पदार्थों का वर्णनविधान, भावपक्ष, कलापक्ष, महाकवि की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं आदि समग्र अपेक्षित बिन्दुओं पर अपने व्यापक, गम्भीर समीक्षात्मक तथा मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं तथा इन्हीं विचारों के आधार पर संस्कृत साहित्यकारों में महाकवि ज्ञानसागर का और संस्कृतसाहित्य में उनके इन काव्यों का निष्पक्षभाव से स्थान निर्धारित किया है। इस प्रकार समीक्षा के लिए अपेक्षित प्रायः समस्त बिन्दुओं पर अपनी सत्त्वसम्पन्न प्रतिभा द्वारा भ्रान्तिहीन एवं सर्वाङ्गीण निर्मल प्रकाश डालकर विदुषी लेखिका ने अपने इस शोधग्रन्थ को महाकवि ज्ञानसागरकाव्य-जिज्ञासुजनों के लिए कल्पतरुकल्प बना दिया है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। फलस्वरूप मुझे यह सुदृढ़ विश्वास है कि यह शोधग्रन्थ संस्कृतसाहित्य के समीक्षाजगत् में अवश्य ही श्रीवृद्धि करेगा और संस्कृतसाहित्य के उपासकों के लिए निश्चय ही नितान्त अभिनव, मौलिक, रोचक एवं परमोपयोगी उपहार सिद्ध होगा।

मेरा यह भी विश्वास है कि डॉ० टण्डन के इस शोधप्रबन्ध को भलीभाँति समझने में पाठकों को किसी भी प्रकार की कोई कठिनता नहीं होगी। क्योंकि उन्होंने अपने सम्पूर्ण शोधग्रन्थ को वैदर्भी भाषा-शैली में लिखा है और प्रतिपाद्य का प्रतिपादन संवेदनापूर्वक अतीव विशदता के साथ किया है। अथ से लेकर इति पर्यन्त अनुच्छेदों, वाक्यों और शब्दों का सन्निवेश भी उन्होंने बड़ी ही सुनियोजित, सुविचारित एवं सुगठित विधि से किया है। फलस्वरूप शोधग्रन्थ का प्रत्येक अध्याय, प्रत्येक अनुच्छेद, प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द अपनी-अपनी सीमा के

अनुरूप रहकर उनके अभीष्ट विचारों को निर्भ्रान्तरूप से प्रकट करने वाला हो गया है। समीक्षा के संसार में लेखनकला का यह कमनीय कौशल प्रायः विरलता से ही उपलब्ध होता है।

मेरे लिए यह अमन्द आनन्द का विषय है कि डॉक्टर (कुमारी) किरण टण्डन का यह शोधग्रन्थ अब प्रकाशित हो रहा है। मैं इसका हार्दिक स्वागत करता हूँ; इसके प्रचार-प्रसार की शुभकामनाएँ करता हूँ; और शिक्षाजगत् में अभिनन्दनीय इस उत्तम उपलब्धि के लिए डॉ० (कुमारी) किरण टण्डन को हार्दिक बधाई देता हूँ। मुझे सुदृढ़ विश्वास है कि संस्कृतसाहित्य के समीक्षाजगत् से जुड़ा हुआ प्रत्येक कर्मठ एवं गुणग्राहक व्यक्ति उनके इस शोधग्रन्थ का निश्चय ही स्वागत करेगा। अतएव डॉक्टर टण्डन से मैं यह भी आशा करता हूँ कि वह इसी प्रकार संस्कृतसाहित्य की समृद्धि करती रहें।

नैनीताल
दिनाङ्क—१३-१-१९८४ ईसवीय

—हरिनारायण दीक्षित

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध विषय का महत्त्व—

संस्कृत भाषा महिमशालिनी है। इसी भाषा में हमारे देश के धर्म एवं संस्कृति के ग्रन्थों की रचना हुई है। इस भाषा में रचा गया साहित्य मात्रा एवं कोटि की दृष्टि से अन्य भाषाओं में रचे गये साहित्य की अपेक्षा अधिक मूल्य रखता है। किन्तु आज के पाश्चात्य सभ्यता के अन्धभक्त, खेद है कि इस भाषा को मृतभाषा कहते हैं और इसका साहित्य 'आउट ऑफ डेट' कहलाता है।

इसके अतिरिक्त आज राष्ट्र में जातिवाद और सम्प्रदायवाद व्याप्त हैं। एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। इस साम्प्रदायिकता का प्रभाव अन्य क्षेत्रों के समान संस्कृत-काव्य क्षेत्र में भी पड़ा है। बहुसंख्यक सनातनधर्मी लोग अन्य अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लोगों के किसी कार्य को महत्त्व नहीं देते। ये लोग अपने ही सम्प्रदाय के कवियों और विद्वानों की रचनाओं पर अपने विचार प्रकट करते हैं। इसका फल यह होता है कि साहित्य का एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण भाग प्रकाश में आने से रह जाता है।

कवि एक सामाजिक प्राणी है। अतः उस पर उसके धर्म, जाति, सम्प्रदाय इत्यादि का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। किन्तु समालोचक को धर्म, जाति, सम्प्रदाय इत्यादि की मर्यादाओं को छोड़कर ही कवि की रचना की समीक्षा करनी चाहिए। हम यह नहीं कहते हैं कि समालोचक पर उसके धर्म जाति आदि बन्धनों का प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु जहाँ तक कवि के काव्य की समालोचना का प्रश्न है, वहाँ समालोचक को कवि के धर्म, जाति, सम्प्रदाय इत्यादि से कोई प्रयोजन नहीं रखना चाहिए। क्योंकि समालोचक का कार्य तो कवि के मार्मिक वैदुष्य की अभिव्यक्ति करना है।

पश्चिमी सभ्यता और आधुनिकता के रङ्ग में रंगे हुए व्यक्तियों को यह ज्ञात होना चाहिए कि आज भी कवि संस्कृत भाषा की श्रीवृद्धि कर रहे हैं। अतः इन कवियों की कृतियों को देखने के पश्चात् संस्कृत को मृतभाषा कहने के पहले उन्हें खूब विचार कर लेना चाहिए।

हमारे आलोच्य महाकवि श्रीज्ञानसागर ने भी संस्कृत भाषा में साहित्य सर्जना की है। किन्तु जैनधर्म के होने के कारण उनका साहित्य भी सम्प्रदायवादी

आलोचकों द्वारा उपेक्षित हो गया है। किसी भी समालोचक ने इनकी रचनाओं पर समीक्षापरक विचार व्यक्त नहीं किये हैं। उनकी संस्कृत-साहित्य-सम्पदा को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने चार महाकाव्य, एक चम्पूकाव्य और एक मुक्तक काव्य की रचना की है। यदि समालोचक धर्मनिरपेक्ष होकर उनकी रचनाओं को पढ़ें तो वे पायेंगे कि ज्ञानसागर की रचनाएँ उच्चकोटि की हैं। ज्ञानसागर २०वीं शताब्दी के कवि हैं, अतः आज के युग में संस्कृत भाषा में रचे गये उनके काव्य महत्त्व रखते हैं।

शोध प्रबन्ध में ज्ञानसागर के काव्यों का साहित्यिक मूल्याङ्कन करने का हमारा यही प्रयोजन है कि सहृदय सामाजिक संस्कृत-भाषा के अप्रकाशित, उपेक्षित किन्तु समाजोपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण साहित्य से परिचित हो सकें। समालोचक प्रत्येक धर्म एवं जाति के साहित्यिकों के प्रति न्याय करें। फिर ज्ञान किसी एक सम्प्रदाय विशेष की पैतृक सम्पत्ति नहीं है। अतः भले ही लोग दूसरे सम्प्रदाय के धर्म एवं दर्शन को न मानें, किन्तु उनका वैदुष्य और बुद्धिमत्ता तो सभी को स्वीकार करनी चाहिए।

जहाँ तक धर्म का प्रश्न है, उसके कुछ मूलभूत तत्त्व सभी सम्प्रदायों में मान्य हैं; यथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन पांचों महाव्रतों के पालन और पालन के परिणामस्वरूप मिलने वाले लाभ के विषय में सामाजिक को शिक्षा दी है। अतः हम चाहते हैं कि कविवर ज्ञानसागर को केवल जैन धर्म का कवि न मानकर मानवतावादी कवि माना जाए और उनके प्रति न्याय किया जाय।

प्रस्तुत शोध विषय पर साहित्यिक मूल्याङ्कन की अपूर्णता पर एक विहङ्गमदृष्टि—

संस्कृत-साहित्य के इतिहास की ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं है,[1] जिसमें कवि ज्ञानसागर के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर थोड़ा सा भी प्रकाश डाला गया हो। हाँ, मुनिश्री ज्ञानसागर जैन ग्रन्थमाला के सम्पादक पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री ने ज्ञानसागर के ग्रन्थों की प्रस्तावना में उनके और उनके ग्रन्थों के विषय में थोड़ा बहुत अवश्य लिखा है। प्रकाशचन्द्र जैन ने भी इन ग्रन्थों के प्रकाशक के रूप में कवि का थोड़ा सा परिचय दिया है। श्रीस्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी के दर्शनविभागाध्यक्ष आचार्य पं० अमृतलाल जैन ने सुदर्शनोदय काव्यग्रन्थ की

---

१. डॉ० कपिलदेव द्विवेदी द्वारा रचित 'संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास' नामक ग्रन्थ में पृ० सं० २६२ पर महाकवि की जयोदय नामक एक कृति का मात्र नामोल्लेख है। लेकिन उक्त कृति की सर्ग संख्या यहाँ अशुद्ध है। क्योंकि डॉ० कपिलदेव द्विवेदी ने जयोदय में बाईस सर्ग बताए हैं, जबकि हैं अट्ठाईस। —लेखिका

प्रस्तावना में केवल सुदर्शनोदय की अत्यल्प समीक्षा प्रस्तुत की है। इसी प्रकार पं० इन्द्रलाल जैन ने जयोदय की प्रस्तावना में, श्री रघुवर दत्त शास्त्री साहित्याचार्य ने वीरोदय की प्रस्तावना में तथा पं० विद्याकुमार सेठी ने श्रीसमुद्रदत्तचरित्र की प्रस्तावना में कवि और उनकी काव्यकला का अतीव संक्षिप्त परिचयमात्र दिया है। डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर एवं डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा रचित 'वीरशासन के प्रभावक आचार्य' नामक पुस्तक के अन्त में भी श्रीज्ञानसागर के व्यक्तित्व कर्तृत्व के विषय में थोड़ा सा लिखा हुआ प्राप्त होता है। पं० चम्पालाल जैन द्वारा सम्पादित 'बाहुबली सन्देश' नामक मासिक प्रपत्र में भी श्रीज्ञानसागर के समाधिमरण के अवसर पर विभिन्न विद्वानों में अतीव संक्षिप्त शोक लेख सङ्कलित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ जैन पत्र-पत्रिकाओं में भी कवि के विषय में थोड़ी सी जानकारी मिल जाती है।

श्रीज्ञानसागर तथा उनकी संस्कृत-साहित्य-सम्पदा के विषय में यत्र-तत्र बिखरी हुई अतीव संक्षिप्त उपर्युक्त समस्त सामग्री जैन विद्वानों ने ही दी है। यह सामग्री है भी इतनी कम कि इससे कवि के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर सन्तोषजनक प्रकाश नहीं पड़ सकता। फिर इस सामग्री में ज्ञानसागर एवं उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय तो मिल जाता है, लेकिन उनकी रचनाएँ कवित्व की दृष्टि से किस कोटि में आती हैं, उनका साहित्यिक सौन्दर्य क्या कैसा है ? अर्थात् उनकी रचनाओं का भावपक्ष एवं कलापक्ष कैसा है ? उनसे मानव समाज को क्या शिक्षा प्राप्त हो सकती है आदि-आदि अनेक समीक्षापरक समस्याओं का जिन पर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में पूर्ण प्रकाश डाला गया है, कोई भी समाधान नहीं मिलता है।

प्रस्तुत शोधकार्य की प्रेरणा—

संस्कृत विषय से एम्० ए० और साहित्याचार्य करने के बाद मुझे पी-एच्० डी० उपाधि हेतु शोधकार्य करने की इच्छा हुई। मेरी उस हार्दिक इच्छा को जानकर हमारे परमादरणीय अध्यापक डॉ० हरिनारायण जी दीक्षित (रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल) ने मुझे श्रीज्ञानसागर विरचित 'वीरोदय' नामक महाकाव्य गम्भीरतापूर्वक स्वाध्याय करने का अपना सत्परामर्श देते हुए दिया। मैंने इसे पढ़ा तो इसकी पृ० सं० ४८० पर तथा आवरक पृष्ठ पर पाँच अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिला। मेरी इच्छा इन रचनाओं को पढ़ने की हुई। अपने प्राध्यापक डा० दीक्षित की कृपा से श्री ज्ञानसागर की और भी रचनाओं का परिचय प्राप्त हुआ। दयोदयचम्पू के प्रस्तावनाभाग को पढ़ने से ज्ञात हुआ कि कविवर ने एक दो नहीं पूरे बाईस ग्रन्थों की रचना की है। इनमें कुछ ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं और कुछ हिन्दी भाषा में। कुछ ग्रन्थ साहित्यिक हैं और कुछ दार्शनिक। इनमें से कुछ रचनाएँ आचार्य श्रीविद्यासागर

जी[1] की और कुछ रचनाएं श्री गणेशीलाल रतनलाल जी कटारिया[2] की भी महती कृपा से प्राप्त हुईं। इस प्रकार से मुझे श्रीज्ञानसागर का साहित्य प्राप्त हुआ।

इससे पूर्व मैंने ज्ञानसागर के विषय में कभी न तो सुना था, न पढ़ा ही था। अतः उनकी रचनाओं के साथ न्याय करने के लिए मैंने उनकी समीक्षा करना उचित समझा। इन सब परिस्थितियों से प्रेरित होकर मैंने ज्ञानसागर के सम्बन्ध में पी० एच्० डी० की उपाधि हेतु शोध-प्रबन्ध लिखने का निश्चय कर लिया और डॉ० दीक्षित के सर्वथा उत्तमोत्तम निर्देशन में 'मुनि श्रीज्ञानसागर का व्यक्तित्व एवं उनके संस्कृत-काव्य-ग्रन्थों का साहित्यिक मूल्यांकन' विषय पर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल की संस्कृत शोधोपाधि समिति की संक्षिप्त रूपरेखा स्वीकृति हेतु प्रस्तुत कर दी। उक्त समिति द्वारा स्वीकृति मिलने पर मैं अपनी इच्छा को मूर्त्त रूप देने के लिए तत्पर हो गई और फलस्वरूप उस समय मैंने शोध प्रबन्ध लिखा, वह अब आपके समक्ष प्रस्तुत है।

शोध प्रबन्ध का संक्षिप्त परिचय—

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में दस अध्याय हैं। इनकी वर्ण्य-वस्तु का सारांश इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय में कवि के सम्पूर्ण जीवन का परिचय दिया गया है। अपनी युवावस्था से प्राण त्याग तक श्रीज्ञानसागर जैन-धर्म, दर्शन एवं साहित्य की जो सेवा करते रहे उस सबका कालक्रमानुसार वर्णन किया गया है। उनके अत्यल्प पारिवारिक जीवन में उनके माता-पिता एवं भाईयों का भी परिचय दिया गया है। तत्पश्चात् उनके संन्यासि-जीवन में उनके गुरुजनों एवं प्रमुख शिष्यों का परिचय भी यथाशक्ति दिया गया है। कवि के जन्म, गृहत्याग, गुरुजनों की कृपाप्राप्ति, शिष्यों को दीक्षा, विभिन्न उपाधि धारण करना, समाधिमरण इत्यादि से सम्बन्धित तिथियों का भी प्रायः उल्लेख कर दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में कवि के जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्त-चरित्र और दयोदयचम्पू—पाँच संस्कृत काव्यों का सारांश प्रस्तुत किया गया है,

---

१. आचार्य श्री विद्यासागर जी ज्ञानसागर जी के प्रमुख शिष्य हैं। पहले इनका नाम विद्याधर था। सन् १९६८ ई० में जब कविवर ने इनको मुनि दीक्षा दी, तभी से इनका नाम विद्यासागर हो गया। अपने सभी शिष्यों में इनको योग्य देखकर कविवर ने इनको अपना आचार्य का पद दे दिया।

२. जैनधर्म पर आस्था रखने वाले श्री गणेशीलाल, रतनलाल कटारिया जी ब्यावर (राजस्थान) के निवासी हैं। मुनिश्रीज्ञानसागर ग्रन्थमाला से प्रकाशित पुस्तकों का विक्रय इन्हीं के यहाँ से होता है।

जिससे इन संस्कृत काव्यों की समीक्षा होने के पूर्व ही पाठक इन काव्यों की सरस कथावस्तु से पूर्णतया परिचित हो सकता है।

तृतीय अध्याय में कवि के उपर्युक्त संस्कृत-ग्रन्थों के स्रोतों की विस्तृत चर्चा की गई है। 'महापुराण', 'बृहत्कथाकोश' एवं मुनि नयनन्दी के 'सुदंसणचरिउ' में से कवि के काव्यों से सम्बन्धित कथाओं का सारांश प्रस्तुत करने के बाद उक्त कथाओं का मुनिश्री के काव्यों से अन्तर प्रस्तुत किया गया है। अन्त में कवि की मौलिकता की स्थापना की गई है।

चतुर्थ अध्याय में बताया गया है कि ज्ञानसागर का कौन काव्य किस विधा में आता है? इसलिए इस अध्याय में सर्वप्रथम काव्य एवं उसके प्रमुख भेदों पर प्रासङ्गिक तथा संक्षिप्त चर्चा की गई है। काव्यशास्त्रीय इस समालोचना में आचार्य दण्डी तथा आचार्य विश्वनाथ के आधार पर महाकाव्य की विशेषताएँ बताकर जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय और श्रीसमुद्रदत्तचरित्र को महाकाव्य की कोटि में सिद्ध किया गया है। तत्पश्चात् चम्पूकाव्य की विशेषताएँ बताकर कवि के दयोदयचम्पू में उन्हें चरितार्थ किया गया है। 'मुनिमनोरञ्जनशतक' को मुक्तक काव्य सिद्ध किया गया है। तत्पश्चात् संस्कृत भाषा में रचित कविवर के 'प्रवचन-सार' एवं 'सम्यक्त्वसारशतक' की काव्यशास्त्रीय आलोचना की— उनके दर्शनग्रन्थ होने के कारण—अनावश्यकता की चर्चा की गई है।

पञ्चम अध्याय में 'पात्र' शब्द की परिभाषा और उसका काव्य में महत्त्व बताया गया है। तत्पश्चात् कवि के काव्यों में उल्लेखनीय पात्रों का प्रत्येक काव्य के अनुसार अलग-अलग एवं समवेत वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है, फिर कुछ प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में कविवर के पात्रों की सामाजिक उपयोगिता सिद्ध करने के बाद सारांश में यह बता दिया गया है कि ज्ञानसागर ने सभी प्रकार के पात्रों को प्रस्तुत करने में प्रशंसनीय सफलताप्राप्त की है।

षष्ठ अध्याय में सर्वप्रथम पदार्थ-वर्णन और काव्य में उसके महत्त्व पर चर्चा की गई है। तत्पश्चात् प्राकृतिक पदार्थ का परिचय देकर कविवर और उनका प्रकृति वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रसङ्ग में ऊँचे-ऊँचे पर्वत, समुद्र, वन, नदी, सरोवर, ऋतु, काल इत्यादि का ज्ञानसागर के अनुसार वर्णन उनके प्रकृति-प्रेम का परिचय प्रस्तुत करता है। प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन करने के बाद वैकृतिक पदार्थों का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है। द्वीप, देश, नगर, ग्राम, मन्दिर इत्यादि के वर्णन कवि के वर्णन-कौशल को प्रकट करने में समर्थ सिद्ध हुए हैं। इसके बाद झूला-झूलने, पतगक्रीड़ा, पानगोष्ठी इत्यादि के भी वर्णनों को प्रस्तुत कर दिया गया है।

सप्तम अध्याय में महाकवि के संस्कृत काव्य-ग्रन्थों की भावपक्ष के अनुसार आलोचना की गई है। सर्वप्रथम काव्य में भावपक्ष का महत्त्व एवं उसके भेदों की चर्चा की गई है। तत्पश्चात् रस, रसाभास, भाव, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता के मम्मट एवं विश्वनाथ सम्मत लक्षण देकर कविवर के संस्कृत-काव्यों में इनका समन्वेषण किया गया है। इसी सन्दर्भ में कवि के संस्कृत काव्य-ग्रन्थों में वस्तु-ध्वनि और गुणीभूतव्यङ्ग्य की भी चर्चा की गई है। अन्त में भावपक्ष की दृष्टि से ज्ञानसागर को सफल महाकवि सिद्ध किया गया है।

अष्टम अध्याय में कवि के संस्कृत-काव्य-ग्रन्थों के कलापक्ष पर विचार किया गया है। कला का स्वरूप, उसका काव्य में महत्त्व एवं भेदों पर विचार करने के बाद अलङ्कार, छन्द, गीत, गुण, भाषा, शैली, वाग्वैदग्ध्य, संवाद, देशकाल इत्यादि का परिचय दिया गया है; और फिर ज्ञानसागर के काव्यों में प्राप्त इन सभी की चरितार्थता सिद्ध की गई है। अन्त में इन सभी की समालोचना करके कविवर को एक सफल कलाकार के रूप में सिद्ध किया गया है।

नवम अध्याय में कवि के जीवन-दर्शन की चर्चा की गई है, जिससे ज्ञात हो जाता है कि कवि के समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, धर्म एवं दर्शन के सम्बन्ध में क्या विचार थे? उनके काव्यों में वर्णित जैनधर्म की चर्चा से यह स्पष्ट कर दिया गया है कि न केवल संस्कारवश अपितु उपयोगिता की दृष्टि से कवि ने जैनधर्म को सर्वश्रेष्ठ रूप में माना है।

दशम अध्याय, जो उपसंहारात्मक है, में कवि एवं उनके काव्यों की संस्कृत-साहित्यकारों एवं संस्कृत-काव्यों में कोटि निर्धारित की गई है। कवि के अन्त्यानुप्रास एवं गीतों के आधार पर प्राचीन एवं आधुनिक कवियों के बीच उनकी मौलिकता सिद्ध की गई है। तदनन्तर उनके काव्यों में साहित्य के माध्यम से दर्शन को प्रस्तुत करने की कलाकुशलता को स्वीकृत करते हुए उन्हें एक श्रेष्ठ कवि और उनकी कृतियों को श्रेष्ठ काव्यकृतियों के रूप में सिद्ध करके शोध-प्रबन्ध को समाप्त कर दिया गया है।

इस प्रकार यहाँ तक अपने शोध-प्रबन्ध को सम्पूर्णता देकर अन्त में पाँच परिशिष्ट भी दिये गये हैं, जिनका सारांश इस प्रकार है—

प्रथम परिशिष्ट में संस्कृत भाषा में ज्ञानसागर द्वारा रचित दो दार्शनिक कृतियों सम्यक्त्वसारशतक (मौलिक) एवं प्रवचनसार (अनुवाद कृति) का परिचय दिया गया है।

द्वितीय परिशिष्ट में कवि की हिन्दी भाषा में रचित ऋषभावतार, धन्य-कुमार का चरित, पवित्रमानव जीवन, सरल जैन विवाह विधि, कर्त्तव्यपथप्रदर्शन, चित्त विवेचन, स्वामी कुन्द कुन्द और सनातन जैन धर्म, तत्त्वार्थसूत्रटीका,

विवेकोदय एवं समयसार—सभी साहित्यिक एवं दार्शनिक मौलिक कृतियों का तथा दार्शनिक टीका-कृतियों का अपेक्षित परिचय दिया गया है।

तृतीय परिशिष्ट में सूक्तियों की महत्ता पर विचार करने के बाद महाकवि के संस्कृत काव्य-ग्रन्थों में प्रयुक्त सूक्तियों की सारिणी प्रस्तुत की गई है, जो कवि के वाग्वैदग्ध्य का स्पष्ट परिचय देती है।

चतुर्थ परिशिष्ट में विभिन्न विद्वानों की महाकवि ज्ञानसागर के विषय में प्रशंसात्मक उक्तियाँ एवं स्तुतियाँ प्रस्तुत की गई हैं, जो उनकी मूर्त्तिमती लोकप्रियता की साक्षिणी हैं।

पञ्चम परिशिष्ट में अपने शोध प्रबन्ध के लेखन में सहायक प्रमुख-प्रमुख ग्रन्थों की सूची दी गई है।

महाकवि ज्ञानसागर के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर आधारित इस शोध प्रबन्ध को आद्योपान्त पढ़ने से यह ज्ञात हो जायगा कि वह न केवल संस्कृत भाषा के अपितु हिन्दी भाषा के भी साहित्यकार थे। उनके व्यक्तित्व में साहित्यिक एवं दार्शनिक की समान छवि दृष्टिगोचर होती है। इस दोहरी भूमिका को कवि ने न केवल अपने कर्तृत्व में अपितु अपने जीवन में भी बड़ी सफलतापूर्वक निभाया है। उनका 'जयोदय' नामक महाकाव्य ही उन्हें सफल महाकवि सिद्ध करने में समर्थ है, फिर अन्य तीन महाकाव्य और एक चम्पूकाव्य की रचनाएँ तो उनके महाकवित्व में सन्देह का कोई स्थान ही नहीं रहने देतीं। सहृदय सामाजिकों एवं समालोचकों से मेरा निवेदन है कि वे धर्मनिरपेक्ष होकर ही ज्ञानसागर एवं उनकी काव्य-सम्पदा को समझने का यत्न करें। मैंने भी एक जैन कवि के काव्य की समालोचना करने में धर्म एवं जाति के बन्धनों की चिन्ता नहीं की है। काव्य-प्रेमियों को तो कवि के काव्यों की काव्यात्मकता से ही प्रयोजन होना चाहिए, उसके धर्म एवं जाति से नहीं।

आभारप्रदर्शन

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के निर्देशन का भार लेकर मेरे परमादरणीय गुरुदेव डॉ० हरिनारायण जी दीक्षित (रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल) ने मेरे प्रति महान् उपकार किया है। आचार्य दीक्षित जी नामभात्र के ही निर्देशक नहीं रहे, क्योंकि उनके क्रियात्मक निर्देशन के ही फलस्वरूप मेरा यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत हो सका है। उन्होंने केवल शाब्दिक प्रेरणा ही नहीं दी, अपितु श्रीज्ञानसागर के काव्य भी स्वयं ही मंगाकर मुझे पढ़ने को दिए। मेरे शोध-विषय से सम्बन्धित अन्य अनेक पुस्तकें अपने निजी पुस्तकालय से उदारतापूर्वक देने में तो उन्होंने कभी मानसिक सङ्कोच भी नहीं किया। उन्होंने निरन्तर शोध-विषय सम्बन्धी अपने विद्वत्तापूर्ण सुझाव ही मुझे नहीं दिये, अपितु कार्य के प्रति मेरे प्रमाद को भी दूर करने का सफल प्रयास किया। यह

लिखने और कहने में किञ्चिन्मात्र भी अत्युक्ति नहीं है कि मुझे अपना शोध-प्रबन्ध पूरा करने में उनके परोपकार, आशीर्वाद, दीर्घकालीन अध्यापनानुभव और ज्ञानप्राचुर्य से सतत सहायता एवं दिशादृष्टि मिलती रही है। अतः मैं हृदय से उनकी आभारी एवं कृतज्ञ हूँ।

पं० अमृतलाल जैन (अध्यक्ष, जैनदर्शन-विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। उन्होंने मुझे समय-समय पर शोध-प्रबन्ध हेतु सुझाव दिये हैं और जैन-दर्शन-सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में जानकारी भी दी है।

पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री (अध्यक्ष, दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ब्यावर) ने कविवर ज्ञानसागर की संस्कृत-काव्य कृतियों का सम्पादन किया है। साथ ही उनके द्वारा सम्पादित जैन-धर्म एवं दर्शन के ग्रन्थ भी मेरे लिए परमोपयोगी सिद्ध हुए हैं। सकलकीर्ति विरचित सुदर्शनचरित की पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि भी मुझे उन्हीं की महती कृपा से प्राप्त हुई है। अतः उनके प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

श्री चेतनप्रसादपाटनी (प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय) के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ, क्योंकि कविवर के शिष्य आचार्य विद्यासागर जी से उन्होंने मेरे विषय में पत्र-व्यवहार किया और शोधकार्य हेतु 'आराधनाकथाकोश' नामक ग्रन्थ भी मुझे दिया।

महाकवि ज्ञानसागर के प्रमुख आचार्य श्री विद्यासागर जी के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ। मेरे पत्रव्यवहार करने पर उन्होंने कुछ विद्वान् सज्जनों को मेरी सहायता करने के लिए प्रेरित किया। उनमें से एक तो श्री निहालचन्द्र जी जैन (प्रधानाध्यापक, टीकमचन्द्र जैन इण्टर कालेज, अजमेर) हैं। उन्होंने मेरी प्रार्थना करने पर उपलब्ध कवि के जीवन से सम्बन्धित कुछ सामग्री भेजकर मुझे अनुगृहीत किया। दूसरे हैं श्रीजगन्मोहनशास्त्री (अवकाशप्राप्त अध्यापक, दमोह), जिन्होंने आचार्य श्री विद्यासागर जी के आदेश से श्रीज्ञानसागर द्वारा विरचित कुछ सामग्री तथा कवि की जीवनी से सम्बन्धित कुछ पत्र-पत्रिकाएँ भिजवाईं। मैं उन दोनों की भी हृदय से आभारी हूँ।

मुनिश्रीज्ञानसागर जैन ग्रन्थमाला की पुस्तकों को विक्रय की सुविधा प्रदान करने वाले श्री गणेशीलाल रतनलाल कटारिया कपड़ा बाजार, ब्यावर की भी आभारी हूँ, क्योंकि उनकी कृपा से मुझे कविवर ज्ञानसागर का काफी साहित्य प्राप्त हो सका है।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, शास्त्री भवन, नई दिल्ली से मुझे शोधकार्य हेतु छात्रवृत्ति मिली, जिससे मेरी शोधकार्य सम्बन्धी आर्थिक कठिनाई काफी मात्रा में

हुल हुई। अतः मैं इस संस्था तथा इसके निदेशक, उपनिदेशक एवं कार्यकर्त्ताओं के प्रति हृदय से आभारी एवं कृतज्ञ हूँ।

शोध-ग्रन्थ को लिखते समय मेरी अनुजा डॉ नीरजा टण्डन, प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, कुमायूं विश्वविद्यालय नैनीताल, ने मेरी हर सम्भव सहायता की है। अतः मेरा हृदय उनके उत्तरोत्तर उत्कर्ष की कामना करता है।

साथ ही जिन कवियों, लेखकों और समालोचकों की कृतियों को पढ़कर मैंने लाभ प्राप्त किया है, उन सबकी सूची शोध-प्रबन्ध के पाँचवें परिशिष्ट में बनाई गई है। यहाँ मैं उन सबके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ।

श्री श्याम मल्होत्रा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, ५८२५, न्यू चन्द्रावल जवाहरनगर, दिल्ली—११०००७ की भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस शोधप्रबन्ध के प्रकाशन एवं मुद्रण का भार लेकर मुझे चिन्ताविनिर्मुक्त किया है।

अब यह शोध-ग्रन्थ सहृदय, सुधी, विद्वान् पाठकों के समक्ष इस आशा-विश्वास से प्रस्तुत किया जा रहा है कि उन्हें भी यह पसन्द आएगा।

प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग,
कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

—किरण टण्डन

विषयानुक्रमणिका

पृ० सं०

भूमिका v-ix

प्रस्तावना x-xviii

प्रस्तुत शोध विषय का महत्त्व, प्रस्तुत शोध विषय पर साहित्यिक मूल्याङ्कन की अपूर्णता पर एक विहग दृष्टि, प्रस्तुत शोधकार्य की प्रेरणा, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का संक्षिप्त परिचय एवं आभारप्रदर्शन।

प्रथम अध्याय—महाकविज्ञानसागर का जीवन वृत्तान्त १-१७

महाकवि ज्ञानसागर की जन्मस्थली, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, कार्यक्षेत्र, प्रमुख शिष्य-मुनि श्री विद्यासागर, ब्रह्मचारी श्री लक्ष्मीनारायण, श्री १०८ श्री विवेकसागर, क्षुल्लक श्री स्वरूपानन्द तथा ब्रह्मचारी श्री जमनालाल, महाकविज्ञानसागर को आचार्य पद की प्राप्ति, महाकवि को चारित्र चक्रवर्ती पद की प्राप्ति, महाकविज्ञानसागर का त्याग, सल्लेखना एवं समाधिमरण।

द्वितीय अध्याय—महाकविज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यग्रन्थों के संक्षिप्त कथासार १८-५८

जयोदय महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार, वीरोदय महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार, सुदर्शनोदय महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार, दयोदयचम्पू का संक्षिप्त कथासार एवं मुनिमनोरञ्जनशतक का संक्षिप्त कथासार।

तृतीय अध्याय—महाकविज्ञानसागर के संस्कृत काव्य-ग्रन्थों के स्रोत ५९-११५

काव्य-स्रोत : एक सामान्य चिन्तन, कविवर ज्ञानसागर और उनके काव्य-स्रोत, जयोदय महाकाव्य के कथानक का स्रोत—महापुराण (आदिपुराण भाग-२), मूलकथा में परिवर्तन और परिवर्धन, वीरोदय महाकाव्य के कथानक के स्रोत—महापुराण (उत्तरपुराण), मूलकथा में परिवर्तन और परिवर्धन, सुदर्शनोदय महाकाव्य के कथानक का स्रोत—बृहत्कथाकोश में वर्णित सुभग गोपाल के कथानक का सारांश, पुण्यास्रव कथाकोश में वर्णित सुभगगोपालचर सुदर्शन सेठ कथा का सारांश, ब्रह्मचारी नेमिदत्त विरचित आराधना कथाकोश में वर्णित

पञ्चनमस्कार मन्त्र प्रभाव कथा, भट्टारक सकलकीर्तिविरचित श्रीसुदर्शनचरित एवं श्रीविद्यानन्दिविरचित सुदर्शनचरित—मूलकथा में परिवर्तन और परिवर्धन, बृहत्कथाकोश और सुदर्शनोदय, परिवर्धन, सुदंसणचरिउ और सुदर्शनोदय, परिवर्धन, श्रीसमुद्रदत्तचरित्रमहाकाव्य के कथानक का स्रोत—बृहत्कथाकोश में वर्णित श्रीभूतिपुरोहित-कथानक का सारांश, आराधना कथाकोश में वर्णित 'श्रीभूतेः कथा' का सारांश, मूलकथा में परिवर्तन और परिवर्धन, बृहत्कथाकोश और श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, आराधनाकथाकोश और श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, दयोदयचम्पू के कथानक का स्रोत—बृहत्कथाकोश में वर्णित 'मृगसेन-धीवरस्य कथानकम्' का सारांश, आराधनाकथाकोश में वर्णित मृगसेन धीवर की कथा का सारांश, मूलकथा में परिवर्तन और परिवर्धन एवं सारांश।

चतुर्थ अध्याय—महाकविज्ञानसागर के संस्कृत काव्यग्रन्थों की काव्यशास्त्रीय विधाएँ ११६-१४६

काव्य एवं काव्य विधाएँ : एक संक्षिप्त परिचय—काव्य, शब्द, अर्थ, अलङ्कार, छन्द, आत्मा, वर्ण्य-विषय, शैली, गुण-दोष, काव्यविधाएँ कवि के संस्कृत काव्य एवं काव्यशास्त्रीय विधा : एक समन्वय—जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, दयोदयचम्पू, मुनि-मनोरञ्जनशतक, कवि की संस्कृत काव्यसम्पदा, कवि के दार्शनिक ग्रन्थ एवं सारांश।

पञ्चम अध्याय—महाकविज्ञानसागर की पात्रयोजना १४७-१९६

काव्य में पात्रों का महत्त्व, कविवरज्ञानसागर के पात्रों का आकलन एवं वर्गीकरण, ऋषिवर्ग, राजसेवक वर्ग, प्रजावर्ग, मानवेतर वर्ग—देववर्ग, व्यन्तर वर्ग, पात्रों का व्यक्तिगत चरित्रचित्रण, जयोदय के पात्र—जयकुमार, सुलोचना, अर्ककीर्ति एवं राजा अकम्पन। वीरोदय के पात्र—भगवान् महावीर, राजा सिद्धार्थ प्रियकारिणी एवं श्री, ह्री देवियाँ। सुदर्शनोदय के पात्र—सुदर्शन, मनोरमा, अभयमती, सेठ वृषभदास, जिनमति, धात्रीवाहन, कपिला ब्राह्मणी, पण्डिता दासी एवं देवदत्ता वेश्या। श्रीसमुद्रदत्तचरित्र के पात्र—भद्रमित्र, सत्यघोष एवं रामदत्ता। दयोदयचम्पू के पात्र—सोमदत्त, विषा, गुणपाल, गुणश्री, गोविन्द ग्वाला, वसन्तसेना एवं अन्य पात्र, कविवरज्ञानसागर पात्रों की सामाजिक उपयोगिता एवं सारांश।

षष्ठ अध्याय—महाकविज्ञानसागर का वर्णनकौशल) २६७-२४४

वर्णनकौशल : एक मूल्यांकन, प्रकृतिचित्रण : एक विश्लेषण, पर्वत वर्णन—सुमेरु, हिमालय, विजयार्ध एवं श्रीपुरुषपर्वत वर्णन, वन, नदी, सरोवर, समुद्र एवं द्वीप वर्णन, द्वीप ऋतु वर्णन—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् एवं हेमन्त वर्णन, कालवर्णन—प्रभात, दिवस, सन्ध्या एवं रात्रिवर्णन, वस्तुवर्णन : एक विहगावलोकन, देशवर्णन—भारतवर्णन, मालवदेश वर्णन, अङ्गदेश वर्णन, नगरवर्णन—कुण्डनपुर, चम्पापुरी, उज्जयिनी, स्तबकगुच्छ, चक्रपुर, हस्तिनापुर एवं काशीवर्णन, ग्राम, मन्दिर, समवसरण मण्डप, यात्रा, युद्ध एवं विविध वर्णन तथा सारांश।

सप्तम अध्याय—महाकविज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में भावपक्ष २४५-३१०

भावपक्ष का महत्त्व, भावपक्ष के भेद, रस-स्वरूप, रस-संख्या निर्णय, मुनि श्री के संस्कृत काव्यों में अङ्गीरस—शान्त रस का स्वरूप, जयोदय में वर्णित शान्त रस, वीरोदय में वर्णित शान्त रस, सुदर्शनोदय में वर्णित शान्तरस, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में वर्णित शान्त रस, दयोदयचम्पू में वर्णित शान्त रस, कवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में अङ्गरस—जयोदय में वर्णित अङ्गरस—शृङ्गार, वीर, रौद्र, हास्य, वीभत्स एवं वत्सल, सुदर्शनोदय में वर्णित अङ्गरस—शृङ्गार, रौद्र, अद्भुत एवं वत्सल, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में वर्णित अङ्गरस—वीर, करुण, रौद्र एवं वत्सल, दयोदयचम्पू में वर्णित अङ्गरस—शृङ्गार, करुण एवं वत्सल, रसाभास का स्वरूप, कविज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में रसाभास—जयोदय में रसाभास—शृङ्गार रसाभास एवं भयानक रसाभास, सुदर्शनोदय में रसाभास—शान्त रसाभास, शृङ्गार रसाभास एवं रौद्र रसाभास, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में रसाभास—शान्त-रसाभास एवं शृङ्गार रसाभास, दयोदयचम्पू में रसाभास—शान्त रसाभास, भाव का स्वरूप, कविज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में भाव—जयोदय महाकाव्य में भाव—भगवद् विषयक भक्तिभाव, गुरुविषयक भक्तिभाव, नृपविषयक भक्तिभाव, व्यंग्य व्यभिचारिभाव, अपरिपुष्ट-स्थायिभाव, वीरोदय महाकाव्य में भाव—देवविषयक भक्तिभाव, नृपविषयक भक्तिभाव, गुरुविषयक भाव, व्यंग्य व्यभिचारिभाव एवं अपरिपुष्ट स्थायिभाव, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में भाव—देवविषयक भक्ति-भाव, गुरुविषयक भक्तिभाव, व्यंग्य व्यभिचरिभाव एवं अपरिपुष्ट स्थायिभाव, दयोदयचम्पू में भाव—देवविषयक भक्तिभाव, गुरुविषयक भक्तिभाव, व्यंग्य व्यभिचारिभाव एवं अपरिपुष्ट स्थायिभाव, भावाभास

का स्वरूप, कविज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में भावाभास, भावशान्ति का स्वरूप, कवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में भावशान्ति, भावोदय का स्वरूप, कवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में भावोदय—जयोदय में भावोदय, वीरोदय में भावोदय, सुदर्शनोदय में भावोदय, श्रीसमुद्र-दत्तचरित्र में भावोदय एवं दयोदयचम्पू में भावोदय, भावसन्धि का स्वरूप—कवि ज्ञानसागर विरचित जयोदय में भावसन्धि, वीरोदय में भावसन्धि, सुदर्शनोदय में भावसन्धि, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में भाव-सन्धि, दयोदयचम्पू में भावसन्धि, भावशबलता—जयोदय में भाव-शबलता, वीरोदय में भावशबलता, सुदर्शनोदय में भावशबलता, श्री-समुद्रदत्तचरित्र में भावशबलता, दयोदयचम्पू में भावशबलता, ध्वनि का स्वरूप—कवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य का स्वरूप, कवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में गुणीभूतव्यंग्य एवं सारांश।

अष्टम अध्याय—महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यग्रन्थों में कलापक्ष ११-३९६

कला का स्वरूप और भेद, काव्यकला के अङ्ग, काव्य में कला का अनुपात, महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों में कला निरूपण, अलङ्कार-अनुप्रास, यमक, आद्य यमक, मुख यमक, युग्म यमक, पुच्छ यमक, एकदेशज अन्त्य यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, अर्थान्तरन्यास, परिसंख्या, परिकराङ्कुर, संसृष्टि एवं संकर, चित्रा-लङ्कार—चक्रबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, यानबन्ध, तालवृन्तबन्ध एवं कलश-बन्ध, छन्द—उपजाति, वियोगिनी, रथोद्धता, मात्रासमक, द्रुत-विलम्बित, आर्या, वसन्ततिलका, कालभारिणी, शार्दूलविक्रीडित, दोहा, पुष्पिताग्रा, पञ्चचामर, गीत (राग-रागिणी) महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों में गीत-प्रभाती, काफी होलिकाराग, श्याम-कल्याण राग, सारङ्ग राग, सौराष्ट्रीय राग, कव्वाली, गुण, माधुर्य का स्वरूप एवं उसके अभिव्यञ्जक तत्त्व, महाकविज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में माधुर्य गुण, ओजोगुण का स्वरूप एवं उसके अभिव्यञ्जक तत्त्व, महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में ओजो-गुण, प्रसाद गुण का स्वरूप एवं उसके अभिव्यञ्जक तत्त्व, महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में प्रसाद गुण, भाषा, महाकवि ज्ञान-सागर के संस्कृत काव्यों की भाषा शैली—वैदर्भी, गौडी एवं पांचाली शैली, महाकविज्ञानसागर की शैली, वाग्वैदग्ध्य, महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में वाग्वैदग्ध्य, संवाद, देशकाल एवं सारांश।

नवम अध्याय—महाकविज्ञानसागर का जीवन दर्शन ४१७-४२९

जीवन दर्शन : एक संक्षिप्त परिचय, कवि की सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा, कवि की धार्मिक विचारधारा —जैनी महात्माओं के क्रमिक विकास के सोपान—पुरुष वर्गीय जैनी महात्मा-ज्ञानसागर के काव्यों में प्राप्त होने वाली जैन महात्माओं की श्रेणियां—दिगम्बर मुनि, मुनि, ऋषि, योगी, अर्हन्त, परमेष्ठी, स्त्री वर्गीय जैनी महात्मा आर्यिका, क्षुल्लिका, ज्ञानसागर की दृष्टि में जैनधर्म और व्रत —अनर्थदण्डव्रत, सामयिक शिक्षाव्रत, प्रोषधोपवास व्रत, भोगोपभोगपरिणाम, शिक्षाव्रत, अतिथिसंविभागशिक्षाव्रत, ज्ञानसागर की दृष्टि में जैनधर्म का ज्ञानपञ्चक, ज्ञानसागर के काव्यों में अवधिज्ञान एवं केवल ज्ञान, कवि की दृष्टि में ईश्वर, कर्मकाण्ड एवं जैनधर्म की उपयोगिता, कवि की दार्शनिक विचारधारा-स्याद्वाद सिद्धान्त, द्रव्यस्वरूप एवं भेद, ध्यान, कर्म, गुण, स्थान, आत्मा, गुप्ति, समिति, उपयोग, योग, धर्म-अधर्म एवं पुरुष का कर्त्तव्य, प्रमाण तथा सारांश ।

दशम अध्याय—उपसंहार ४३०-४३९

ज्ञानसागर का संस्कृत कवियों में स्थान, ज्ञानसागर के संस्कृत काव्य-ग्रन्थों—जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र एवं दयोदयचम्पू—का संस्कृत साहित्य में स्थान एवं सारांश ।

प्रथम परिशिष्ट—महाकवि ज्ञानसागर की संस्कृत भाषा में लिखित दार्शनिक कृतियां ४४०-४४१

मौलिक कृति—सम्यक्त्वसारशतक, अनुवाद कृति—प्रवचनसार ।

द्वितीय परिशिष्ट—महाकवि ज्ञानसागर की हिन्दी रचनाएँ ४४२-४४८

मौलिक कृतियां—ऋषभावतार, धन्यकुमार का चरित, पवित्र मानव जीवन, सरल जैन विवाह विधि, कर्त्तव्यपथ-प्रदर्शन, सचित्तविवेचन एवं स्वामी कुन्द कुन्द और सनातन जैनधर्म, टीकाकृतियां—तत्त्वार्थ सूत्र टीका, विवेकोदय एवं समयसार, अप्रकाशित रचनाएँ ।

तृतीय परिशिष्ट—महाकवि ज्ञानसागर की सूक्तियां ४४९-४५५

चतुर्थ परिशिष्ट—महाकवि ज्ञानसागर की अन्यकृत प्रशस्तियां ४५६-४६२

पञ्चम परिशिष्ट—सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ४६३-४६८

अनुक्रमणिका ४६९-४७५

प्रथम अध्याय

महाकवि ज्ञानसागर का जीवन वृत्तान्त

भारतवर्ष प्रारम्भ से ही महापुरुषों की जन्मस्थली रहा है। यहाँ की धरा ने ही राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर और महात्मा-गांधी आदि जैसे महापुरुषों को; कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, जयदेव, तुलसी, सूर आदि जैसे महाकवियों और पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, व्यास, जैमिनि, गौतम, कणाद, कपिल, गुणभद्र, जिनभद्र, भरत, भामह, मम्मट आदि आचार्यों को जन्म दिया है।

महाकवि की जन्मस्थली—

इसी भारतवर्ष में राजस्थान नामक एक प्रदेश है जो रूप, रंग, और धर्म की समवेत विशेषताओं को धारण करता है। इस प्रदेश में जयपुर के समीप सीकर नामक एक जिला है, जिसमें 'राणोली' नामक एक ग्राम है। इस ग्राम में 'राणा' उपनामधारी क्षत्रिय प्रचुर मात्रा में रहते हैं।[1] ईशा की अठारहवीं शताब्दी में इस ग्राम में खण्डेलवाल जातीय, छाबड़ा गोत्रोत्पन्न, जैन-धर्म में आस्था रखने वाले सेठ सुखदेव जी रहते थे।[2] उनके पुत्र का नाम चतुर्भुज था, जिसका विवाह घृतवारी देवी से हुआ।[3]

---

१. 'जैनमित्र', साप्ताहिक पत्र, मुनि श्री ज्ञानसागर जी का संक्षिप्त परिचय वीर-संवत् २४९२ वैशाख सुदी ८, (२८-४-१९६६) पृ० सं० २५३

२. (क) वही,
(ख) पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० ङ।

३. (क) वही,
(ख) वही,
(ग) देवकुमार जैन, सम्यक्त्वसारशतक की प्रस्तावना में से।
(घ) डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर एवं डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, वीर-शासन के प्रभावक आचार्य, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज, पृ० सं० २७०।
(ङ) श्री चतुर्भुज रानौली के, जो वीरभूमि पास है।
घृतवली देवी के सहित, श्रीवीर पर विश्वास है॥
श्रीलालजी जैन वैद्य, हिसार, मुनिपूजन, पृ० सं० ६

महाकवि के माता-पिता—

चतुर्भुज को छः पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई, जिसमें पाँच जीवित रहे। सबसे बड़े पुत्र का नाम छगनलाल रखा गया। उसके पश्चात् धृतवारी देवी ने दो जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया। किन्तु जन्म के कुछ ही समय के बाद जीवन के लक्षण न मिलने से दोनों शिशुओं को मृत मान लिया गया। परन्तु शीघ्र ही एक शिशु में जीवन के लक्षण प्राप्त हुए पर दूसरा बालक मृत्यु को प्राप्त हो गया। जीवित बालक का नाम 'भूरामल' रखा गया। यही बालक आगे चलकर आचार्य श्री १०८ ज्ञानसागर के नाम से विख्यात हुआ।[1] छगनलाल एवं भूरामल के अतिरिक्त धृतवारी देवी ने तीन और पुत्रों को जन्म दिया। भूरामल के इन अनुजों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :—गंगाप्रसाद, गौरीलाल और देवीदत्त।[2]

शिक्षा-दीक्षा—

बाल्यकाल से ही भूरामल की अध्ययन के प्रति रुचि थी। सर्वप्रथम कूचामन के श्री पं० जिनेश्वरदास जी ने राणोली ग्राम में ही भूरामल को धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा दी।[3] पर उनकी उच्च शिक्षा का प्रबन्ध गांव में न हो सका।

इसी बीच इस सम्पन्न जैन-परिवार के समक्ष एक महा विपत्ति आ गई। छगनलाल की आयु १२ वर्ष की थी और भूरामल की केवल १० वर्ष। इसी समय उनके पिता चतुर्भुज की वि० सं० १९५९ (सन् १९०२) ई० में मृत्यु हो गई। पिता की मृत्यु हो जाने से बालक भूरामल की पारिवारिक अर्थव्यवस्था बिगड़ गई।

(च) मूलचन्द्र चौधरी, ऋषभदेवचरित, भूमिका भाग।

(छ) पं० चम्पालाल जैन विशारद, बाहुबलीसन्देश में से।

(ज) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, (१-६-१९७४) पृ० सं० २

(झ) डॉ० पं० लाल बहादुर शास्त्री, जैन गजट, पृ० सं० १

(ञ) श्री इन्द्र प्रभाकर जैन, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० १

१. मुनि संघ व्यवस्था समिति, नसीराबाद (राज०), श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, (१-६-१९७४), पृ० सं० २।

२. (क) जैनमित्र, साप्ताहिक पत्र, मुनि श्री ज्ञानसागर जी का संक्षिप्त परिचय, वीर संवत् २४९२, वैशाख सुदी ८, (२८-४-१९६६) पृ० सं० २५३

(ख) पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावना भाग, पृ० सं० ड।

३. मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद, (राज०), श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, (१-६-१९७४) पृ० संख्या २।

फलस्वरूप भूरामल के अध्ययन में बाधा उपस्थित हो गई।[1] भूरामल के सबसे छोटे भाई देवीदत्त का जन्म पिता की मृत्यु के बाद हुआ।[2]

परिवार का भरण-पोषण करने के लिए भूरामल के बड़े भाई छगनलाल को अपनी इस बाल्यावस्था में ही घर से निकलना पड़ा। आजीविका की खोज करते हुए वह गया पहुंचे। वहां उन्होंने एक जैन दुकानदार की दुकान में नौकरी कर ली। शिक्षा-प्राप्ति के साधन के अभाव में भूरामल भी अपने बड़े भाई के पास गया चले गए और वह भी किसी जैनी सेठ की दुकान में काम खोजने लगे।[3]

इस प्रकार जीवन-यापन करते हुए एक वर्ष बीत गया। इसी बीच स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी के छात्र किसी समारोह में भाग लेने के लिए गया आये। उनको देखकर भूरामल के भी मन में वाराणसी में विद्या ग्रहण करने की बलवती इच्छा उत्पन्न हो गई। उन्होंने अपने भाई से इस सम्बन्ध में निवेदन किया। यद्यपि घर की परिस्थिति को देखकर छगनलाल, भूरामल को वाराणसी नहीं भेजना चाहते थे, किन्तु अध्ययन के लिए भूरामल की दृढ़ता और तीव्र लालसा देखकर उन्हें स्वीकृति देनी पड़ी। इस प्रकार १५ वर्ष की आयु में भूरामल विद्या ग्रहण करने वाराणसी चले गये।[4]

वाराणसी में स्याद्वाद महाविद्यालय से उन्होंने संस्कृत-साहित्य एवं जैन-दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की।[5] इसी बीच क्वीन्स कालेज, काशी से उन्होंने

---

१. (क) पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावना भाग पृ० सं० ड।
(ख) जैनमित्र, साप्ताहिक पत्र, मुनि श्री ज्ञानसागर जी का संक्षिप्त परिचय, वीर संवत् २४९२, वैशाख सुदी ८ (२८-४-१९६६) पृ० सं० २५३

२. (क) वही।
(ख) वही।

३. (क) वही।
(ख) वही।

४. (क) वही।
(ख) वही।

५. (क) वही।
(ख) वही।
(ग) प्रकाशचन्द्र जैन, 'वीरोदय' (महाकाव्य) के प्रकाशकीय में से।
(घ) पं० चम्पालाल जैन, वसुनन्दीश्रावकाचार में से।
(ङ) डॉ० पं० लालबहादुर शास्त्री, जैन गजट, पृ० सं० १।
(च) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० २।

शास्त्रि-परीक्षा उत्तीर्ण की।[1]

भूरामल परीक्षा पास करने को ज्ञान की सच्ची कसौटी नहीं मानते थे। उनके अनुसार ग्रन्थ को आद्योपान्त समझना आवश्यक था। अपनी इस मान्यता के कारण सब कार्यों से विरक्त होकर वह अध्ययन में जुट गए। रात-दिन, एक-एक करके वह ग्रन्थों को पढ़ते और कण्ठस्थ करते थे। इस प्रकार इन्होंने वाराणसी में रहते हुए थोड़े ही समय में शास्त्रि-परीक्षा के सभी ग्रन्थों को अच्छी प्रकार से पढ़ लिया था।[2]

भूरामल के शिक्षा-ग्रहण करते समय, जैन प्रणीत संस्कृत व्याकरण और साहित्य के ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आए थे, अतः उनका परीक्षाओं में अभाव पाया जाता था। फलस्वरूप सभी छात्रों को जैनेतर ग्रन्थों को पढ़कर ही परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती थी। जैन-ग्रन्थों का ऐसा अभाव भूरामल को अच्छा नहीं लगा। उनकी प्रबल इच्छा हुई कि अप्रकाशित जैन-ग्रन्थों को प्रकाश में लाया जाय। भूरामल के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी इस ओर प्रयत्नशील हुए। फलस्वरूप भूरामल और उन लोगों ने मिलकर न्याय एवं व्याकरण के कुछ प्रकाशित जैन-ग्रन्थों को काशी विश्वविद्यालय एवं कलकत्ता परीक्षालय के संस्कृत पाठ्यक्रम में निर्धारित कराने का सफल प्रयास किया। साथ ही भूरामल ने यह भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मैं जैन-ग्रन्थों का प्रकाशन करवाने का प्रयास करूँगा। उन्होंने वाराणसी में रहते हुए जैनाचार्य प्रणीत ही न्याय, व्याकरण, साहित्यादि ग्रन्थों का अध्ययन किया, जैनेतराचार्य प्रणीत ग्रन्थों का नहीं।[3]

उस समय की एक बात और चिन्तनीय थी, और वह यह कि वाराणसी के संस्कृत-अध्यापक छात्रों की इच्छा होने पर भी उन्हें जैनाचार्यप्रणीत ग्रन्थों की शिक्षा नहीं देते थे। भूरामल ने अपने दृढ़-निश्चय के अनुसार येन-केन-प्रकारेण अध्यापकों

(छ) श्री इन्द्र प्रभाकर जैन, वीरोदय (मासिक गजट), पृ० सं० २।

(ज) डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर एवं डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, वीर-शासन के प्रभावक आचार्य, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्—आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज, पृ० सं० २७०।

१. (क) डा० पं० लालबहादुर शास्त्री, जैन गजट, पृ० सं० १।

(ख) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० २।

२. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० ढ।

३. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० ण।

से जैन ग्रन्थों की शिक्षा प्राप्त की।[1] इस समय पण्डित उमराव सिंह जी महाविद्यालय में धर्मशास्त्र के अध्यापक थे। भूरामल को जैन-ग्रन्थों के अध्ययन की प्रेरणा इन्हीं से मिली। बाद में पं० उमरावसिंह ने ब्रह्मचर्य-प्रतिमा[2] अंगीकृत कर ली और ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी के नाम से विख्यात हुए।[3] यही कारण है कि अपने काव्यों के मंगलाचरण में गुरुवन्दना के समय भूरामल इन्हीं का नाम उल्लिखित करते रहे।[4]

भूरामल अपने अध्ययन-काल में भी स्वावलम्बन पर ही विश्वास करते थे। उन दिनों में भी उन्होंने किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। वह अपने परिश्रम से उपार्जित धन से ही विद्यालय के भोजनालय में भोजन करते थे।[5]

कार्य क्षेत्र—

शास्त्री की उपाधि प्राप्त करके श्री भूरामल जी अपने ग्राम (राणोली) लौट आए। अब उनके सामने कार्य-क्षेत्र को चुनने की समस्या थी। एक ओर तो अध्ययन अध्यापन के प्रति रुचि, और दूसरी ओर परिवार की शोचनीय परिस्थिति। पर उन्होंने दोनों ही स्थितियों को आदर्शपूर्ण रीति से सम्हाला। विद्यालयों में वैतनिक सेवा में रत अध्यापकों का अनुकरण करते हुए, गांव में रहकर स्थानीय जैन-बालकों को निःशुल्क शिक्षा देने लगे; और साथ ही परिवार की आर्थिक दशा सुधारने के लिए दुकानदारी भी करते रहे। इन दोनों कार्यों के अतिरिक्त उनका स्वाध्याय तो निरन्तर चलता ही रहता था।[6]

---

१. वही,

२. मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतगन्धि बीभत्सम्।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः॥
—पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, जैनधर्मामृत, ४।१३५

३. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० ण।

४. ज्ञानेन चानन्दमुपाश्नयन्तश्चरन्ति ये ब्रह्मपथे सजन्तः।
तेषां गुरूणां सदनुग्रहोऽपि कवित्वशक्तौ मम विघ्नलोपी॥
—वीरोदय महाकाव्य, १।६

५. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १४

६. (क) पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० त।
(ख) डा० विद्याधर जोहरापुरकर एवं डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, वीरशासन के प्रभावक आचार्य, पृ० सं० २७०।
(ग) प्रकाशचन्द्र जैन, वीरोदय (महाकाव्य) के प्रकाशकीय में से।

इसी बीच श्री भूरामल शास्त्री के बड़े भाई छगनलाल भी गया से लौटकर घर आ गए। तब दोनों भाइयों ने मिलकर दुकान द्वारा आजीविकोपार्जन किया और छोटे भाइयों की शिक्षा-दीक्षा एवं देख-रेख का कार्य भी किया।[1]

पं० भूरामल शास्त्री की युवावस्था, विद्वत्ता, गृहसंचालनपटुता, आजीविकोपार्जन की योग्यता आदि गुणों से अनेक लोग प्रभावित हुए। फलस्वरूप इनके विवाह हेतु प्रस्ताव भेजे जाने लगे। भाइयों एवं सम्बन्धियों ने भी उनसे विवाह कर लेने का आग्रह किया। परन्तु जैन-साहित्य के निर्माण और उसके प्रचार में विवाह को एक बहुत बड़ी बाधा मानकर उन्होंने अपने शिक्षाकाल (१८ वर्ष की आयु) में ही आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर ली थी। अतः अपने सम्बन्धियों के आग्रह को ठुकरा दिया और अपने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की इच्छा भी प्रकट कर दी।[2]

ब्रह्मचर्य-व्रत का अंगीकार करने के बाद आत्म-कल्याण एवं जैन-काव्य-निर्माण के इच्छुक पं० भूरामल शास्त्री दुकान के काम की ओर से भी उदासीन हो गए। फलस्वरूप वह दुकान का कार्य अपने बड़े भाई और छोटे भाइयों को पूर्णरूपेण सौंपकर ज्ञानाराधन में ही लीन हो गए।[3] उन्होंने एक समय शुद्ध सात्त्विक भोजन,

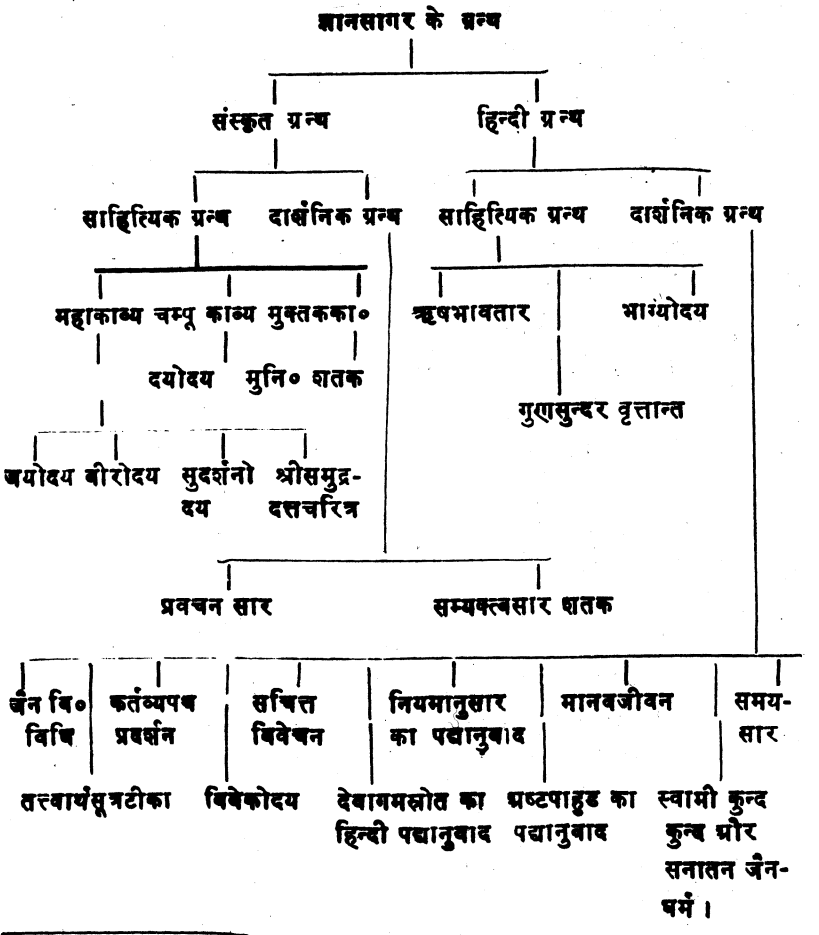
१. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० त।

२. (क) पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० त।
(ख) डा० विद्याधर जोहरापुरकर एवं डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, वीरशासन के प्रभावक आचार्य, पृ० सं० २७०।
(ग) पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश, अद्वितीय श्रमण, पृ० सं० ३७
(घ) मूलचन्द्र चौधरी, ऋषभचरित, मुनि श्री ज्ञानसागर का परिचय।
(ङ) शान्तिस्वरूप जैन, मुनिपूजन में से।
(च) धर्मचन्द मोदी, स्मारिका, आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज, पृ० सं० १२।
(छ) डॉ० पं० लालबहादुर शास्त्री, जैनगजट (साप्ताहिक), पृ० सं० १
(ज) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद, (राज०), श्रीज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० २।

३. (क) पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० त।
(ख) डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर एवं डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल, वीरशासन के प्रभावक आचार्य, पृ० सं० २७०।
(ग) डॉ० पं० लालबहादुर शास्त्री, जैनगजट (साप्ताहिक), पृ० सं०।
(घ) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० २।

अध्ययन एवं लेखन को ही अपनी दैनिक चर्या बना लिया।[1] इसी बीच उनको दाँता (रामगढ़) में संस्कृत-अध्यापन के लिए बुलाया गया। वह वहाँ गए और परमार्थ-भाव से पढ़ाने लगे।[2]

इस प्रकार अध्यापन और काव्यसर्जना द्वारा सरस्वती की आराधना करते हुए उन्होंने जैन-साहित्य एवं दर्शन की अभिवृद्धि की। उनके ये ग्रन्थ संस्कृत एवं हिन्दी, दोनों ही भाषाओं में हैं। संस्कृत-भाषा में लिखित उनके काव्य-ग्रन्थों की संख्या ८ है; और हिन्दी में लिखे गये उनके छोटे मोटे सभी ग्रन्थों की संख्या १४ तक पहुँच गई। उनके इन २२ ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है :—



१. (क) पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश, अद्वितीय श्रमण पृ० सं० ३७
(ख) डा० पं० लालबहादुर शास्त्री, जैनगजट (साप्ताहिक) पृ० सं० १
२. वही।

इनमें से संस्कृत-साहित्य-ग्रन्थ, संस्कृत-प्रेमियों और हिन्दी ग्रन्थ जन-साधारण को जैन दर्शन की विशेषताओं से परिचित कराने के लिए लिखे गए हैं। ये ग्रन्थ न केवल जैन साहित्य एवं दर्शन की, अपितु सम्पूर्ण, संस्कृत-वाङ्मय की अमूल्य निधि हैं।

इस प्रकार अनेक ग्रन्थों के निर्माण एवं पठन-पाठन में पं० भूरामलशास्त्री जी ने अपनी युवावस्था व्यतीत की। जब उनकी आयु ५१ वर्ष की हुई, तब विक्रम संवत् २००४ (सन् १९४७ ई०) में आत्म-कल्याण की प्रबल भावना से बाल-ब्रह्मचारी होते हुए भी आचार्य वीरसागर जी महाराज की आज्ञा से उन्होंने अजमेर नगर में ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण कर ली।[1] वि० संवत् २००६ (सन् १९४९ ई०) में आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को उन्होंने पूर्वजों का घर पूर्णतया छोड़ दिया और अजमेर नगर, केसरगंज में सप्तमप्रतिमा[2] अंगीकृत कर ली।[3] इस समय उनकी आयु ५३ वर्ष की हो चुकी थी।

विक्रम संवत् २००७ (सन् १९५० ई०) में ब्रह्मचारी पं० भूरामल शास्त्री स्व० आचार्य सूर्यसागर जी के पास दिल्ली गए, वहाँ वह पहाड़ी धीरज की धर्मशाला में रुके। यहीं पर दिगम्बर जैन सरस्वती भवन के अध्यक्ष पं० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री से इनकी भेंट हुई। सिद्धान्तशास्त्री जी के हृदय पर ब्रह्मचारी जी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का अमिट प्रभाव पड़ा।[4]

पं० भूरामलशास्त्री इस समय भी ज्ञान की साधना में लगे रहते थे। उन्होंने

---

१. (क) पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० थ।

(ख) श्री इन्द्रप्रभाकर जैन, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० १।

(ग) पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश में से।

(घ) इससे अधिक भयभीत हो, पुनि घोर निद्रा से जगे।
श्री वीरसागर पूज्य के निज संघ को ढूंढने लगे॥
पुनि जाय श्री आचार्य के, चरणन नवायो माथ को।
अपने हृदय के भाव सब, दर्शाये मुनि श्री नाथ को॥
उन समझ असली रूप को, ब्रह्मचर्य की आज्ञा दयी।
होकर मगन गुरु पग परस, मन दृढ़प्रतिज्ञा कर लयी॥
—श्रीलाल जैन वैद्य, हिसार, मुनिपूजन, पृ० सं० ६

२. ब्रह्मचर्य प्रतिमा ही सप्तम प्रतिमा है।
—पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, जैनधर्मामृत, ४।१३५

३. गौरीलाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० ३३।

४. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १३

इसी समय प्रकाशित हुए सिद्धान्तग्रन्थ श्रीधवल, जयधवल, महाबन्ध का गम्भीर स्वाध्याय किया।[1]

धीरे-धीरे ब्र० भूरामल के मन में विरक्तभाव और भी बढ़ा, फलस्वरूप वि० संवत् २०१२ (सन् १९५५ ई०) में मनसुरपुर (रेनवल) में उन्होंने वीरसागर जी महाराज के समीप क्षुल्लक दीक्षा[2] ग्रहण कर ली। तदनन्तर बहुत सा समय हिसार में बिताकर भारत के प्रमुख नगरों में भ्रमण किया, और आचार्य श्री नमिसागर जी महाराज का सान्निध्य भी प्राप्त किया। इसी बीच उनके द्वारा रचित "सम्यक्त्वसारशतक' का भी प्रकाशन हुआ।[3]

---

१. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावनाभाग, पृ० सं० घ।

२. गृहस्थः प्राप्य वैराग्यं देहभोगभवादिषु।
त्यक्त्वा गृहं कुटुम्बं च प्रागाद्यो मुनिसन्निधिम् ॥
आराध्य मुनिसत्पादौ शक्रभूपेन्द्रपूजितौ।
गृहीत्वा क्षुल्लकीं दीक्षां खण्डवस्त्रसमन्विताम् ॥
गुरुपार्श्वे स्थितो नित्यं सोऽत्ति भिक्षां परगृहात्।
उद्दिष्टवर्जिताख्येकां दशमीं प्रतिमां भजेत् ॥
मस्तके मुण्डनं लोचः कर्तनं वा समाचरेत्।
द्वित्रिभिर्वा चतुर्मासैर्व्रती सद्व्रतसंयुतः ॥

× × ×

स्ववीर्यं प्रकटीकृत्य तपः कुर्याद् द्विषड्विधम्।
सदोपवासभेदादिसम्भवं कर्मघातकम् ॥

× × ×

बहूपवासं मौनं च स्थानं वीरासनादिकम्।
सदोषाहारिणां सर्वं व्यर्थं स्यादविषदुग्धवत् ॥
अहिंसाख्यं व्रतं मूलं व्रतानां मुक्तिसाधकम् ॥
नश्येत् षड्जीवघातेन सदोषाहारग्राहिणाम् ॥

—पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, श्रावकाचार संग्रह, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, २४।२२-७६

३. (क) श्री इन्द्र प्रभाकर जैन, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० १
(ख) पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश (मासिक) पृ० सं० ३४।

क्षुल्लक बनने के बाद भूरामलशास्त्री जी ऐलक[1] अवस्था में भी कुछ समय रहे। ब्रह्मचारी से ऐलक बनने तक पं० भूरामल शास्त्री १०८ श्री वीरसागर जी महाराज के संघ में रहते हुए ही त्यागी पुरुषों को धार्मिक और शास्त्रीय ग्रन्थ पढ़ाते थे।[2]

ब्रह्मचारी भूरामल से मुनि श्रीज्ञानसागर—

विक्रम संवत् २०१६ (सन् १९५९ ई०) में श्री भूरामल जी ने जयपुर में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से दिगम्बर मुनि-दीक्षा ग्रहण की;[3] और समस्त बाह्य परिग्रह का परित्याग कर दिया। इस अवसर पर उनका नाम ज्ञान-सागर रखा गया। साथ ही उनको संघ का उपाध्याय भी बना दिया गया। अपने इस उपाध्याय पद का सदुपयोग उन्होंने साधु-पुरुष एवं स्त्रियों को पढ़ाने में किया।[4]

---

१. 'ग्यारहवीं प्रतिमा धारण करने वाले जो श्रावक केवल लंगोटी ही धारण करते हैं, अन्य वस्त्र नहीं, उनको ऐलक कहा जाता है।'
—पं० अमृतलाल जैन शास्त्री, साहित्यदर्शनाचार्य, जैन-विभागाध्यक्ष, सम्पूर्णानन्द संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रेषित १० फरवरी सन् १९७७ ई० के पत्र में से।

२. (क) श्री इन्द्रप्रभाकर जैन, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० १
(ख) डॉ० पं० लालबहादुर शास्त्री जैन गजट (साप्ताहिक), पृ० सं० १
(ग) 'गृह तज सूरि वीरसिंधु संघ,
साधुवर्ग अध्ययन करा।
क्षुल्लक ऐलक क्रम से बनकर,
मुनि बनने का भाव भरा ॥५॥
—प्रभुदयाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १५

३. 'यो हताशः प्रशान्ताशस्तमाशाम्बरमूचिरे।
यः सर्व-सङ्ग-सन्त्यक्तः स नग्नः परिकीर्तितः ॥
रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः।
मान्यत्वादात्मविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः ॥
—पं० हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री, जैन धर्मामृत, ५।३७-३८

४. (क) श्री इन्द्रप्रभाकर जैन, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० १
(ख) "पूरण परिग्रह त्यागने की, भावना परगट भई।
आचार्य शिवसागर मुनि, ढिग जाय मुनि दीक्षा लई ॥"
—श्रीलाल जैन वैद्य, मुनिपूजन, पृ० सं० ७
(ग) पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १४

विक्रम संवत् २०१८ (सन् १९६१ ई०) में वय अधिक होने के कारण शारीरिक दुर्बलता से पीड़ित होने के बावजूद भी संघ से निकल कर राजस्थान के नागरिकों में जैन-धर्म का प्रचार करने लगे।[1]

मुनि-दीक्षा लेने के बाद मुनि श्रीज्ञानसागर अनेक स्थानों पर गये। वहाँ उनके प्रवचनों से प्रभावित होकर अनेक श्रद्धालु त्याग की भावना से उनके पास आया करते थे। वि० संवत् २०२१ (सन् १९६४ ई०) में मुनिश्री ने मेढा ग्राम में दिल्लीवासी श्री फिरोजीलाल जी को श्रावकोत्तम क्षुल्लक-दीक्षा प्रदान की।[2] मुनि श्री ज्ञानसागर जी ने जैन-धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक स्थलों पर चातुर्मास भी किये। वि० संवत् २०२१। (सन् १९६४ ई०) में ही उन्होंने फुलेरा (राजस्थान) में चातुर्मास हेतु प्रस्थान किया।[3]

विक्रम संवत् २०२२ (सन् १९६५ ई०) मुनि श्री ज्ञानसागर के जीवन का महत्त्वपूर्ण वर्ष है। इस वर्ष आपने अजमेर नगर में चातुर्मास किया।[4] इसी नगर में फतेहपुर निवासी श्री सुखदेव जी गोधा और जयपुर निवासी श्री मूलचन्द जी बोहरा को उन्होंने श्रावकोत्तम क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की।[5] तत्पश्चात् विहार करते हुए वह ब्यावर गये। वहाँ की जनता मुनिश्रीज्ञानसागर के आने से प्रसन्न हो गई। उन्होंने वहाँ तीन मास व्यतीत किये। पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री जी की मुनि श्री ज्ञानसागर से यहाँ भी भेंट हुई। सिद्धान्तशास्त्री जी ने उनके ग्रन्थों के प्रकाशनादि के विषय में उनसे चर्चा की। किन्तु मुनिश्री ने इस विषय में कोई आदेश नहीं दिया, क्योंकि इस कार्य में धन की आवश्यकता थी। अतः श्री सिद्धान्तशास्त्री कुछ निराश हुए। उन्होंने अपनी यही इच्छा अपने सहयोगियों के समक्ष प्रकट की, तो सभी के सहयोग के परिणाम स्वरूप 'मुनि श्री ज्ञानसागर ग्रन्थमाला' की स्थापना हुई; और मुनि श्री द्वारा रचित दयोदय, वीरोदय इत्यादि

(घ) "संवत् दो हजार सोलह में,
जयपुर नगर खानियाँ मांय।
शिवाचार्य से दीक्षा लेकर,
ज्ञानसिंधु मुनिराज कहाय ॥६॥"
—प्रभुदयाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १५

(ङ) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० ४

१. श्री इन्द्र प्रभाकर जैन, 'वीरोदय, (मासिक प्रपत्र)-पृ० सं०१
२. वही—
३. श्रीलालजैन वैद्य, मुनिपूजन में से।
४. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, बाहुबलीसन्देश पृ० सं० १३
५. श्री इन्द्रप्रभाकर जैन, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० १

काव्यग्रन्थों का प्रकाशन हुआ।[1] अजमेर चातुर्मास के अवसर पर ही मुनि श्री ज्ञानसागर ने स्वरचित महाकाव्य 'जयोदय' की संस्कृत एवं हिन्दी टीका भी लिखी, जिसका प्रकाशन अभी वाराणसी में हो रहा है।[2]

महाकवि ज्ञानसागर के प्रमुख शिष्य :—

श्रीज्ञानसागर के प्रमुख शिष्यों की संख्या ९ है; और उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :—मुनिश्री विद्यासागर, क्षुल्लक स्वरूपानन्द, ब्र० लक्ष्मीनारायण लाल, मुनि श्री १०८ श्री विवेकसागर, ब्र० जमनलाल जी, मुनि श्री १०८ श्री विजयसागर जी, ऐलक श्री १०५ श्री सम्मतिसागर जी, क्षुल्लक सुखसागर जी एवं श्री १०५ क्षुल्लक संभव-सागर जी। इनमें से प्रथम पाँच शिष्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

१. मुनि श्री विद्यासागर—

विक्रम संवत् २०२४ (सन् १९६७ ई०) के पूर्व ही किशनगंज (मदनगंज) चातुर्मास के अवसर पर ब्रह्मचारी जी पण्डित विद्याकुमार जी सेठी (अजमेर) ने मुनि श्री ज्ञानसागर जी से मैसूर प्रांत के बेलगाँव जिले में सदलगा नामक ग्राम में उत्पन्न ब्रह्मचारी विद्याधर का परिचय कराया। विक्रम संवत् २०२४ (सन् १९६७ ई०) में ब्रह्मचारी विद्याधर मुनि श्री ज्ञानसागर के पास ही रहे। हिन्दी एवं संस्कृत भाषाओं से अनभिज्ञ विद्याधर ने पं० महेन्द्र कुमार जी पाटणी, काव्यतीर्थ, किशनगढ़ (मदनगंज) और मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज से इन दोनों भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया।[3] मुनि श्री ज्ञानसागर जी के सान्निध्य में रह कर विद्याधर के हृदय में वैराग्य की भावना भी प्रबलतर होती गई। वि० संवत् २०२५ (सन् १९६७ ई०) में अजमेर नगर में मुनि श्री ज्ञानसागर ने ब्र० विद्याधर की इच्छा के अनुरूप उन्हें निर्ग्रन्थ मुनि-दीक्षा दे दी। इस समय से उनको 'विद्यासागर'—इस नाम से जाना जाने लगा।[4] इस समय विद्याधर जी की आयु केवल २२ वर्ष थी।[5]

२. ब्रह्मचारी लक्ष्मीनारायण जी—

सन् १९६८ ई० के अक्तूबर मास में ब्रह्मचारी लक्ष्मीनारायण जी को मुनि

---

१. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १३
२. ब्र० पं० विद्याकुमार जी सेठी, वही, पृ० सं० ३५
३. (क) श्री इन्द्र प्रभाकर जैन, जैनसिद्धान्त, पृ० सं० १०-११
   (ख) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय', पृ० सं० ३
४. पं चम्पालाल जी, जैन सिद्धान्त, पृ० सं० १०-११
५. डॉ० पं० लालबहादुर शास्त्री, जैन गजट, पृ० सं० १

श्री ज्ञानसागर के सान्निध्य की प्राप्ति हुई।[1] सात फरवरी सन् १९६९ ई० को नसीराबाद में इन्होंने मुनि श्री ज्ञानसागर जी से मुनि-दीक्षा ग्रहण की।[2]

३. श्री १०८ श्री विवेकसागर जी—

इन्होंने नसीराबाद में ७ फरवरी सन् १९६९ ई० को मुनि श्री ज्ञानसागर जी से मुनि-दीक्षा ग्रहण की।[3]

४. क्षुल्लक श्री स्वरूपानन्द जी—

मुनि श्री विद्यासागर जी के दीक्षा-ग्रहण के अवसर पर दीपचन्द नामक युवक मुनि श्री ज्ञानसागर जी से बहुत प्रभावित हुआ। भक्तिवश उसने मुनि श्री के पैर दबाये।[4] सन् १९६९ ई० में ही इस युवक ने ब्यावर जाकर मुनि श्री से दीक्षा की याचना की। तत्पश्चात् बी० काम० प्रथम वर्ष की परीक्षा और २२-५ सन् १९६९ ई० को मुनि श्री ज्ञानसागर जी से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया।[5] २० अक्तूबर सन् १९७२ ई० को मुनि ज्ञानसागर जी ने ब्रह्मचारी दीपचन्द को क्षुल्लक दीक्षा देकर क्षुल्लक स्वरूपानन्द नाम दिया।[6]

५. ब्रह्मचारी जमनालाल जी—

इन्होंने दिनांक १४ जुलाई सन् १९७० ई० (वि० संवत् २०२६) को मुनि

---

१. (क) श्री इन्द्रप्रभाकर जैन, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० २
(ख) 'ज्ञान' 'विद्या' से फिर इनका संगम हुआ।
—प्रभुदयाल जैन, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० ३

२. (क) वही।
(ख) 'ज्ञानसिंधु' हुए आज दीक्षा गुरु,
प्रभु जीवन नया होगा इनका शुरु।
—वही।
(ग) 'गुरु' 'ज्ञान' सूं दीक्षा लेकर बण जासी धर्म दिवाकर,
चारित्र सजा सिणगार, अजी शिवमार्ग बणायों जी॥'
—मोतीलाल पँवार, वीरोदय (मासिक प्रपत्र), पृ० सं० ३

३. श्री स्वरूपानन्द जी, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० ३

४. वही।

५. (क) पृ० सं० ४
(ख) दिगम्बर जैन समाज ब्यावर, स्मारिका, पृ० सं० १४

६. (क) वही, पृ० सं० ८९
(ख) वही, पृ० सं० १४

श्री ज्ञानसागर जी से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की।[1]

मुनि श्री १०८ श्री विजयसागर जी, ऐलक श्री १०५ श्री सन्मति सागर जी, श्री १०५ क्षुल्लक, संभवसागर जी और क्षुल्लक सुखसागर जी ने कब-कब दीक्षा ग्रहण की? यह बताना कठिन है। केवल प्रमुख शिष्यों में इनकी गणना ही उल्लिखित हुई है।[2]

मुनि श्री ज्ञानसागर को आचार्य पद की प्राप्ति

श्री विवेकसागर के दीक्षा-ग्रहण के अवसर पर जैन-समाज ने ७ फरवरी सन् १९६९ ई० में मुनि श्री ज्ञानसागर जी को आचार्य पद से सुशोभित किया।[3] सन् १९७० ई० में आचार्य मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज का चातुर्मास रेनवाल (किशनगढ़) में सम्पन्न हुआ।[4]

इस प्रकार आत्मकल्याण की ओर उन्मुख दूसरों को भी इसी मार्ग की प्रेरणा देने वाले महाकवि आचार्य ज्ञानसागर की अवस्था लगभग ८० वर्ष हो गई। इस अवस्था में भी गौरवर्ण और तपस्या के फलस्वरूप तेजस्वी व्यक्तित्व वाले आचार्य ज्ञानसागर जी के अध्ययन-अध्यापन में पूर्ण विराम नहीं लगा। संघ में रहने वाले व्यक्तियों को निरन्तर पढ़ाने, साहित्य रचना करने आदि में ही उनका

---

१. 'दो हजार छब्बीस साल में, धर्मवृद्धि की भारी।
'ज्ञानसिंधु' आचार्य शरण में, सप्तम प्रतिमा धारी॥
साढ़ सुदी दशमी को, अजमेर में हुए निहाल हैं।
क्षुल्लक दीक्षा लेते देखोजी 'जमनालाल' हैं॥'
प्रभुदयाल जैन, जैन सिद्धान्त, पृ० सं० ५

२. (क) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० ३
(ख) 'परम शिष्य मुनि 'विद्यासागर',
ऐलक 'सन्मति', मुनि 'विवेक'।
क्षुल्लक 'संभव' 'विजय' अरु 'सुख' वे
हैं 'स्वरूप' लाखों में एक॥'
—प्रभुदयाल जैन बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १५

३. (क) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), श्री ज्ञानसागर जी का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० ४
(ख) 'जैन समाज संघ एकत्रित, पद आचार्य नसीराबाद।
दो हजार पच्चीस की संवत्, दिया हर्ष से कर जय नाद॥'
—प्रभुदयाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १५

४. पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० ३४

समय व्यतीत होता था। वह दिन में एक ही बार आहार एवं जल ग्रहण करते थे। आहार के नाम पर थोड़ा अन्न एवं आमरस या दूध ही लेते थे। इस समय वह सत्त्वशक्ति से पूर्णतया सम्पन्न थे। उनके अध्ययन-अध्यापन का कार्यक्रम आज के अध्यापक एवं अध्येताओं के लिए आश्चर्य की वस्तु होगी। आचार्य ज्ञानसागर जी का संघ में पढ़ने का कार्यक्रम इस प्रकार रहा करता था :—

(क) प्रातः ५-३० से ६-३० तक अध्यात्मतरंगिणी और समयसारकलश।
(ख) प्रातः ७ से ८ तक प्रमेयरत्नमाला।
(ग) प्रातः ८ से ९ तक समयसार।
(घ) १०-३० से ११-३० तक अष्टसाहस्री।
(ङ) मध्याह्न १ से २ तक कातन्त्ररूपमाला व्याकरण।
(च) मध्याह्न ३ से ४ तक पंचास्तिकाय।
(छ) सायं ४ से ५ तक पंचतन्त्र।
(ज) सायं ५ से ६ तक जैनेन्द्र व्याकरण।[1]

महाकवि ज्ञानसागर के सान्निध्य में रहने वाले व्यक्तियों के कथनानुसार उनका हस्तलेख सुन्दर एवं सुस्पष्ट था।[2] उन्होंने कभी भी ख्याति की कामना नहीं की। इसी कारण अपने साहित्य एवं दर्शन के ग्रन्थ-समूह का प्रकाशन कराने के प्रति वह उदासीन ही रहे।[3]

इनके प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं वक्तृत्व शैली ने अनेक व्यक्तियों को प्रभावित किया। श्री अभयलाल जैन,[4] श्री पन्नालाल साहित्याचार्य,[5] श्री स्वरूपचन्द्र कासलीवाल[6], श्री छगनलाल पाटणी,[7] वैद्य बटेश्वर दयाल बकेरिया[8] इत्यादि व्यक्तियों ने जब-जब महाकवि, आचार्य मुनि श्री के दर्शन किये, तब-तब उनसे कुछ-न-कुछ ज्ञान प्राप्त किया।

---

१. (क) श्री पं० चम्पालाल जैन, जैन-सिद्धान्त, पृ० सं० ३
(ख) डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर एवं डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल, वीरशासन के प्रभावक आचार्य, पृ० सं० २७०
२. स्वरूपानन्द जी, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० ५
३. वही।
४. पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसंदेश में से।
५. वही, पृष्ठ सं० १७
६. वही, पृष्ठ सं० २१
७. वही, पृष्ठ सं० २९-३१
८. वही, पृष्ठ सं० १४

सन् १९७२ ई० में मुनि श्री का चातुर्मास नसीराबाद में हुआ।[1]

आचार्य मुनि श्री को चारित्र-चक्रवर्ती-पद की प्राप्ति

स्वरूपानन्द जी की दीक्षा के अवसर पर सन् १९७२ ई० में ही महाकवि ज्ञानसागर को जैन समाज ने चारित्र-चक्रवर्ती का पद प्रदान किया।[2]

आचार्य मुनि श्री ज्ञानसागर का त्याग—

महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज का शरीर क्षीणता को प्राप्त हो रहा था। अब उनके समक्ष अपना उत्तराधिकारी चुनने की समस्या थी। अपने शिष्यों में उन्हें मुनि श्री १०८ विद्यासागर जी ही सर्वश्रेष्ठ लगे। फलस्वरूप उन्होंने दिनांक २२ नवम्बर, सन् १९७२ ई० (मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया वि० सं० २०२०) को अपना पद अपने शिष्य मुनि श्री १०८ विद्यासागर जी को सौंप दिया।[3]

आचार्य पद का उत्तरदायित्व छोड़कर ज्ञानसागर जी पूर्णरूपेण वैराग्य, तपश्चरण एवं सल्लेखना में सन्नद्ध हो गये।[4] इस समय उन्होंने जल और रस पर ही शरीर धारण करना शुरू कर दिया और खाद्य-सामग्री का सदा के लिए परित्याग कर दिया।[5]

सल्लेखना एवं समाधिमरण—

इसी बीच मदनगंज (किशनगढ़) निवासी श्री १०८ मुनि पार्श्वसागर जी महाराज अपनी सल्लेखना में ज्ञानसागर की का सान्निध्य पाने की कामना से

---

१. पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० ४०

२. मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद (राज०), श्रीज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० ४

३. (क) वही।
(ख) दिगम्बर जैन समाज, ब्यावर, स्मारिका, पृ० सं० १३
(ग) पं० चम्पालाल जैन, बाहुबली में से।
(घ) 'नश्वर देह क्षीणता लखकर,
कर दीना फिर पद परित्याग।
'मुनि विद्या' आचार्य बनाकर,
व्रत सल्लेखन पथ पग लागू॥
—प्रभुदयाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १५

४. वही।

५. (क) पं० चम्पालाल जैन, बाहुबली सन्देश में से।
(ख) मुनिसंघव्यवस्थासमिति, नसीराबाद, (राज०), श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं० ४

नसीराबाद आकर रहने लगे। मुनि श्रीपार्श्वसागर जी एक दिन छोड़कर आहार ग्रहण करते थे। इसी बीच १५ मई सन् १९७३ ई० को श्रीपार्श्वसागर जी व्याधि से पीड़ित हो गये। तब आचार्य ज्ञानसागर ने श्रीपार्श्वसागर जी को सल्लेखना धारण कराई। फलस्वरूप आचार्य ज्ञानसागर के पूर्व ही १६ मई सन् १९७३ ई० को प्रातः ७ बजकर ४० मिनट पर पार्श्वसागर जी का समाधिमरण हो गया।[1]

इस प्रकार धीरे-धीरे ज्ञानसागर जी महाराज में शान्ति, निराकुलता, सहिष्णुता एवं धीरता के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। २८ मई सन् १९७३ ई० को उन्होंने सभी प्रकार के आहार-पानादि का परित्याग कर दिया। समाधि की अवस्था में मुनि श्री के प्रिय शिष्य आचार्य विद्यासागर जी एवं क्षुल्लक स्वरूपानन्द जी निरन्तर उनके समीप रहे एवं उनकी समाधिमरण की वेला में उनके सेवक बने।[2] अन्त में ज्येष्ठ कृष्ण १५ विक्रम संवत् २०२३ शुक्रवार, तदनुसार दिनांक ७ जून सन् १९७३ ई० को दिन में १० बजकर ५० मिनट पर नसीराबाद नगर में समाधिमरण द्वारा हमारे आलोच्य महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने पार्थिव शरीर को त्याग दिया।[3]

वास्तव में त्याग-तपस्या, उदारता, साहित्यसर्जना आदि गुणों की साक्षात् मूर्ति महाकवि आचार्य मुनि श्रीज्ञानसागर जी महाराज एवं उनके कार्य स्तुत्य, अनुकरणीय एवं स्वर्णाक्षरों में लेखनीय हैं।

---

१. मुनिसंघव्यवस्था समिति, नसीराबाद, (राज०), श्रीज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवनपरिचय, पृ० सं० ४

२. (क) मुनिसंघव्यवस्थासमिति नसीराबाद (राज०), श्रीज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ० सं०४
(ख) दिगम्बर जैन समाज, ब्यावर, स्मारिका, पृ० सं १३
(ग) पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश में से।
(घ) ताराचन्द गंगवाल, बाहुबलीसन्देश में से, पृ० सं० २७

३. (क) पं० चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश में से।
(ख) 'दो हजार अरु तीस की संवत्, मृत्यु को करके आह्वान।
कृष्ण ज्येष्ठ अमावस के दिन, स्वर्गलोक को किया प्रयाण॥'
—प्रभुदयाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ० सं० १६

द्वितीय अध्याय

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यग्रन्थों के संक्षिप्त कथासार

जयोदय महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार

प्रथम सर्ग

प्राचीनकाल में हस्तिनापुर में जयकुमार नामक एक राजा राज्य करता था। वह कीर्तिमान्, श्रीमान्, विद्वान्, बुद्धिमान्, सौन्दर्यवान् भाग्यवान् एवं अत्यन्त प्रतापवान् राजा था। एक दिन उसके नगर के उद्यान में किसी तपस्वी का आगमन हुआ। उनके आगमन का समाचार सुनकर राजा जयकुमार भी उनके दर्शन के लिए गया। मुनि के दर्शन पाकर वह अत्यधिक हर्षित हुआ। उसने उनकी स्तुति की और नम्रतापूर्वक कर्त्तव्यपथप्रदर्शन हेतु निवेदन किया।

द्वितीय सर्ग

मुनि ने जयकुमार को गृहस्थ-धर्म के साथ-साथ राजा के कर्त्तव्यों का भी उपदेश दिया। मुनि के वचनों को सुनकर जयकुमार का शरीर रोमाञ्चित और अन्तःकरण निर्मल हो गया। उसने भक्तिपूर्वक शिर झुकाकर मुनि को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से बाहर आया। जयकुमार के साथ एक सर्पिणी ने भी मुनि से धर्मोपदेश सुना था। जब जयकुमार बाहर आया तो उसने देखा कि वह सर्पिणी किसी अन्य सर्प के साथ रमण कर रही थी। यह देखकर अपने हाथ के कमल से जयकुमार ने उस सर्पिणी को पीटा। जयकुमार की चेष्टा देखकर अन्य लोगों ने सर्पिणी को प्रहारों से मार डाला। तत्पश्चात् देवी के रूप में उत्पन्न होकर उस सर्पिणी ने जाकर अपने पति नागकुमार से जयकुमार के विरुद्ध वचन कहे। उस मूर्ख सर्प ने अपनी स्त्री के कथन का विश्वास कर लिया और जयकुमार को मारने की इच्छा से चल पड़ा। हस्तिनापुर में जयकुमार के यहाँ जाकर जब उसने देखा कि जयकुमार अपनी स्त्रियों को सारी घटना सुनाते हुये स्त्रियों के कौटिल्य की निन्दा कर रहा है, तब घटना की वास्तविकता का ज्ञान होने पर उसने अपनी स्त्री की निन्दा की। उसने जयकुमार के सामने आकर सारा वृत्तान्त सत्य-सत्य कहा और जयकुमार के प्रति मन में भक्ति को धारण करके उसकी आज्ञा पाकर वहाँ से चला गया।

तृतीय सर्ग

एक दिन जयकुमार राजसभा में बैठा हुआ था। वहाँ काशीनरेश का दूत आया। जयकुमार की आज्ञा से उसने काशीनरेश का संदेश कहा कि श्रेष्ठ मनुष्यों वाली काशीनगरी के राजा की आज्ञा से मैं आपकी सेवा में आया हूँ। उनकी एक पुत्री है—सुलोचना, जो उनकी सुप्रभा नाम की रानी से उत्पन्न हुई है। सुलोचना अद्भुत रूप और गुणों की स्वामिनी है। उसका विवाह वह मंत्रियों की सलाह से स्वयंवरविधि से करना चाहते हैं। काशीनगरी के ही एक स्थल पर देव द्वारा (पूर्वजन्म में काशीनरेश का भाई) श्रीसर्वतोभद्रक नाम का श्रेष्ठ सभामण्डप बनाया गया है। उस नगरी को विभिन्न प्रकार से सजाया भी गया है। अतः सुलोचना-स्वयंवर के उपलक्ष्य में आप भी काशी यात्रा करें। काशीनरेश का संदेश कह कर दूत चुप हो गया। वहाँ का वृत्तान्त सुनकर जयकुमार का मन प्रसन्न और शरीर पुलकित हो गया। उन्होंने अपने वक्षःस्थल का हार उपहार रूप में दूत को दे दिया।

तत्पश्चात् अपनी सेना सजाकर जयकुमार काशीनगरी की ओर चल पड़ा। जब वह काशीनगरी पहुँचा, तब काशीनरेश ने उसका स्वागत किया।

चतुर्थ सर्ग

काशीनरेश के यहाँ सुलोचना-स्वयंवर-समारोह होगा; यह समाचार अयोध्या नरेश भरत के पास पहुँचा। भरत ने यह समाचार अपने पुत्र अर्ककीर्ति को सुनाया। अर्ककीर्ति ने स्वयंवर-समारोह में जाने की इच्छा प्रकट की और पिता से अनुमति माँगी। उनके सुमति नाम के मंत्री ने कहा कि वहाँ बिना बुलाये नहीं जाना चाहिये। किन्तु दुर्मति नाम के मंत्री ने जाने के सम्बन्ध में अपनी सहमति प्रकट की। इतने में ही काशीनरेश ने वहाँ पहुँचकर समारोह में उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया। अपने सभासदों से विचार-विमर्श के पश्चात् अर्ककीर्ति भी स्वयंवर-समारोह में भाग लेने की इच्छा से काशी पहुँचा।

पंचम सर्ग

स्वयंवर-समारोह में अनेक देशों से कुलीन राजकुमार कन्या का वरण करने की इच्छा से पहुँचे। काशीनरेश ने उन सबका स्वागत किया। जैसे ही जयकुमार सभा-मण्डप में पहुँचा, अन्य सभी उपस्थित जनों का मन उसे देखकर प्रतिद्वन्द्विता से परिपूर्ण हो गया।

राजा के यहाँ उपस्थित देव (जो पहले काशीनरेश का भाई था) ने सुलोचना को सभामण्डप में चलने का आदेश दिया। महेन्द्रदत्त कंचुकी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से सुलोचना अपनी सखियों के साथ जिनेन्द्रदेव का पूजन करने के लिए गई; तत्पश्चात् सभामण्डप में पहुँची।

षष्ठ-सर्ग

जब सुलोचना सभाभवन में पहुँची, तो राजाओं के हृदय अन्तर्द्वन्द्व से परिपूर्ण हो गये। सुलोचना विद्या नाम की परिचारिका के साथ कंचुकी के द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने लगी। इसके बाद विद्यादेवी ने सुलोचना को आकाशचारी विद्याधरों और भूमिचारी राजाओं को दिखाया। सर्वप्रथम विद्यादेवी ने सुनमि और विनमि—इन दो राजाओं का परिचय दिया। विद्याधर राजाओं में सुलोचना की रुचि न देख कर विद्यादेवी ने पृथ्वी के राजाओं का परिचय दिया। उसने क्रमशः भरत के पुत्र अर्ककीर्ति तथा कलिंग, कांची, काबुल, अंग, वंग, सिन्धु, काश्मीर, कर्णाटक, मालव, कैरव आदि देशों से आये हुये राजाओं के गुणों का विस्तार से वर्णन किया। सुलोचना जयकुमार के पास पहुँची। विद्यादेवी ने सुलोचना का मन जयकुमार के अनुकूल पाया तो उसने विस्तारपूर्वक उसके गुणों का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। विद्यादेवी से प्रेरित होकर युद्ध में मेघ को जीतने के कारण मेघेश्वर की उपाधि पाने वाले सम्राट् भरत के सेनापति और सोमदेव के पुत्र जयकुमार पर अनुरक्त सुलोचना ने उसके गले में जयमाल डाल दी। उसी समय हर्षसूचक नगाड़े जोर-जोर से बजने लगे। जयकुमार का मुख कान्तियुक्त हो गया; पर अन्य राजाओं के मुखमण्डल म्लान हो गये।

सप्तम सर्ग

अर्ककीर्ति के सेवक दुर्मर्षण को यह स्वयंवर-समारोह अच्छा नहीं लगा। जयकुमार के वरण को उसने काशीनरेश की पूर्वनियोजित योजना समझा। उसने अर्ककीर्ति से कहा कि चक्रवर्ती के पुत्र को छोड़ कर सुलोचना ने सोमदेव के पुत्र जयकुमार का वरण किया है। जयकुमार जैसे तो आपके कितने ही सेवक होंगे। फिर कुल की उपेक्षा भी ठीक नहीं।

दुर्मर्षण के वचनों से उत्तेजित अर्ककीर्ति काशीनरेश और जयकुमार दोनों को ही मारने के लिए तैयार हो गया। उसने युद्ध के माध्यम से जयकुमार को नीचा दिखाने की ठान ली। परन्तु अनवद्यमति नाम के मंत्री ने समझाया कि काशीनरेश (अकम्पन) और जयकुमार हमारे अधीनस्थ राजा हैं; जयकुमार की सहायता से ही सम्राट् भरत ने दिग्विजय करके चक्रवर्ती सम्राट् पद की प्राप्ति की है, इसलिए वह तुम्हारे पिता का स्नेहभाजन है। इतना ही नहीं, वरन् महाराज अकम्पन तो आपके पिता के भी पूज्य हैं। उनसे युद्ध करना गुरुद्रोह होगा। किन्तु अर्ककीर्ति पर अनवद्यमति के वचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

अर्ककीर्ति के क्रोध का समाचार महाराज अकम्पन के पास भी पहुँचा। मंत्रियों से सलाह करके उन्होंने एक दूत अर्ककीर्ति के पास भेजा। किन्तु दूत के वचन सुन कर भी अर्ककीर्ति युद्ध से विरत नहीं हुआ। दूत ने जब महाराज अकम्पन को अर्ककीर्ति का समाचार दिया, तब अकम्पन अत्यधिक चिन्तित हुए। महाराज

अकम्पन को चिन्तित देखकर जयकुमार ने उन्हें धीरज बँधाया और सुलोचना की रक्षा करने के लिए कहा। तत्पश्चात् जयकुमार अर्ककीर्ति से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो गये। यह देखकर अकम्पन भी अपने हेमाङ्गद इत्यादि पुत्रों सहित युद्ध के लिए चल पड़े। श्रीधर, सकेतु, देवकीर्ति इत्यादि राजाओं ने भी जयकुमार का अनुसरण किया। जयकुमार की सेना सुसज्जित होकर अर्ककीर्ति का विरोध करने के लिए चल पड़ी। अर्ककीर्ति भी अपनी सेना को युद्धक्षेत्र में ले आया। अर्ककीर्ति ने चक्रव्यूह की और जयकुमार ने मकरव्यूह की रचना की।

अष्टम सर्ग

दोनों सेनाएँ परस्पर एक दूसरे को युद्ध के लिए ललकारने लगीं। सेनापति की आज्ञा सुनकर युद्ध का नगाड़ा बजा दिया गया, जिसकी ध्वनि से और सेना द्वारा उठाई गई धूलि से दिशाएँ व्याप्त हो गईं। गजारोही, रथारोही और अश्वारोही परस्पर युद्ध करने लगे। जयकुमार तथा उसके अन्य भाइयों ने एवं हेमाङ्गद आदि काशीनरेश के पुत्रों ने प्रतिपक्षियों का डटकर सामना किया। इसी बीच रतिप्रभदेव ने आकर जयकुमार को नागपाश और अर्द्धचन्द्र नाम का बाण दिया। जयकुमार ने इन दोनों वस्तुओं से अर्ककीर्ति को बाँध दिया। इस प्रकार जयकुमार की विजय हुई।

युद्ध से लौट कर काशीनरेश अकम्पन ने सुलोचना को जयकुमार के विजयी होने की सूचना दी और व्रत की पारणा करने का वात्सल्यपूर्ण आदेश दिया। इसके पश्चात् सब लोगों ने जिनेन्द्रदेव की पूजा की।

नवम सर्ग

जयकुमार के विजयी हो जाने पर भी राजा अकम्पन को चिन्ता हुई। उन्होंने विचार किया कि अपनी दूसरी पुत्री अक्षमाला का विवाह अर्ककीर्ति से कर दिया जाय। उन्होंने बाँधे गये अर्ककीर्ति को कोई दण्ड नहीं दिया। उन्होंने विनम्रतापूर्वक उसे समझाया; और अक्षमाला को स्वीकार करने के लिए कहा। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जयकुमार अपराजेय है। फिर जयकुमार का कोई अपराध भी नहीं है। जयकुमार ने भी अर्ककीर्ति से प्रीतियुक्त विनम्र वचन कहे। काशीनरेश के प्रयत्न से जयकुमार और अर्ककीर्ति की पुनः सन्धि हो गई।

तत्पश्चात् काशीनरेश (अकम्पन) ने सुमुख नामक दूत को भरत के पास भेजा। सुमुख ने काशीनगरी का वृत्तान्त बड़ी नम्रतापूर्वक सम्राट् भरत से कहा; काशीनरेश की ओर से क्षमायाचना की। सम्राट् भरत ने राजा अकम्पन और जयकुमार के प्रति प्रशंसात्मक वचन कहे। सम्राट् भरत के वचनों से सन्तुष्ट होकर दूत ने उनकी वन्दना की और काशी आकर उसने अयोध्या में हुई वार्त्ता को काशीनरेश के सम्मुख प्रस्तुत किया।

दशम सर्ग

तत्पश्चात् काशीनरेश अकम्पन के यहाँ पाणिग्रहण की तैयारी होने लगी। जयकुमार को दूत द्वारा बुलाया गया। सारी नगरी को सजाया गया। तरह-तरह के बाजे बजने लगे। सुलोचना ने स्नान करके उज्ज्वल वस्त्रों और अनेक आभूषणों को धारण किया और पिता के पास जाकर सिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया।

जयकुमार जब बारात सजाकर नगर-मार्ग में निकले तो प्रजाजन उनकी शोभा देखने में लीन हो गये। राजद्वार में पहुँचते ही बन्धुओं द्वारा आदरपूर्वक जयकुमार को मण्डप में लाया गया। सुलोचना भी मण्डप में लाई गई। जयकुमार और सुलोचना ने एक दूसरे को देखकर हर्ष का अनुभव किया।

एकादश सर्ग

जयकुमार ने सुलोचना के रूप-सौन्दर्य का अवलोकन किया। वह सुलोचना के रूप से अत्यधिक प्रभावित हुआ।

द्वादश सर्ग

जिनेन्द्रदेव के पूजन के साथ-साथ सुलोचना के विवाह का कार्य होने लगा। जयकुमार और सुलोचना से भी जिनेन्द्रदेव का पूजन कराया गया। पुरोहित के निर्देश से काशीनरेश ने अपनी पुत्री के हाथ का अँगूठा जयकुमार के हाथ में दे दिया। प्रसन्नता के इस अवसर पर उन्होंने धन की वर्षा सी कर दी और दहेज में कोई कमी न रहने दी। यज्ञवेदी की अग्नि का धुआँ चारों ओर फैल गया। तत्पश्चात् वेदी के चारों ओर सप्तपदी की रीति को सम्पन्न किया गया। अनेक उपस्थित प्रजाजनों के सम्मुख गुरुजनों ने वर-वधू को आशीर्वाद दिया। महिलाओं ने अनेक सौभाग्य-गीत गाये। दासियों एवं स्त्रियों ने हास-परिहास के साथ बरातियों को भोजन कराया। काशीनरेश ने जयकुमार एवं वरपक्ष के अभ्यागतों का अत्यधिक सत्कार किया।

त्रयोदश सर्ग

विवाह के पश्चात् जयकुमार ने काशीनरेश से अपने नगर जाने की आज्ञा माँगी। सुलोचना के माता-पिता ने सुलोचना एवं जयकुमार को अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदा किया। दोनों उन्हें छोड़ने समीपस्थ तालाब तक गये। सुलोचना के भाई भी सुलोचना के साथ थे। जयकुमार के सारथि ने मार्ग में स्थित वन और गंगानदी के वर्णन से जयकुमार का मनोरञ्जन किया। राजहंसों से सेवित एवं कमलिनियों से सुन्दर बनी हुई गंगा नदी में गजराज जल-क्रीड़ा कर रहे थे। जयकुमार ने उसी के तट पर सेना सहित पड़ाव डाल दिया।

चतुर्दश सर्ग

जयकुमार-सुलोचना एवं उनके अन्य साथियों ने वहाँ पर बहुत समय तक

वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा एवं मधुर आलाप इत्यादि से अपना मनोरञ्जन किया। गंगा नदी के जल में स्नान करने के पश्चात् जिस समय उन सबने नवीन वस्त्र धारण किये, उस समय सूर्य अस्त होने को था।

पंचदश सर्ग

सूर्य के अस्त होने पर क्रमशः सन्ध्या का आगमन हुआ। तत्पश्चात् रात्रि का घोर अन्धकार चारों ओर फैल गया; फिर चन्द्रमा का उदय हुआ। ऐसे समय में स्त्री-पुरुष परस्पर विहार करने लगे।

षोडश सर्ग

रात्रि के मध्य में स्त्री-पुरुषों का धैर्य समाप्त हो गया। परस्पर हास-विलास करते हुये उन्होंने मद्यपान शुरु कर दिया। मद्यपान से उनकी चेष्टायें विकृत हो गईं; नेत्र लाल हो गये। स्त्री-पुरुषों में परस्पर मान, अभिमान और प्रेम का व्यवहार होने लगा।

सप्तदश सर्ग

सभी युगल एकान्त स्थानों में चले गये। जयकुमार-सुलोचना एवं अन्य स्त्री-पुरुषों ने सुरतक्रीड़ाएं कीं। अर्द्धरात्रि के समय उन सबने निद्रादेवी की गोद में विश्राम लिया।

अष्टादश सर्ग

शुभ प्रभात हुआ। नक्षत्र विलीन हो गये। चन्द्रमा अस्त हो गया। भुवन-भास्कर का उदय हुआ। लोग निद्रारहित होकर अपने-अपने काम में लग गये।

एकोनविंश सर्ग

प्रातः काल जयकुमार ने स्नानादि क्रियायें कीं। तत्पश्चात् वह जिनेन्द्रदेव की पूजा में संलग्न हो गया और उसने बहुत समय तक श्रद्धापूर्वक जिनेन्द्रदेव की स्तुति की।

विंशतितम सर्ग

इसके बाद जयकुमार ने सम्राट् भरत से भेंट करने की इच्छा से अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर सभाभवन के सिंहासन में बैठे हुये सम्राट् को उसने प्रणाम किया। सम्राट् भरत के वात्सल्यपूर्ण वचनों से आश्वस्त होकर जयकुमार ने क्षमा-याचना पूर्वक सुलोचना-स्वयंवर का सारा वृत्तान्त कहा। उसके वचन सुनकर सम्राट् ने अपने पुत्र अर्ककीर्ति को ही दोषी ठहराया; उन्होंने अक्षमाला और अर्ककीर्ति के विवाह का कार्य करने हेतु काशीनरेश अकम्पन के प्रति प्रशंसात्मक वचन कहे। सम्राट् से सत्कृत होकर जयकुमार उनसे अनुमति लेकर, हाथी पर सवार होकर अपनी सेना की ओर चल पड़ा। मार्ग में गंगा नदी में एक बड़ी मछली ने जयकुमार का अपहरण करने की इच्छा से उसके हाथी को पकड़ लिया। यह देखकर जयकुमार अत्यधिक व्याकुल हुआ।

सुलोचना भी जयकुमार की प्रतीक्षा कर रही थी। पति को संकट में फँसा हुआ देखकर उसको बचाने की इच्छा से वह जल में उतर गई। जल में उतर कर उसने हृदय से प्रार्थना की। उसके शील के तेज से गंगा का जल कम हो गया; और मछली ने जयकुमार को छोड़ दिया। सतीशिरोमणि सुलोचना के सतीत्व से प्रभावित नदी के किनारे पर उपस्थित गंगा नाम की देवी ने सुलोचना की दिव्यवस्त्राभूषणों से पूजा की। यह देख कर जयकुमार अत्यधिक विस्मित हुआ। जयकुमार की जिज्ञासा को शान्त करती हुई गंगादेवी ने बताया कि वह उनकी पूर्वजन्म की दासी है। सर्पिणी के काटने से देवी का जन्म प्राप्त किया है। आपसे प्राप्त पदार्थों से ही उसने उनका सत्कार किया है। यह जो मछली थी, पहले सर्पिणी थी; फिर कालीदेवी हुई। पूर्वजन्म के क्रोध के कारण यह जयकुमार के समक्ष आई थी। जयकुमार ने प्रीतिपूर्ण वचनों से गंगादेवी को विदा किया। सुलोचना ने जयकुमार की पूजा की।

एकविंशतितम सर्ग

जयकुमार की आज्ञा पाकर उसके सैनिकों ने हस्तिनापुर जाने की तैयारी कर ली। जयकुमार ने रथ पर आरूढ़ होकर सुलोचना के साथ प्रस्थान किया। मार्गस्थित दृश्यों के वर्णन से सुलोचना का मनोरञ्जन करते हुए वह एक वन में पहुँचे। भीलों के मुखिया जयकुमार के लिए भेंट में गजमुक्ता, फल, पुष्पादि लाए। भीलों की पुत्रियों के सौन्दर्य को देखकर जयकुमार ने प्रसन्नता का अनुभव किया। सुलोचना गोपों की बस्ती देख कर प्रसन्न हो रही थी। गोप-गोपियों ने दही, दूध एवं आदर से जयकुमार एवं सुलोचना को प्रसन्न किया। जयकुमार ने कुशलवार्ता पूछने के पश्चात् प्रेमपूर्वक उन सबसे विदा ली।

गोपों की बस्ती से निकल कर जयकुमार ने पुनः यात्रा आरम्भ की। हस्तिनापुर पहुँचने पर जयकुमार और सुलोचना का मन्त्रियों ने स्वागत किया। प्रजावर्ग ने भी अपने राजा का सम्मान किया; नगर की स्त्रियाँ नववधू का मुख देखने की लालसा से राजमहल में पहुँच गईं। उन्होंने सुलोचना का सौन्दर्य देखकर हर्ष का अनुभव किया। जयकुमार ने हेमाङ्गद इत्यादि के सामने सुलोचना के मस्तक पर पट्ट बाँध कर उसे 'प्रधानमहिषी' घोषित कर दिया। जयकुमार के इस व्यवहार की हेमाङ्गद इत्यादि ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की जयकुमार ने हास-परिहास सहित उनके साथ बहुत समय व्यतीत किया। रत्न, आभूषण इत्यादि देकर उन्हें विदा किया। जयकुमार को प्रणाम करके वे सब हस्तिनापुर से निकल पड़े। काशी पहुँचकर उन्होंने अपने पिता को प्रणाम किया और अपनी बहिन और बहनोई का सारा वृत्तान्त सुनाया। पुत्री के सुख समृद्धि से परिपूर्ण वृत्तान्त को जानकर काशीनरेश अकम्पन आत्मकल्याणमार्ग की ओर अग्रसर हुये।

द्वाविंशतितम सर्ग

जयकुमार और सुलोचना परस्पर भोग-विलास करते हुये सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे।

त्रयोविंशतितम सर्ग

राज्यकार्य को अपने छोटे भाई विजय को देकर जयकुमार ने अपना ध्यान प्रजा के हितचिन्तन में लगाया। एक दिन जयकुमार सुलोचना के साथ महल की छत पर बैठा था। आकाश में एक विमान को देखकर 'प्रभावती' नाम की पूर्व जन्म की प्रिया का स्मरण करके वह मूर्च्छित हो गया। सुलोचना ने अपने सामने एक कपोतयुगल को देखा तो वह भी अपने पूर्वजन्म के प्रेमी रतिवर का स्मरण करके मूर्च्छित हो गई। उपचार से उन दोनों की मूर्च्छा समाप्त हो गई। किन्तु वहाँ पर उपस्थित स्त्रियों ने सुलोचना के चरित्र पर सन्देह किया।

जयकुमार के पूछने पर सुलोचना ने अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त सुनाया, जो इस प्रकार है :—

विदेह देश में पुण्डरीकिणी नगरी में कुबेरप्रिय नामक सेठ अपनी स्त्री के साथ रहता था। उसके यहाँ रतिवर नामक कबूतर और रतिषेणा नाम की कबूतरी रहती थी। एक दिन सेठ के यहाँ दो मुनि आये। उनके दर्शनों से कपोतयुगल को अपने पूर्वजन्मों की याद आ गई। फलस्वरूप उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। इसके बाद रतिवर ने आदित्यगति और शशिप्रभा के पुत्र हिरण्यवर्मा के रूप में जन्म लिया; और रतिषेणा ने वायुरथ और स्वयंप्रभा की पुत्री प्रभावती के रूप में जन्म लिया। इस जन्म में भी इन दोनों का विवाह हो गया। बाद में पूर्वजन्मों की याद आ जाने से हिरण्यवर्मा ने तप करना प्रारम्भ कर दिया। संसार की गति को देख कर प्रभावती भी आर्यिका बन गई।

एक दिन जब वे दोनों तप कर रहे थे, उनके पूर्वजन्म के शत्रु विद्युच्चोर ने आकर क्रोध के कारण उनको जला दिया। तत्पश्चात् वे दोनों स्वर्ग पहुँचे। स्वर्ग में घूमते हुये अपने पूर्वजन्म के स्थानों को देखते हुए वे एक सर्प-सरोवर के समीप पहुँचे। वहाँ भीम नाम के एक मुनिराज तप कर रहे थे। उनसे ज्ञात हुआ कि जब वह देव (हिरण्यवर्मा) सुकान्त रूप में जन्मा था, तब वह उसके भवदेव नाम के शत्रु थे; कपोत के जन्म के समय वह बिलाव के रूप में उनके शत्रु बने थे; और हिरण्यवर्मा के जन्म के समय में विद्युच्चोर भी वहीं थे। इस समय वह भीम के रूप में उत्पन्न हुये हैं। सुलोचना ने स्पष्ट कर दिया कि जयकुमार ही सुकान्त, रतिवर कबूतर, हिरण्यवर्मा और स्वर्ग के देव के रूप में उत्पन्न हुआ था। सुलोचना से पूर्वजन्मों का वृत्तान्त सुनकर जयकुमार बहुत प्रसन्न हुआ। इस समय उन दोनों को दिव्यज्ञान की प्राप्ति हो गई।

चतुर्विंशतितम सर्ग

दिव्यज्ञान की सहायता से जयकुमार और सुलोचना पर्वतों और तीर्थों पर विहार करने के लिए गये। सुमेरु, श्रीपुरुपर्वत (उदयाचल) इत्यादि में विहार करते हुये वे दोनों हिमालय पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक मन्दिर देखा। उसमें जाकर विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेव की पूजा की। तत्पश्चात् मन्दिर से निकल कर पर्वत पर विहार करते हुये जयकुमार और सुलोचना एक दूसरे से कुछ दूर हो गये। इस समय सौधर्म इन्द्र की सभा में जयकुमार के शील की प्रशंसा की जा रही थी, जिसे सुनकर रविप्रभ नामक देव ने अपनी पत्नी कांचना को जयकुमार के शील की परीक्षा लेने के लिए भेजा। उसने आकर जयकुमार के सौन्दर्य की प्रशंसा की; अपनी मनगढ़न्त कहानी सुनायी और भिन्न-भिन्न प्रकार की कामचेष्टाओं से जयकुमार को विचलित करना चाहा। परन्तु जयकुमार के हृदय पर उसके वचनों और चेष्टाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा; उलटे उसने उसके व्यवहार की निन्दा की और उसे स्त्रियों के आचरण की शिक्षा दी। जयकुमार के उदासीनतायुक्त वचनों को सुनकर उसने क्रोधपूर्वक उसे उठा लिया और जाने लगी। इसी समय सुलोचना ने वहाँ पहुँचकर उसकी भर्त्सना की। सुलोचना के शील के माहात्म्य से उसने जयकुमार को छोड़ दिया और चली गई। अपनी पत्नी से जयकुमार के निष्काम भाव को जानकर रविप्रभ ने देववन्द्य जयकुमार की पूजा की।

इस प्रकार तीर्थों में विहार करके जयकुमार अपने नगर में लौट आया और सुलोचना के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

पंचविंशतितम सर्ग

सांसारिक भोग-विलासों की निःसारता को देखकर जयकुमार के मन में एक दिन वैराग्यभाव जाग उठा। वस्तुतत्त्व का चिन्तन करते हुये उसकी इच्छा वन जाने की हो गई।

षड्विंशतितम सर्ग

जयकुमार ने अपने पुत्र अनन्तवीर्य का राज्याभिषेक किया और स्वयं वन की ओर चल पड़ा। हस्तिनापुर की प्रजा ने हर्ष और विषाद—इन दो विरोधी भावों का, साथ-साथ अनुभव किया। वन में जयकुमार भगवान् ऋषभदेव के पास गया; उसने उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति की और कल्याण मार्ग के विषय में पूंछा।

सप्तविंशतितम सर्ग

भगवान् ऋषभदेव ने जयकुमार को धर्म का स्वरूप बताया। भगवान् के उपदेश को सुनकर वह दृढ़तापूर्वक आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो गया।

अष्टाविंशतितम सर्ग

जयकुमार ने समस्त वाह्य परिग्रहों का परित्याग कर दिया और घोर तपस्या में संलग्न हो गया। तपश्चरण के परिणामस्वरूप उसने मनःपर्ययज्ञान

की प्राप्ति कर ली। उसने दैगम्बरी दीक्षा भी धारण कर ली। अन्त में उसने उच्चपद की प्राप्ति कर ली।

सम्राट् भरत की प्रधानमहिषी सुभद्रा के समझाने पर सुलोचना ने भी ब्राह्मी नाम की आर्या के समक्ष दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् वह भी स्वर्ग में अच्युतेन्द्र के रूप में पहुँच गई।

(ख) वीरोदय महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार

प्रथम सर्ग

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व, जब वसुन्धरा हिंसा, दुराचार, स्वार्थलिप्सा और पाप के भार से दबी जा रही थी, वसुन्धरा के भार को हल्का करने के लिए भगवान् महावीर ने जन्म ग्रहण किया।

द्वितीय सर्ग

लोक-विश्रुत भारतवर्ष के छः खण्ड हैं, जिनमें आर्य-खण्ड सर्वोत्तम है। इसी आर्य-खण्ड में स्वर्गोपम विदेह नामक एक देश है। इस देश के सर्वश्रेष्ठ नगर का नाम कुण्डनपुर है, जो पहले अत्यन्त वैभवशाली था।

तृतीय सर्ग

उस कुण्डनपुर नामक नगर में राजा सिद्धार्थ शासन करता था। उसने अपने बल से अनेक राजाओं को अपने अधीन कर लिया था। ये सभी अधीनस्थ राजा अपने मुकुटमणियों की प्रभा से उसके चरण-कमलों को सुशोभित करते थे। वह राजा सौन्दर्य, धैर्य, स्वास्थ्य, गाम्भीर्य, उदारता, प्रजावत्सलता, विद्या आदि का निधान था। उसे चारों पुरुषार्थों का ज्ञान था। परमकीर्तिमान्, परमवैभवशाली उस राजा का सम्पूर्ण ध्यान राज्य की समुन्नति पर केन्द्रित था।

राजा सिद्धार्थ की पत्नी का नाम प्रियकारिणी था। अनुपम सुन्दरी वह राजमहिषी, परम अनुरागमयी और पतिमार्गानुगामिनी थी। वह दया और क्षमा से परिपूर्ण हृदयवाली, शान्तस्वभावा, लज्जाशीला, परमदानशीला और मनोविनोदप्रिया थी। परमसम्पत्तिशालिता, मंजुभाषिता, समदर्शिता, कोमलता आदि सभी गुण उस रानी के संग से शोभा पाते थे। राज्य के लिए कल्याणकारिणी, उस दूरदर्शिनी, लोकाभिरामा ने अपने अप्रतिम गुणों से राजा सिद्धार्थ के हृदय में अचल स्थान पा लिया था। रानी-राजा परस्पर अत्यधिक प्रेम करते थे। इस प्रकार परस्पर प्रेममय व्यवहार करते हुये उनका समय सानन्द बीत रहा था।

चतुर्थ सर्ग

ग्रीष्म ऋतु के संताप से धरा को मुक्त करने वाली पावस ऋतु का जब आनन्ददायक आगमन हुआ, तब आषाढ़ मास की षष्ठी तिथि को भगवान् महावीर ने रानी प्रियकारिणी के गर्भ में प्रवेश किया।

वर्षा-ऋतु के सुखद वातावरण से परिपूर्ण एक दिन, रात्रि के अन्तिम समय में, रानी ने क्रमशः सोलह स्वप्नों को देखा। तत्काल ही प्रातः कालीन स्तुतियों से उसकी निद्रा टूटी। प्रातः कालीन कृत्यों से निवृत्त होकर, अपने सुन्दर शरीर को आभूषणों से सज्जित करके, सहेलियों के साथ, अपने स्वप्न सुनाने और उन स्वप्नों का अभिप्राय जानने की इच्छा से वह अपने पति राजा सिद्धार्थ के पास गई। राजा ने रानी को अपने समीप आसन पर बैठाया, तब रानी ने अपने सोलहों स्वप्न राजा को कह सुनाये। राजा ने रानी को क्रमशः उन स्वप्नों का फल इस प्रकार बताया :—

पहिले स्वप्न में तुमने ऐरावत हाथी देखा है। इसका तात्पर्य है कि तुम्हारा पुत्र मदस्रावी गज के समान महादानी होगा।

दूसरे स्वप्न में तुमने वृषभ देखा है। इसका फल है कि तुम्हारा पुत्र धर्म की धुरी को धारण करने में समर्थ होगा।

तीसरे स्वप्न में तुमने सिंह को देखा है। इसका अर्थ है कि तुम्हारा पुत्र उन्मत्तों एवं मूर्खों के गर्व का दलन करने वाला होगा।

चौथे स्वप्न में गजलक्ष्मी देखने का फल है कि तुम्हारा पुत्र इन्द्रादि देवताओं द्वारा सुमेरु पर्वत के शिखर पर अभिषिक्त होगा।

पाँचवे स्वप्न में तुमने गुंजन करते हुये भ्रमरों से युक्त दो मालाएँ देखी हैं। यह स्वप्न इस बात का सूचक है कि तुम्हारा पुत्र अपनी यशःसुरभि से जगन्मण्डल को सुरभित करने वाला और योग्य व्यक्तियों से सम्मानित होगा।

छठे स्वप्न में तुमने चन्द्रमा देखा है; जो इस बात का सूचक है कि तुम्हारा पुत्र सभी कलाओं में पारंगत होगा और अपने धर्मरूप अमृत से जगत् का सिंचन करेगा।

सातवें स्वप्न में सूर्य देखने का फल है कि तुम्हारा पुत्र लोगों के हृदय-कमल का विकासक, अज्ञानरूप अन्धकार का हन्ता एवं परमप्रतापी होगा।

आठवें स्वप्न में तुमने जल से परिपूर्ण दो कलश देखे हैं। फलस्वरूप गर्भस्थ शिशु, लोगों का परमकल्याण करने वाला एवं तृष्णातुर लोगों के लिए अमृत रूप सिद्धि को देने वाला होगा।

नवें स्वप्न में तुमने जल में क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ देखी हैं। फलस्वरूप तुम्हारा पुत्र अपनी सुन्दर चेष्टाओं से स्वयं प्रसन्न रह कर जनता को हर्षित करेगा।

दसवें स्वप्न में तुमने आठ हजार से अधिक कमलों से युक्त सरोवर देखा है। फलस्वरूप तुम्हारा पुत्र सुन्दर १००८ लक्षणों से युक्त होगा; एवं लोगों के दुःख एवं पाप का नाशक होगा।

ग्यारहवें स्वप्न में तुमने समुद्र देखा है। उसका फल यह होगा कि तुम्हारा पुत्र समुद्र के समान धीर-गम्भीर, नवनिधियों और केवल ज्ञान से उत्पन्न नवलब्धियों[1] का स्वामी होगा।

बारहवें स्वप्न में हे रानी ! तुमने सुन्दर सिंहासन देखा है। उसका फल होगा कि तुम्हारा पुत्र निरन्तर उन्नति को प्राप्त करने वाला, उत्तम-कान्ति से युक्त और शिवराज्य के पद का अनुगामी होगा।

तेरहवें स्वप्न में देव-सेवित विमान देखने का फल है कि तुम्हारा पुत्र देवताओं से सेव्य, लोगों को मोक्ष दिलाने वाला और अति पवित्रात्मा होगा।

चौदहवें स्वप्न में हे रानी ! तुमने शुभ्रवर्ण वाला नागमन्दिर देखा है। फलस्वरूप तुम्हारा पुत्र अपने उज्ज्वल यश के कारण देवगृह के समान विश्वप्रसिद्ध होगा।

पन्द्रहवें स्वप्न में तुमने निर्मल रत्नों की राशि देखी है। फलस्वरूप तुम्हारा पुत्र, अनन्त निर्मलगुणराशि से शोभायमान होगा।

सोलहवें स्वप्न में तुमने-धूमरहित अग्नि का समूह देखा है। यह स्वप्न इस बात का सूचक है कि तुम्हारा पुत्र दारुण परिपाक वाले कर्मसमूह को विनष्ट करके निर्मल आत्मस्वरूप को प्राप्त करेगा और सर्वोत्तम ज्ञान को पाएगा। इस प्रकार तुम्हारा पुत्र तीनों लोकों का स्वामी तीर्थंकर होगा।

उत्पन्न होने वाले अपने पुत्र में राजा द्वारा बताये गये संभावित लक्षणों को सुनकर रानी प्रियकारिणी प्रेमविभोर हो गई। तीर्थंकर के गर्भावतरण को जानकर देवताओं ने भी आकर उस सुन्दरी रानी की वन्दना की।

पंचम सर्ग

भगवान् महावीर के गर्भावतरण के पश्चात् श्री, ह्री आदि देवियाँ वहाँ आईं। राजा सिद्धार्थ ने उनका यथोचित सम्मान किया। तत्पश्चात् उनके आगमन का कारण पूँछा। राजा के पूँछने पर देवियों ने बताया कि महारानी प्रियकारिणी के गर्भ में जिनेन्द्र तीर्थंकर भगवान् का अवतार हुआ है। अतएव इन्द्र के आदेश से तीर्थंकर की पूज्य माता की सेवा करने वे लोग यहाँ आई हैं। अतएव उनको उस पुण्य-कार्य की अनुमति मिले।

---

१. 'दाणे लाभे भोगे परिभोग [illegible] एय सम्मत्ते।
णव केवल तद्धीओ दंसण-णाणं चरित्ते य॥'

—धवला १।१।१

(दान, लाभ, भोग, परिभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान और चारित्र—ये नव लब्धियाँ हैं, जो केवल ज्ञान प्राप्त करने पर पुरुष को प्राप्त होती हैं।)

राजा से आज्ञा पाकर वे सभी देवियाँ कंचुकी के साथ माता के समीप जाकर उसकी चरण-वन्दना करने लगीं। अपने सुन्दर वचनों से देवियों ने माता को आश्वस्त किया और उसकी सेवा में तत्परता से जुट गईं। रानी को नहलाने में, उसका अलंकरण करने में, संगीत द्वारा रानी का मनोरंजन करने में वे देवियाँ जरा भी प्रमाद नहीं करती थीं। देवियों के आग्रह पर रानी प्रियकारिणी, उनके भगवद्विषयक प्रश्नों का उत्तर देकर, उन्हें सन्तुष्ट करती थीं। भगवान् महावीर की जननी से जैन-धर्म-विषयक प्रवचनों को सुनकर, देवियाँ उसको यथासमय सुस्वादु भोजन कराती थीं। भ्रमण के लिए समीपवर्ती उद्यानों में ले जाती थीं। तत्पश्चात् रानी को पुष्पसज्जित शय्या पर लिटाकर, उसके चरण दबाकर, उस पर पंखा झलकर, उसे सुला देती थीं। इस प्रकार वे सभी देवियां माता के साथ ही, गर्भस्थ जिनेन्द्रदेव की भी सेवा-अर्चना करने लगीं।

षष्ठ सर्ग

धीरे-धीरे रानी प्रियकारिणी में गर्भवृद्धि के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। यह देखकर राजा सिद्धार्थ अति प्रसन्न हुआ। इसी बीच ऋतुराज वसन्त का मंदिर शुभागमन हुआ। चारों ओर उल्लास का साम्राज्य फैल गया। उसी मनोहर वेला में, चैत्र मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी के दिन रानी प्रियकारिणी ने शुभलक्षणोपेत पुत्र को जन्म दिया। पुत्रोत्पत्ति होने पर रानी अत्यधिक हर्षित हुई। शिशु के निर्मल शरीर से कमल-सौरभ के समान सुगन्धि निःसृत हो रही थी।

सप्तम सर्ग

प्रियकारिणी के गर्भ से जिस समय भगवान् ने जन्म लिया, उस समय सभी दिशाओं में आनन्द का संचार हो गया। इन्द्र का सिंहासन दोलायमान हो उठा। भगवान् के जन्म का समाचार जान कर इन्द्र ने दूर से ही उन्हें प्रणाम किया और सभी सुरासुरों सहित कुण्डनपुर के लिए प्रस्थान किया। कुण्डनपुर की देवताओं ने तीन बार प्रदक्षिणा की। इन्द्राणी ने प्रसूतिगृह में प्रवेश किया। उन्होंने एक माया निर्मित शिशु को माता के पार्श्व में सुला दिया और जिन भगवान् को लाकर इन्द्र को सौंप दिया।

भगवान् को देखकर इन्द्र ने उन्हें प्रणाम किया और ऐरावत हाथी पर बिठा कर जैन-मन्दिरों से युक्त सुमेरु पर्वत के लिए प्रस्थान किया। पर्वतराज सुमेरु ने जिनेन्द्र को अपने शिर पर धारण किया। तत्पश्चात् देवगणों ने क्षीरसागर से भगवान् का अभिषेक किया। अभिषेक के पश्चात् भगवान् के शरीर को पोंछकर इन्द्राणी ने उनके शरीर को सुन्दर-सुन्दर आभूषणों से सजाया। इस प्रकार देवगणों ने भगवान् का जन्म-महोत्सव मनाया और फिर ले जाकर उन्हें उनकी माता की गोद में सौंप दिया। तत्पश्चात् वे सभी देवता नाचते-गाते हुए अपने-अपने निवास स्थान को चले गए।

अष्टम-सर्ग

राजा सिद्धार्थ ने भी अपने पुत्र का जन्म-महोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया। पुत्र के शरीर की बढ़ती हुई कान्ति को दृष्टि में रखकर राजा ने अपने पुत्र का नाम श्रीवर्धमान रखा। बालक वर्धमान अपनी सुन्दर-सुन्दर बालोचित चेष्टाओं से सम्पूर्ण जन-समुदाय को हर्षित करने लगा।

पूर्णतया स्वस्थ शरीर वाले भगवान् धीरे-धीरे बाल्यावस्था से युवावस्था की ओर अग्रसर हुए। पुत्र को युवावस्था में पदार्पण करते हुये देखकर पिता सिद्धार्थ ने उनके लिए विवाह-योग्य कन्या देखने का निश्चय किया। किन्तु वर्धमान ने पिता के इस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया। पिता के बार-बार आग्रह करने पर वर्धमान ने नम्रतापूर्वक उन्हें समझाया और वैवाहिक जीवन का पालन करने के स्थान पर उन्हें ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन की अपनी बलवती इच्छा प्रकट की। पुत्र की ब्रह्मचर्य-व्रत के प्रति ऐसी निष्ठा देखकर पिता ने हर्षित होकर उनके शिर का स्पर्श करके यथेच्छ जीवन-यापन करने की अनुमति दे दी।

नवम सर्ग

विवाह-प्रस्ताव को ठुकराने के पश्चात् भगवान् का ध्यान संसार की शोचनीय दशा की ओर गया। हिंसा, स्वार्थलिप्सा, अधर्म, व्यभिचार, दुर्जनता इत्यादि बुराईयों से लिप्त संसार की रक्षा करने का जब भगवान् ने निश्चय किया तो उसी समय धरा पर शरद्-ऋतु का आगमन हुआ।

दशम सर्ग

जो पेड़-पौधे वसन्त ऋतु के आगमन से हरे-भरे हो जाते हैं, शीत-ऋतु के आगमन से वे मुरझा भी जाते हैं—प्रकृति के इस व्यापार को देखकर भगवान् महावीर को संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान हो गया। फलस्वरूप उनके हृदय में वैराग्य-भावना का उदय होता है। सभी देवगण उनकी इच्छा का अनुमोदन करते हैं। तब शीघ्र ही भगवान् वन जाकर, वस्त्राभूषण त्याग कर, केशों को उखाड़ कर, मार्गशीर्ष मास के कृष्णपक्ष की दशमी तिथि को दैगम्बरी दीक्षा ले लेते हैं और मौन धारण कर लेते हैं। तत्पश्चात् उनके मन में मनःपर्यय[1] नामक ज्ञान का उदय होता है।

---

१. 'ईर्ष्यान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमे सति परमनोगतस्यार्थस्य स्फुटं परिच्छेदकं ज्ञानं मनःपर्यायः।'
(ईर्ष्या आदि विघ्न रूप ज्ञानावरण के नष्ट या शान्त हो जाने पर दूसरे व्यक्ति के हृदय में स्थित तत्त्व को स्पष्ट रूप से व्याप्त करने वाला ज्ञान मनःपर्याय है।)
—'सर्वदर्शनसंग्रह' के 'आर्हत दर्शन' से।

उन्होंने अन्य धर्मानुयायियों के अतिरिक्त अपना स्वतन्त्र मार्ग चुना। अपना 'वीर'...नामक सार्थक करने के लिए तपश्चरण के समय बड़ी-बड़ी विपत्तियों का सामना किया और सब पर विजय प्राप्त की।

एकादश सर्ग

एक दिन भगवान् महावीर ने ध्यान करते समय अपना सम्पूर्ण पूर्ववृत्तान्त जान लिया। सबसे पहले वह पुरुरवा नाम के भील थे। तत्पश्चात् आदितीर्थंकर ऋषभदेव के पौत्र मरीचि के रूप में उन्होंने जन्म ग्रहण किया। मरीचि ही स्वर्ग का देव बना। फिर ब्राह्मण योनि में जन्मा। वह ब्राह्मण अनेक कुयोनियों में जन्म लेता हुआ एक बार शाण्डिल्य ब्राह्मण और उसकी पाराशरिका नाम की स्त्री का स्थावर नामक पुत्र हुआ। प्रव्रज्या के फलस्वरूप उन्होंने माहेन्द्र स्वर्ग के देवत्व का उपभोग किया। तत्पश्चात् राजगृह नगर में विश्वभूति और उसकी जैनी नामक स्त्री का विश्वनन्दी नामक पुत्र हुआ। तपस्या करने पर विश्वनन्दी महाशुक्र नामक स्वर्ग में गया। तत्पश्चात् विश्वनन्दी पोदनपुर के राजा प्रजापति और रानी मृगावती का त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ। इसके बाद विश्वनन्दी को रौरव नरक में जाना पड़ा। इसके बाद उसे सिंह की योनि प्राप्त हुई। यह सिंह मरकर नरक गया। फिर सिंह के रूप में जन्मा। हिंसायुक्त स्वभाव वाले उस सिंह को किसी मुनिराज ने उसके पूर्वजन्मों का वृत्तान्त बता दिया। सिंहयोनि के पश्चात् वह मृतभोजी देव हुआ। इस देव ने कनकपुर के राजा कनक के पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया। मुनिवेश धारण करने के पश्चात् यह राजकुमार लान्तव स्वर्ग में पहुंचा। फिर इस देव ने साकेत नगरी में राजा वज्रसेण और शीलवती रानी के पुत्र-रूप में जन्म ग्रहण किया। अन्त में तपस्या करते हुए महाशुक्र स्वर्ग को गया। पुनः पुष्कल देश की पुण्डरीकिणी पुरी के सुमित्र राजा और सुव्रता रानी का प्रियमित्र नामक राजकुमार हुआ। अन्त में तपस्या के फलस्वरूप वह सहस्रार स्वर्ग में जन्मा। पुनः पुष्कल देश की छत्रपुरी नगरी के राजा अभिनन्दन और रानी वीरमती का नन्द नामक पुत्र हुआ। इसी जन्म में दैगम्बरी-शिक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग का इन्द्र बना। उसी इन्द्र ने अब इस कुण्डनपुरी में राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी के वर्धमान नामक राजकुमार के रूप में जन्म लिया है।

अपने इन पूर्वजन्मों के वृत्तान्त को महावीर ने स्वयं किए पाप का फल बताया। उन्होंने कुटुम्ब से असहयोग एवं क्रोध, मत्सर आदि के त्याग पर बल दिया और सत्याग्रह का पालन करने के लिए कहा।

द्वादश सर्ग

आत्मतत्व का चिन्तन करते हुए महावीर भगवान् ग्रीष्म ऋतु में पर्वत-शिखर पर, वर्षा-ऋतु में वृक्षों के नीचे और शीतकाल में चौराहे के ऊपर बैठे। उन्होंने

विचार किया कि पीड़ा आत्मा को नहीं, ज्ञान-रहित शरीर को कष्ट पहुँचाती है। समय-समय पर भगवान् के ऐकमासिक और चातुर्मासिक उपवास भी चल रहे थे आत्मतत्त्व को जानकर, संसार को पापपंक से दूर करने के लिए, ग्रीष्म ऋतु के वैशाख मास की शुक्ला दशमी तिथि को भगवान् ने केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इस समय उनके चार मुख सुशोभित होने लगे। उनके शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ना बन्द हो गया। उनके अन्दर सभी विद्याओं का प्रवेश हो गया। इसी हर्षमय वातावरण में इन्द्र ने समवसरण नामक सभामण्डप का निर्माण किया। इसी समवसरण सभामण्डप में महावीर भगवान् ने मुक्तिमार्ग का उपदेश दिया।

त्रयोदश सर्ग

समवसरण सभा के मध्य गन्धकुटी में स्थित सिंहासन पर भगवान् महावीर अवस्थित थे। उस समय उनका मुखमण्डल अत्यन्त तेजस्वी लग रहा था। उनके शिर पर छत्रत्रय सुशोभित था। उस समय देवगण दुन्दुभि बजा रहे थे और भगवान् महावीर अपनी पवित्र वाणी से सबके कर्णकुहरों को अभिषिक्त कर रहे थे।

भगवान् के इस दिव्य ऐश्वर्य से प्रभावित, वेद-वेदांग का ज्ञाता इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण वहाँ आया। उसके मन में प्रभु का वैभव देखकर आश्चर्य हुआ। अपनी अज्ञानता के कारण वह मन ही मन तर्क-वितर्क करने लगा। अन्त में, वह बोला—'हे देव मुझे सत्य ज्ञान कराने की कृपा करो—और ऐसा कहकर वह उनके चरणों में गिर पड़ा।

भगवान् ने आषाढ़ को गुरुपूर्णिमा के दिन उसे सत्य, अहिंसा और त्याग का उपदेश दिया।

चतुर्दश सर्ग

भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर हुए—गौतम इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति आर्यव्यक्त सुधर्म, मण्डिक, मौर्यपुत्र, अकम्पित वीर, अचल, मेतार्य उपान्त्य श्रेष्ठ और प्रभास। इन सभी ने भगवान् के सन्देश का प्रसार किया। ये सभी गणधर अपनी शिष्य-परम्परा के साथ भगवान् महावीर के पास पहुँचे। भगवान् ने सबको उपदेश दिया एवं गौतम इन्द्रभूति के मन में उठ रहे सन्देहों का शमन किया। भगवान् से आत्मतत्त्व के उपदेश को सुनकर इन्द्रभूति बहुत प्रभावित हुए।

तत्पश्चात् भगवान् महावीर ने उन्हें ब्राह्मण के गुणों का ज्ञान कराया। भगवान् के पावन-वचनों से इन्द्रभूति का सारा कल्मष धुल गया। सभी गणधर-परिवारों का कल्याण हुआ। गणधरों की इस आध्यात्मिक उन्नति को जानकर अन्य लोग भी महावीर भगवान् की शरण में आने लगे। उस समवसरण सभा में सभी लोग पारस्परिक विरोध को भूलकर आत्मतत्त्व का चिन्तन करने में लीन हो गए।

पंचदश सर्ग

समवसरण में उपस्थित सभी व्यक्तियों ने भगवान् महावीर के उपदेश को अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार ग्रहण किया। किन्तु गौतम इन्द्रभूति ने भगवान् की दिव्यवाणी को विशेषरूप से समझा। भगवान् के दिव्य वचनों को, उनके गणधरों ने प्रचार-प्रसार हेतु अनूदित किया। भगवान् का शिष्यत्व राजवर्ग के लोगों ने ही नहीं ग्रहण किया, वरन् जन-सामान्य भी इस दिशा में पीछे नहीं रहा। जिस देश के राजपुरुष जैनधर्म को स्वीकार करते थे, वहाँ की जनता भी अपने शासकों का अनुसरण करती थी। तत्कालीन जैन-मतावलम्बियों ने जैन-धर्म को तो स्वीकार किया ही, साथ ही उन्होंने जिनालयों एवं जिनाश्रमों का निर्माण करने-करवाने में भी योगदान दिया तथा जैन साधुओं को भी यथाशक्ति सम्मान दिया। जैनधर्म को स्वीकार न करने वालों ने भी जैनधर्म के मूल सिद्धान्त 'अहिंसा परमो धर्मः' का ग्रहण किया।। इस प्रकार वीरभगवान् द्वारा प्रवर्तित जैनधर्म ब्रह्माण्ड के दिग्-दिगन्तों में विस्तार पाने लगा।

षोडश सर्ग

इस सर्ग में महाकवि ने महावीर भगवान् के समाजोपयोगी विचारों को अंकित किया है। उनका लिखना है कि महाबीर भगवान् "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्" के सिद्धान्त को मूर्त्तरूप में देखना चाहते थे। वह पूर्ण अहिंसा, परोपकार, इन्द्रिय-संयम आदि गुणों की सर्वत्र व्यापकता चाहते थे।

सप्तदश सर्ग

भगवान् महावीर का उपदेश हुआ करता था कि इस धरा पर ईश्वर की ओर से सबको समान अधिकार प्राप्त है और कोई किसी से बड़ा या छोटा नहीं है। संसार परिवर्तनशील है। जिस वस्तु का स्वरूप हम जैसा आज देखते हैं, वैसा दूसरे समय में नहीं रहता। अतएव मानवमात्र का सम्मान करके, आत्मोत्थान के मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिए। दूसरों के दोष-दर्शन के समय मौन धारण करना चाहिए; पर उनके गुणों को ईर्ष्यारहित होकर अपनाना चाहिए। विपत्ति के समय धैर्य नहीं खोना चाहिए। पुरुष को अपने ज्ञान और धन के प्रति घमण्ड नहीं करना चाहिए। उसे काम-क्रोध-लोभ-मोह से दूर ही रहना चाहिए। समाज में वर्णव्यवस्था पुरुष के कर्मानुसार होनी चाहिए, जन्मानुसार नहीं। मनुष्य का आचरण ही समाज में पुरुष की स्थिति का निर्धारक हो। पुरुष को आत्म-विश्वासी, सत्यनिष्ठ, दृढ़, निर्भीक एवं पापरहित मन वाला होना चाहिए। संसार के द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त करने वाला पुरुष जितेन्द्रिय होकर जिन कहलाता है। उसका अपनी स्थिति के अनुसार शुभाचरण ही 'जैनधर्म' के नाम से प्रसिद्ध है।

अष्टादश सर्ग

इस प्रकार भव-दुःखों से पीड़ित पुरुषों को कष्ट से बचाने के अनेक उपाय

भगवान् महावीर ने बताये हैं। उन्होंने संसार की गति का नियन्ता ईश्वर को न मानकर, समय को माना है। समय ही बलवती शक्ति है जो राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है।

समय के प्रभाव से जब सत्ययुग त्रेतायुग में परिणत हुआ, तो मानव को जीवन-यापन की वे सब सुविधाएं उस प्रकार प्राप्त नहीं होती थीं जो कि सत्ययुग में होती थीं। फलस्वरूप समाज में अव्यवस्था फैल रही थी। इस अव्यवस्था को नियन्त्रित करने के लिए धरा पर चौदह कुलकरों ने जन्म लिया जिनमें नाभिराज प्रथम थे। इनकी स्त्री का नाम मरुदेवी था। इन्होंने आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव को पुत्र रूप में प्राप्त किया।

भगवान् ऋषभदेव ने अनेक प्रकार से लोगों का कष्ट दूर किया। उन्हें उपयुक्त जीवन-यापन का उपदेश दिया। गृहस्थ-धर्म का पालन करने के पश्चात् ऋषभदेव ने संन्यास ग्रहण किया और लोगों को धर्म के प्रति प्रेरित किया।

ऋषभदेव के पश्चात् द्वापर-युग में अजितनाथ आदि तेईस तीर्थंकर और भी हुए जिन्होंने ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का ही प्रचार-प्रसार किया।

एकोनविंश सर्ग

इस धर्म में बताया गया है कि कोई भी पदार्थ उत्पन्न या विनष्ट नहीं होता, अपितु नित्य नवीन रूप धारण कर परिवर्तित होता रहता है। सभी पदार्थ अनादिकाल से अपने कारणों से उत्पन्न होते चले आ रहे हैं; इनकी उत्पत्ति का कारण ईश्वर नहीं है।

विंशतितम सर्ग

इस सर्ग का सारांश यह है कि भगवान् महावीर ने प्रत्यक्ष-परोक्ष, स्थूल-सूक्ष्म सभी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसलिए वह सर्वज्ञ कहे जाते हैं। मनुष्यों को सर्वज्ञता प्राप्त करने के लिए महावीर द्वारा प्रचलित 'स्याद्वाद' के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

एकविंश सर्ग

शरद्-ऋतु की वेला में सर्ववेत्ता भगवान् महावीर ने कार्तिक मास के कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को एकान्तवास किया और रात्रि के अन्तिम समय में, पावानगर के उपवन में उन्होंने अपना पार्थिव शरीर त्यागकर शाश्वत मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान् महावीर के मोक्ष प्राप्त कर लेने पर उनके प्रधान शिष्य इन्द्रभूति को उनका स्थान प्राप्त हुआ।

द्वाविंश सर्ग

भगवान् महावीर के मोक्ष प्राप्त कर लेने पर उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म की दशा पूर्ववत् न रही। जैन-धर्म की, 'दिगम्बर-सम्प्रदाय' और 'श्वेताम्बर-सम्प्रदाय' नाम से दो धाराएं हो गईं।

कालदोष के कारण जैनमतावलम्बी लोग भी महावीर के उपदेश का यथोचित रूप मे पालन नहीं कर सके। उनमें अनेक सम्प्रदाय तथा उपसम्प्रदाय बनने लगे। जिन बुराइयों से बचने के लिए भगवान् महावीर ने नवीन मार्ग चलाया था, वे बुराइयाँ जैनियों में ही पुनः प्रकट होने लगीं। जैनधर्म का संचालन जैनधर्मी राजवर्ग के हाथों से निकलकर वैश्य क्षत्रियों के वर्ग के हाथों में आ गया। परिणामस्वरूप जैनधर्म वणिकवृत्ति से प्रभावित हो गया।

इतना होने पर भी यह नहीं समझना चाहिए कि जितेन्द्रिय जैनमतावलम्बियों का पृथ्वी पर सर्वथा अभाव हो गया है। आज भी अनेक जितेन्द्रिय महापुरुष हैं; किन्तु अज्ञानतावश हम उन्हें जान नहीं पाते हैं।

अन्त में दिव्यगुणों से विभूषित तथा इस महाकाव्य के चरितनायक भगवान् महावीर को हम प्रणाम करते हैं; और हमारी (महाकवि की) हार्दिक इच्छा है कि उनकी कीर्त्ति धरा पर सदा बनी रहे।

सुदर्शनोदय महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार

प्रथम सर्ग

भारतवर्ष में अङ्ग नामक एक देश है, जो प्राचीन समय में अपने अतुलित वैभव के कारण लोकविश्रुत था। इसी देश में एक नगरी थी—चम्पापुरी; जिसमें आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर के समय तेजस्वी, परमप्रतापी एवं प्रजावत्सल धात्रीवाहन नामक राजा का शासन था। उस राजा की अत्यन्त रूपवती किन्तु कुटिल अभयमती नाम वाली एक रानी थी।

द्वितीय सर्ग

उस समय चम्पापुरी में विचारशील, दानी, निरभिमानी, सम्पत्तिशाली, कलावान्, निर्दोष एवं वैश्यों में सर्वश्रेष्ठ वृषभदास नामक एक सेठ भी रहता था। उसकी पत्नी सुन्दरी, सुकोमल, अतिथिसत्कारपरायणा, सदाचारिणी, मृदुभाषिणी एवं जिनमति नाम वाली थी।

एकसमय जिनमति ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में महापुरुषोत्पत्ति सूचक स्वप्न देखे। प्रातःकाल होते ही वह अपने पति के पास जाकर बोली कि आज रात मैंने हर्षवर्द्धक स्वप्नावली देखी है। अब उसका अभिप्राय जानने के लिए मैं आपसे निवेदन करती हूँ। प्रथम स्वप्न में मैंने सुमेरु पर्वत, द्वितीय स्वप्न में कल्पवृक्ष, तृतीय स्वप्न में सागर, चतुर्थ स्वप्न में निर्धूम अग्नि और पंचम स्वप्न में आकाश में घूमते हुये विमान को देखा है।

सेठानी की बात सुनकर सेठ ने कहा कि तुमने जिन स्वप्नों को देखा है उनका अभिप्राय कोई भी साधारण मनुष्य नहीं जान सकता। अतएव हम दोनों को स्वप्नावली का ठीक-ठीक अभिप्राय जानने के लिए योगिराज के पास चलना चाहिए।

तत्पश्चात् वे दोनों ही जैन-मन्दिर में पूजन कर योगिराज के दर्शन करने के लिए गए। मुनिराज के पास जाकर सेठ और सेठानी ने प्रणाम निवेदन किया और

मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया। तदनन्तर सेठ ने मुनि से निवेदन किया कि मेरी पत्नी जिनमति ने आज रात्रि में सुमेरु पर्वत, कल्पवृक्ष, सागर, निर्धूम-अग्नि और आकाशचारी विमान को क्रमशः पाँच स्वप्नों में देखा है। हम इस स्वप्नावली का फल जानने की इच्छा से आपके पास आये हैं। कृपया आप हमें इन स्वप्नों का अभिप्राय समझा दीजिए। सेठ जी की बात सुनकर मुनिराज बोले कि तुम्हारी पत्नी ने जो पाँच स्वप्न देखे हैं उनका तात्पर्य है कि यह योग्य पुत्र को जन्म देगी। स्वप्न में देखे गए सुमेरु, कल्पवृक्ष, सागर, निर्धूम-अग्नि और विमान से क्रमशः तुम्हारे पुत्र का धैर्य, दानशीलता, रत्नबहुलता, कर्मों का नाश और देवों की प्रियपात्रता सूचित होती है। मुनि की वाणी सुनकर दोनों अति प्रसन्न हुए। तदनन्तर यथासमय जिनमति ने गर्भधारण किया, जिससे उसका सौन्दर्य प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगा। सेठ वृषभदास अपनी पत्नी को गर्भवती जानकर बहुत प्रसन्न हुआ और यत्नपूर्वक उसका संरक्षण करने लगा।

तृतीय सर्ग

समय आने पर एक दिन शुभमुहूर्त में जिनमति ने भूमण्डल को सुशोभित करने वाले पुत्र को जन्म दिया। सेवक से पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाकर वृषभदास अत्यधिक हर्षित हुआ। हर्षातिशय के कारण उसने जिनेन्द्रदेव का पूजन किया और अत्यधिक दान दिया। घर में चारों ओर वृद्ध महिलाओं ने मंगल दीप प्रज्ज्वलित किये। वृषभदास ने प्रसूतिकक्ष में पहुँचकर अपनी पत्नी और पुत्र पर गन्धोदक छिड़का।

जिनदर्शन के फलस्वरूप पुत्रप्राप्ति को स्वीकार करके सेठ ने अपने सुन्दर पुत्र का नाम सुदर्शन रखा। बालक अपनी मनोहर चेष्टाओं से घर के सभी लोगों के हर्ष में वृद्धि करने लगा।

शैशवावस्था समाप्त होने पर कुमार सदर्शन को विद्याध्ययन के लिए गुरु के पास भेजा गया। शीघ्र ही माँ शारदा के अनुग्रह से वह सभी विद्याओं में पारंगत हो गया।

धीरे-धीरे सुदर्शन युवा होने लगा। उसका सौन्दर्य प्रतिदिन बढ़ने लगा।

एक दिन सागरदत्त नामक वैश्य की पुत्री मनोरमा और सुदर्शन ने जिन-मन्दिर में पूजन करते समय एक दूसरे को देखा। तभी से दोनों परस्पर प्रेम करने लगे। कुछ दिनों के बीतने पर एक दिन सुदर्शन से उसके मित्रों ने उसकी उदासीनता का कारण पूँछा तो उसने उसे उच्चस्वर से गाने के फलस्वरूप हुई थकान कहकर टालना चाहा। किन्तु चतुर मित्र उसकी मनोव्यथा को समझ गये। धीरे-धीरे यह वृत्तान्त सेठ वृषभदास के कानों में भी पड़ा।

सेठ वृषभदास सुदर्शन के विषय में चिन्ता कर ही रहा था कि वहाँ मनोरमा के पिता सेठ सागरदत्त आ पहुँचे। वृषभदास ने उनका यथोचित सत्कार किया और

आने का कारण पूछा। सागरदत्त ने वहाँ आने का अपना प्रयोजन बताया कि वह सुदर्शन के साथ अपनी पुत्री मनोरमा का विवाह करना चाहता है। वृषभदास ने हर्षित मन से विवाह की स्वीकृति दे दी और एक दिन शुभ-वेला में सुदर्शन और मनोरमा का विवाह हो गया।

चतुर्थ सर्ग

एक बार उस नगर के उपवन में एक मुनि आये। चम्पापुरी के नर-नारी उनके दर्शन करने के लिए गये। सेठ वृषभदास भी अपने परिवार सहित गया। मुनि को प्रणाम करके उसने उनसे धर्म का स्वरूप पूछा। मुनि ने आशीर्वाद देकर धर्म एवं अधर्म का स्वरूप और भेद समझाया। मुनि की अमृतवर्षिणी वाणी को सुनकर सेठ वृषभदास का सारा मोह समाप्त हो गया और वह सब कुछ त्यागकर मुनि बन गया।

मुनि की वाणी और पिता के आचरण से प्रभावित सुदर्शन ने भी मुनिराज के समक्ष मुनि बनने की इच्छा प्रकट की। किन्तु उसने यह भी निवेदन किया कि मेरे हृदय में अपनी पत्नी मनोरमा के लिए अतिशय प्रीति है, जो मुझे मुनि बनने में बाधिका प्रतीत होती है। अतएव आप इससे भी मुक्त होने का उपाय बतायें। सुदर्शन की बात सुनकर मुनिराज ने कहा कि हे सुदर्शन, तुम दोनों के अतिशय प्रेम का कारण तुम दोनों का पूर्वजन्मकालीन संस्कार है। क्योंकि पहले जन्म में तुम और मनोरमा भील-भीलनी थे। वह भील अगले जन्म में कुत्ता हुआ। एक जिनालय में मरने के पश्चात् वही कुत्ता एक ग्वाले के यहाँ पुत्र रूप में जन्मा। एक बार उस ग्वाले के पुत्र ने एक सरोवर से एक सहस्रदल कमल तोड़ा। उसी समय आकाशवाणी हुई कि इस कमल का उपभोग तुम मत करो, तुम इसे ले जाकर किसी महापुरुष को प्रदान कर दो; जिसे सुनकर वह बालक इन्हीं सेठ वृषभदास को, जो इस समय तुम्हारे पिता हैं, कमल भेंट करने की इच्छा से इनके पास आया। किन्तु इन्होंने वह कमल राजा को समर्पित करना चाहा और उस बालक को लेकर यह राजा के पास पहुँचे। पर सम्पूर्ण सन्दर्भ जानने पर राजा ने वह कमल जिन भगवान् की सेवा में समर्पित करना चाहा और सबको लेकर वह जिन-मन्दिर में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर राजा ने बड़ी धूम धाम के साथ वह कमलपुष्प ग्वाल बालक के ही हाथों द्वारा भगवान् जिनेन्द्र की सेवा में समर्पित कर दिया। इस घटना से प्रभावित होकर सेठ वृषभदास ने उस ग्वाल-बालक को योग्य समझकर अपने घर का सेवक बना लिया।

एक दिन वह गोपबालक जंगल से सूखी लकड़ियाँ काट कर घर लौट रहा था। सर्दी का समय था। हिमपात हो रहा था। मार्ग में उसने एक साधु के दर्शन किये, जो एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ थे। उनकी स्थिति को दयनीय देखकर उसने विचार किया कि निश्चय ही इन्हें शीत सता रहा होगा। अतः उसने उनके

सामने आग जला दी और स्वयं भी बैठ गया। वह सारी रात आग जलाता हुआ वहीं बैठा रहा। प्रातः काल होने पर साधु की समाधि भंग हुई। उन्होंने बालक को देखा और प्रसन्न होकर 'नमोऽर्हते' मन्त्र का उपदेश दिया। साथ ही यह भी आदेश दिया कि वह प्रत्येक कार्य के पूर्व इस मन्त्र का स्मरण कर लिया करे। बालक मुनि को प्रणाम करके घर लौट आया और उनकी आज्ञा के अनुसार अपना जीवन-यापन करने लगा।

एक दिन वह गाय-भैंसों को चराने के लिए जंगल गया हुआ था। वहाँ एक भैंस सरोवर में घुस गई। उसको निकालने के लिए वह मंत्रस्मरणपूर्वक सरोवर में कूदा। सरोवर में एक लकड़ी की नोक से चोट लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उस महामन्त्र के प्रभाव से वही बालक सेठ वृषभदास के घर में पुत्र बन कर अर्थात् तुम्हारे रूप में उत्पन्न हुआ है।

वह भीलनी भी मरकर भैंस हुई। तत्पश्चात् धोबिन बनी। उस धोबिन ने हिंसा एवं सर्वपरिग्रह का परित्याग करके आंशिक व्रत को अपना लिया। अपने निर्मल-स्वभाव, सत्यवादिता इत्यादि गुणों के कारण वह पुनः तुम्हारी पत्नी हुई है। अतः इस समय तुम दोनों धर्मानुकूल आचरण करते हुये सुखपूर्वक अपना जीवन बिताओ।

मुनिराज की इस प्रकार वाणी सुनकर सुदर्शन और मनोरमा, दोनों ही, मुनि द्वारा बताये गये नियमों का पालन करते हुये सुख पूर्वक जीवन-यापन करने लगे।

पंचम सर्ग

एक दिन प्रातः काल सुदर्शन जिनदेव का पूजन करके लौट रहा था। मार्ग में कपिला ब्राह्मणी ने उसको देखा। सुदर्शन के तेजस्वी स्वरूप को देखकर उसका मन स्थिर न रह सका। अतएव उसने सुदर्शन को छल से बुलाने का निश्चय किया। उसकी दासी सुदर्शन के समीप गई और उससे बोली कि हे महापुरुष! तुम यहाँ निश्चिन्त हो; लेकिन तुम्हारा मित्र अस्वस्थ हो रहा है।

दासी की बात सुनते ही मित्र को देखने की इच्छा से सुदर्शन दासी के साथ कपिला ब्राह्मणी के घर पहुँचा। दासी के दिशा-निर्देश से वह भवन के उस कक्ष में गया जहाँ कपिला ब्राह्मणी लेटी थी।

सुदर्शन के कुशल समाचार पूँछने पर कपिला ने रतिचेष्टायुक्त मधुरवाणी में स्वागत करते हुये उसका हाथ पकड़ लिया। सुदर्शन अपने पुरुष-मित्र के स्थान पर एक रतिकामा स्त्री को देखकर बहुत घबराया। किन्तु उसने अपने को नपुंसक बताकर कपिला ब्राह्मणी से पीछा छुड़ाया और शीघ्रता से घर लौट आया।

षष्ठ सर्ग

जन-जन के मन को लुभाने वाले ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ। चम्पापुरी के सभी निवासी प्राकृतिक सुषमा और कोयल के पंचम स्वर से आकृष्ट

होकर वनविहार हेतु एक उद्यान को प्रस्थित हुए। उद्यान में रानी अभयमती भी पहुँची। उसी समय सुदर्शन की पत्नी मनोरमा भी अपने पुत्र को लेकर उद्यान में आई। तब उसको देखकर वहाँ पर आई हुई कपिला ब्राह्मणी ने रानी से उसका परिचय पूँछा।

रानी से सुदर्शन को पुत्रवान् जानकर कपिला ने कहा कि सुदर्शन तो नपुंसक है; यह पुत्र उसका कैसे हो सकता है ? पर जब रानी को कपिला की बात का विश्वास नहीं हुआ तो उसने अपने साथ घटित पूर्ण वृत्तान्त रानी को कह सुनाया, जिसे सुनकर रानी ने कहा कि कपिला, सुदर्शन ने झूठ कह कर तुझे धोखा दिया है। इस पर कपिला ने रानी को ही चुनौती दे दी कि वही सुदर्शन को वश में कर दिखाए।

कपिला की चुनौती ने रानी के मन में सुदर्शन के प्रति कामभाव जागरित कर दिया। फलस्वरूप वह सर्वत्र ही कल्पना में सुदर्शन के ही दर्शन करने लगी और निरन्तर कृश होती गई। रानी की दशा देखकर दासी एक दिन पूँछ बैठी तो रानी ने अपनी मनोव्यथा का सही-सही कारण उसे बता दिया। दासी ने रानी को समझाया कि उसे राजा के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष से कामजन्य स्नेह नहीं करना चाहिए। पर रानी के ऊपर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। वह बोली कि तू मेरे दुःख को नहीं समझ रही है। स्त्री तो भोग्या होती है। उसे एकान्तता पर नहीं, वरन् अनेकान्तता पर ही विश्वास रखना चाहिए। और अवसर पाते ही बलवान् पुरुष के साथ रमण कर लेना चाहिए। अतः तू उपदेश बन्द कर और सुदर्शन को यहाँ लाने का प्रबन्ध कर।

रानी की ऐसी हठपूर्ण बातों को सुनकर दासी ने सोचा कि यह मेरी स्वामिनी हैं और मैं इनकी दासी हूँ। अतः इनको उपदेश देने में मैं समर्थ न हो सकूँगी। फिर सेवक को तो स्वामी की आज्ञा का हरसंभव उपाय से पालन करना ही उचित है। उसने मन में विचार किया कि सुदर्शन अष्टमी एवं चतुर्दशी की रात्रि में श्मशान में प्रतिमाव्रत में ध्यानशील होते हैं। अतः इस अवस्था में उन्हें पूजा हेतु मिट्टी के पुतले के बहाने रनिवास में लाया जा सकता है।

सप्तम सर्ग

रानी की दासी ने मनुष्य की आकृति वाला मिट्टी का एक पुतला बनवाया, रात्रि हो जाने पर उसे वस्त्र से अच्छी तरह ढंककर पीठ पर लादकर अन्तःपुर में प्रवेश करने का ज्योंही प्रयत्न किया त्योंही द्वारपाल ने उसे बीच में ही रोक दिया। तब दासी ने द्वारपाल से निवेदन किया कि रानी अभयमती एक व्रत कर रही है, जिसमें उन्हें मनुष्य के पुतले को पूजना है। यह पुतला मैं इसी उद्देश्य से भीतर ले जा रही हूं। अतः मुझे जाने दो। द्वारपाल ने दासी की एक न सुनी और अन्दर आती हुई दासी को धक्का देकर बाहर किया तो उसकी पीठ पर रखा हुआ 'पुतला'

गिरकर टूट गया। इस पर दासी ने जोर-जोर से रोना और द्वारपाल को अपशब्द कहना प्रारम्भ कर दिया। द्वारपाल भी रानी के भय के कारण दासी से क्षमायाचना करने लगा और उसने उसे अन्दर जाने की अनुमति दे दी। इस प्रकार द्वारपाल की ओर से निश्चिन्त होकर चतुरा दासी सुदर्शन को राजमहल में पहुंचाने के लिए प्रतिदिन पुतले लाने लगी।

एक दिन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में सुदर्शन श्मशान में ध्यानावस्था में बैठा था। दासी वहाँ पहुँच गई और सुदर्शन को अकेला पाकर अत्यन्त हर्षित हुई। पहले तो उसने सुदर्शन को रानी के सहवास हेतु प्रेरित एवं उत्तेजित किया; पर जब सुदर्शन की ओर से कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं हुई तो उसने उन्हें उसी ध्यान-दशा में अपनी पीठ पर लाद लिया और रोज की भाँति अन्तःपुर में पहुँचकर रानी के पलंग पर उन्हें बिठा दिया।

सुदर्शन को अपने समीप पाकर रानी बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने अपने वचनों से सुदर्शन को उत्तेजित करने का बहुत प्रयत्न किया। अनेक प्रकार की स्पष्ट काम-चेष्टाएँ भी कीं, जिनसे सुदर्शन का ध्यान तो टूटा पर वैराग्यभावना और भी अधिक दृढ़ हो गई। फलस्वरूप उनके ऊपर रानी की कामचेष्टाओं का कुछ भी असर नहीं हुआ।

अपनी चेष्टाओं को निष्फल देखकर अत्यन्त निराश रानी ने दासी से कहा कि इसे बाहर कर दो। पर दासी ने समझाया कि इस प्रकार इसे बाहर ले जाने में भेद खुल जाने का भय है। अतः इसके परित्याग के लिए 'त्रियाचरित' का प्रयोग उचित होगा। यह सुनकर रानी जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगी कि अरे द्वारपालो दौड़ो, जल्दी आओ, कोई दुष्ट यहाँ घुस आता है, और मुझे सताना चाहता है; जल्दी आओ आदि आदि।

रानी की पुकार को सुनकर द्वारपाल शीघ्रता से अन्दर आये और सुदर्शन को पकड़कर राजा के सामने ले गये। सेवकों के मुंह से समस्त वृत्तान्त सुनकर राजा ने सुदर्शन का मुंह देखना भी पसन्द नहीं किया और उसे चाण्डाल के हाथों सौंप दिया।

अष्टम सर्ग

सुदर्शन सम्बन्धी उक्त घटना जब नगरवासियों के कानों में पड़ी तो लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। कुछ लोग कहने लगे कि यह तो बड़ी रहस्यमय घटना है; श्मशान में स्थित सुदर्शन अन्तःपुर में कैसे प्रविष्ट हुआ? कुछ लोगों ने कहा कि सुदर्शन ऐन्द्रजालिक है तथा कुछ लोगों ने कहा कि यह राजा का षड्यन्त्र प्रतीत होता है।

सुदर्शन को जब चाण्डाल के यहाँ पहुँचा दिया गया, तब राजा द्वारा चाण्डाल को, सुदर्शन का वध करने का आदेश हुआ। पर चाण्डाल ने जैसे ही

सुदर्शन के गले में तलवार का प्रहार किया, वैसे ही वह प्रहार, हार बनकर सुदर्शन के गले में सुशोभित होने लगा।

यह वृत्तान्त जब राजा को ज्ञात हुआ तो वह क्रुद्ध होकर स्वयं ही सुदर्शन को मारने के लिये उद्यत हो गया। लेकिन जैसे ही उसने सुदर्शन को मारने के लिए तलवार हाथ में ली, वैसे ही आकाशवाणी हुई कि—'यह अपनी स्त्री मनोरमा से ही परमसन्तुष्ट, जितेन्द्रिय तथा सब प्रकार से निर्दोष है। दोषी तो तुम्हारे ही घर का है। अतएव उचित प्रकार से दोषी का निरीक्षण करो।

इस आकाशवाणी को सुनते ही राजा का सम्पूर्ण मोह नष्ट हो गया। वह सुदर्शन की भाँति-भाँति से स्तुति करके, उसके चरण पकड़कर, अपने स्थान पर उसी से राज्य करने का निवेदन करने लगा।

राजा की बात को सुनकर सुदर्शन ने कहा—'राजन् मेरे प्रति जो कुछ भी हुआ है, उसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह तो सब मेरे पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है। आप तो मुझ अपराधी को दण्ड ही दे रहे थे, जो आपके लिए उचित था। किन्तु मैं किसी को भी अपना शत्रु या मित्र नहीं समझता हूँ। इसलिए इस घटना का मुझपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। महारानी और आप तो मेरे माता-पिता हैं। अतः आपने मेरे साथ यथोचित व्यवहार किया है। मैं तो समझता हूँ कि प्रत्येक पुरुष को चाहिए कि वह मोक्षप्राप्ति हेतु धैर्य्ययुक्त होकर, मद-मात्सर्य का परित्याग करे। प्राणी स्वानुभूति विषयक सुख-दुःख का स्वयं उत्पादक है। अन्य कोई उसे न तो सुख देता है और न दुःख। अतएव मनुष्य को सुख-दुःख में एक सी अवस्था धारण करनी चाहिए। सुख आत्मा की अनुभूति का विषय है। वह राज्य प्राप्त करके नहीं मिल सकता। अतएव राज्य तो आप स्वयं करें। मुझे तो अब केवल मोक्ष की चिन्ता करनी है।

इस घटना के अनन्तर सुदर्शन ने वैराग्य लेने का निश्चय कर लिया। घर जाकर अपना यह निश्चय उसने मनोरमा को भी सुनाया। उसने विचार किया कि विष्णु और शंकर को भी डिगाने वाली, सज्जनता का विनाश करने वाली, पापोत्पादक इस सांसारिक माया का परित्याग करना ही चाहिए। मनोरमा ने उसकी इच्छा का समर्थन करते हुए स्वयं भी उसी के मार्ग का अनुसरण करने की इच्छा प्रकट कर दी।

मनोरमा के वचन सुनकर, सुदर्शन ने जिनालय में जाकर प्रसन्नतापूर्वक भजन-पूजन और भगवान् का अभिषेक किया और वहीं पर स्थित विमलवाहन नामके योगीश्वर के दर्शन किए। योगीश्वर को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, उनकी हार्दिक स्वर से स्तुति करके सुदर्शन वहीं दिगम्बर मुनि बन गया। मनोरमा ने भी सर्वपरिग्रह का परित्याग करके आर्यिका व्रत को अपना लिया।

वास्तविकता सामने आ जाने पर रानी अभयमती ने आत्महत्या कर ली। मर कर वह पाटलिपुत्र में 'व्यन्तरी'[1] देवी हो गई। रानी के आत्महत्या कर लेने पर पण्डिता दासी भी चम्पापुरी से भागकर पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध वेश्या,—देवदत्ता के पास पहुँची। उसने वेश्या को सारा हाल सुनाकर वेश्या से भी सुदर्शन को विचलित करने के लिए कहा।

नवम सर्ग

दिगम्बर मुनि हो जाने पर सुदर्शन घोर तपश्चरण करते हुए पाटलिपुत्र पहुँचे। वहाँ घूमते सुदर्शन को देखकर पण्डिता दासी ने देवदत्ता वेश्या को उकसाया। फलस्वरूप उस वेश्या ने सुदर्शन को अपने घर बुलवाया और अनेक प्रकार की काम चेष्टाओं से सुदर्शन को वश में करना चाहा। जब उसकी चेष्टायें व्यर्थ हुईं तो वह सुदर्शन से बोली कि—'इस अल्पवय में आपने यह व्रत क्यों अपनाया है? परलोक की चिन्ता तो वृद्धावस्था में की जा सकती है। इस समय इस सुन्दर शरीर का अनादर आप क्यों कर रहे हैं?

वेश्या के इन वचनों को सुनकर मुनिराज सुदर्शन बोले—'यह जो शरीर ऊपर से सुन्दर दिखाई देता है, वह अन्दर तो घृणित पदार्थों से ही भरा हुआ है। नाशवान् शरीर का सुख ही आत्मा का सुख नहीं है। आत्मा को सुख पहुँचाने के लिए शरीर के वशवर्ती नहीं रहना चाहिए। तुम्हारे द्वारा अंगीकृत यह मार्ग पर्वत के समान ऊंचा-नीचा है। तुम इन्द्रिय-विषयों में सुख मानती हो जबकि सुख आत्मा का गुण है, उसका इन्द्रिय विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है।'

अपने अनुरागयुक्त वचनों का विरागयुक्त उत्तर पाकर वेश्या सुदर्शन को अपनी शय्या पर ले गई और अपने हाव-भाव-तथा मधुर वचनों से सुदर्शन को विचलित करने का प्रयत्न करने लगी। किन्तु सुदर्शन के ऊपर उसकी उन उद्दाम काम चेष्टाओं का किंचिदपि प्रभाव नहीं पड़ा। इस प्रकार तीन दिन तक भाँति-भाँति के प्रयत्न करके जब देवदत्ता अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुई, तब वह आश्चर्यचकित होकर सुदर्शन की प्रशस्ति गाने लगी। उनकी जितेन्द्रियता, धीरता, नम्रता, दृढ़ता और सदाचार की प्रशंसा करती हुई वह बोली—'मोहान्धकार के कारण मैंने आपके प्रति जो अपराध किया है, उसे क्षमा करें और धर्मयुक्त वचनामृत से मेरा कल्याण करें।'

देवदत्ता के इन वचनों को सुनकर सुदर्शन ने उसे उपयुक्त आचरण का

---

१. (विशिष्टः अन्तरो यस्य—(स्त्रीलिङ्ग में—यस्याः)।) पिशाच, यक्ष आदि एक प्रकार का अतिप्राकृतिक प्राणी।—वामन शिवराम आप्टे कृत संस्कृत हिन्दी कोश—मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, १९६६—में पृ० ९८५ से

स्वरूप बताया और समझाया कि पुरुष को जितेन्द्रिय बनने के लिए निम्नलिखित एकादश नियमों का अवश्यमेव पालन करना चाहिए :—

(नं० एक) पुरुष को उत्तेजक, अभक्ष्य, अनुपसेव्य, त्रसबहुल पदार्थों को नहीं खाना चाहिए।

(नं० दो) अतिथिसत्कारपरायणता और सदाचार का पालन करना चाहिए।

(नं० तीन) आजीवन प्रभात, मध्याह्न और सायंकाल में भगवान् का स्मरण करना चाहिए।

(नं० चार) प्रत्येक पर्व में विधिसहित उपवास करना चाहिए।

(नं० पाँच) प्रत्येक पदार्थ को पकाकर खाना चाहिए।

(नं० छः) दिन में दो बार से ज्यादा भोजन नहीं करना चाहिए। हो सके तो एक बार ही करें। रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए।

(नं० सात) काम-सेवन का सर्वथा परित्याग करना चाहिए।

(नं० आठ) इन्द्रिय-विषयों पर नियन्त्रण पाकर आत्मिक गुणों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

(नं० नौ) शरीर और आत्मा की सत्ता पृथक्-पृथक् स्वीकार करके पूर्वोपार्जित धन इत्यादि का परित्याग करना चाहिए।

(नं० दश) सांसारिक-कार्यों से मन को हटाकर, सम्पूर्ण समय परमतत्त्व का चिन्तन करना चाहिए।

(नं० ग्यारह) अपने आचार की सिद्धि के लिए मन को लोक-मार्ग में नहीं लगाना चाहिए।

सुदर्शन से धर्म का स्वरूप जानकर और शुभाशीर्वाद पाकर, देवदत्ता का तो सारा मोह नष्ट हुआ ही, पण्डिता दासी का भी अज्ञान दूर हो गया। अतः वे दोनों ही सुदर्शन से दीक्षा लेकर 'आर्यिका' बन गईं।

देवदत्ता को उपदेश देकर सुदर्शन भी श्मशान में जाकर आत्मध्यान में लीन हो गए। एक दिन विहार करती हुई व्यन्तरी देवीरूपधारिणी, आत्मघातिनी रानी अभयमती ने सुदर्शन को देख लिया। वह क्रोध में भरकर उनसे अपशब्द कहने लगी। उसने सुदर्शन के साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया। किन्तु अपनी विनश्वर देह के ऊपर होने वाले अत्याचार की चिन्ता न करके वह अजर एवं अमर आत्मा के प्रति चिन्तन करने लगे। इस अवस्था में सुदर्शन का रहा-सहा भी राग-द्वेष समाप्त हो गया। तत्पश्चात् उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया और सभी बाह्य कर्मों के क्षीण हो जाने से उन्हें मोक्ष भी मिल गया।

प्रथम सर्ग

भारतवर्ष में श्रीपद्मखण्ड नामक एक नगर है। प्राचीनकाल में उस नगर में सुदत्त नाम का एक वैश्य निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम सुमित्रा था।

उन दोनों का सरल स्वभाव वाला भद्रमित्र नामक एक पुत्र हुआ। एक बार उसके मित्रों ने उसे समझाया कि वैश्यों को व्यावसायिक वृत्ति वाला होना चाहिए; अपनी आजीविका की चिन्ता पुरुष को स्वयं करनी चाहिए। अतएव जीवन-यापन हेतु, धनार्जन करने के लिए हमें रत्न-द्वीप जाना चाहिए। उन्हीं मित्रों में से एक मित्र ने इस सम्बन्ध में एक कथा भी सुनाई, जो इस प्रकार है :—

द्वितीय सर्ग

भारतवर्ष के मध्य में सुन्दर, उच्च-शिखरों वाला, विजयार्द्ध पर्वत है। पर्वत के उत्तर में भूमि को अलंकृत करने वाली अलका नाम की नगरी है।

एक समय उस नगरी में अत्यन्त यशस्वी, महाकच्छ नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम दामिनी था और पुत्री का नाम प्रियङ्गुश्री था। जब वह पुत्री युवती हुई तो राजा को उसके विवाह की चिन्ता हुई। एक ज्योतिषी ने बताया कि 'सुशील स्वभाव वाली प्रियङ्गुश्री का विवाह स्तम्बकगुच्छ के महादानी राजाधिराज ऐरावण के साथ होगा।

यह सुनकर महाकच्छ ने स्तबकगुच्छ नगरी के राजा ऐरावण की परीक्षा ली और अपनी पुत्री के लिए उसे योग्य समझकर, उससे अपनी कन्या के साथ विवाह करने का निवेदन किया। ऐरावण ने स्वीकृति दे दी और प्रियंगुश्री को स्तबकगुच्छ में लाने के लिए कहा।

राजा महाकच्छ प्रियङ्गुश्री को अलकापुरी से स्तबकगुच्छ ला रहा था, मार्ग में प्रियङ्गुश्री से विवाह करने के इच्छुक वज्रसेन नामक एक अन्य पुरुष से उसकी मुठभेड़ हो गई। यह बात ऐरावण के कानों में भी पहुँच गई। उसने शीघ्रता से आकर वज्रसेन को पराजित किया और प्रियङ्गुश्री के साथ विवाह कर लिया।

वज्रसेन ने निराश होकर, जिनदीक्षा लेकर, ऊपरी मन से तपस्या करनी शुरू कर दी। एक बार तपश्चरण के मध्य ही जब वह स्तबकगुच्छ नगर पहुंचा तो वहाँ के लोगों ने उसे डंडों से खूब पीटा। फलस्वरूप क्रोधित होकर वज्रसेन ने अपने बाँये कन्धे से निकले तैजस पुतले से सारे नगर को जला दिया। स्वयं भी जलकर भस्म हो गया और नरक पहुँचा।

अतएव वज्रसेन के समान दूसरों को मिली वस्तुओं पर अधिकार जमाने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

तृतीय सर्ग

मित्र द्वारा कथित कथा से भद्रमित्र बहुत प्रभावित हुआ। मित्रमण्डली को छोड़कर वह घर पहुँचा और दूसरे देश जाने के लिए पिता से आज्ञा माँगी।

पिता ने उत्तर दिया—'मेरी तो स्वयं की इतनी अधिक आय है कि तुम्हें धनार्जन करने की कोई आवश्यकता ही नहीं। फिर तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो, इसलिए तुम्हारा जाना मेरे लिए कष्टप्रद होगा।'

भद्रमित्र के बहुत आग्रह करने पर पिता ने कहा—'तुम्हारा जाना मैं तो फिर भी सहन कर लूंगा, पर तुम्हारी माता को वह कैसे सहन होगा ? पिता की बात सुनकर भद्रमित्र माता के समीप अनुमति प्राप्त करने के लिए गया। अपने एकमात्र पुत्र का विदेश जाना सुनकर पहले तो भद्रमित्र की माता विचलित हुई; किन्तु भद्रमित्र को दृढ़ विचार वाला जानकर माता को अनुमति देनी ही पड़ी।

माता-पिता से अनुमति पाकर भद्रमित्र अपने साथियों सहित रत्नद्वीप पहुँचा और वहाँ उसने सात रत्न प्राप्त किये। इसके पश्चात् भद्रमित्र सिंहपुर पहुँचा।

उस समय सिंहपुर में सिंहसेन राजा राज्य करता था। राजा की पत्नी का नाम था रामदत्ता। राजा के मंत्री का नाम श्रीभूति था, जिसने अपनी झूठी सत्यवादिता का समाचार चारों ओर फैला रखा था। उसने अपने गले में एक छुरी इसलिये बाँध रखी थी कि यदि कभी उसके मुंह से असत्य बात निकली तो वह उसी छुरी से आत्महत्या कर लेगा। अपने इस झूठे गुण के कारण ही राजा से उसने 'सत्यघोष' नाम भी पा लिया था।

सिंहपुर पहुँचकर भद्रमित्र का परिचय इसी सत्यघोष मन्त्री से हुआ। भद्रमित्र ने सत्यघोष को बहुत सा पुरस्कार देकर उससे अपने माता-पिता को सिंहपुर में ही बसाने की आज्ञा माँगी। सत्यघोष ने आज्ञा दे दी। भद्रमित्र अपने सातों रत्न सत्यघोष को सौंपकर माता-पिता को लेने चला गया।

सिंहपुर लौटकर भद्रमित्र ने सत्यघोष से अपने रत्न माँगे तो उसने यह स्वीकार ही नहीं किया कि भद्रमित्र उसे रत्न सौंप गया था। जब भद्रमित्र ने अनेक प्रकार से अपनी बात को प्रमाणित करने की चेष्टा की, तो पहरेदारों ने उसे पागल कहकर बाहर निकाल दिया। सत्यघोष के प्रभाव के कारण राजदरबार में भी किसी ने उसकी बात नहीं सुनी।

निराश होकर भद्रमित्र एक निश्चित समय पर, वृक्ष पर चढ़कर सत्यघोष की झूठी कीर्त्ति की निन्दा करता था और उसकी प्रतिष्ठा नष्ट होने का शाप देता था।

उसके विलाप को रानी ने भी सुना, तो राजा से उसने कहा कि यह पुरुष जो सत्यघोष की निन्दा करता है, उसका कारण पागलपन नहीं, अपितु सत्यघोष से सम्बन्धित कोई रहस्य है। अतएव रहस्योद्घाटन होना चाहिए। मैं वास्तविकता को जानना चाहती हूँ। इस काम की सिद्धि के लिए आप राजदरबार लगाकर वहीं बैठें।

राजा के जाने के बाद, अनायास ही उपस्थित हुए सत्यघोष को रानी ने आदरसहित शतरंज खेलने के लिए आमन्त्रित किया। अपनी बातों से उसे भुलावे में

में डालकर रानी ने उससे यज्ञोपवीत, छुरी और मुद्रिका तीनों वस्तुएं जीत लीं।

रानी ने दासी को बुलाकर तीनों वस्तुएं उसे सौंपकर आदेश दिया कि मन्त्री के घर जाकर मन्त्री की पत्नी को ये तीनों वस्तुएं सौंपकर भद्रमित्र की रत्नों की पोटली ले आ। दासी ने मन्त्री के घर जाकर मन्त्री की तीनों वस्तुएं उसकी पत्नी को सौंपकर भद्रमित्र की रत्नों की पोटली प्राप्त कर ली और लाकर रानी को सौंप दी।

चतुर्थ सर्ग

रानी ने वे रत्न राजा को सौंप दिए। राजा ने भद्रमित्र की परीक्षा लेने के लिए उन रत्नों में और भी रत्न मिला दिए। किन्तु भद्रमित्र ने रत्नसमूह में से अपने सात रत्नों को छाँट कर उठा लिया। राजा ने भद्रमित्र का सत्याचरण देखकर उसे राजश्रेष्ठी बना दिया। साथ ही दुष्ट सत्यघोष को कठोर दण्ड देकर अपदस्थ कर दिया। उसके स्थान पर धम्मिल्ल नामक पुरुष को मन्त्री पद दे दिया। फलस्वरूप सत्यघोष ब्राह्मण ने आत्महत्या कर ली, वह मर कर सर्प हुआ।

राजसेठ बन जाने के बाद, भद्रमित्र ने आसनाभिधान वन में रुके वरधर्म नामक मुनिराज के दर्शन किए। उनके उपदेश से, उसके सन्तोष में वृद्धि होने लगी। फलस्वरूप वह अपनी सम्पत्ति का अतिशय दान करने लगा। अपनी लोभी माँ के रोकने पर भी उसकी दानशीलता में कोई कमी नहीं हुई। उसके दानशील स्वभाव से रुष्ट होकर उसकी माता ने प्राण त्याग दिए; वह मरकर व्याघ्री हुई। एक दिन इसी व्याघ्री ने भद्रमित्र को खा लिया। तत्पश्चात् भद्रमित्र ने रानी रामदत्ता और राजा सिंहसेन के पुत्र (सिंहचन्द्र) के रूप में जन्म लिया। सिंहचन्द्र का एक छोटा भाई पूर्णचन्द्र था।

एक दिन राजा सिंहसेन अपने खजाने में रत्न इत्यादि को संभालकर जैसे ही बाहर आया, वैसे ही भण्डार के सर्प (सत्यघोष) ने राजा के प्राण हर लिए। राजा मर कर अशनिघोष नाम का हाथी हुआ; और सर्प (सत्यघोष) नगर के समीपस्थ वन में चमरमृग हुआ।

राजा की मृत्यु हो जाने पर शोक-विह्वला रानी ने, दान्तमति और हिरण्यवती नामक दो आर्यिकाओं के कहने से आर्यिका धर्म स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर सिंहचन्द्र राजा और पूर्णचन्द्र युवराज हुआ। राज्य में आए हुये पूर्णविधि मुनि को देखकर सिंहचन्द्र उनके समीप आकर मुनि बन गया।

एक दिन सिंहचन्द्रमुनि मनोहर वन पहुँचे। वहाँ रामदत्ता आर्यिका भी पहुँची; और सिंहचन्द्र से उसने निवेदन किया कि,—'हे मुनिराज! आपका छोटा भाई और मेरा पुत्र—जो इस समय भोगविलास में लिप्त है—कभी धर्माचरण करेगा या नहीं?

माता की बात सुनकर सिंहचन्द्र ने कहा कि—'जब उसको अपने पूर्वजन्म

का वृत्तान्त ज्ञात होगा, तब वह धर्मपालन के लिये प्रयत्नशील होगा। अब आप मुझसे उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनें और जब उसके पास जाएँ तो उसे सुनाएं।

सिंहचन्द्र ने कहा—भरतक्षेत्र के कौशलदेश के मध्य में वृद्ध नाम का एक गाँव है। उसमें मृगायण ब्राह्मण और उसकी पत्नी मधुरा निवास करते थे। उसकी पुत्री का नाम था—वारुणी। वह मृगायण मरकर अयोध्या की राजमहिषी सुमित्रा की हिरण्वती नाम की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुआ। युवती हो जाने पर उसका विवाह पोदनपुर के राजा पूर्णचन्द्र के साथ हुआ। मृगायण ब्राह्मण की स्त्री मधुरा ने पूर्णचंन्द्र की पुत्री रूप में जन्म लिया। मैं ही पूर्वजन्म में भद्रमित्र था। पूर्वजन्म में जो आपकी वारुणी नाम की लड़की थी, उसी ने आपके यहाँ पूर्णचन्द्र के रूप में जन्म लिया।

आपके पिता पूर्णचन्द्र भद्रबाहु नामक श्रीगुरु के समीप में मुनि बने; और मैं उन्हीं पूर्णचन्द्र के समीप में मुनि हुआ। दान्तमति आर्यिका के पास, आपकी माता भी आर्यिका बन गई।

आपके स्वामी राजा सिंहसेन मरकर अशनिघोष हाथी हुये। एक दिन वह अशनिघोष मुझे मारने आया तो मैंने उसे समझाकर आत्मोद्धारक व्रत करने को कहा।

एक बार व्रत की पारणा के लिए वह नदी में गया, तो वहाँ कीचड़ में फंस गया, वहाँ से वह नहीं निकल सका। धर्मभावना से प्रेरित होकर उसने समाधि ले ली। सत्यघोष का जीव सर्प होकर फिर चमरमृग हुआ था। मरकर वह पुनः सर्प हुआ। उसी सर्प ने अशनिघोष के मस्तक पर काट लिया। अशनिघोष मरकर सहस्रार स्वर्ग के रविप्रभ विमान में श्रीधर नामक देव हुआ। धम्मिल मन्त्री के जीव, बन्दर ने उस सर्प को मार दिया। अशनिघोष हाथी के मस्तक से मोती और दाँत निकालकर, व्याध ने धनमित्र सेठ को बेच दिए। सेठ ने उन्हें वर्तमान राजा पूर्णचन्द्र को दे दिया।"

पंचम सर्ग

सिंहचन्द्र के पूर्ववृत्तान्त सुनाने पर रामदत्ता, पूर्णचन्द्र के पास आयी और उससे बोली कि,—'तू भोगों में लिप्त होकर मनुष्य जन्म का दुरुपयोग कर रहा है। भोगलिप्सा के परिणामस्वरूप पुरुष या तो नरक में जाता है या फिर पशुयोनि में पहुँच जाता है। मनुष्य को भोगमय जीवन बिताने की अपेक्षा त्यागमय जीवन बिताना ज्यादा अच्छा होगा। साथ ही रामदत्ता ने पूर्णचन्द्र द्वारा सुनाया गया वृत्तान्त भी सुना दिया।

रामदत्ता का उपदेश सुनकर पूर्णचन्द्र भगवान् अर्हन्त का पूजन करता हुआ

गृहस्थ धर्म का पालन करने लगा। अपराधियों को दण्ड देने और निरपराधों को अभय देने के विषय में वह सावधान रहने लगा।

रामदत्ता आर्यिका ने अन्त में योगसमाधि द्वारा अपने शरीर को त्यागा। फलस्वरूप स्वर्ग पहुँचकर सोलह सागर की आयु वाले भास्कर देव के रूप में स्वर्गिक सुख भोगने लगी। राजा पूर्णचन्द्र भी आयु के अन्त में महाशुक्र नामक दसवें स्वर्ग में जाकर वैडूर्य नामक विमान का अधिपति सोलह सागर की आयु वाला हुआ। मुनिराज सिंहचन्द्र ने कठिन तपस्या की। अतएव वह अन्तिम ग्रैवेयक नामक स्वर्ग में पहुँचकर इकतीस सागर की आयु वाला अहमिन्द्र हुआ।

विजयार्द्ध शैल के दक्षिण में स्थित धरणीतिलक नगर का राजा आदित्यवेग था। उस राजा की रानी का नाम था सुलक्षणा। रामदत्ता के जीव भास्करदेव ने इन दोनों की पुत्री यशोधरा के रूप में जन्म लिया।

उसी समय अलकापुरी में दर्शक राजा राज्य करता था। दर्शक के साथ श्रीधरा का विवाह हुआ। राजा पूर्णचन्द्र का जीव वैडूर्य विमान का अधिपति हुआ। श्रीधरा और दर्शक की यशोधरा नाम की पुत्री हुई। भास्कर के राजा सूर्यावर्त के साथ यशोधरा का विवाह हुआ। सिंहसेन राजा का जीव श्रीधरदेव इन दोनों का पुत्र रश्मिवेग हुआ।

सूर्यावर्त ने राज्य रश्मिवेग को सौंप दिया और स्वयं मुनि हो गया। यशोधरा ने आर्यिका होना स्वीकार किया। पुत्री को आर्यिका बनती हुई देखकर श्रीधरा भी आर्यिका हो गई।

एक दिन रश्मिवेग सिद्धकूट जिन-मन्दिर में पूजन करने के लिए गया। वहाँ वह मुनिराज हरिश्चन्द्र के दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मुनि को प्रणाम करके उसने उनसे धर्मोपदेश सुना। मुनि के उपदेशों से प्रभावित होकर वह योगी बन गया। तपश्चरण करने से उसका सम्पूर्ण कल्मष धुल गया। अन्त में वह योगसाधना करके कंचनगिरि पहुँचा। एक दिन उसकी वन्दना हेतु श्रीधरा और यशोधरा भी वहाँ आई।

इस समय तक सत्यघोष के जीव ने अजगर की योनि में जन्म ले लिया था। उसने कंचनगिरि में रश्मिवेग, श्रीधरा और यशोधरा को खा लिया। ये तीनों तो चौदह सागर की आयु प्राप्त करके कापिष्ठ स्वर्ग के देव हुये। अजगर मरकर पंकप्रभ नरक में पहुँचकर दुःसह कष्ट भोगने लगा।

षष्ठ सर्ग

भरतक्षेत्र में चक्रपुर नाम का नगर है। किसी समय उस नगर में अत्यन्त प्रतापी राजा अपराजित राज्य करता था। उस राजा की रानी इन्द्राणी के समान सौन्दर्यवती, सुन्दरी नाम की थी।

सिंहचन्द्र का जीव इन दोनों का पुत्र चक्रायुध हुआ। जब वह युवक हुआ तो उसका संयोग चित्रमालाप्रधान पांच हजार बालाओं से हुआ। रश्मिवेग ने चित्रमाला के वज्रायुध नामक पुत्र के रूप में जन्म लिया।

उस समय अतिवेग नामक राजा विद्याधरों का स्वामी और पृथ्वीतिलक का शासक था। उसकी रानी का नाम था प्रियकारिणी। श्रीधरा के जीव ने इन दोनों की पुत्री रत्नमाला के रूप में जन्म लिया। जब वह बालिका युवती हुई तो उसके पिता ने उसका विवाह वज्रायुध राजकुमार के साथ कर दिया। यशोधरा के जीव ने रत्नमाला और वज्रायुध के पुत्र रत्नायुध के रूप में जन्म लिया।

इस प्रकार चक्रायुध का समय बीत ही रहा था कि उसके उद्यान में पिहितास्रव नामक मुनि का आगमन हुआ। राजा अपराजित ने जब उनका दर्शन किया और अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुना तो उसके मनमें वैराग्य आ गया। अतः सब कुछ त्याग कर वह दिगम्बर बन गया।

अपराजित के पश्चात् चक्रायुध ने राजसिंहासन प्राप्त किया। वह नराधिपश्रेष्ठ, प्रजावत्सल, सत्यवादी, न्यायप्रिय, चतुर, अतुलित पराक्रमी और धार्मिक था।

सप्तम सर्ग

एक दिन दर्पण में मुख देखते समय राजा चक्रायुध ने एक सफेद बाल अपने मस्तक पर देख लिया। तब वृद्धावस्था का आगमन जानकर वह विचार करने लगा कि शरीर का सौन्दर्य अस्थिर है। मनुष्य जानता है कि काल के प्रहार से कोई प्राणी नहीं बच सकता, फिर भी वह भोग-विलासों में डूबा रहता है। शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं। मनुष्य उन्हें एक समझने की भूल करता है। शरीर के सुख की अपेक्षा, आत्मा का सुख अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि शरीर नश्वर है, आत्मा अविनाशी है। अतएव अब समय को नष्ट न करके भगवान् 'अर्हन्त' में मन को लगाना चाहिए।

इन्हीं वैराग्यपूर्ण बातों को सोचते हुये उसने अपने पुत्र वज्रायुध को सम्पूर्ण राज्य का भार सौंप दिया और मुनि बनने के लिए वन को प्रस्थान किया। वन में जाकर वह अपने पिता मुनिराज अपराजित की शरण में पहुंचा। उन्हें पाकर वह हर्षित हुआ। उनको प्रणाम करके उसने उनसे धर्मोपदेश के लिए इच्छा व्यक्त की। साथ ही संसार से आवागमन के कारण को जानने और उससे मुक्ति पाने के उपाय के प्रति जिज्ञासा प्रकट की।

अष्टम सर्ग

अपराजित मुनिराज ने राजा चक्रायुध को जैनधर्मानुसार धर्माचरण का उपदेश दिया। अपराजित मुनि के उपदेश से प्रभावित चक्रायुध ने सर्वस्व त्यागकर मुनिवेश धारण कर लिया।

नवम सर्ग

मुनि हो जाने पर चक्रायुध ने बाह्य वस्तुओं का परित्याग कर दिया। मयूरपिच्छी और कमण्डलु को भी उदासीन भाव से रखा। सत्य, क्षमा, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का पालन किया। आत्मध्यान में अपने को रमाया। नाशवान् शरीर की चिन्ता छोड़कर नित्यप्रति उपवास किये। रागद्वेष से मन विमुक्त कर दिया। अन्त में, उसको कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया। अपने सामीप्य से अपने आस-पास के वातावरण को पाप से सर्वथा रहित कर दिया।

(ङ) दयोदय चम्पू का संक्षिप्त कथासार

प्रथम लम्ब

आर्यावर्त के मालव नामक देश में उज्जयिनी नामक नगरी है। एक समय उस नगरी में वृषभदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम वृषभदत्ता था। वृषभदत्त के ही शासन-काल में गुणपाल नाम का अति वैभवशाली राजसेठ था। उसकी पत्नी का नाम गुणश्री था। उनकी विषा नाम की एक पुत्री थी।

एक बार गुणपाल ने भोजन करने के पश्चात् जूठे बर्तनों को द्वार पर डाल दिया। उसी समय एक सुन्दर बालक उन पात्रों में पड़ी हुई जूठन खाकर अपनी भूख मिटाने लगा। ऐसे समय में एक मुनि अपने शिष्य के साथ वहाँ से निकले। मुनि ने अपने शिष्य के समक्ष 'यह बालक गुणपाल का जामाता होगा—' ऐसी आश्चर्यजनक भविष्यघोषणा कर दी। मुनि ने यह भी बताया कि 'यह इसी नगर के सार्थवाह श्रीदत्त की पत्नी श्रीमती के गर्भ से जन्मा है; किन्तु पूर्वजन्म में किये गये पापों के फलस्वरूप यह इस समय अपने माता-पिता के स्नेह से वंचित है।'

शिष्य के जिज्ञासु होने पर मुनि ने उस बालक का पूर्ववृत्तान्त सुनाया :—

अवन्ती प्रदेश में शिप्रा नामक नदी के तट पर शिशपा नामक छोटी सी बस्ती है। उसमें मृगसेन नामक एक धीवर रहता था। उसके माता-पिता का नाम भवश्री और भवदेव था तथा उसकी पत्नी का नाम धण्टा था।

एक दिन वह मछलियाँ पकड़ने जा रहा था। मार्ग में उसने पार्श्वनाथ के मन्दिर में जनसमूह से घिरे हुए एक अहिंसकोपदेशक दिगम्बर साधु को देखा। उस साधु के अहिंसापरक व्याख्यान से प्रभावित होकर उसने मुनि के चरणों को पकड़कर अपने पापमय जीवन से उद्धार हेतु उपाय पूंछा।

मुनि ने उसे समझाया कि तुम यह नियम बना लो कि मछलियाँ पकड़ते समय, जो मछली सबसे पहले जाल में फँसे, उसे छोड़ देना है। धीवर ने इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

द्वितीय लम्ब

मुनि के उपदेश को मन में धारण करते हुए मृगसेन धीवर शिप्रा नदी के तट पर पहुँचा और उसने नदी के जल में अपना जाल बिछा दिया। पहली बार उसके जाल में एक रोहित मछली फँसी; उसे उसने चिह्नित करके नदी में छोड़ दिया। लेकिन जब-जब वह जाल फैलाता, तब-तब वही मछली उसके जाल में फँस जाती और अपनी प्रतिज्ञानुसार वह उस मछली को पानी में छोड़ता जाता। जब बार-बार प्रयत्न करने पर भी वही मछली फँसी तो वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। एक ओर अहिंसाव्रत का पालन करना था; और दूसरी ओर स्त्री-पुत्रादिकों के भरण-पोषण का प्रश्न था।

अन्त में वह निराश होकर खाली हाथ ही घर की ओर चल पड़ा। पति को देखकर घण्टा ने विलम्ब का और खाली हाथ आने का कारण पूछा।

पत्नी के पूछने पर धीवर ने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और साधु पुरुष के समान आचरण करने के अपने दृढ़ निश्चय से भी उसे अवगत करा दिया। घण्टा धीवरी ने कहा कि गृहस्थ होकर साधु के समान आचरण करने की क्या आवश्यकता है? मृगसेन के बहुत समझाने पर भी घण्टा के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। क्रोधाविष्ट होकर उसने अपने पति को घर से बाहर निकाल दिया।

अपमानित मृगसेन एक निर्जन धर्मशाला में गया और वहाँ पर विश्राम करने के लिए लेट गया। इसी समय एक भयंकर सर्प ने आकर उसे डस लिया, जिससे तत्काल ही उसकी मृत्यु हो गई। वह मृगसेन धीवर ही उस बालक के रूप में सार्थवाह के घर जन्मा है।

पति मृगसेन को घर से निकालकर घण्टा अपनी निर्दयता पर पश्चात्ताप करने लगी। व्याकुल होकर वह उसे ढूंढती हुई उसी धर्मशाला में पहुंची। वहाँ अपने पति को मरा हुआ जानकर वह सिर पीट-पीट कर रोने लगी।

शोकावेग कम हो जाने पर उसने अहिंसाव्रत का पालन करने का निश्चय किया। इसी समय उसी सर्प ने जिसने मृगसेन को काटा था, घण्टा को भी काट लिया। वही घण्टा धीवरी यहाँ गुणपाल की लड़की विषा हुई है। पूर्वजन्म के संयोग के कारण इनका पुनः संयोग भी होगा।

तृतीय लम्ब

सेठ गुणपाल उन दोनों (गुरु-शिष्य) की वार्ता सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। तब उसने सोमदत्त नामक उस बालक को मारने का निश्चय किया। उसने सोचा कि यद्यपि मुनिजनों की कही गई बात सत्य ही होती है, तथापि इस सम्बन्ध में प्रयत्न तो करना ही चाहिए।

सेठ ने सोमदत्त नामक उस बालक को मारने के लिए एक चाण्डाल को नियुक्त किया। चाण्डाल ने सेठ से पारिश्रमिक लेकर उसे मारने का वचन तो

दे दिया; लेकिन उस निरपराध बालक को मारने की उसकी जरा भी इच्छा न हुई। उसने सोमदत्त को, अंधेरा हो जाने पर, गाँव के बाहर नदी के तट पर एक वृक्ष के नीचे डाल दिया और स्वयं घर आ गया।

दूसरे दिन सूर्योदय के समय अपनी गायें चराने हेतु गोविन्द नाम का ग्वाला उसी रास्ते से निकला। अचानक ही वृक्ष के नीचे पड़े हुए बालक को देखकर उसे अत्यन्त हर्ष हुआ। उसने बालक को उठाया और ले जाकर अपनी पत्नी धनश्री को दे दिया। निःसन्तान दम्पती उस बालक का पालन बड़े स्नेह से करने लगे। बालक सोमदत्त भी धनश्री और गोविन्द को ही अपना माता-पिता समझकर तदनुकूल आचरण करने लगा। इस प्रकार गोविन्द, धनश्री और उनके पालित पुत्र सोमदत्त का समय सुख से व्यतीत होने लगा।

चतुर्थ लम्ब

ग्वाले के यहाँ पलता हुआ सोमदत्त क्रमशः युवा हो गया। एक दिन गुणपाल सेठ किसी राजकार्यवश गोविन्द की बस्ती में आया। सोमदत्त को जीवित देखकर गुणपाल के आश्चर्य की सीमा न रही। धीरे-धीरे उसने यह जान लिया कि गोविन्द को पुत्र-प्राप्ति कैसे हुई। अपना (सोमदत्त को मारने का) काम बनाने के लिए एक दिन गुणपाल ने गोविन्द के समक्ष सोमदत्त की अत्यधिक प्रशंसा कर दी। गोविन्द ने भी सोमदत्त को आदेश दिया कि राजसेठ का जो भी कार्य हो, उसे वह अवश्य ही पूरा करे। अब गुणपाल ने चतुराई से सोमदत्त को अपने वश में कर लिया।

एक दिन अवसर पाकर गुणपाल ने एकान्त में सोमदत्त से कहा कि आज मुझे एक आवश्यक समाचार अपने घर भेजना है। क्या करना चाहिए? गुणपाल की बात सुनकर सोमदत्त ने कहा कि समाचार मुझे दीजिये; मैं आपके घर पहुंचा दूँगा। गुणपाल से समाचार के पत्र को लेकर तैयार होकर सोमदत्त शीघ्रता से चल पड़ा। थक जाने पर नगर के समीप एक उपवन के वृक्ष के नीचे पहुँच कर सो गया।

उसके सो जाने पर वसन्तसेना नाम की एक वेश्या वहाँ आई। सोमदत्त के सौन्दर्य से प्रभावित होकर और उसका परिचय पाने के लिए उत्सुक होकर वसन्तसेना ने उसके गले में बँधे पत्र को खोलकर पढ़ा। पत्र में सेठ गुणपाल की ओर से अपनी पत्नी और पुत्र के लिए आदेश था कि सोमदत्त को विष दे दिया जाय (अर्थात् जहर खिलाकर मार डाला जाय।)

वसन्तसेना ने विचार किया कि सेठ गुणपाल जैसा सज्जन ऐसा अकार्य कार्य नहीं कर सकता। अवश्य ही पत्र लिखने में भूल हुई है। उसने निश्चय ही इस सुन्दर युवक से अपनी कन्या विषा के विवाह का ही आदेश दिया होगा अतएव उसने 'विषं सन्दातव्यम्' के स्थान पर 'विषा सन्दातव्या' लिखकर पत्र को पूर्ववत् रखकर अपने गन्तव्य को प्रस्थान किया।

विश्राम करने के पश्चात् सोमदत्त उठा और नगर में सेठ गुणपाल के घर जा पहुँचा। सेठ की पुत्री विषा उस (युवक सोमदत्त) को देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुई।

घर के अन्दर पहुंचकर सोमदत्त ने वह पत्र महाबल को दिया। महाबल और उसकी माता पत्र पढ़कर विचारने लगे कि गुणपाल की अनुपस्थिति में विषा का विवाह इस युवक से कैसे किया जाय? तब उसने सोमदत्त से पूछा कि 'पत्र देने के अतिरिक्त पिता ने और कुछ भी कहा है?' सोमदत्त ने उत्तर दिया कि इस पत्र में लिखे हुए आवश्यक कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने के लिए उन्होंने मुझे भेजा है। सेठ जी को वहाँ अनेक आवश्यक कार्य करने थे, इसलिए वे यहाँ आने में असमर्थ हैं।

सोमदत्त की बात सुनकर महाबल और उसकी माता ने परामर्श करके शुभ मुहूर्त्त में विषा और सोमदत्त का विवाह कर दिया। नागरिकों ने सोमदत्त और विषा के इस विवाह का अभिनन्दन किया।

पंचम लम्ब

विषा और सोमदत्त के विवाह-समाचार को सुनकर गुणपाल विचार करने लगा कि मैंने जो-जो उपाय सोमदत्त को मारने के लिए किये, वे सभी उसके जीवन के उपाय हो गये। किन्तु अब तो वह अपने ही घर में है; अतः आसानी से मारा जा सकता है।

गुणपाल यह विचार कर ही रहा था कि गोविन्द उसके पास आकर सोमदत्त के विषय में पूछने लगा। गुणपाल ने कृत्रिम-हर्ष के साथ उठकर गोविन्द को बताया कि अब तो वह मेरा जामाता हो गया है, अतएव कुछ दिनों वह वहीं पर रहेगा। गोविन्द ने भी इस विषय पर अपनी स्वीकारोक्ति प्रकट कर दी।

सोमदत्त को मारने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील गुणपाल दूसरे दिन सुबह अपने घर को लौट गया। उसके घर पहुँचते ही महाबल और गुणश्री ने वहाँ की स्थिति का उसको ज्ञान कराया।

गुणपाल ने महाबल से पत्र माँगकर पुनः पढ़ा। उसने समझा कि दुबारा जाँचे बिना ही मैंने यह पत्र सोमदत्त को दे दिया; फलस्वरूप यह अनिष्ट हो गया। गुणपाल ने अन्तः करण में उठ रहे अन्तर्द्वन्द्व को दबाकर पुत्र और स्त्री से कहा कि "मैं तो यह जानना चाहता था कि विषा के लिए यह वर तुम लोगों को ठीक लगा या नहीं? अस्तु, जैसा तुमने किया, ठीक किया।"

गुणपाल यह बात अच्छी तरह जानता था कि अब सोमदत्त के मर जाने से उसकी पुत्री विधवा हो जायगी। किन्तु अपने दुराग्रहवश उसने सोमदत्त को मारने दृढ़ निश्चय त्यागा नहीं।

दूसरे दिन नागपंचमी के अवसर पर सोमदत्त को बुलाकर मन्दिर में उसके हाथों पूजन-सामग्री भेजने के लिए कहा। सोमदत्त पूजन-सामग्री ले जाने के लिए तैयार हो गया। सोमदत्त को तैयार करके गुणपाल मन्दिर के समीप रहने वाले चाण्डाल के समीप गया। चाण्डाल को धन देकर सोमदत्त का वध करने के लिए तैयार कर लिया। उसने चाण्डाल को समझाया कि जो भी पुरुष पूजन-सामग्री लेकर इधर से जाय, उसे मार डालना।

सोमदत्त जब पूजन सामग्री लेकर जाने लगा तो रास्ते में उसकी भेंट गेंद खेलते हुये महाबल से हो गई। महाबल ने अपने स्थान पर गेंद खेलने के लिए बलपूर्वक उसे नियुक्त कर दिया और स्वयं उसके हाथ से पूजा की थाली लेकर मन्दिर की ओर चल पड़ा। रास्ते में ही चाण्डाल ने तलवार से महाबल का वध कर दिया।

शीघ्र ही एक नवयुवक के मारे जाने का समाचार सारे नगर में फैल गया। गुणपाल इस समाचार को सुनकर पहले तो बहुत प्रसन्न हुआ, किन्तु घर में आकर सोमदत्त को जीवित देखकर और महाबल की मृत्यु का समाचार सुनकर दुःखी हो गया। गुणश्री और विषा को भी बहुत दुःख हुआ।

षष्ठ लम्ब

सोमदत्त के स्थान पर महाबल के मारे जाने पर गुणपाल खिन्न रहने लगा। उसको चिन्तित देखकर पुत्रशोक से दुःखी मन वाली गुणश्री ने अपने पति के पास जाकर उसके दुःख का कारण पूछा। पहले तो गुणपाल ने अपनी चिन्ता का कारण बताना स्वीकार नहीं किया; किन्तु गुणश्री के बहुत आग्रह करने पर उसने बतलाया कि वह सोमदत्त को मारने के लिए प्रयत्नशील था; किन्तु उसके स्थान पर उसका ही पुत्र मारा गया।

गुणश्री के आश्चर्यचकित होने पर गुणपाल ने सारा वृत्तान्त सुनाया। सोमदत्त को मारने के दृढ़ निश्चय से भी उसे अवगत कराया। पहले तो गुणश्री अपने पति के इस निर्मम निर्णय का विरोध करती रही, पर बाद में वह भी गुणपाल की बात में आ गई और उसने सोमदत्त को मारने का दायित्व स्वयं ही ले लिया।

एक दिन उसने सबके खाने के लिए तो खिचड़ी तैयार की और सोमदत्त को मारने के लिए विष से युक्त चार लड्डू बना दिये। इतने में ही उसे शौच जाने की आवश्यकता हुई, तो गुणश्री ने विषा को पाकशाला के कार्य में लगा दिया और स्वयं जंगल को चली गई।

इतने में ही गुणपाल रसोई की तरफ आया और विषा से बोला कि मुझे राजकार्य से शीघ्र जाना है, भूख भी लगी है, अतएव यदि खाना नहीं बना है तो

जो कुछ पहले तैयार है वही खिला दे। विषा ने कहा—'जब तक भोजन तैयार नहीं होता है, तब तक आप ये लड्डू खा लीजिए।' ऐसा कह कर उसने अपने पिता को उन्हीं लड्डूओं में से उठाकर दो लड्डू दे दिये। गुणपाल ने जैसे ही उन लड्डूओं को खाया, वैसे ही वह अचेत होकर गिर पड़ा। विषा का चीखना चिल्लाना सुनकर जब तक पास-पड़ोस वाले आये तब तक गुणपाल के प्राण-पखेरु उड़ चुके थे।

गुणश्री ने आकर जब यह दुःखद समाचार सुना तो वह दुःखी मन से अपने पति के दुष्कृत्यों के लिए पश्चात्ताप करने लगी। उसके तथा वसन्तसेना वेश्या के वचनों से समस्त नागरिकों को वास्तविकता का ज्ञान हो गया। गुणश्री ने दो बचे हुये लड्डू खाकर अपने पति के मार्ग का अनुसरण किया।

सप्तम लम्ब

गुणपाल को राजसभा में उपस्थित न पाकर राजा वृषभदत्त ने उसके विषय में मन्त्री से पूछा। मन्त्री ने बताया कि विषयुक्त अन्न खाने से गुणपाल और गुणश्री की मृत्यु हो गई है। जिस विषान्न को खिलाकर गुणपाल सोमदत्त को मारना चाहता था, धोखे से उसे स्वयं खाकर गुणपाल की मृत्यु हो गई।

राजा ने सोमदत्त का वृत्तान्त जानकर उसे बुलाया। आग्रहसहित आसन पर बिठाकर उसका कुशल समाचार पूछा। सोमदत्त ने अपने सास और श्वसुर की मृत्यु पर हार्दिक दुःख प्रकट किया।

राजा ने सोमदत्त के इस दुःख के प्रति सहानुभूति प्रकट करके अपनी पुत्री के साथ विवाह करने का आग्रह किया। सोमदत्त ने आग्रह को स्वीकार किया। सोमदत्त और राजकुमारी का विवाह होने के समय में ही विषा वहाँ आई और उसने महाराज के चरणों में प्रणाम किया। राजा ने अपनी पुत्री उसे और सोमदत्त को सौंप दी और सोमदत्त को अपना आधा राज्य दे दिया।

एक दिन सोमदत्त के घर एक मुनि आये। सोमदत्त, विषा और राजकुमारी ने उनका यथोचित सत्कार किया। मुनिराज ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र रूप रत्नत्रय को अपनाने का उपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर सोमदत्त ने दैगम्बरी दीक्षा ले ली। विषा और वसन्तसेना वेश्या ने भी आर्यावृत धारण कर लिया। सोमदत्त ने तपस्या करके सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त किया। विषा और वसन्तसेना ने भी अपने-अपने तप के अनुसार स्वर्ग की प्राप्ति की।

मुनिमनोरंजनशतक का संक्षिप्त कथासार

चूंकि यह मुक्तक काव्य है अतः इसमें कथात्मकता का अभाव स्वाभाविक ही है। इसकी विषयवस्तु तो प्रमुख रूप से मुनियों के कर्त्तव्यों का निरूपण करना मात्र है।

इस पुस्तिका के सम्बन्ध में यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि यह आज सर्वथा अनुपलब्ध है। इस कृति के संपरिज्ञान हेतु मैंने जिन-जिन महानुभावों से पत्र-

व्यवहार किया था, उनके पत्रों के सम्बद्ध अंश जो टिप्पणी में प्रस्तुत किये गये हैं,[1] इसकी अनुपलब्धि में प्रबल प्रमाण हैं।

---

१. (क) २९-५-७६

आपका दि० २१।५ का पत्र मिला × × × मुनिमनोरंजनशतक अब अप्राप्य है, कहीं से पाने का प्रयत्न करूंगा और उपलब्ध होने पर भिजवा दूंगा

आपका
रतन लाल कटारिया
मुनि श्रीज्ञानसागरजैनग्रन्थमाला
ब्यावर (राजस्थान)

(ख) ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन
सेठ जी की नशियां, ब्यावर (राजस्थान)
६।७।७६

आपका पत्र देश से लौटने पर मिला। × × × यदि 'मुनि-मनोरंजन' भी कहीं से उपलब्ध हो गया, तो उसे भी भिजवा दूंगा।

आपका
हीरालाल शास्त्री

(ग) चि० कु० किरण टण्डन जी सेठ जी० की नशियां
शुभाशीर्वाद। ब्यावर, ता० १२-७-७६

आपका पत्र मिला। × × × मुनिमनोरंजनशतक ग्रन्थ मैंने तो स्वयं देखा ही नहीं। मुनिश्री का बहुत समय हिसार में बीता था, यह ग्रन्थ भी वहीं प्रकाशित हुआ था। साथ ही और भी बहुत सी पुस्तकें हिसार में ही प्रकाशित हुई थीं और वे वितीर्ण भी हो चुकी हैं। अगर कोई प्रति विद्यमान हो तो वहीं से प्राप्त हो सकेगी। × × ×।

आपका
प्रकाश चन्द्र

(घ) १३।८।७६

सुश्री कुमारी किरण, ऐ० पन्नालाल दि० जैन
सरस्वतीभवन सेठ जी
शुभाशिष: की नशियां, ब्यावर (राजस्थान)

आप निम्न पते पर अपने शोधप्रबन्ध की बात लिखकर मुनि-श्रीज्ञानसागर जी के जीवनचरित की विस्तृत जानकारी के लिए लिखें—वे मुनि श्री के पट्ट पर अवस्थित शिष्य हैं।

मुनिमनोरंजन के लिए भी उन्हें ही लिखें—यह पुस्तक आज अप्राप्य हो रही है। फिर भी कहीं न कहीं से भिजवाने का प्रयत्न करेंगे। × ×

आपका
हीरालाल शास्त्री

श्री १०८ आचार्य
विद्यासागर जी का संघस्थ
श्री क्षुल्लक स्वरूपानन्द जी
मुनिश्री कुण्डलपुर क्षेत्र पो० पटेरा, जि० दमोह (म० प्र०)

(ङ)

६७६, सरदारपुरा, सी सड़क
जोधपुर-३४२००१
१६-६-७६

प्रिय किरण जी,

आपका २-८-७६ का पत्र मिला × × × 'मुनिमनोरंजनशतक' मेरे पास नहीं है, मैंने एक दो जगह लिखा है, यदि वहाँ से प्राप्त हो सकी तो आपको अवश्य भिजवाऊंगा। × × × आपका उल्लेख करते हुए मैं आज एक पत्र आचार्य श्री के पट्टशिष्य पं० पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज को भी भेज रहा हूँ, वे आजकल कुण्डलपुर (म० प्र०) में चातुर्मास कर रहे हैं। × × ×।

शुभेषी
चेतन प्रसाद पाटनी

उक्त विद्वानों से पत्र व्यवहार करने पर निष्कर्ष निकला कि मुनिमनोरंजनशतक संभवतः महाकवि ज्ञानसागर के शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी के पास हो। अतः मैंने उनसे भी पत्र-व्यवहार किया। किन्तु उनके शिष्य (सचिव) श्री जगमोहनलालशास्त्री ने इस पुस्तिका की अनुपलब्धि के ही विषय में सूचित किया, उनके द्वारा प्रेषित पत्र से उद्धत सम्बद्ध अंश इस प्रकार है :—

(च) श्रीमती बहिन किरण जी
जयजिनेश

जैन शिक्षा संस्था
मु० कटनी (जबलपुर) म० प्र०
२६।६।७६

× × ×। आपका कटनी भेजा गया पत्र ३।६।७६ को देखा। × × × मनोरंजनशतक उपलब्ध न हो सका। उसे शोधकार्य से हटा दें।

आपका
जगन्मोहनलाल जैन शास्त्री

तृतीय अध्याय

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत ग्रन्थों के स्रोत

(क) काव्य-स्रोत : एक सामान्य चिन्तन

आज प्राय: देखने में आता है कि कोई भी सामाजिक जब किसी काव्य को पढ़ता है, तब उसका उद्देश्य काव्य में प्रयुक्त छन्द, अलंकार, गुण, रीति आदि का ज्ञान प्राप्त करना नहीं होता, अपितु वह अपनी परिश्रमजन्यग्लानि या मानसिक उलझनों से छुटकारा पाने के लिए अथवा खाली समय को बिताने के लिए काव्य पढ़ता है। प्रत्येक काव्य का एक वर्ण्य-विषय होता है, एक कथानक होता है जो आजके सामाजिक का उद्देश्य पूरा कर सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि कवि अपने काव्य में कथानक के रूप में पौराणिक आख्यानों को लेता है या मनगढन्त किस्सों को, अथवा समाज की वर्तमान व्यवस्था से प्रभावित होकर कुछ मौलिक कथानकों की सर्जना करता है। जो कवि अछूते प्रसंगों को कथानक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, उनकी रचना नितान्त मौलिक होगी, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। किन्तु यदि कवि पुराने कथानकों को भी नया रूप दे सके, उन्हें बासीपन की दुर्गन्ध से दूर हटा सके, तो ऐसे कथानकों की भी मौलिकता हमें अस्वीकार नहीं करनी चाहिए। फिर विद्वानों का मत है कि मौलिकता केवल नवीन वस्तु की रचना में ही नहीं है, वरन् पुरानी वस्तु को नवीनता प्रदान करने में भी है।[1] आदिकवि वाल्मीकि की 'रामायण' पर आधारित भवभूति का 'उत्तररामचरित' नाटक इस तथ्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।

स्पष्ट है कि कवि के काव्य के कथानक का एक स्रोत होता है। चाहे वह कोई रूढ आख्यान हो, चाहे समाज में नित्यप्रति घटित होने वाली समस्याओं से युक्त घटनाचक्र हो; बस, कवि इसी आख्यान या घटनाचक्र को कथानक के रूप में ग्रहण कर लेता है; और फिर उसे अलंकार, गुण, रीति, भाषा इत्यादि से सजा-संवार कर पाठक के मनोरञ्जन हेतु प्रस्तुत कर देता है।

(ख) कविवर ज्ञानसागर और उनके काव्य स्रोत

जब हम श्रीज्ञानसागर की रचनाओं को पढ़ने के बाद साहित्यसमुद्र में उनके कथानक के स्रोत रूपी रत्नों को ढूंढ़ते हैं, तब हमें इन रत्नों के रूप में मिलते हैं—

---

१. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, ४।१४।४६

महापुराण, वृहत्कथाकोश, आराधनाकथाकोश, पुण्यास्रवकथाकोश इत्यादि जैन-ग्रन्थ। इन्हीं की प्रसिद्ध कथाओं को हमारे आलोच्य महाकवि श्रीज्ञानसागर ने अपने काव्यों के कथानक का मूल आधार बनाया है और अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के प्रयोग के बल से उनमें यत्र-तत्र उन्होंने परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किये हैं, जिन सबका विवरण इस अध्याय में अपेक्षित विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है।

(ग) जयोदय महाकाव्य कथानक का स्रोत

जयोदय महाकाव्य के कथानक का स्रोत श्रीजिनसेनाचार्य श्रीगुणभद्राचार्य-विरचित महापुराण (आदिपुराण-भाग २) में मिलता है। उन्होंने इसमें जयकुमार की कथा त्रिचत्वारिंशत्तम पर्व से—सप्तचत्वारिंशत्तम पर्व तक बड़े विस्तार से लिखी है जिसका सारांश इस प्रकार है :—

कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नामक एक नगर है। उस नगर में सद्गुण-सम्पन्न सोमप्रभ नामक एक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम लक्ष्मीवती तथा भाई का नाम श्रेयांस था। उसके जय, विजय आदि पन्द्रह पुत्र थे।

राजा सोमप्रभ और उसके भाई श्रेयांस के वैराग्य धारण करने पर हस्तिनापुर का राज्य जयकुमार को मिला।

एकदिन जयकुमार क्रीड़ा के लिए एक उद्यान में गया। वहाँ उसने शीलगुप्त नामक महामुनि को प्रणाम करके उनसे धर्म के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। राजा जयकुमार के साथ-साथ एक सर्पदम्पति ने भी इस धर्मोपदेश को सुना।

वर्षा-ऋतु के प्रारम्भ में सर्प की मृत्यु हो जाने पर, एक दिन राजा उसी वन में गया और वहाँ उपर्युक्त सर्प की सर्पिणी को किसी अन्य सर्प के साथ देखा। क्रोधाभिभूत होकर जयकुमार ने क्रीड़ा के नीलकमल से उन दोनों को पीटा। जयकुमार के सैनिकों ने भी उन दोनों पर लकड़ी और पत्थर का प्रहार किया। फलस्वरूप सर्प तो मरकर गंगानदी में काली नाम का जलदेवता हुआ और सर्पिणी अपने ही पति, जो कि अब नागकुमार हो चुका था, की पत्नी बनी। उस सर्पिणी ने नागकुमार को जयकुमार के विरुद्ध भड़काया, तब अपनी स्त्री के वचनों पर विश्वास करके जयकुमार को काटने की इच्छा से नागकुमार उसके घर आया। उस समय जयकुमार अपनी पत्नी श्रीमती को वन का सारा वृत्तान्त सुना रहा था। अपनी स्त्री के वास्तविक व्यवहार को जानकर नागकुमार का क्रोध शान्त हो गया। उसने बहुमूल्य रत्नों से जयकुमार को सत्कृत किया और अपने मन में उठी हुई दुर्भावना को भी कह दिया, तथा आवश्यकता पड़ने पर मुझे स्मरण करना, ऐसा कहकर अपने गन्तव्य को चला गया।

भरतक्षेत्र में ही वाराणसी नगरी में राजा अकम्पन राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम सुप्रभा था। राजा अकम्पन के हेमीगद, सुकेतुश्री, सुकान्त इत्यादि एक हजार पुत्र और सुलोचना तथा अक्षमाला नाम की दो पुत्रियां थीं।

सर्वगुणसम्पन्ना और जैनधर्म में आस्था रखने वाली सुलोचना फाल्गुन मास की अष्टाह्निका तिथि के दिन जिनेन्द्र भगवान् की अष्टाह्निकी पूजा करके अपने पिता को पूजा के अवशिष्ट अक्षत देने के लिए गई। राजा अकम्पन ने उससे वे अक्षत लिए और पारणा करने के लिए आदेश दिया। अपनी पुत्री सुलोचना को पूर्ण युवती देखकर राजा को उसके विवाह की चिन्ता हुई। इस सम्बन्ध में उसने अपने मन्त्रियों से परामर्श किया। सुमति नाम के मंत्री ने निष्पक्षता की दृष्टि से स्वयंवर विधि को अपनाने का परामर्श दिया।

सुमति की बात सबने स्वीकार कर ली। मन्त्रियों को बिदा करके राजा ने अपने पारिवारिक जनों से परामर्श किया। इसके बाद अपने दूतों को भेजकर उसने अनेक राजाओं को आमन्त्रित किया।

इसी बीच राजा के पूर्वजन्म का भाई विचित्राङ्गद नाम का देव सौधर्म स्वर्ग से वहाँ आया। राजा की आज्ञा से उसने स्वयंवर समारोह के सम्पादन के लिए एक श्रेष्ठ राजभवन का निर्माण किया।

राजा के द्वारा भेजे हुए दूतों ने जब राजाओं को सुलोचना-स्वयंवर का समाचार सुनाया तो बहुत से राजा वाराणसी पहुँच गये। राजा अकम्पन ने उन सभी राजाओं का स्वागत किया। चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति और सेनापति जयकुमार भी वहाँ पहुँचे। सभी अतिथि राजाओं के आ जाने पर राजा अकम्पन ने उत्सव की तैयारी शुरू कर दी। सुप्रभा की आज्ञा से सौभाग्यशालिनी स्त्रियों ने सुलोचना को स्नान कराकर मांगलिक वस्त्राभूषण धारण कराये और उससे जिनदेव का पूजन करवाया।

राजा अकम्पन का सन्देश सुनकर सभी उपस्थित राजा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। सुप्रभा रानी के साथ-साथ राजा अपने पारिवारिक जनों सहित स्वयंवर मण्डप में पहुँचा। उसी समय महेन्द्रदत्त कंचुकी विचित्रांगद देव द्वारा प्रदत्त रथ पर कन्या सुलोचना को बिठाकर स्वयंवर भवन में लाया। हेमाङ्गद अपने छोटे भाइयों के साथ रथ के समीप में चल रहा था। तत्पश्चात् सर्वतोभद्र महल पर चढ़कर सुलोचना ने सभी राजाओं को देखा। पुनः कंचुकी के कहने से वह नीचे उतर कर रथ पर चढ़ गई। कंचुकी ने विद्याधर राजाओं की ओर उसका रथ चलाना शुरू कर दिया। उसने सुलोचना को सुनमि और विनमि इत्यादि राजाओं का परिचय दिया। इसके पश्चात् कंचुकी ने भूमिगोचर राजाओं की ओर रथ बढ़ाया और सभी का परिचय दिया। अर्ककीर्ति राजाओं को छोड़कर सुलोचना जयकुमार के समीप गई। कंचुकी ने जयकुमार का भी विस्तृत परिचय दिया। जयकुमार के गुणों से प्रभावित होकर सुलोचना ने कंचुकी के हाथ से सुन्दर रत्नहार लेकर जयकुमार के गले में पहिना दिया। स्वयंवर विधि के पश्चात् राजा अकम्पन अपनी पुत्री और जयकुमार के साथ नगर

में प्रविष्ट हुआ। अन्य राजा सुलोचना को न पाकर निराश हो गए (तैंतालिसवाँ पर्व यहाँ समाप्त हो जाता है।)।

जयकुमार के वैभव को सहने में असमर्थ दुर्मर्षण नामक अर्ककीर्ति के सेवक ने राजाओं के सम्मुख राजा अकम्पन के विरुद्ध वचन कहे। उसने अपने स्वामी अर्ककीर्ति को भी उत्तेजित किया। सेवक के वचनों को सुनकर अर्ककीर्ति क्रुद्ध हो गया। उसने जयकुमार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अनेक दुष्ट राजा उसके इस दुष्कर्म में सहायक हो गए।

अर्ककीर्ति को उत्तेजित देखकर उसके मन्त्री अनवद्यमति ने उसे समझाया कि आपके पिता सम्राट् नाथवंश में उत्पन्न राजा अकम्पन को अपने पिता ऋषभदेव के समान ही पूज्य समझते हैं; और सोमवंश में उत्पन्न जयकुमार आपके पिता के प्रोष्ठ सेनापति हैं। अतः इस निष्पक्ष स्वयंवर-विधि से प्राप्त जयकुमार के अभ्युदय से आपको ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए।

मंत्री के वचनों का अर्ककीर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, इसके विपरीत जयकुमार का सुलोचना द्वारा वरण का कार्यक्रम भी पूर्वनिश्चित था, ऐसा कहते हुये उसने सोमवंश और नाथवंश के प्रति और भी अपशब्द कहे। फिर अपने सेनापति को बुलाकर युद्ध का डंका बजवा दिया। अपनी सेनासहित अर्ककीर्ति विजयघोष हाथी पर आरूढ़ होकर राजा अकम्पन के नगर की ओर चला। राजा अकम्पन इस वृत्तान्त को जानकर बहुत व्याकुल हो गये। मन्त्रियों और जयकुमार से परामर्श करके अर्ककीर्ति के पास एक शीघ्रगामी दूत भेज दिया। दूत ने अपने वचनों का अर्ककीर्ति पर कोई प्रभाव पड़ता हुआ न देखकर राजा अकम्पन के पास आकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया। दूत के वचनों को सुनकर राजा अकम्पन मूर्च्छित हो गये।

जयकुमार ने राजा को आश्वस्त करते हुए सुलोचना की रक्षा करने का निवेदन किया और अर्ककीर्ति को शृंखला से बाँधकर लाने का वचन दिया। मेघघोषा नाम की भेरी बजवायी। जयकुमार सेना तैयार करके अपने छोटे भाइयों के साथ, विजयार्ध नामक हाथी पर आरूढ़ होकर चले। राजा अकम्पन भी अपनी पुत्री सुलोचना को धैर्य बँधाकर अपने पुत्रों और सेना के साथ निकले। कुछ अन्य राजा भी राजकुमार की ओर से युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। जयकुमार ने युद्ध के लिए मकरव्यूह की और अर्ककीर्ति ने चक्रव्यूह की रचना की। दोनों ने हाथी, घोड़े और रथ पर सवार होकर बाणों और तलवारों से युद्ध किया। दूसरे दिन नागकुमार से प्राप्त नागपाश और अर्द्धचन्द्र नामक बाण की सहायता से जयकुमार ने अर्ककीर्ति को शस्त्ररहित करके पकड़ लिया। अर्ककीर्ति को अपने रथ में डालकर एक हाथी पर चढ़कर जयकुमार ने अन्य शत्रु विद्याधर राजाओं को भी

बांध लिया और उन्हें राजा अकम्पन को सौंप दिया। उसने मरे हुए वीरों के दाहसंस्कार और घायलों की चिकित्सा का प्रबन्ध किया। इसके बाद वह नगरी में आया। अन्य राजाओं के साथ नगर में पहुँचकर बाँधे गये राजाओं को भी समझाया। तत्पश्चात् नित्यमनोहर चैत्यालय में आकर सबने जिनेन्द्रदेव की स्तुति की (चवालिसवाँ पर्व यहाँ समाप्त हो जाता है।)

जिनेन्द्रदेव की स्तुति के पश्चात् जयकुमार अपने निवासस्थान पर चले गये। महाराज अकम्पन ने सुलोचना को उसके महल में भेज दिया। इसके बाद मंत्रियों से परामर्श करके बंधे हुये विद्याधर राजाओं को भी मुक्त कर दिया। अर्ककीर्ति को समझा बुझाकर उन्होंने जयकुमार और अर्ककीर्ति की सन्धि भी करा दी और अपनी अक्षमाला नाम की पुत्री का विवाह अर्ककीर्ति के साथ कर दिया। अन्य राजाओं को भी रत्न, हाथी और घोड़े देकर सम्मानसहित विदा किया।

जयकुमार से परामर्श करके अकम्पन ने अपने सुमुख नामक दूत को अपराधमार्जन हेतु भरत-चक्रवर्ती के पास भेजा। दूत ने राजा अकम्पन की ओर से क्षमायाचना की तो सम्राट् भरत ने राजा अकम्पन को अपना पूज्य और जयकुमार को अपना सेनापति बताया। सम्राट् भरत के प्रशंसात्मक वचनों से सन्तुष्ट होकर सुमुख उनसे आज्ञा माँगकर राजा अकम्पन के पास पहुँचा और उनके सामने भरत का मन्तव्य प्रकट कर दिया।

जयकुमार सुलोचना के साथ सुख का अनुभव करता हुआ बहुत समय तक अपने श्वसुर के घर रहा। एक दिन अपने मंत्री का पत्र पाकर उसने राजा अकम्पन से अपने नगर वापस जाने के लिए अनुमति माँगी। राजा अकम्पन ने जयकुमार और सुलोचना को सम्पत्तिवात्सल्यपूर्वक विदा किया।

जयकुमार और सुलोचना विजयार्ध नामक हाथी पर बैठे। जयकुमार अपने भाईयों और सुलोचना के हेमांगद इत्यादि भाईयों के साथ गंगा नदी के किनारे चलने लगे। सायंकाल होने पर उन्होंने गंगा नदी के तट पर ही अपना पड़ाव डाला। सुलोचना के साथ रात्रि बिताकर जयकुमार अपने भाईयों, सुलोचना और उसके हेमांगद इत्यादि भाईयों को वहीं छोड़कर दूसरे दिन अयोध्या पहुंचे। वहाँ अर्ककीर्ति इत्यादि ने उनका स्वागत किया। सभागृह में पहुँचकर, एक भव्य सिंहासन पर बैठे हुए राजा भरत को उन्होंने प्रणाम किया। भरत ने जयकुमार को प्रिय वचनों से सन्तुष्ट किया। जयकुमार के विनम्र वचनों को सुनकर सम्राट् भरत ने जयकुमार को उनके लिए और सुलोचना के लिए वस्त्राभूषण देकर विदा दिया।

सम्राट् भरत से विदा लेकर जयकुमार हाथी पर चढ़कर गंगानदी के किनारे पहुँचा। वहाँ पर एक सूखे वृक्ष की डाली के अग्रभाग पर स्थित, सूर्य की ओर उन्मुख

एक कौए को रोता हुआ देखकर जयकुमार सुलोचना के अनिष्ट की आशंका करके मूर्च्छित हो गया। पुरोहित के वचनों से आश्वस्त होकर जयकुमार ने आगे चलना प्रारम्भ कर दिया। जैसे ही हाथी एक गढ्ढे के बीच में पहुँचा, वैसे ही जयकुमार से द्रोह करने वाली सर्पिणी, जो मरकर कालीदेवी हुई थी, ने सरयू और गंगा नदी के संगम पर मगर का रूप धारण करके जयकुमार के हाथी को पकड़ लिया। हाथी को डूबता हुआ देखकर हेमाङ्गद आदि भी घबराकर उसी गढ्ढे प्रविष्ट होने लगे। पंचनमस्कार मन्त्र का स्मरण करके जिनेन्द्रभगवान् का ध्यान करती हुई सुलोचना भी अपनी सखियों के साथ गंगा नदी में प्रविष्ट होने लगी। गंगा नदी के किनारे रहने वाली गंगा देवी ने सब वृत्तान्त जानकर काली देवी को डाँटा और उन सबको किनारे ले आई। वहाँ उसने एक भवन का निर्माण किया और मणिमय सिंहासन पर बिठाकर सुलोचना का सत्कार किया। जयकुमार ने गंगादेवी के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। सुलोचना ने बताया कि यह अपने पूर्वजन्म में मुझसे स्नेह रखने वाली, विन्ध्यपुरी के निवासी विन्ध्यकेतु और प्रियंगुश्री की विन्ध्यश्री नाम की पुत्री थी। सर्प के काटने से यह इस रूप को प्राप्त हुई है। जिज्ञासा शान्त हो जाने पर जयकुमार ने गंगादेवी को विदा कर दिया। तत्पश्चात् जयकुमार ने भरतचक्रवर्ती से हुई भेंट वार्ता सुनाकर सबको सन्तुष्ट किया और उनके द्वारा दी गई भेंट सबको दी।

दूसरे दिन पुनः यात्रा प्रारम्भ हुई। सुन्दर दृश्यों के वर्णन से सुलोचना को प्रसन्न करते हुए जयकुमार अपनी राजधानी हस्तिनापुर पहुंचे। वहाँ पुरोहितों, सौभाग्यवती स्त्रियों, मन्त्रियों, सेठों आदि सभी ने उन दोनों का स्वागत किया।

किसी शुभ दिन में जयकुमार ने उत्सव का आयोजन करके हेमांगद इत्यादि के सामने ही सुलोचना को पटरानी बना दिया। कुछ दिनों बाद हेमांगद इत्यादि काशी वापस चले गये। राजा अकम्पन ने हेमांगद का राज्याभिषेक करके अपनी पत्नी सुप्रभा एवं अनेक राजाओं के साथ भगवान् ऋषभदेव से दीक्षा ग्रहण कर ली और कैवल्य प्राप्त कर लिया। उधर जयकुमार और सुलोचना परस्पर अनुकूल रहते हुए सुख का उपभोग करने लगे (यहाँ पैंतालिसवाँ पर्व समाप्त होता है।)

एक दिन महल की छत पर सुलोचना के साथ बैठे हुये जयकुमार ने कृत्रिम हाथी पर बैठे हुए विद्याधर दम्पती को देखा और उन्हें देखकर पूर्वजन्म का स्मरण होने से—'हा मेरी प्रभावती'—कहकर मूर्च्छित हो गया। सुलोचना भी कपोतयुगल को देखकर पूर्वजन्म का स्मरण होने से—'हा मेरे रतिवर'—कहकर मूर्च्छित हो गई। दोनों ने ही उपचार से चेतना प्राप्त की। जयकुमार ने दुःखी होकर सुलोचना को सान्त्वना दी। इस घटना से श्रीमती, शिवंकरा इत्यादि सपत्नियों की दृष्टि में सुलोचना अपराधिनी बन गई। जयकुमार के कहने

पर सुलोचना ने अपने और राजकुमार के पूर्वभवों का वृत्तान्त सुनाया, जो इस प्रकार है :—

विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में प्रजापाल नामक राजा राज्य करता था। उस राजा का कुबेरमित्र नाम का एक राजसेठ था। धनवती इत्यादि उसकी बत्तीस स्त्रियाँ थीं। उस सेठ के महल में सेठ को प्रिय लगने वाला रतिवर नाम का कबूतर अपनी रतिषेणा नाम की कबूतरी के साथ सुखपूर्वक रहता था। जयकुमार ही पूर्वजन्म का रतिवर था और सुलोचना ही रतिषेणा थी।

कुबेरमित्र के पुत्र का नाम कुबेरकान्त था। कुबेरकान्त को भोगविलास की सामग्री एक कामधेनु से प्राप्त हो जाती थी। उसका प्रियदत्त नाम का अत्यधिक प्रिय मित्र था। कुबेरकान्त के माता-पिता ने ज्ञात कर लिया कि वह एक ही कन्या से विवाह करना चाहता है। कुबेरमित्र ने अपने पुत्र का विवाह अपनी बहिन की पुत्री प्रियदत्ता से कर दिया। राजा प्रजापाल ने अपने पुत्र लोकपाल को पुण्डरीकिणी का राजा बना दिया और स्वयं मुनिराज शीलगुप्त के समीप संयम धारण कर लिया। कुछ समय पश्चात् कुबेरमित्र ने समुद्रदत्त आदि सेठों के साथ देवगिरि पर जाकर वरधर्मगुरु के समीप तपश्चरण करना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप कुबेरमित्र और समुद्रदत्त ब्रह्मलोक में लोकान्तिक देव हुए।

कुबेरकान्त और प्रियदत्ता के पाँच पुत्र हुए और एक पुत्री हुई। अमितमति और अनन्तमति इत्यादि आर्यिकाओं के उपदेश से लाभान्वित होकर कुबेरकान्त और लोकपाल दानशीलता इत्यादि श्रेष्ठ गुणों से युक्त हो गये।

एक बार कुबेरकान्त के यहाँ दो ऋषियों का आगमन हुआ। ऋषियों का दर्शन करते ही कबूतर और कबूतरी ने अपने पूर्वजन्मों को जानकर उन्हें प्रणाम किया और परस्पर के रतिभाव को त्याग दिया। यह देखकर मुनियों के मन में भी वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने कुबेरकान्त के यहाँ से भोजन किए बिना ही प्रस्थान कर दिया।

पक्षियों के संकेतों को जानने वाली प्रियदत्ता के पूछने पर कबूतरी ने अपने पूर्वजन्म का नाम रतिवेगा और कबूतर ने सुकान्त बताया। सुकान्त और रतिवेगा पूर्वजन्म में भी पति-पत्नी थे, अतः पुनः साथ रहने लगे।

मुनि के चले जाने पर राजा लोकपाल को जिज्ञासा हुई। उसकी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए अमितमति आर्यिका ने बताया—

पुष्कलावती देश में विजयार्ध पर्वत के समीपस्थ धान्यकमल नामक वन के पास शोभानगर की स्थिति है। उस नगर में प्रजापाल नाम का राजा राज्य करता था, उसकी देवश्री नाम की स्त्री थी। उस राजा के सेनापति का नाम शक्तिषेण

और उसकी पत्नी का नाम अटवीश्री था। शक्तिषेण का सत्यदेव नामक पुत्र हुआ। मुझ (अमितमति आर्यिका) से धर्मोपदेश सुनकर इन पाँचों ने धर्माचरण और व्रताचरण का पालन किया।

एक दिन शक्तिषेण अपनी स्त्री अटवीश्री को लेने के लिए उसके माता-पिता के पास मृणालवती नगरी गया। धान्यकमाल वन में सपंसरोवर के समीप रुका। उस समय मृणालवती नगरी में राजा धरणीपति का राज्य था। वहाँ रतिवर्मा से उत्पन्न सुकेतु नाम का सेठ भी रहता था। सुकेतु की पत्नी का नाम था कनकश्री। उनके एक दुराचारी भवदत्त नाम का पुत्र हुआ। उसकी दुष्टता के कारण उसे दुर्मुख भी कहा जाता था। उसी नगर में श्रीदत्त सेठ और उनकी पत्नी विमलश्री की रतिवेगा नाम की पुत्री हुई, और अशोकदेव सेठ और जिनदत्ता का सुकान्त नाम का पुत्र हुआ। भवदत्त की आशा के विपरीत रतिवेगा का विवाह सुकान्त से हो गया। यह जानकर भवदत्त बहुत क्रोधित हुआ। उसके भय से रतिवेगा और सुकान्त ने शक्तिषेण की शरण ली। शक्तिषेण के प्रभाव से भवदत्त ने क्रोध को भीतर ही दबा लिया।

शक्तिषेण ने वहाँ आए हुए दो मुनियों को आहार दान दिया। उस सरोवर के समीप ही सेठ मेरुकदत्त अपनी स्त्री धारिणी और भूतार्थ, शकुनि बृहस्पति और धन्वन्तरि नामक मन्त्रियों के साथ रुका था। एक दिन वहाँ एक हीनांग पुरुष आया। सेठ ने जब उसके हीनांग होने के विषय में पूछा तब प्रत्येक मन्त्री ने अपना-अपना मन्तव्य बताया, किन्तु भूतार्थ ने कहा कि इसकी यह दशा पूर्वजन्म में हिंसादि कार्यों के करने से हुई है। उसी समय उसे खोजते हुए शक्तिषेण ने वहाँ आकर अपने उस हीनांग पुत्र की असहनशीलता और अकर्मण्यता के विषय में बताया। सत्यदेव ने पिता की इच्छानुसार लौटना स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप शक्तिषेण 'अगले जन्म में भी मुझे तेरा स्नेह प्राप्त हो' ऐसी इच्छा प्रकट करके द्रव्यलिंगी मुनि बन गया। वह (शक्तिषेण) मृत्यु को प्राप्त होकर देव के रूप में जन्मा। जिस समय सेठ मेरुकदत्त और उनकी स्त्री ने शक्तिश्री को अटवीश्री के साथ मुनियों का स्वागत करके पंचाश्चर्य प्राप्त करते हुए देखा, उसी समय उन्होंने इच्छा प्रकट की कि अगले जन्म में ये हमारी सन्तानों के रूप में जन्म लें। सुकान्त और रतिवेगा ने भी दान इत्यादि के फलस्वरूप पुण्यार्जन किया। अमितमति ने लोकपाल की स्त्री वसुमती, जो पहले जन्म में देवश्री थी—के व्याकुल होने पर बताया कि वही पूर्वजन्म में शक्तिषेण की स्त्री अटवीश्री थी। अमितमति ने उसकी भी जिज्ञासा शान्त करते हुए कहा कि कुबेरकान्त ही उस जन्म का शक्तिषेण है। तुम्हारे पाँच पुत्रों में से कुबेरदयित नामक पुत्र ही उस जन्म का सत्यदेव है। भवदेव ने जिस रतिवेगा और सुकान्त नामक दम्पति को जला दिया था, वही ये कबूतर-कबूतरी हैं। सेठ मेरुकदत्त और धारिणी ही तुम्हारे पति के

माता-पिता हुये। शक्तिषेण ने जिन दो मुनियों को आहार-दान दिया था, वे ही तेरे पिता और पति के गुरु हुए हैं।

एक दिन कबूतर-कबूतरी चावल चुगने के लिए दूसरे गाँव गये। भवदेव के जीव बिलाव ने पूर्वजन्म के वैर के कारण उन दोनों को मार डाला। रतिवर कबूतर ही अपनी मृत्यु के बाद विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित गान्धार देश की उशीरवती नगरी के राजा आदित्यगति और रानी शशिप्रभा का पुत्र हिरण्यवर्मा हुआ और रतिषेणा कबूतरी अपनी मृत्यु के बाद विजयार्ध पर्वत की उत्तरश्रेणी में स्थित गौरी नामक देश में विद्यमान भोगपुर में राज्य करने वाले विद्याधरों के स्वामी वायुरथ और उनकी पत्नी स्वयंप्रभा की पुत्री प्रभावती हुई।

प्रभावती के स्वयंवर में गतियुद्ध में विजय प्राप्त करके हिरण्यवर्मा ने प्रभावती को पत्नी के रूप में प्राप्त कर लिया। एक दिन दोनों को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। पूर्वजन्म के दाम्पत्य भाव को स्मरण करके वे दोनों परस्पर अत्यधिक प्रेम से रहने लगे।

एक बार हिरण्यवर्मा और प्रभावती ने सिद्धकूट के चैत्यालय में पूजा करते समय एक चारणमुनि के दर्शन किये। प्रभावती के पूछने पर मुनि ने उनके पूर्वजन्मों के विषय में बताया और कहा कि मैं ही भवदेव का पिता था।

इसी समय वायुरथ ने विरक्त होकर अपना राज्य अपने पुत्र मनोरथ को दे दिया। वायुरथ के सम्बन्धियों की इच्छा से प्रभावती की पुत्री रतिप्रभा का विवाह मनोरथ के पुत्र चित्ररथ से करके महाराज आदित्यगति ने हिरण्यवर्मा का राज्याभिषेक कर दिया, और स्वयं तपश्चरण में संलग्न हो गये।

एक बार हिरण्यवर्मा प्रभावती के साथ धान्यकमाल वन में सर्पसरोवर के समीप पहुँचा तो उसे अपने पूर्वजन्मों की याद आ गई। फलस्वरूप उसका मन वैराग्य से भर गया। उसने अपने नगर में आकर अपने पुत्र सुवर्णवर्मा का राज्याभिषेक कर दिया, और स्वयं श्रीपुर नाम के नगर में श्रीपाल गुरु के समीप जिन-दीक्षा धारण कर ली। प्रभावती ने भी शशिप्रभा के साथ गुणवती आर्यिका के समीप तपश्चरण करना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन मुनिराज हिरण्यवर्मा पुण्डरीकिणी नगरी पहुँचे। गुणवती आर्यिका के साथ प्रभावती आर्यिका भी वहाँ पहुँच गई। वहीं पर प्रियदत्ता को प्रभावती ने बताया कि मैं ही आपके घर की रतिषेणा कबूतरी थी; और मुनि हिरण्यवर्मा ही रतिवर कबूतर थे। प्रियदत्ता ने मुनिराज हिरण्यवर्मा की वन्दना करके अपना वृत्तान्त सुनाया। उसने बताया कि लोकपाल ने अपने पुत्र गुणपाल को राज्यभार दे दिया; और स्वयं रतिषेण नाम के मुनि के पास संयम धारण किया। इसी समय कुबेरकान्त ने भी अपने पुत्र कुबेरप्रिय को राजसेठ का पद देकर अन्य चार पुत्रों के साथ वहीं पर दीक्षा धारण कर ली। अपने पति का वृत्तान्त

सुनाकर गृहस्थाश्रम से विरक्त प्रियदत्ता ने अपनी पुत्री कुबेरश्री का विवाह राजा गुणपाल से कर दिया और प्रभावती का उपदेश सुनकर गुणवती आर्यिका के समीप दीक्षा धारण कर ली।

एक बार जब हिरण्यवर्मा ने श्मशानभूमि में प्रतिमायोग धारण किया, तब प्रियदत्ता की एक चेटी से मुनिराज का समस्त वृत्तान्त जानकर एक विद्युच्चोर ने क्रोध के कारण उनके पूर्वजन्मों का समाचार भी जान लिया। तपश्चर्या में रत हिरण्यवर्मा और प्रभावती को उसने एक साथ ही चिता पर रख कर जला दिया। मृत्यु के उपरान्त वे दोनों स्वर्ग पहुंच गये। विद्युच्चोर के प्रति अपने पुत्र सुवर्णवर्मा के क्रोध को उन्होंने समाप्त किया। स्वर्ग के लोगों के मध्य रहते हुए उन्होंने अपने पूर्वजन्मों का स्मरण किया। अतः अपने पूर्वजन्म के स्थानों को देखकर वे दोनों सर्पसरोवर के समीपस्थ वन में पहुंचे। वहाँ एक भीम नाम के मुनि भी आए हुए थे। वहाँ पर उपस्थित जनों के पूछने पर भीम ने अपने पूर्वभावों का वृत्तान्त सुनाया। वे ही क्रमशः रतिवेगा और सुकान्त के बैरी भवदेव; रतिषेणा और रतिवर के शत्रु विलाव और प्रभावती और हिरण्यवर्मा को भस्म करने वाले विद्युच्चोर थे। उन देव-देवी (हिरण्यवर्मा और प्रभावती) ने बताया कि तीन बार आपके द्वारा मारे जाने वाले हम ही हैं। इस प्रकार दोनों उनकी वन्दना करके अपने गन्तव्य को चल दिए। इस समय उन्होंने मुनिराज भीम से और भी वृत्तान्त सुने थे।

इस प्रकार सुलोचना ने जयकुमार को बताया कि पहले जन्म में हम दोनों सुकान्त और रतिवेगा के रूप में जन्म थे; उसके बाद रतिवर कबूतर और रतिषेणा कबूतरी के रूप में जन्मे; फिर हिरण्यवर्मा और प्रभावती के रूप में और फिर स्वर्ग में देव और महादेवी के रूप में जन्मे थे (यहाँ छियालिसवाँ पर्व समाप्त होता है।)

जयकुमार के आग्रह करने पर सुलोचना ने प्रियदत्ता की पुत्री कुबेरश्री के पुत्र श्रीपाल का भी रोचक वृत्तान्त सुनाया। उसने बताया कि ये सब कथायें सुनकर हमने गुणपाल तीर्थङ्कर को प्रणाम किया और स्वर्ग चले गये। तत्पश्चात् हमारा जन्म यहाँ हुआ है।

सुलोचना का वृत्तान्त सुनकर सभी ने उस पर विश्वास कर लिया। उन दोनों को अपने पूर्वजन्म की सारी विद्याएँ प्राप्त हो गईं। एक बार जयकुमार ने उन विद्याओं के बल से सुलोचना के साथ देशाटन की इच्छा से अपने छोटे भाई विजय कुमार को समस्त राज्यभार सौंप दिया। पृथ्वी के समुद्र, पर्वत आदि स्थलों पर विहार करते हुए जयकुमार कैलाश-पर्वत पर स्थित एक वन में पहुंचा। उस समय इन्द्र अपनी सभा में जयकुमार और सुलोचना के शील की प्रशंसा कर रहा था। सभा में स्थित रविप्रभ देव ने जयकुमार के शील की परीक्षा की इच्छा से काँचना

नाम की देवी को जयकुमार के पास भेजा। उस देवी की चेष्टाओं का जयकुमार पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसा देखकर कृत्रिम क्रोध से युक्त वह देवी जयकुमार को उठाकर जाने लगी तो सुलोचना ने उसकी भर्त्सना की। सुलोचना के शील के प्रभाव को सहने में असमर्थ होकर वह अदृश्य हो गई और अपने स्वामी रविप्रभ देव के पास पहुँची। रविप्रभ देव जयकुमार से प्रभावित होकर उसके पास आया। क्षमायाचनापूर्वक बड़े-बड़े रत्नों से जयकुमार की पूजा करके स्वर्ग चला गया। इसके पश्चात् अपने नगर लौटकर जयकुमार ने सुलोचना के साथ बहुत दिन बिताये।

एक दिन आत्मज्ञानी जयकुमार ने श्री आदिनाथ तीर्थङ्कर की वन्दना की और उनके उपदेश से जब धर्म का स्वरूप जाना तो शिवंकरा महादेवी से उत्पन्न अपने पुत्र अनन्तवीर्य का राज्याभिषेक कर दिया और अपने छोटे भाई विजय, जयन्त, संजयन्त एवं रविकीर्ति, रविजय, अरिंदम, अरिजय इत्यादि चक्रवर्ती भरत के पुत्रों के साथ दीक्षा धारण कर ली। वह भगवान् ऋषभदेव का ७१वाँ गणधर बन गया। पति के वियोग से व्याकुल सुलोचना ने चक्रवर्ती की पट्टरानी सुभद्रा के समझाने पर ब्राह्मी आर्यिका के समीप दीक्षा धारण कर ली; और बहुत समय तक तप करने के पश्चात् अच्युत स्वर्ग के अनुत्तर विमान में देवी के रूप में उत्पन्न हुई (यहाँ सैंतालिसवाँ पर्व समाप्त हो जाता है)।[1]

(घ) मूलकथा में परिवर्तन और परिवर्धन

महापुराण में वर्णित जयकुमार की कथा और जयोदय महाकाव्य की कथा का जब हम तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि कविवर श्रीज्ञानसागर ने काफी हेर फेर के साथ अपने महाकाव्य में महापुराण की कथा वर्णित की है। उनके द्वारा किए गए परिवर्तन इस प्रकार हैं :—

(क) 'महापुराण' में सर्वप्रथम जयकुमार के माता-पिता और पितृव्यों का परिचय दिया है[2], जबकि जयोदय में जयकुमार के पिता का तो नाम एकाध स्थलों पर आया भी है[3] परन्तु माता एवं पितृव्यों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

(ख) 'महापुराण' में बताया गया है कि जयकुमार के पिता सोमप्रभ और चाचा श्रेयांस के संन्यास लेने पर जयकुमार ने हस्तिनापुर का राज्य प्राप्त किया।[4] किन्तु 'जयोदय' में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता।

(ग) वनक्रीड़ा के लिए गये हुए जयकुमार ने जिस मुनि से धर्मोपदेश सुना,

---

१. जिनसेनाचार्य गुणभद्राचार्यकृत महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), पर्व ४३ से ४७ तक।

२. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४३।७७-८२

३. जयोदय, ६।११५, ७।३४

४. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४३।८४-८७

'महापुराण' में उसका नाम शीलगुप्त बताया गया है[१], किन्तु 'जयोदय' में मुनि का नामोल्लेख नहीं है।

(घ) 'महापुराण' में उल्लेख मिलता है कि एक सर्प-दम्पति ने भी जयकुमार के साथ मुनि से उपदेश सुना[२], जबकि 'जयोदय' में जयकुमार के साथ केवल एक सर्पिणी ने ही उपदेश सुना है।[३]

(ङ) सर्पिणी के पति की मृत्यु वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में हुई थी, 'महापुराण' में आई हुई इस बात का[४] भी उल्लेख 'जयोदय' में नहीं मिलता।

(च) 'महापुराण' में वर्णन मिलता है कि दुबारा जयकुमार उसी वन में गया तब उसने उक्त सर्प के साथ सर्पिणी को रमण करते हुए देखा।[५] किन्तु 'जयोदय' महाकाव्य में बताया गया है कि अपने साथ उपदेश सुनने वाली सर्पिणी को, जयकुमार ने जब वह उपदेश सुनकर लौट रहा था, तभी दूसरे सर्प के साथ विहार करते हुए देखा।[६]

(छ) 'महापुराण' में उल्लेख है कि जयकुमार और सैनिकों ने सर्प और सर्पिणी दोनों को पीटा। सर्प मारकर गंगानदी में काली नाम का जल देवता हुआ।[७] 'जयोदय' महाकाव्य मे केवल सर्पिणी को प्रताडित करने का उल्लेख है।[८] सर्पिणी गंगानदी में काली नाम की देवी हुई, यह बात भी विवाह के पश्चात् सम्राट् भरत के यहाँ से लौटते समय ज्ञात होती है।[९]

(ज) 'महापुराण' में वर्णन है कि वन से लौटकर जयकुमार ने अपनी पत्नी श्रीमती को वन का सारा वृत्तान्त सुनाया[१०], जबकि 'जयोदय' महाकाव्य में कहा गया है कि जयकुमार ने अपनी सभी स्त्रियों के सम्मुख वन का वृत्तान्त कहा।[११]

(झ) 'महापुराण' में वाराणसी का और उसमें राज्य करने वाले अकम्पन का

---

१. महापुराण (आदि पुराण, भाग-२), ४३।८८
२. वही, ४३।९०
३. जयोदय, २।४२
४. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४३-९१
५. वही, ४३।९२-९३
६. जयोदय, २।१४२
७. महापुराण (आदिपुराण, भाग २), ४३।९३-९५
८. जयोदय, २।१४२
९. वही, २०।७०
१०. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२) ४३।१००
११. जयोदय, २।१४५

उल्लेख मिलता है। यहीं पर उनकी पत्नी सुप्रभा, एक हजार पुत्र और सुलोचना एवं अक्षमाला नाम की दो पुत्रियों का भी वर्णन है।[1] किन्तु 'जयोदय' महाकाव्य में राजा अकम्पन का दूत जब सुलोचना-स्वयंवर का समाचार लेकर आता है, तब हमें काशीनरेश की पत्नी और उनकी पुत्री सुलोचना का नाम सहित परिचय ज्ञात हो पाता है[2] किन्तु काशीनरेश का नाम एवं उनके एक हजार पुत्र एवं अक्षमाला नाम की पुत्री का परिचय तो हमें बाद में ही ज्ञात होता है।[3]

(अ) 'महापुराण' में सभी राजाओं को दूतों द्वारा सामान्य रूप से बुलवाया गया है[4], जबकि 'जयोदय' में दूत ने विशेष आग्रह से जयकुमार को ही निमन्त्रण दिया है। अन्य राजाओं को बुलवाने का केवल उल्लेख मात्र ही किया है।[5]

(ट) 'महापुराण' में महेन्द्रदत्त कंचुकी ने ही सुलोचना को राजाओं से परिचित कराया। इसमें किस-किस देश के राजा हैं, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।[6] किन्तु 'जयोदय' में विद्यादेवी ने सुलोचना के सम्मुख अयोध्या, कलिंग इत्यादि देशों के राजाओं का विस्तृत परिचय दिया है।[7]

(ठ) 'महापुराण' में उल्लेख मिलता है कि अर्ककीर्ति और जयकुमार के युद्ध के पश्चात् सभी ने नित्य मनोहर नामक चैत्यालय में पहुँचकर जिनेन्द्रदेव की स्तुति की[8], 'जयोदय में यह वर्णन तो है कि युद्ध के पश्चात् सबने जिनेन्द्रदेव की पूजा की 'किन्तु किसी मन्दिर का उल्लेख नहीं है।[9]

(ड) 'महापुराण' में सुलोचना के रूप-सौन्दर्य एवं विवाह का संक्षेप में ही उल्लेख है।[10] किन्तु 'जयोदय' में इन बातों का विस्तृत वर्णन किया गया है।[11]

(ढ) 'महापुराण' में जिनेन्द्रदेव की पूजा के बाद शेषाक्षत देने के लिए सुलोचना जब अपने पिता के पास आती है, तब पुत्री को पूर्णयुवती देखकर राजा अकम्पन की

---

१. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२) ४३।१२७-३५
२. जयोदय, ३।३३-३७
३. वही, ५।८, ७।८९
४. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४३।२०२-२०३
५. जयोदय, ३।२९-९३, ४।१
६. महापुराण, (आदिपुराण, भाग-२), ४३।३०१-३०८
७. जयोदय, ६।६-११८
८. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४४।३५६
९. जयोदय, ८।८९ एवं उसके बाद का गीत।
१०. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२) ४३-१३७-३३७
११. जयोदय, ३।३०-११६, चतुर्थ सर्ग से द्वादश सर्ग तक।

इच्छा उसका विवाह करने की होती है।[1] किन्तु जयोदय' में इस घटना का कोई उल्लेख नहीं है।

(ण) 'महापुराण में वर्णन है कि विवाह के बाद अपने मंत्री के पत्र आने पर जयकुमार हस्तिनापुर लौटने की तैयारी करते हैं।[2] परन्तु 'जयोदय' में इस बात का उल्लेख नहीं है।

(त) महापुराण' में गंगा-नदी के तट पर जयकुमार द्वारा रात्रि-विहार, वन-क्रीड़ा इत्यादि के किये जाने का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु 'जयोदय' में इन सब बातों का विस्तृत वर्णन है।[3]

(थ) 'महापुराण' में वर्णन मिलता है कि हेमांगद इत्यादि को गंगा-नदी के किनारे छोड़कर जयकुमार जब सम्राट् भरत से मिलने गए तो अर्ककीर्ति इत्यादि ने उसका स्वागत किया।[4] किन्तु जयोदय' में जयकुमार का अर्ककीर्ति इत्यादि से स्वागत पाने का वर्णन नहीं है।

(द) 'महापुराण' में वर्णित है कि जब जयकुमार सम्राट् भरत से विदा लेकर गंगा नदी के किनारे पहुँचा, तब एक सूखे वृक्ष की डाली के अग्रभाग पर स्थित सूर्याभिमुख एक कौए को रोता हुआ देखकर वह सुलोचना के अनिष्ट की आशंका से मूर्च्छित हो गया और पुरोहित के वचनों से आश्वस्त होकर उसने आगे चलना प्रारम्भ किया।[5] किन्तु 'जयोदय' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(ध) 'महापुराण' में वर्णन मिलता है कि काली देवी ने जयकुमार के हाथी को सरयू और गंगा के संगम पर पकड़ा।[6] किन्तु 'जयोदय' में सरयू और गंगा के संगम का उल्लेख नहीं है।

(प) 'महापुराण' में उक्त घटना के पश्चात् जयकुमार के सीधे हस्तिनापुर पहुँचने का वर्णन है[7], जबकि 'जयोदय' में जयकुमार भीलों और ग्वालों की बस्तियों में होता हुआ हस्तिनापुर पहुँचा है।[8]

(न) 'महापुराण' में उल्लिखित है कि पुत्री के सुख-समाचार को जानकर राजा अकम्पन ने हेमांगद का राज्याभिषेक कर दिया और सुप्रभा एवं अनेक राजाओं के

---

१. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४३।१८०
२. वही, ४५।९७-९८
३. जयोदय, १३।५२-११६, चतुर्दश से अष्टादश सर्ग तक।
४. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४५।११४-११५
५. वही, ४५।१३९-१४१
६. वही, ४५।१४४
७. वही, ४५।१७०-१७१
८. जयोदय, २०।१-७८

साथ भगवान् ऋषभदेव से दीक्षा ग्रहण करके केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया।[1] पर 'जयोदय' में राजा के वैराग्यमात्र ग्रहण करने का वर्णन मिलता है।[2]

(फ) 'महापुराण' में वर्णन मिलता है कि जयकुमार ने अपने महल की छत पर एक कृत्रिम हाथी में बैठे हुए विद्याधर-दम्पती को देखा।[3] पर 'जयोदय' में कृत्रिम हाथी का नहीं, वरन् आकाश-विमान का वर्णन है।[4]

(ब) 'महापुराण' में जयकुमार और सुलोचना के पूर्वजन्मों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। वहाँ इन दोनों के प्रत्येक जन्म के सम्बन्धियों के जन्मों से सम्बन्धित अवान्तर कथाओं का भी विस्तृत वर्णन है[5], पर 'जयोदय' में पूर्वजन्मों का वर्णन संक्षेप में ही किया गया है।[6]

(भ) 'महापुराण' में सुलोचना एवं जयकुमार के हर जन्म के सम्बन्धियों से सम्बन्धित कथाएँ विस्तृत होने के साथ ही अत्यधिक जटिल भी हैं, जिससे पाठक को मूलकथा को समझने में काफी असुविधा होती है। इसमें लोकपाल के पुत्र श्रीपाल का वृत्तान्त भी विस्तार से वर्णित है।[7] 'जयोदय' में जयकुमार और सुलोचना के पूर्वजन्म के सम्बन्धियों से सम्बन्धित अवान्तर कथाओं से मूलकथा को नहीं उलझाया गया है; और श्रीपाल की कथा का भी जयोदय में अभाव है।

(म) 'महापुराण' में वर्णन मिलता है कि स्वर्ग में उत्पन्न होने के बाद पूर्वजन्म की कथाएँ सुनने सुनाने के बाद सुलोचना और जयकुमार ने गुणपाल तीर्थङ्कर की वन्दना की।[8] किन्तु 'जयोदय' में यह वर्णन नहीं मिलता।

(य) 'महापुराण' में वर्णन है कि ऋषभदेव की वन्दना के पश्चात् उनके उपदेश से प्रभावित होकर जयकुमार ने शिवंकरा महादेवी के पुत्र अनन्तवीर्य का राज्याभिषेक कर दिया और अपने छोटे भाई विजय, संजयन्त एवं रविकीर्ति, रविजय, अरिंदम, अरिंजय इत्यादि चक्रवर्ती के पुत्रों के साथ दीक्षा धारण कर ली।[9] किन्तु 'जयोदय' में इस सन्दर्भ में जयकुमार के अतिरिक्त अन्य किसी की चर्चा नहीं की गई है।[10]

---

१. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४५।१८६-२०६
२. जयोदय, २१।९७
३. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४६।१
४. जयोदय, २३।१०
५. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४६।१९-३६६
६. जयोदय, २३।४५-९७
७. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), ४७।१-२५०
८. वही, ४७।२५१-२५२
९. वही, ४७।२७४-२७९
१०. जयोदय, २६।६८-१०७

जयोदय महाकाव्य की कथा की तुलना जब हम 'महापुराण' में वर्णित जयकुमार की कथा से करते हैं तो ज्ञात होता है कि महाकवि ने 'जयोदय' के कथानक में परिवर्तन तो किए हैं पर परिवर्धन कोई नहीं किया है।

(ङ) वीरोदय महाकाव्य के कथानक का स्रोत

'वीरोदय' महाकाव्य के कथानक का स्रोत महापुराण का तृतीय भाग उत्तरपुराण है, जिसमें पर्व ७४ से ७६ तक भगवान् महावीर की कथा बड़े विस्तार से वर्णित है। इस कथा का सारांश इस प्रकार है :—

विदेह क्षेत्र में सीता नदी के किनारे पर स्थित पुष्कलावती नाम के देश की पुण्डरीकिणी नगरी में मधु नामक वन है। उस वन में पुरुरवा नाम का भीलराज अपनी स्त्री कालिका के साथ रहता था। इस भील ने क्रमशः सौधर्म स्वर्ग के देव और ऋषभदेव के पौत्र मरीचि के रूप में जन्म लिया। यह अपने बत्तीसवें जन्म में अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु वाला श्रेष्ठ इन्द्र हुआ।

विदेह देश में स्थित कुण्डनपुर में राजा सिद्धार्थ का राज्य था; उनकी रानी प्रियकारिणी ने आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में सोलह स्वप्न देखे; साथ ही मुख में प्रवेश करते हुए एक अन्य हाथी को भी देखा। प्रातःकाल स्नान करने के बाद स्वप्नों का फल जानकर वह अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई। इसी बीच सभी देवगणों ने रानी का अभिषेक किया; और देवी-देवों को उसकी सेवा में नियुक्त किया। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन रानी प्रियकारिणी ने अच्युतेन्द्र नाम के कुलभूषण पुत्र को जन्म दिया।

प्रियकारिणी के पुत्र को सौधर्मेन्द्र ने स्वर्ग से आकर ऐरावत हाथी पर चढ़ाया; और सुमेरु पर्वत पर ले जाकर उसका अभिषेक किया; स्तुति की; और उसे उसने वीर और वर्धमान, दो नाम भी दिये। तत्पश्चात् बालक को उसके माता-पिता को दे दिया; श्रीवर्धमान को प्रणाम करके देवगणों सहित इन्द्र ने स्वर्ग को प्रस्थान किया।

श्रीवर्धमान की आयु बहत्तर वर्ष थी; और वह सात हाथ ऊँचे थे। संजय और विजय नाम के दो चारण मुनियों ने उनका दर्शन करके उनका नाम सन्मति रखा।

एक बार इन्द्र की सभा में भगवान् की शूरवीरता की प्रशंसा हो रही थी, तब संगम नामक देव ने सर्प का रूप धारण करके श्रीवर्धन की परीक्षा लेनी चाही। सर्प को देखकर वर्धमान के साथ खेलने वाले बालक डर कर भाग गये, किन्तु वर्धमान ने निर्भय होकर उस सर्प पर चढ़कर क्रीड़ा की। कुमार की क्रीड़ा से प्रसन्न होकर संगम ने श्रीवर्धमान की स्तुति करके उनका नाम 'महावीर' रख दिया।

जब भगवान् तीस वर्ष की अवस्था पार कर चुके तब उन्हें आत्मज्ञान हुआ; और सभी पूर्वजन्मों का स्मरण हो गया। इस समय देवगणों ने उनकी स्तुति की। भगवान् चन्द्रप्रभा नाम की पालकी पर सवार हुए। उस पालकी को पृथ्वी के राजाओं

ने फिर विद्याधर राजाओं ने और फिर इन्द्रों ने उठाया। षण्ड वन में पहुंचकर भगवान् पालकी से उतर गए और शिला पर बैठ गए। मार्गशीर्ष की कृष्णपक्ष की दशमी तिथि को उन्होंने अपने वस्त्राभूषण त्यागकर संयम धारण कर लिया। इन्द्र ने भगवान् के वस्त्राभूषण और केशों को उठा लिया। उसने देवगणों के साथ जाकर क्षीरसागर में उन वस्तुओं को विसर्जित कर दिया। इसी समय भगवान् को मनः पर्यय ज्ञान की प्राप्ति हुई। देवगण उनकी स्तुति करते हुये अपने-अपने स्थानों को चले गये।

व्रत की पारणा के लिए भगवान् कूलग्राम पहुंचे। वहाँ पर राज्य करने वाले कूल नामक राजा ने उनके दर्शन किये; उनकी तीन प्रदक्षिणा करके उन्हें बार-बार प्रणाम किया। उत्तम आसन पर बिठाकर उसने भगवान् को खीर का आहार समर्पित किया। इसके बाद एकान्त में तपश्चरण की इच्छा से भगवान् किसी तपोवन में पहुँचे और दश प्रकार के धर्म्यध्यान के चिन्तन में लीन हो गये।

एक दिन उज्जयिनी नगरी के अतिमुक्तक श्मशान में प्रतिमायोग में स्थित भगवान् महावीर के धैर्य्य की महादेव रुद्र ने परीक्षा लेनी चाही। उसने भगवान् को विचलित करने के लिए अनेक भयंकर कर्म किये, किन्तु अपनी चेष्टा में असफल होकर उसने भगवान् के महति और महावीर दो नाम रखे; और उनकी स्तुति करके चला गया।

राजा चेटक की पुत्री चन्दना को किसी विद्याधर ने अपनी स्त्री के भय से महाटवी में छोड़ दिया। वहाँ किसी भील ने उस कन्या को उठाकर वृषभदत्त सेठ को दे दिया। सेठ की शंकालु स्त्री सुभद्रा ने चन्दना पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये। भगवान् महावीर के दर्शनों से उसके बन्धन समाप्त हो गए। उसने भगवान् का स्वागत करके उन्हें आहार दिया, फलस्वरूप वह अपने सम्बन्धियों के पास पहुँच गई।

छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष व्यतीत करने के बाद जृम्भिक ग्राम के ऋजुकूला नदी के तटवर्ती मनोहर नामक वन के मध्य में रत्नमयी शिला पर बैठकर भगवान् प्रतिमायोग में स्थित हो गये। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन वह क्षपणक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। शुक्लध्यान के द्वारा घातिया कर्मों को नष्ट करके उन्होंने कैवल्यज्ञान प्राप्त कर लिया। इसी बीच सौधर्मेन्द्र ने देवगणों के साथ आकर उनकी पूजा की। समवशरण की रचना के पश्चात् भगवान् परमेष्ठी और परमात्मा पदों से सुशोभित हुए।

इस समय इन्द्र की प्रेरणा से गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण भगवान् के पास आया। भगवान् का उपदेश सुनकर वह उनका शिष्य बन गया। सौधर्मेन्द्र ने उसकी पूजा की। इन्द्रभूति ने पाँच सौ ब्राह्मणों के साथ भगवान् को नमस्कार करके

संयम धारण किया। गौतम इन्द्रभूति भगवान् का प्रथम गणधर बना। उसके बाद वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म इत्यादि दश गणधर और हुए। भगवान् के समीप तीन सौ ग्यारह अंग, चौदह पूर्वों के धारक, नौ हजार-नौ सौ संयम को धारण करने वाले शिक्षक, एक हजार तीन सौ अवधिज्ञानी, सात सौ केवलज्ञानी परमेष्ठी, नौ सौ विक्रिया ऋद्धि के धारक, पाँच सौ मनःपर्ययज्ञानी, चन्दनादि छत्तीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें, अनेक देव-देवियाँ और तिर्यञ्च थे। भगवान् का उपदेश सुनकर अनेक लोग लाभान्वित हुए। धर्म का उपदेश देते हुए भगवान् राजगृह पहुँचे और वहाँ विपुलाचल पर स्थित हो गए। राजगृह का राजा श्रेणिक और उनका पुत्र अभयकुमार भगवान् के दर्शनों के लिए गए। राजा और राजकुमार ने गणधर स्वामी से अपने पूर्वजन्मों के विषय में सुना; और अन्य केवली और आर्यिकाओं इत्यादि के वृत्तान्त भी सुने।

राजा श्रेणिक को इन्द्रभूति गणधर ने भगवान् का अग्रिम कार्यक्रम बताया कि अनेक देशों में विहार करते हुए भगवान् अन्त में पावापुर जायेंगे, वहाँ के मनोहर नामक वन में अनेक सरोवरों के बीच मणिमयी शिला पर विराजमान होंगे। दो दिन तक वहाँ स्थित रहकर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन रात्रि के अन्तिम समय में शुक्लध्यान करेंगे। फिर एक हजार मुनियों के साथ मोक्षपद प्राप्त करेंगे। इन्द्र आकर अग्नीन्द्र कुमार के मुकुट से प्रज्वलित होने वाली अग्नि की शिखा पर भगवान् का शरीर रखेंगे; उनकी पूजा करेंगे। इस प्रकार भगवान् निर्वाण को प्राप्त करेंगे।

भगवान् के निर्वाण के बाद गौतम इन्द्रभूति को कैवल्यज्ञान की प्राप्ति होगी। गौतम इन्द्रभूति के बाद सुधर्म गणधर कैवल्य ज्ञान प्राप्त करेंगे। जम्बूस्वामी अन्तिम केवली होंगे। इसके बाद नन्दी मुनि, श्रेष्ठी धनमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु मुनि श्रुतकेवली होंगे। इसके बाद विशाखार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और बुद्धिमान् धर्मसेन जैनधर्म के अनुयायी होंगे। नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंसार्य ग्यारह अंगों को जानने वाले होंगे। सुभद्र, यशोभद्र, प्रकृष्ट, बुद्धिमान्, यशोबाहु और चौथे लोहाचार्य चार आचारांगों के ज्ञाता होंगे।[1] (यह कथा यहीं समाप्त हो जाती है)

(च) मूलकथा में परिवर्तन और परिवर्धन

महाकवि श्रीज्ञानसागर ने महापुराण में वर्णित महावीर की कथा में ही परिवर्तन नहीं किया है अपितु उसके क्रम में भी परिवर्तन किया है। उनके द्वारा किए गए परिवर्तन इस प्रकार हैं :—

(क) 'महापुराण' में महावीर की कथा का प्रारम्भ उनके पूर्वजन्मों के

१. गुणभद्राचार्य विरचित महापुराण (उत्तरपुराण), पर्व ७४ से ७६ तक।

वर्णन से किया गया है।[1] इसके विपरीत 'वीरोदय' में कथा का प्रारम्भ कुण्डनपुर नगर-वर्णन से किया गया है।[2] इसमें पूर्वजन्मों का वर्णन बाद में है।

(ख) 'महापुराण' में भगवान् महावीर के पूर्वजन्मों का जितने विस्तार से वर्णन किया गया है,[3] उतने विस्तार से 'वीरोदय' में नहीं किया गया है।[4]

(ग) 'महापुराण' में पूर्वजन्मों की कथा पुरुरवा भील के भव से प्रारम्भ की गई है, जिसमें भील का पूर्ण परिचय दिया गया है।[5] 'वीरोदय' में पूर्वजन्मों की कथा के वर्णन में ऋषभदेव के पौत्र मरीचि के जन्म का सर्वप्रथम उल्लेख है।[6]

(घ) 'महापुराण' में वर्णित भगवान् महावीर के जटिल, ब्राह्मण, सौधर्म स्वर्ग का देव, पुष्यमित्र ब्राह्मण, सौधर्म स्वर्ग का देव, अग्निसह नामक ब्राह्मण, स्वर्ग का सात सागर की आयु वाला देव, अग्निमित्र ब्राह्मण, माहेन्द्र स्वर्ग का देव, भरद्वाज ब्राह्मण और माहेन्द्र स्वर्ग का सात सागर की आयु वाला देव—इन दस भवों का वर्णन[7] 'वीरोदय' महाकाव्य में नहीं किया गया है।

(ङ) 'महापुराण' में वर्णित भगवान् के २३वें सिंह भव में उनको उपदेश देने वाले मुनियों का नाम अतिजय और अमितगुण बताया गया है।[8] 'वीरोदय' में मुनि के नाम का उल्लेख नहीं है।

(च) 'महापुराण' में बताया गया है कि यह सिंह मरकर सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हुआ,[9] किन्तु वीरोदय में स्वर्ग एवं देव का नामोल्लेख नहीं है।

(छ) 'महापुराण' में महावीर की माता प्रियकारिणी द्वारा देखे गये सोलह स्वप्नों का उल्लेख नहीं है, और इसका कारण यह है कि 'महापुराण' के रचयिता ने ऋषभदेव के जन्म-प्रसंग में ही तीर्थङ्कर की माता को दिखाई देने वाले स्वप्नों

---

१. गुणभद्राचार्य विरचित महापुराण (उत्तरपुराण), ७४।१५-१६
२. वीरोदय, २।२१
३. महापुराण (उत्तरपुराण), ७४।१-२५०
४. वीरोदय, ११।१-३६
५. महापुराण (उत्तरपुराण), ७४-१५-२२
६. वीरोदय, ११।८
७. महापुराण (उत्तरपुराण), ७४।६८-८०
८. वही, ७४।१७३
९. वही, ७४।२१९

का वर्णन कर दिया है ।[1] किन्तु 'वीरोदय' में रानी प्रियकारिणी द्वारा देखे गये स्वप्नों का विस्तार से वर्णन है ।[2]

(ज) 'महापुराण' में जिस तिथि को रानी ने स्वप्न देखे,[3] उसका भी उल्लेख 'वीरोदय' में नहीं है ।

(झ) 'महापुराण' में वर्णन मिलता है कि अभिषेक के समय इन्द्र ने भगवान् को वीर और वर्धमान ये दो नाम दिये ।[4] 'वीरोदय' में केवल 'वीर' नाम का ही उच्चारण इन्द्र द्वारा किया गया है ।[5] वर्धमान नाम सिद्धार्थ ने ही दिया ।[6]

(ञ) 'महापुराण' में भगवान् की आयु और लम्बाई का उल्लेख है,[7] 'वीरोदय' में इस बात का कोई संकेत नहीं किया गया है ।

(ट) संजय और विजय नाम के दो चारण मुनियों ने भगवान् का नाम 'सन्मति' रखा,[8] 'महापुराण' में उल्लिखित इस घटना का उल्लेख 'वीरोदय' में नहीं मिलता ।

(ठ) संगम देव ने सर्प का रूप धारण करके भगवान् के धैर्य्य की परीक्षा ली, और तत्पश्चात् भगवान् का नाम 'महावीर' रखा,[9] 'महापुराण' में वर्णित इस कथा का भी वर्णन 'वीरोदय' में नहीं है ।

(ड) जब भगवान् को आत्मज्ञान हुआ और पूर्वजन्मों का स्मरण हुआ, तब उनकी अवस्था तीस वर्ष की थी,[10] 'महापुराण' में उक्त बात का संकेत 'वीरोदय' में नहीं मिलता ।

(ढ) मनःपर्ययज्ञान प्राप्त करने से पूर्व भगवान् चन्द्रप्रभा नाम की पालकी पर सवार हुए । उस पालकी को पृथ्वी के राजाओं ने, फिर विद्याधर राजाओं ने, और फिर इन्द्र ने उठाया । षण्ड-वन में पहुंचकर भगवान् पालकी से उतर गये, और एक शिला पर बैठ गये । उनके द्वारा उखाड़े हुए केशों और वस्त्राभूषणों को उठाकर इन्द्र ने क्षीरसागर में विसर्जित कर दिया ।[11] 'महापुराण' के इस वर्णन का 'वीरोदय' में अभाव है ।

---

१. महापुराण (आदिपुराण, भाग-२), १२।१०२-१२०
२. वीरोदय, ४।२७।६१
३. महापुराण (उत्तरपुराण), ७४।२५३
४. वही, ७४।२७६
५. वीरोदय, ७।३१
६. वही, ८।६
७. महापुराण (उत्तरपुराण), ७४।२७६-२८१
८. वही, ७४।२८२-२८३
९. वही, ७४।२८७-२९५
१०. वही, ७४।२९६-२९७
११. वही, ७४।३०५-३०९

(ण) व्रत की पारणा के लिए भगवान् का कूलग्राम जाना, वहाँ के राजा कूल से आदर प्राप्त करना, तत्पश्चात् दश प्रकार के धर्म्यध्यान में लीन होना इत्यादि[1] 'महापुराण' में वर्णित बातों का वर्णन 'वीरोदय' में नहीं है।

(त) 'महापुराण' में वर्णित महादेव रुद्र द्वारा ली गई भगवान् की परीक्षा का उल्लेख[2] भी 'वीरोदय' में नहीं है।

(थ) राजा चेटक की पुत्री चन्दना का उल्लेख भी 'महापुराण' में ही है[3] 'वीरोदय' में नहीं।

(द) 'महापुराण' में वर्णन है कि जृम्भिक ग्राम के समीपस्थ ऋजुकूला नदी के तटवर्ती मनोहर नामक वन में भगवान् को कैवल्यज्ञान प्राप्त हुआ।[4] 'वीरोदय' में इन स्थानों का उल्लेख नहीं है।

(ध) 'महापुराण' में वर्णन है कि समवशरण मण्डप में भगवान् से प्रभावित होने के पश्चात् इन्द्रभूति भगवान् का प्रथम गणधर बना। राजा श्रेणिक को उसी ने बताया कि भगवान् मोक्ष कब प्राप्त करेंगे।[5] 'वीरोदय' में यह बात इन्द्रभूति से नहीं कहलवाई है, और न ही भगवान् के अग्रिम कार्यक्रम के रूप में उसका उल्लेख है। कवि ने क्रमशः घटित होने वाली घटनाओं के रूप में इनको प्रस्तुत किया है।[6]

(न) 'महापुराण' में स्थान-स्थान पर भगवान् के उपदेश का उल्लेख मात्र है,[7] किन्तु 'वीरोदय' में भगवान् के उपदेशों का विस्तार से वर्णन है।[8]

मूलकथा में परिवर्धन—

(क) 'महापुराण' में भगवान् का अभिषेक कराने के लिए इन्द्रादि देवगणों के साथ इन्द्राणी के आने का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु 'वीरोदय' में प्रसूतिकक्ष से भगवान् को बाहर लाने का, अभिषेक के पश्चात् वस्त्राभूषण धारण कराने का कार्य इन्द्राणी द्वारा ही वर्णित है।[9]

---

१. महापुराण (उत्तरपुराण), ७५।३१८-३३०
२. वही, ७३।३३१-३३७
३ वही, ७४।३३८-३४७
४. वही, ७४।३४८-३५५
५. वही, ७४।३७१, ७६।५१२
६. वीरोदय, १४।१, २१।२१
७. महापुराण (उत्तरपुराण), ७४।३५६, ३६६-३७०, ३८४
८. वीरोदय, १४।२४।४३, १६।२-३० तथा १७।१९ सर्ग।
९. वही, ७।१३, ३५, ३६

(ख) 'महापुराण' में 'वीरोदय' में वर्णित इस बात का उल्लेख नहीं मिलता कि जब इन्द्र भगवान् महावीर का जन्माभिषेक करके स्वर्ग चला गया, तब राजा सिद्धार्थ ने पुनः उनका जन्माभिषेक किया।[1]

(ग) 'महापुराण' में 'वीरोदय' में वर्णित इस बात का भी उल्लेख नहीं मिलता कि भगवान् के युवक होने पर उनके विवाह का प्रस्ताव आया, जिसे उन्होंने अस्वीकृत कर दिया।[2]

(घ) 'वीरोदय' में उक्त घटना के बाद ही भगवान् के विरक्त होने का वर्णन है।[3] यह वर्णन भी 'महापुराण' में नहीं मिलता।

(ङ) 'वीरोदय' में पौराणिक आख्यानों और ऋषभदेव से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन है।[4] 'महापुराण' में भगवान् के उपदेश के बीच में इन कथाओं का उल्लेख नहीं है।

(च) भगवान् महावीर के पश्चात् जैन-धर्म में ह्रास और परिवर्तन का जो वर्णन 'वीरोदय' में किया गया है,[5] वह 'महापुराण' में नहीं है।

(छ) सुदर्शनोदय महाकाव्य के कथानक का स्रोत

'सुदर्शनोदय' के नायक सुदर्शन की कथा हमें अनेक पूर्ववर्ती कवियों द्वारा रचित कथाकोशों एवं काव्यों में देखने को मिलती है, जिनमें (क) हरिषेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोश, (ख) मुनि नयनन्दि कृत सुदंसणचरिउ, (ग) रामचन्द्रमुमुक्षुकृत पुण्यास्रव कथाकोश (घ) नेमिदत्ताचार्यकृत आराधनाकथाकोश (ङ) सकलकीर्तिकृत सुदर्शनचरित और (च) विद्यानन्दिविरचित सुदर्शनचरित उल्लेखनीय हैं। क्रमशः इन सबका सारांश प्रस्तुत है—

बृहत्कथाकोश में वर्णित 'सुभग गोपाल' के कथानक का सारांश—

अंगदेश में विद्यमान चम्पापुरी में दन्तिवाहन नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा की रानी का नाम अभया था। रानी की पण्डिता नाम की एक दासी थी। इसी नगर में ऋषभदास नामक सेठ अपनी स्त्री जिनदासी के साथ रहता था। इस सेठ की भैंसों को सुभग नाम का ग्वाला चराया करता था।

एक दिन सुभग भैंसों को चराने के लिए जंगल में गया। लौटते समय मार्ग में उसने शीतकाल में एक चारणमुनि को तप करते हुए देखा। घर आकर वह सो गया। मुनि के गुणों पर आकृष्ट होकर वह प्रातःकाल पुनः भैंसों को लेकर उसी दिशा की ओर चल पड़ा। वहाँ मुनि को नमोऽर्हते मन्त्रोच्चारणपूर्वक

---

१. वीरोदय, ८।१-६
२. वही, ८।२२-४६
३. वही, नवम सर्ग।
४. वही, ८।३६-४१, १७।२०, ३७, १८।११-४३
५. वही, २२वाँ सर्ग,

आकर वह सो गया। मुनि के गुणों पर आकृष्ट होकर वह प्रातःकाल पुनः भैंसों को लेकर उसी दिशा की ओर चल पड़ा। वहाँ मुनि की 'नमोऽर्हते' मन्त्रोच्चारण पूर्वक आकाशगामिनी विद्या को देखकर स्वयं भी उसे प्राप्त करने की इच्छा करने लगा। सेठ ने उसे जिननाम लेने को मना किया। तब सेठ को मुनि का वृत्तान्त सुनाकर उसने जिननाम छोड़ने में अपनी असमर्थता प्रकट की। सुअर गोप की बात सुनकर सेठ ने उसे जिननाम लेने की अनुमति दे दी।

एक दिन सेठ की भैंसें गंगा में उतर कर दूसरी ओर एक खेत में पहुँच गईं। यह देखकर ग्वाला उन्हें लाने के लिए जब वेगपूर्वक नदी में कूदा तो एक लकड़ी की नोक के शिर में चुभ जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

तत्पश्चात् ग्वाले का जीव सेठ की पत्नी जिनदासी के गर्भ में आ गया। गर्भावस्था के नौ महीने बीतने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। सुदर्शन क्रमशः सब विद्याओं और कलाओं को प्राप्त करता हुआ युवावस्था में पहुँच गया।

चम्पापुर में ही सागरसेन नामक सेठ रहता था। उसकी स्त्री सागरसेना से मनोरमा नाम की पुत्री ने जन्म लिया। इसी मनोरमा से सुदर्शन का विवाह हो गया। मनोरमा ने सुकान्त नामक पुत्र को जन्म दिया।

ऋषभदास ने सुदर्शन को सेठ का पद देकर स्वयं समाधिगुप्त मुनि के समीप दीक्षा धारण कर ली।

सुदर्शन का मित्र कपिल ब्राह्मण राजा का पुरोहित था। उसकी कपिला नाम की स्त्री सुदर्शन के गुणों पर आसक्त हो गई। एक दिन किसी दूती के द्वारा संदेश को पहुँचाकर उसने सुदर्शन को अपने पास बुलवाया। उसके घर आकर सुदर्शन ने कपिल के विषय में पूछा। तब कपिला ने कहा कि वह अन्दर सो रहे हैं, तुम शीघ्र जाओ। अन्दर जाकर, अपने मित्र को न पाकर सुदर्शन ने पुनः कपिल के विषय में पूछा। तब कपिला ने पुनः कहा कि वह घर में नहीं है और यदि तुम मेरा इच्छित कार्य नहीं करोगे तो मैं तुम्हारा वध करवा दूंगी। कपिला के निन्दित वचन सुनकर एवं चेष्टाएँ देखकर सुदर्शन ने अपने को पौरुषहीन बता दिया। यह सुनकर कपिला ने विरक्त होकर उसे विदा कर दिया।

एक दिन राजा दन्तिवाहन कपिल और सुदर्शन के साथ उपवन में विहार करने को गया। रानी अभया, कपिला और मनोरमा भी शिविका में बैठकर वन जाने के लिए निकलीं। मार्ग में अभया ने कपिला से पूछा कि पुत्रादि से युक्त यह किसकी स्त्री है? कपिला ने उत्तर दिया कि यह सुदर्शन की भार्या है। कपिला के वचन सुनकर रानी ने पुत्रवती मनोरमा की प्रशंसा की। रानी के वचन सुनकर कपिला हँसकर बोली कि युवतियाँ तो कौशल से पुत्रों को उत्पन्न करती हैं। रानी ने मनोरमा के पातिव्रत्य की बात कहकर उसकी इस कठोर बात को कहने का

कारण पूछा, तब कपिला ने कहा कि सुदर्शन ने मुझे बताया था कि वह नपुंसक है। कपिला के वचन सुनकर रानी ने कहा कि तुम ठगी गई हो। सुदर्शन अपनी स्त्री के लिए नहीं, अन्य स्त्रियों के लिए नपुंसक है।

कपिला ने अभया को उसके पति की चुनौती देते हुए सुदर्शन को वश में करने के लिए कहा। अभया ने कह दिया कि मैं सुदर्शन को वश में करने में समर्थ हूँ।

राजमहल पहुँचकर रानी ने अपनी पण्डिता धाय को बुलाया और लज्जा त्याग कर कहा कि सुदर्शन को शीघ्र ही मेरे घर ले आ, अन्यथा मैं प्राण त्याग दूंगी। पण्डिता ने इसे अशोभन कार्य समझकर रानी को बहुत समझाया। तब रानी ने कहा कि मैंने कपिला ब्राह्मणी के सम्मुख प्रतिज्ञा की है कि यदि वह मेरे द्वारा प्रसन्न नहीं किया गया तो मैं प्राण त्याग दूंगी। निरुपाय दासी ने अभया से कहा कि पर्व के दिनों में रात्रिवेला में एकान्त में वह सुदर्शन स्थिरचित्त होकर बैठा रहता है। तभी उपाय सहित उसको लाया जायगा।

इसके बाद वह दासी कुम्भकार के घर गई और उसने कुम्भकार से सात मिट्टी के पुतले बनवाये। उनमें से एक पुतले को वस्त्र से ढककर प्रतिपदा के दिन दासी रानी के महल की ओर चली तो द्वारपाल ने उसे रोका। द्वारपाल के प्रश्नों को सुनकर उसने कह दिया कि जो मुझे अच्छा लग रहा है, वही लेकर जा रही हूँ, तुम्हारा क्या नुकसान है? तब क्रोध में भरकर द्वारपाल ने उसका उत्तरीय पकड़कर खींचा, फलस्वरूप पुतला जमीन पर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। शोक से कम्पित शरीर वाली पण्डिता ने कहा कि यह पुतला मैं अष्टमीतिथि के पूजन के लिए ले जा रही थी, इसके पूजन के पश्चात् ही रानी भोजन करेगी। किन्तु वह पुतला तुम्हारे द्वारा नष्ट कर दिया गया। बिना पुतले के मुझे देखकर रानी पीड़ित होंगी। कल इस वृत्तान्त को राजा से कहकर मैं तुम्हारा सिर अवश्य ही कटवा दूंगी।

दासी के वचनों से डरकर द्वारपाल ने उससे अनुनय की और दासी को उसका इच्छित कार्य करने की अनुमति दे दी। द्वारपाल के वचनों से दासी सन्तुष्ट हो गई।

तत्पश्चात् अष्टमी तिथि के दिन जब दासी ने श्मशान में प्रतिमायोग में स्थित सुदर्शन को देखा तब सुदर्शन को उठाकर वह रानी के पास ले गई। रानी की दुश्चेष्टाओं से अप्रभावित सुदर्शन निश्चल ही बैठा रहा। अन्त में 'इस श्रेष्ठी ने मेरा भोग कर लिया, शीघ्र ही आओ', इस प्रकार के रानी के वचनों से रुष्ट राजा ने लोगों से कहा कि शीघ्र ही श्मशान ले जाकर इसका शिरच्छेद कर दो। श्मशान में ले जाकर जैसे ही वे उसे तलवार से मारने को उद्यत हुए कि तलवार सुदर्शन के गले में पुष्पमाला के रूप में स्थित हो गई। यह घटना होते ही विस्मित

हुए सभी लोग सुदर्शन की प्रशंसा करने लगे। प्रतिहारी से यह समाचार पाकर राजा दन्तिवाहन [illegible] राज्य ग्रहण करने की विनती की। सुदर्शन ने राजा के सामने भोग विलासों के प्रति अपनी अनिच्छा प्रकट कर दी।

राजा और सुदर्शन परस्पर वार्तालाप कर ही रहे थे कि इतने में ही विमलवाहन नामक विद्वान् वहाँ आये। सुदर्शन ने सर्वपरिग्रह त्याग करके उनसे दीक्षा की याचना की। विमलवाहन ने सुदर्शन को दैगम्बरी दीक्षा दे दी।

सुदर्शन का यह समाचार जानकर रानी ने आत्मघात कर लिया। वह मरकर पाटलिपुत्र में व्यन्तरी हुई। राजा के डर से पण्डिता धाय ने भी अभयमती को छोड़ दिया और पाटलिपुत्र चली गई। वहाँ पर वेश्याओं के समूह सुदर्शन का वृत्तान्त सुनाकर देवदत्ता नाम की वेश्या के घर रहने लगी।

एक बार सुदर्शन मुनि भ्रमण करते हुए पाटलिपुत्र पहुँचे। पण्डिता दासी ने देवदत्ता को सुदर्शन के दर्शन कराए। देवदत्ता ने कहा कि कपिला ब्राह्मणी और रानी अभया कामशास्त्र में अभिज्ञ थी मैं इस मुनि के हृदय में चंचलता का सञ्चार करूँगी। ऐसा कहकर देवदत्ता ने भोजन करने के बहाने से दासी द्वारा सुदर्शन को घर बुलवाया। योगी सुदर्शन देवदत्ता के घर आये। जैसे ही उन्होंने घर में प्रवेश किया, वेश्या ने द्वार बन्द कर दिया। तीन दिन तक उसने तरह-तरह की कामचेष्टाएँ की। सुदर्शन के ऊपर इन चेष्टाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मुनि के चित्त को चलित न जानकर देवदत्ता भयभीत होकर उनसे क्षमा याचना करने लगी। रात्रि में ही सुदर्शन ने विहार कर दिया और प्रातः मुनिवर घर आ गई।

अगहनवदी दशमी के सायं प्रकार से आहार त्याग कर सुदर्शन प्रतिमायोग में स्थिर हो गये। उस दासी ने व्यन्तरी के रूप में सात दिन तक उनके साथ कठोर चेष्टायें की। सात दिन बीत जाने पर सुदर्शन के घातिया कर्म नष्ट हो गये और उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हो गई। गुणवती सुदर्शन छत्र इत्यादि से सुशोभित होने लगे। इसके बाद सुदर्शन मुनि के पास देवगण आये।

देवदत्ता, पण्डिता धाय एवं व्यन्तरी सुदर्शन केवली के समीप में गई। वहाँ देवगणों के सम्मुख धर्मोपदेश देते हुए, सुदर्शन के वाक्य सुनकर इन तीनों ने श्रावक धर्म ग्रहण कर लिया।[1]

मुनि नयनन्दि विरचित 'सुदंसणचरिउ' का सारांश

राजगृह के शासक राजा श्रेणिक के पूछे जाने पर गौतम गणधर ने पंचनमस्कार मन्त्र को प्राप्त करने वाले भव्यों के विषय में कहा—

१. हरिषेणाचार्य विरचित बृहत्कथाकोश, सुभगगोपालकथानकम्, ६०वीं कथा।

अंगदेश में स्थित चम्पापुरी में धाईवाहन नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम अभया था। इसी नगर में सेठ ऋषभदास अपनी स्त्री अर्हद्दासी के साथ रहता था। उनका सुभग नाम का एक ग्वाला था। एक बार सेठ ने देखा कि सुभग ग्वाला प्रत्येक कार्य करने के पूर्व 'नमोऽर्हते' मन्त्र का स्मरण करता है। उसने उसको डाँटा और मन्त्रोच्चारण का कारण पूछा। तब ग्वाले ने सेठ से कहा—माघ के महीने में, भयानक जंगल में, सन्ध्या के समय एक दिगम्बर मुनि को मैंने देखा। उनकी वन्दना के बाद घर आया। रात्रि समाप्त होने पर मैं प्रातःकाल अग्नि लेकर उनके पास गया। मैंने अपने हाथ गर्म करके बार-बार उनके शरीर का स्पर्श किया। सूर्योदय होते ही मुनि ने पैंतीस अक्षरों का उच्चारण करने के बाद आकाशमार्ग में विहार किया। मैं उन्हीं अक्षरों का स्मरण किया करता हूँ। अन्त में सेठ ने उसे मन्त्रोच्चारण की आज्ञा दे दी।

एक बार वह ग्वाला नदी को गया। वहाँ वह अन्य ग्वालों के साथ क्रीड़ा करने लगा। उसी समय एक खेत का रखवाला घबराता हुआ उसके समीप आया और बोला कि तुम्हारी गायें नदी के दूसरे तट की ओर गम्भीर जल में पहुँच गई हैं। यह सुनकर क्रीड़ा छोड़कर वह मंत्र का स्मरण करके नदी में कूद पड़ा। जल के मध्य में एक नुकीला ठूँठ था, जो उसके हृदय में चुभ गया। पीड़ा को भूलकर उसने अन्त में निदान किया कि मंत्र के उच्चारण के फल में मेरा जन्म उसी वणिक्कुल में हो।

सुभग गोप के जीव के जन्म लेने के पूर्व अर्हद्दासी ने सोते समय पाँच स्वप्न देखे—विशालपर्वत, कल्पतरु, अमरेन्द्रगृह, विशालसमुद्र और शोभायुक्त अग्नि। प्रातःकाल अपने पति के पास जाकर उसने अपने स्वप्नों के विषय में बताया दोनों परस्पर परामर्श करके जिनमन्दिर को गये। वहाँ एक मुनि ने स्वप्नों के परिणाम के विषय में पूछने पर उन्होंने बताया कि तुम्हारा पुत्र पर्वत देखने के कारण सुधीर, कल्पतरु देखने के कारण दानी, अमरेन्द्र का गृह देखने के कारण देववन्द्य, समुद्र को देखने के कारण गंभीर और अग्नि को देखने के कारण पापों को नष्ट करने वाला होगा। अनेक गुणों से युक्त तुम्हारा पुत्र अन्त में मोक्षपद को प्राप्त करेगा। यह सुनकर वे मुनि को प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक घर लौट आये। सुभगगोप के जीव ने सेठानी के गर्भ में प्रवेश किया।

पौष मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि, बुधवार के दिन, अर्हद्दासी ने पुत्र को जन्म दिया। सेठ के घर में बड़ी धूम-धाम से पुत्र-जन्मोत्सव सम्पन्न किया गया।

जन्म के ग्यारहवें दिन अर्हद्दासी पुत्र के नामकरण के लिए जिनमन्दिर गई। वहाँ एक मुनिराज ने बालक का नाम सुदर्शन रखा। जब सुदर्शन आठ वर्ष का हुआ, तब सेठ और सेठानी उसे विद्या दिलाने के लिये एक मुनिराज के पास गये।

मुनि से विद्या प्राप्त करने के बाद सुदर्शन सोलह साल का युवक हो गया, तब समस्त नर-नारी उससे प्रतिशय प्रेम करने लगे।

नगर में भ्रमण करते हुए सुदर्शन की मैत्री गुणों से सम्पन्न कपिल ब्राह्मण से हो गई। एक दिन वे दोनों मित्र जब बाजार मार्ग से चल रहे थे, तब उन्होंने एक सुन्दरी बाला को देखा। सुदर्शन ने कपिल से उस रूपवंती बाला का परिचय पूछा। कपिल ने बताया कि यह सागरदत्त सेठ की सागरसेना नाम की स्त्री से उत्पन्न मनोरमा नाम की कन्या है। उस बाला को देखकर और उसका परिचय पाकर सुदर्शन काम के वशीभूत हो गया। कपिल ब्राह्मण ने सुदर्शन को स्त्रियों के लक्षणों का उपदेश दिया। अपने मित्र के वचन सुनकर और उसकी प्रशंसा करके व्याकुल सुदर्शन घर चला गया। मनोरमा भी बार-बार सुदर्शन का स्मरण करके व्याकुल होने लगी।

सुदर्शन की अवस्था देखकर सेठ वृषभदास ने उसका विवाह कराने का विचार किया। तब उसे ध्यान आया कि एक बार द्यूतक्रीड़ा के समय सेठ सागरदत्त ने कहा था कि यदि मेरी पुत्री उत्पन्न हुई तो उसका विवाह तुम्हारे पुत्र से किया जायगा। जैसे ही सेठ वृषभदास मनोरमा को अपने पुत्र के लिए माँगने का विचार कर रहा था कि उसी समय सेठ सागरदत्त वहाँ आ पहुँचा। ऋषभदास की इच्छा जानकर सेठ सागरदत्त प्रसन्नतापूर्वक ताम्बूल लेकर श्रीधर ज्योतिषी के पास पहुँचा और उससे विवाह हेतु लग्न पूछा। श्रीधर ने बताया कि वैशाखमास में, शुक्लपक्ष में, पञ्चमी तिथि को रविवार के दिन, मिथुन लग्न ही उत्तम लग्न है।

तिथि का निश्चय हो जाने पर दोनों सेठों ने पुत्र-पुत्री के विवाह की तैयारियाँ कीं। मध्याह्न के समय उन दोनों के पुत्र एवं पुत्री का परस्पर विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह के पश्चात् भोगविलास करते हुए उनका सुकान्त नाम का पुत्र हुआ।

एक बार समाधिगुप्त नामक मुनि अपने संघ सहित उपवन में आये। सेठ वृषभदास भी उनके दर्शन करने के लिए गया। ऋषभदास के पूछने पर उन्होंने उसे धर्म का स्वरूप बताया। मुनि के वचन सुनकर सेठ ने घर आकर सुदर्शन को लोकव्यवहार की शिक्षा दी और अपने वन जाने की इच्छा भी प्रकट कर दी। पुत्र ने भी तप करने की इच्छा प्रकट की तो सेठ ने उसे कुल का भार ग्रहण करने को कहा। पुत्र को समझाकर सेठ और सेठानी समाधिगुप्त को प्रणाम करके तपस्या के पश्चात् देवलोक को गये।

पिता के बाद सुदर्शन सुखपूर्वक दिवस व्यतीत करने लगा। कपिल भट्ट की स्त्री कपिला ने जब सुदर्शन के सौन्दर्य के विषय में सुना तो मोहित हो गई। अपनी सखी के पंचम राग गाने पर भी उसका मन शान्त नहीं हुआ। कपिला की विरह वेदना को जानकर सखी ने मार्ग में जाते हुए सुदर्शन को देखकर कपिला को उसका दर्शन करवाया। कपिला ने अपनी सखी के सुदर्शन को घर ले आने के लिए

कहा। सखी सुदर्शन के पास गई और मित्र के मस्तक में वेदना के बहाने से शीघ्र ही उसको घर ले आई। जब उसने अपने मित्र के विषय में पूछा तब कपिला ने उसका हाथ पकड़कर रतिसुख की कामना की। सुदर्शन ने कहा मैं तो नपुंसक हूँ। यह सुनते ही विरक्त होकर कपिला ने उसका हाथ छोड़ दिया।

कुछ दिनों पश्चात् वसन्तऋतु के आगमन पर वनपाल ने राजा को उपवन में आने का निमन्त्रण दिया। राजा-रानी, सुदर्शन-मनोरमा और कपिल एवं कपिला उद्यान-विहार के लिए गए।

मनोरमा को देखकर रानी ने उसकी प्रशंसा की। रानी के वचन सुनकर कपिला ने बताया कि मनोरमा पुत्रवती कैसे हो सकती है? क्योंकि इसके पति की नपुंसकता के विषय में मैंने किसी से सुना है। तब रानी ने चतुराई से कपिला का सारा वृत्तान्त जान लिया। उसने कपिला से कह दिया कि वह ठगी गई है, तब कपिला ने रानी से कहा कि मैं तो साधारण ब्राह्मणी हूँ और तुम राजरानी हो, अतः तुम ही उस सुदर्शन का चित्त चंचल करके दिखा दो। रानी अभया ने कपिला के वचन सुनकर प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सुदर्शन के साथ रमण करने में असमर्थ हो जाऊंगी तो गले में फाँसी लगाकर आत्मघात कर लूंगी। उद्यानक्रीड़ा और जलक्रीड़ा के बाद रानी ने शृंगार किया।

अभयादेवी राजमहल में आई और शय्या पर लेट गई। उसकी पंडिता धाय ने उसके अनमनेपन का कारण पूछा। रानी ने उसके आग्रह पर सम्पूर्ण वृत्तान्त और अपनी प्रतिज्ञा के विषय में बता दिया। पण्डिता ने रानी को समझाया, उसे हितोपदेश दिया, लेकिन अपनी प्रतिज्ञा की बात बताकर रानी अपने निश्चय पर दृढ़ रही। अन्त में पण्डिता ने रानी की बात मान ली।

(इसके आगे पुतलों द्वारा द्वारपालों को वश में करने का वृत्तान्त 'बृहत्कथा-कोश' के समान है।)

अष्टमी तिथि के दिन सुदर्शन, मुनि को प्रणाम करके उपवास लेकर श्मशान की ओर चल पड़ा। उसके मार्ग में अनेक अपशकुन आये। लेकिन सभी बाधाओं की चिन्ता किए बिना ही भयंकर श्मशान में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पहुँचकर जिनेन्द्रदेव का स्मरण करते हुए वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ा हो गया। रात्रि के समय पण्डिता दासी वहाँ पहुंची। उसने सुदर्शन को प्रणाम किया और रानी अभया के जीवन की रक्षा करने की प्रार्थना करने लगी। पण्डिता के वचनों का सुदर्शन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पण्डिता ने यह समस्त वृत्तान्त रानी अभया को सुना दिया। रानी ने पण्डिता को पुनः भेजा और कहा कि सुदर्शन को जबरदस्ती उठाकर ले आ। पुतले के बहाने से उसकी जिज्ञासा शान्त करती हुई पण्डिता धाय ने सुदर्शन को लेकर महल में प्रवेश किया। रानी के प्रासाद में पहुँचकर पण्डिता ने सुदर्शन को गड्ढे में डाल दिया। यह सब स्थिति देखकर सुदर्शन किंकर्तव्यमूढ़ हो गया। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि इस वृत्तान्त के बाद मेरा जीवन शेष रहा तो मैं तपश्चरण करूंगा।

रानी अभया ने सुदर्शन के रूप पर मोहित होकर अनेक मधुर वचन कहे; भाँति-भाँति की कामचेष्टाओं में संलग्न रही। अन्त में क्रुद्ध होकर सुदर्शन को फटकारा। पुनः अभया ने सुदर्शन को धमकी दी। जब सुदर्शन के मन में कोई भी अन्तर नहीं पाया, वह जरा भी व्याकुल नहीं हुआ, तब रानी बहुत व्याकुल हो गई। सुदर्शन को उठाकर छोड़ने के लिए जैसे ही उसने कदम बढ़ाये कि प्रातःकाल हो गया। उसने सुदर्शन को पुनः बिस्तर पर डाल दिया। अपने शरीर पर नखों से प्रहार किया और छाती पीटकर कहने लगी कि इस बनिये ने मेरे सुन्दर अंगों को नोच डाला।

रानी की पुकार सुनकर अनेक वीरपुरुष धनुष बाण इत्यादि लेकर दौड़ पड़े। राजा को जैसे ही यह समाचार ज्ञात हुआ, उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि जाकर रानी की रक्षा करो, परपुरुष को पकड़कर शीघ्र ही मार डालो। राजा के वचन सुनकर मदोन्मत्त सेवकों ने सुदर्शन को घेर लिया।

यह समाचार जानकर सुदर्शन की पत्नी मनोरमा विलाप करती हुई उसी स्थल पर पहुंच गई। वह अपने अनुभूत सुखों का स्मरण करके अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। किन्तु सुदर्शन का अपने समक्ष होने वाली घटनाओं से कोई प्रयोजन न था। उसके मन में वैराग्य की भावना प्रबलतम रूप धारण कर रही थी।

इसी समय भटों ने सुदर्शन पर तलवार के प्रहार करने शुरू कर दिये। इतने में ही एक व्यन्तर ने आकर सभी भटों को रोक दिया और तलवारों के प्रहारों को पुष्पमालाओं के रूप में परिणत कर दिया। देवगणों ने आकाश से पुष्पवृष्टि की।

राजा ने उक्त समाचार सुनकर और भटों को भेजा। व्यन्तर ने उन भटों को भी भयभीत कर दिया। अन्त में क्रुद्ध होकर राजा स्वयं रणभूमि में पहुंच गया। राजा की एवं व्यन्तर की सेनाओं में घोर संग्राम हुआ। व्यन्तर की माया से भयभीत होकर राजा भागने लगा। तब व्यन्तर ने उसका पीछा किया और कहा कि तेरी रक्षा केवल सुदर्शन कर सकता है। व्यन्तर के वचन सुनकर राजा सुदर्शन की शरण में गया और प्राणों की याचना करने लगा। सुदर्शन ने राजा की रक्षा की। व्यन्तर ने सभी सैनिकों को जीवित कर दिया और राजा को रानी का सारा वृत्तान्त सुनाया। तब राजा भक्तिपूर्वक सुदर्शन से क्षमायाचना करने लगा। सुदर्शन से क्षमा प्राप्त करके राजा ने सुदर्शन को आधा राज्य देना चाहा, किन्तु सुदर्शन ने राजा की इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया।

राजा के बहुत रोकने पर भी सुदर्शन ने दैगम्बरी दीक्षा धारण की इच्छा प्रकट की। सुदर्शन का निश्चय दृढ़ जानकर राजा ने उसकी स्तुति की। राजा के नगर से पहुंचने तक अभया ने रस्सी का फंदा बनाकर वृक्ष पर लटककर आत्मघात कर लिया। मरकर वह पाटलिपुत्र नगर में व्यन्तरी हुई। पण्डिता भी डरकर पाटलिपुत्र की ओर भागी; और वहाँ देवदत्ता गणिका के यहाँ रहने लगी।

तत्पश्चात् सुदर्शन अपने पुत्र को अपना पद देकर बहुत से लोगों के साथ जिनमन्दिर गया। वहाँ उसने जिनेन्द्रदेव की स्तुति की। इसी बीच उसने मन्दिर में बैठे हुये विमलवाहन मुनि को देखा। उसने मुनि को प्रणाम करके उनसे अपने अन्य जन्मों के विषय में पूछा। मुनिराज ने बताया :—

विन्ध्य देश में स्थित कोसल प्रदेश की प्रजा को त्रस्त करने वाला व्याघ्र नाम का भील विन्ध्य पर्वत पर अपनी स्त्री कुरंगिणी के साथ रहता था। इस भील ने कोसल के राजा के सेनापति को भी पराजित किया। किन्तु राजकुमार लोकपाल ने उसका वध कर दिया। मरकर भील वत्सदेश में एक ग्वाले का कुत्ता हुआ। कुरंगिणी मरकर काशीदेश में भैंस हुई। कुत्ता मरकर चंपापुरी के सिंह की प्रिय सिंही सा पुत्र हुआ। यही मरकर सुभग ग्वाला हुआ। सुभगग्वाला नमस्कार मंत्र के परिणाम स्वरूप सेठ सुदर्शन हुआ। भैंस मरकर चंपानगर के श्यामल नामक धोबी की यशोमती नामक स्त्री से वसिनी नाम की पुत्री हुई। विधवा होकर उसने व्रत धारण कर लिया। वही मरकर सुदर्शन की प्रिय स्त्री मनोरमा हुई। मुनि ने सुदर्शन को बताया कि वह अनन्तचतुष्टय एवं मोक्ष प्राप्त करेगा और मनोरमा देव और मनुष्यों के सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त करेगी। मुनि ने उक्त वृत्तान्त सुनकर सुदर्शन को धर्मोपदेश दिया।

सुदर्शन ने मुनि के वचन सुनकर तपश्चरण प्रारम्भ कर दिया। अपनी स्त्री और सुदर्शन के परस्पर विरोधी आचरण को देखकर विरक्त राजा ने अपना राज्य पुत्र को सौंप दिया और मुनीन्द्र को नमस्कार करके उसने दिगम्बर मुनि का वेश धारण कर लिया। उसकी सभी रानियों ने भी दीक्षा धारण कर ली। सुदर्शन ने इन सभी त्यागी जनों के साथ नगर में भिक्षाचरण किया। तत्पश्चात् जिनमन्दिर जाकर अपने गुरु की आज्ञानुसार योग्य आचरण प्रारम्भ कर दिया।

उधर पण्डिता ने देवदत्ता वेश्या को सुदर्शन से सम्बन्धित सारा वृत्तान्त सुनाया। देवदत्ता ने कपिला और अभया के वृत्तान्त जानकर दोनों की हंसी उड़ाई और स्वयं सुदर्शन को तपोभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की।

इसी बीच घूमते हुए सुदर्शन पाटलिपुत्र पहुँचे। धवलगृह पर चढ़ी हुई पण्डिता ने उन्हें देखा तो देवदत्ता को भी उनके दर्शन करा दिये। देवदत्ता की दासी ने उसकी आज्ञा से सुदर्शन को प्रासाद के नीचे ठहरा दिया। निर्लिप्त सुदर्शन के पास जाकर देवदत्ता ने उन्हें सुखोपभोग के लिए आमन्त्रित किया। उसने तीस दिन तक सुदर्शन मुनि के प्रति तरह-तरह की काम चेष्टाएं कीं। अन्त में निराश होकर मुनि को श्मशान में जाकर छोड़ दिया। मुनि इन सब क्रियाओं के प्रति तटस्थ ही रहे।

सुदर्शन मुनि तप कर ही रहे थे कि विहार की इच्छा से निकली हुई एक व्यन्तरी का विमान उनके ऊपर स्थित हो गया। फलस्वरूप वह बहुत क्रुद्ध हुई।

श्मशान में बैठे हुए मुनि को देखकर उसे अपने पूर्वजन्म की याद आ गई। अतः उसने मुनि पर घोर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। सुदर्शन मुनि पर इन घोर उपसर्गों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

इसी समय सुदर्शन की रक्षा करने वाला व्यन्तर वहाँ पहुँच गया। उसका और व्यन्तरी का परस्पर घोर युद्ध हुआ। अन्त में व्यन्तरी डरकर भाग गई। मुनिवर सुदर्शन पुनः जिनचरणों का स्मरण करने लगे।

इस घटना के बाद सातवें दिन घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने पर सुदर्शन को कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हुई। इस शुभ अवसर पर सुरेन्द्र अपने गजेन्द्र पर चढ़कर सुदर्शन के पास आया। उसने मुनि की स्तुति की। कुबेर ने समवसरण मण्डप की रचना की। उसके मध्य में केवली भगवान् सुदर्शन भद्रपीठ पर आसीन हुए। लोगों की इच्छानुसार उन्होंने उपदेश दिये। व्यन्तरी ने मुनि की आज्ञा से सम्यक्त्व धारण कर लिया। पण्डिता और देवदत्ता ने भी तपश्चरण धारण कर लिया। मनोरमा ने जब सुना कि सुदर्शन को कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हो गई है, तब वह भी घर छोड़कर आर्यिका हो गई। अन्त में देवलोक को गई। सुदर्शन को पौष मास की पंचमी तिथि को सोमवार के दिन मोक्ष की प्राप्त हो गई।

गौतम गणधर से यह वृत्तान्त सुनकर मगधेश्वर श्रेणिक ने भगवान् को प्रणाम किया और राजप्रसाद लौट आया।[1]

पुण्यास्रवकथाकोश में वर्णित 'सुभगगोपालवर सुदर्शन सेठ कथा' का सारांश

इस कथा में 'सुदंसणचरिउ' की कथा से केवल इतना ही अन्तर है कि इसमें ग्वाला रात भर मुनिराज के पास बैठकर उनकी सेवा करता रहा। शेष कथा सुदंसणचरिउ' के ही समान है।[2]

ब्रह्मचारी नेमिदत्त विरचित 'आराधना कथाकोश' में वर्णित 'पंचनमस्कारमन्त्र-प्रभाव कथा

इस कथा में सुकान्त जन्म वृतान्त और कपिल ब्राह्मण एवं उसकी पत्नी कपिला का वृत्तान्त नहीं है। पूर्वग्रन्थों में द्वारपालों को वश में करने के लिए सात पुतलों का वर्णन है। परन्तु इसमें एक ही पुतले का उल्लेख आया है। शेषकथा 'बृहत्कथाकोश' की कथा के समान है।[3]

भट्टारक सकलकीर्ति विरचित 'श्रीसुदर्शनचरित'—

इसमें सेठ वृषभदास एवं सेठ सागरदत्त द्वारा सुदर्शन एवं मनोरमा के

---

१. आ० नयनंदि विरचित, 'सुदंसणचरिउ' सन्धि १ से १२ तक।
२. रामचन्द्रमुमुक्षु विरचित, 'पुण्यास्रवकथाकोश', २।१७वीं कथा।
३. ब्रह्मचारी नेमिदत्त विरचित, आराधना कथाकोश,' १।२१

विवाह के लिए की गई पूर्वप्रतिज्ञा का वर्णन नहीं है। इसकी शेष कथा पूर्वग्रन्थों के ही समान है।[1]

श्रीविद्यानन्दिविरचित 'सुदर्शनचरित'—

इस ग्रन्थ की कथा भी पूर्वग्रन्थों के समान है।[2]

स्पष्ट है कि 'बृहत्कथाकोश' और 'सुदंसणचरिउ' के कथानक ही सुदर्शनोदय के कथानक के स्रोत हैं। अन्य चार ग्रन्थ इन दोनों की अनुकृतिमात्र हैं। अतः मूलकथा में कवि ने क्या परिवर्तन किये हैं? यह देखने के लिए इन्हीं दोनों ग्रन्थों से 'सुदर्शनोदय' की तुलना करना उचित होगा। सर्वप्रथम 'बृहत्कथाकोश' और 'सुदर्शनोदय' की तुलना प्रस्तुत है :—

बृहत्कथा और सुदर्शनोदय—

हरिषेणाचार्यकृत 'बृहत्कथाकोश' में वर्णित सुभगगोपाल की कथा और 'सुदर्शनोदय' की कथा में निम्नलिखित भिन्नतायें दृष्टिगोचर होती है :—

(क) 'बृहत्कथाकोश' में राजा का नाम दन्तिवाहन एवं रानी का नाम अभया है।[3] 'सुदर्शनोदय' में इनका नाम क्रमशः धात्रीवाहन और अभयमती है।[4]

(ख) 'बृहत्कथाकोश' में सेठानी का नाम जिनदासी है।[5] 'सुदर्शनोदय' में जिनमति है।[6]

(ग) 'बृहत्कथाकोश' में राजा एवं सेठ के परिचय के बाद सेठ के ग्वाले का वृत्तान्त वर्णित है।[7] 'सुदर्शनोदय' में यह वृत्तान्त मुनि ने सुदर्शन के पूर्वजन्मों का वर्णन करते हुए सुनाया है।[8]

(घ) 'बृहत्कथाकोश' में मुनि के 'नमोऽरिहंताणं' मन्त्र के उच्चारण के पश्चात् आकाशगमन का वर्णन है,[9] पर वह 'सुदर्शनोदय' में नहीं है।

---

१. भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सुदर्शनचरित पं० हीरालाल सिद्धान्त-शास्त्री, पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ब्यावर से प्राप्त हस्तलिपि की प्रतिलिपि पर आधारित।

२. श्रीविद्यानन्दिविरचित, सुदर्शनचरित, संपादक डॉ० हीरालाल जैन; भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी।

३. बृहत्कथाकोश, ६०।१-२

४. सुदर्शनोदय, १३८-४०

५. बृहत्कथाकोश, ६०।३

६. सुदर्शनोदय, २।४

७. बृहत्कथाकोश, ६०।४

८. सुदर्शनोदय, ४।१८-२२

९. बृहत्कथाकोश, ६०।१०

(ङ) 'बृहत्कथाकोश' में सेठ ने उसे जिननाम लेने से रोका था[1] लेकिन 'सुदर्शनोद में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

(च) 'बृहत्कथाकोश में सभी भैंसों को वापिस लाने के लिए सुदर्शन के नदी में कू का वर्णन है,[2] लेकिन 'सुदर्शनोदय' में एक ही भैंस को निकालने के लिए सुदर्शन का सरोवर में कूदने का वर्णन है।[3]

(छ) 'बृहत्कथाकोश के अनुसार ग्वाला काठ की नोक से शिर में चोट लगने के कारण मरा है।[4] 'सुदर्शनोदय' में काठ की नोक से घायल किसी अंग विशेष का उल्लेख नहीं है।

(ज) 'बृहत्कथाकोश' के अनुसार जिनदासी ने गर्भावस्था के पाँचवें महीने में जिनपूजन की इच्छा व्यक्त की,[5] पर सुदर्शनोदय' में ऐसा वर्णन नहीं है।

(झ) 'बृहत्कथाकोश' में मनोरमा के माता-पिता का नाम क्रमशः सागरसेना और सागरसेन बताया गया है।[6] किन्तु 'सुदर्शनोदय' में मनोरमा के पिता का नाम सागरदत्त बताया गया है[7] और माता का नामोल्लेख नहीं है।

(ञ) 'बृहत्कथाकोश' में विवाह के बाद सुदर्शन एवं मनोरमा के पुत्र सुकान्त के जन्म का वर्णन है,[8] किन्तु 'सुदर्शनोदय' में पुत्रजन्म का उल्लेख नहीं है।

(ट) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णन है कि सुदर्शन-मनोरमा की पुत्रोत्पत्ति के बाद सेठ वृषभदास ने समाधिगुप्त मुनि के समीप दीक्षा धारण कर ली।[9] 'सुदर्शनोदय' के अनुसार सेठ नगर के उद्यान में मुनि का आगमन सुनकर परिवार सहित उनके दर्शन करने जाता है, और उनका धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा धारण कर लेता है।[10]

(ठ) 'बृहत्कथाकोश' के अनुसार सुदर्शन का मित्र कपिल राजा के पुरोहित का पुत्र था।[11]

---

१. बृहत्कथाकोश, ६०।१५
२. वही, ६०।१९
३. सुदर्शनोदय, ४।२६
४. बृहत्कथाकोश ६०।२२
५. वही, ६०।२३
६. वही, ६०।३२
७. सुदर्शनोदय, ३।३४
८. बृहत्कथाकोश, ६०।३३
९. वही, ६०।३५
१०. सुदर्शनोदय, ४।१-१४
११. बृहत्कथाकोश, ६०।३७

(ङ) 'बृहत्कथाकोश' के अनुसार कपिला ब्राह्मणी ने सुदर्शन को उसकी हत्या की धमकी दी है,[१] किन्तु 'सुदर्शनोदय' में ऐसा वर्णन नहीं मिलता।

(ढ) 'बृहत्कथाकोश' में दासी द्वारा सात पुतले बनवाने का वर्णन है।[२] किन्तु सुदर्शनोदय में एक ही पुतला बनवाने का वर्णन है।[३]

(ण) 'बृहत्कथाकोश' के अनुसार सुदर्शन को अजेय जानकर राजा ने सुवर्णकमलों से उसका स्वागत किया; और आधा राज्य लेने का निवेदन किया।[४] किन्तु 'सुदर्शनोदय' में केवल राज्य लेने की प्रार्थना करने का वर्णन है।[५]

(त) 'बृहत्कथाकोश' के अनुसार राजा और सुदर्शन के वार्त्तालाप के बीच में ही विमलवाहन नामक मुनि आये; सुदर्शन की याचना पर उन्होंने उसे दैगम्बरी दीक्षा दे दी।[६] किन्तु 'सुदर्शनोदय' के अनुसार राजा की सम्पत्ति ठुकराकर सुदर्शन मनोरमा के समीप जाता है। तत्पश्चात् उससे परामर्श करके दीक्षा ग्रहण करता है।[७]

(थ) 'बृहत्कथाकोश' के अनुसार सुदर्शन की निश्चलता देखकर निराश देवदत्ता उसे श्मशान में छोड़ आती है।[८] किन्तु 'सुदर्शनोदय' के अनुसार देवदत्ता सुदर्शन की दृढ़ता देखकर उनसे धर्मोपदेश का आग्रह करती है।[९]

(द) 'बृहत्कथाकोश' के अनुसार पण्डिता एवं देवदत्ता सुदर्शन के कैवल्यज्ञान के पश्चात् सुदर्शन से धर्मोपदेश सुनकर श्रावक धर्म को धारण करती है।[१०] लेकिन 'सुदर्शनोदय' में सुदर्शन से धर्मोपदेश सुनकर उसकी कैवल्यज्ञानप्राप्ति के पूर्व ही संयम धारण करने का वर्णन है।[११]

(ध) बृहत्कथाकोश' में वर्णित व्यन्तरी (अभयमती) द्वारा श्रावक व्रत को धारण करने का[१२] वर्णन 'सुदर्शनोदय' में नहीं है।

(न) 'बृहत्कथाकोश' में ग्वाला मुनि के उच्चारण करने पर मंत्र का ज्ञान प्राप्त

---

१. बृहत्कथाकोश, ६०।४७
२. वही, ६०।९१
३. सुदर्शनोदय, ७।१
४. बृहत्कथाकोश, ८०।२३
५. सुदर्शनोदय, ८।१३
६. बृहत्कथाकोश, ६०।१३०
७. सुदर्शनोदय, ८।१४-३२
८. बृहत्कथाकोश, ६०।१५१
९. सुदर्शनोदय, ९।३०-३१
१०. बृहत्कथाकोश, ६०।१६८
११. सुदर्शनोदय, ९।७३-७४
१२. बृहत्कथाकोश, ६०।१३९

करता है।[1] 'सुदर्शनोदय' में मुनि उसे मंत्रोच्चारण का उपदेश देते हैं।[2]

(प) बृहत्कथाकोश' में बाद की कथा में मनोरमा का वर्णन बिल्कुल नहीं है। सुदर्शनोदय' के अनुसार मनोरमा पति का अनुकरण करती हुई ही आर्यिका का व्रत धारण कर लेती है।[3]

परिवर्धन—

(क) 'सुदर्शनोदय' में वर्णित माता का स्वप्न दर्शन का वर्णन[4] बृहत्कथाकोश' में नहीं है।

(ख) 'सुदर्शनोदय' में वर्णित मनोरमा एवं सुदर्शन के पूर्वजन्मों का वर्णन[5] 'बृहत्कथाकोश' में नहीं है।

(ग) 'सुदर्शनोदय' में वर्णित ग्वाले द्वारा मुनि की शीतबाधा दूर करने का वृत्तान्त[6] बृहत्कथाकोश' में नहीं है।

(घ) 'सुदर्शनोदय' में वर्णित सुदर्शन और मनोरमा के परस्पर दर्शन के फलस्वरूप उत्पन्न प्रेम का वर्णन[7] 'बृहत्कथाकोश' में नहीं है।

सुदंसणचरिउ और सुदर्शनोदय—

मुनि नयनंदि विरचित 'सुदंसणचरिउ' सुदर्शनोदय' से निम्नलिखित बातों में भिन्न हैं :—

(क) 'सुदंसणचरिउ' में वर्णित राजा श्रेणिक और उनके राजपरिवार का 'सुदर्शनोदय में उल्लेख नहीं है।[8]

(ख) 'सुदंसणचरिउ' में सेठानी का नाम अर्हद्दासी है,[9] जबकि 'सुदर्शनोदय' में जिनमति है।[10]

(ग) 'सुदंसणचरिउ में ग्वाले का वृत्तान्त कथा के प्रारम्भ में है।[11] 'सुदर्शनोदय' में यह वृत्तान्त पूर्वजन्मवर्णन के प्रसंग में है।[12]

(घ) 'सुदंसणचरिउ' में बहुत सी गायों के गंगा नदी में प्रविष्ट होने का वर्णन

१. बृहत्कथाकोश, ६०।११-१४
२. सुदर्शनोदय, ४।२५
३. वही, ८।२७, ३३-३५
४. वही, २।१०-१६
५. वही, ४।१६-३७
६. वही, ४।२४
७. वही, ३।३४-३५
८. सुदंसणचरिउ, १, २।१
९. वही, ४।५
१०. सुदर्शनोदय, २।४
११. सुदंसणचरिउ, २।६-१५
१२. सुदर्शनोदय, ४।१८, २२-२७

है।[1] किन्तु 'सुदर्शनोदय' में केवल एक भैंस के सरोवर में घुसने का वर्णन है।[2]

(ङ) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार नदी में स्थित ठूंठ की नोक से हृदय विंधने के कारण मृत्यु को प्राप्त ग्वाले ने मरने के पहले सेठ के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न होने की कामना की,[3] किन्तु 'सुदर्शनोदय' में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

(च) 'सुदंसणचरिउ' में सुदर्शन के जन्म, विवाह एवं मोक्ष की तिथियों का विस्तार से उल्लेख है।[4] 'सुदर्शनोदय' में इसका अभाव है।

(छ) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार मुनिराज ने सेठ के पुत्र का नामकरण किया।[5] 'सुदर्शनोदय' में सेठ ने स्वयं पुत्र का नामकरण किया।[6]

(ज) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार विद्याप्राप्ति के बाद सुदर्शन सोलह साल का था।[7] पर 'सुदर्शनोदय' में सुदर्शन की अवस्था का कोई उल्लेख नहीं है।

(झ) 'सुदंसणचरिउ' में उल्लिखित मनोरमा की माता सागरसेना का[8] 'सुदर्शनोदय' में कोई उल्लेख नहीं है।

(ञ) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार सुदर्शन ने बाजार में जाते हुए मनोरमा को देखा।[9] किन्तु 'सुदर्शनोदय' के अनुसार जिनमन्दिर में दोनों का प्रथम साक्षात्कार हुआ।[10]

(ट) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार सेठ सागरदत्त और सेठ वृषभदास अपनी पुत्री एवं पुत्र के विवाह के लिए परस्पर वचनबद्ध थे।[11] 'सुदर्शनोदय' में ऐसा वर्णन नहीं है।

(ठ) 'सुदंसणचरिउ' में उल्लिखित श्रीधर ज्योतिषी का[12] 'सुदर्शनोदय' में उल्लेख नहीं मिलता।

(ड) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार सेठ के साथ सेठानी ने भी तपश्चरण किया।[13]

---

१. सुदंसणचरिउ, २।१४
२. सुदर्शनोदय, ४।२६
३. सुदंसणचरिउ, २।१४
४. वही, ३।३, ५।४, १२।६
५. वही, ३।६
६. सुदर्शनोदय, ३।१५
७. सुदंसणचरिउ, ३।६
८. वही, ४।१
९. वही, ३।३ ५।४, ४।१
१०. सुदर्शनोदय, ३।३४-३५
११. सुदंसणचरिउ, ५।२
१२. वही, ५।३
१३. वही, ६।२०

किन्तु सुदर्शनोदय' मे केवल सेठ वृषभदास के ही दीक्षित होने का वर्णन हैं।[1]

(ढ) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार कपिला सुदर्शन के गुणों को सुनकर मोहित हो गई।[2] किन्तु सुदर्शनोदय के अनुसार कपिला सुदर्शन के गुणों को देखकर मोहित हुई, न कि उसके गुणों को सुनकर।[3]

(ण) 'सुदंसणचरिउ' में वर्णित कपिला की सखी के पंचमराग गाने का[4] सुदर्शनोदय में कोई उल्लेख नहीं है।[5]

(त) 'सुदंसणचरिउ' में सात पुतलों द्वारा दासी के सातों द्वारपालों के वश में करने का वर्णन है।[6]

(थ) 'सुदंसणचरिउ' में उल्लिखित सुदर्शन के अपशकुनों का[7] 'सुदर्शनोदय में कोई उल्लेख नहीं है।

(द) 'सुदंसणचरिउ' में दासी के सुदर्शन के पास दो बार जाने का वर्णन है।[8] 'सुदर्शनोदय' के अनुसार दासी एक ही बार सुदर्शन के पास गई और उसे रानी के पास ले आई।[9]

(ध) सुदंसणचरिउ' में रानी ने अपने शरीर को नखों से क्षत-विक्षत करके सुदर्शन को दोषी बताया है।[10] जबकि सुदर्शनोदय' में नख-क्षत बना लेने का उल्लेख नहीं है।

(न) 'सुदंसणचरिउ' में वर्णित व्यन्तर द्वारा सुदर्शन की रक्षा का वृत्तान्त[11] 'सुदर्शनोदय' में नहीं है।

(प) 'सुदंसणचरिउ' में राजा व्यन्तर से वास्तविकता को जानकर सुदर्शन से क्षमायाचना करता है।[12] 'सुदर्शनोदय' में राजा आकाशवाणी से वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करता है।[13]

---

१. सुदर्शनोदय, ४।१४
२. सुदंसणचरिउ, ७।२
३. सुदर्शनोदय ५।१
४. सुदंसणचरिउ, ७।२
५. वही, ८।१०
६. सुदर्शनोदय, ७।१
७. सुदंसणचरिउ, ८।१५
८. वही, ८।२०-२२
९. सुदर्शनोदय, ७।३६
१०. सुदंसणचरिउ, ८,३४
११. वही, ८।१४३, ९।१-१८
१२. वही, ९।१८
१३. सुदर्शनोदय, ८।९-१०

(फ) 'सुदंसणचरिउ' में वर्णित पूर्वजन्मों के प्रसंग में भील से सम्बद्ध राजा भूमिपाल का वर्णन[1] 'सुदर्शनोदय' में नहीं है।

(ब) सुदंसणचरिउ' में अभयावृत्तान्त के बाद सुदर्शन विमलवाहन मुनि से अपने पूर्वजन्मों के विषय में जानता है।[2] 'सुदर्शनोदय' में यह घटना सेठ वृषभदास के दीक्षित होने के बाद की है।[3]

(भ) 'सुदंसणचरिउ' में राजा एवं अन्य लोगों के सुदर्शन के आचरण से प्रभावित होकर दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है।[4] पर 'सुदर्शनोदय' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(म) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार देवदत्ता वेश्या अपने प्रयास में असफल होकर सुदर्शन को पुनः श्मशान में छोड़ आई। पण्डिता के साथ उसने तप तब ग्रहण किया, जब सुदर्शन को कैवल्य की प्राप्ति हो गई।[5] सुदर्शनोदय' के अनुसार सुदर्शन की दृढ़ता से प्रभावित होकर वेश्या ने अपने कुकृत्यों की निन्दा की और पण्डिता के साथ सुदर्शन से दीक्षा ग्रहण की।[6]

(य) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार अभया के व्यन्तरी रूप से उसी व्यन्तर ने पुनः सुदर्शन की रक्षा की, जिसने राजा द्वारा वध करवाते समय उसकी रक्षा की थी।[7] किन्तु 'सुदर्शनोदय' के अनुसार सुदर्शन अभयमती द्वारा किये गये उपसर्गों को सहन करते रहे।[8]

(र) 'सुदंसणचरिउ' के अनुसार सुदर्शन के लिए इन्द्र द्वारा समवशरण मण्डप-निर्माण वर्णन[9] 'सुदर्शनोदय' में नहीं है।

(ल) 'सुदंसणचरिउ' में व्यन्तरी के सम्यक्त्वधारण का उल्लेख है।[10] किन्तु 'सुदर्शनोदय' में ऐसा उल्लेख नहीं है।

(व) 'सुदंसणचरिउ' में वर्णन है कि मनोरमा सुदर्शन के कैवल्यज्ञान की प्राप्ति के बाद आर्यिका बनी।[11] 'सुदर्शनोदय' के अनुसार सुदर्शन द्वारा तपश्चरण की इच्छा

---

१. सुदंसणचरिउ, १०।४
२. वही, १०।४
३. सुदर्शनोदय, ४।१६
४. सुदंसणचरिउ, ११।१
५. वही, ११।११, १२।६
६. सुदर्शनोदय, ६।३०, ७४
७. सुदंसणचरिउ, ११।१२-२२
८. सुदर्शनोदय, ६।७६-८३
९. सुदंसणचरिउ, १२।३
१०. वही. १२।५-६
११. वही, १२।६

प्रकट करने के बाद मनोरमा भी उसके दीक्षित होने पर आर्यिका धर्म में दीक्षिता हो गई।[1]

(ग) 'सुदंसणचरिउ' का कथानक पुनः राजा श्रेणिक के उल्लेख से समाप्त हुआ है।[2] 'सुदर्शनोदय' के कथानक की समाप्ति सुदर्शन मुनि की मोक्षप्राप्ति के उल्लेख से हुई है।[3]

परिवर्धन

उपर्युक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त कवि ने 'सुदर्शनोदय' में थोड़ा सा किन्तु महत्वपूर्ण परिवर्धन भी किया है। 'सुदर्शनोदय' के स्रोत के रूप में हमने जिन छः ग्रन्थों का उल्लेख किया है, उनमें किसी में भी 'सहस्रदलकमलवृत्तान्त' नहीं है। यह वृत्तान्त केवल 'सुदर्शनोदय' में ही मिलता है।[4]

'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' कथानक के स्रोत के रूप में 'बृहत्कथाकोश में वर्णित 'श्रीभूतिपुरोहितकथानक' और 'आराधनाकथाकोश' में वर्णित 'श्रीभूतेः कथा' उल्लेखनीय हैं। सर्वप्रथम 'बृहत्कथाकोश' में आए हुए कथानक का सारांश प्रस्तुत है—

× × × × × जम्बूद्वीप में विद्यमान भरतक्षेत्र में स्थित सिंहपुर में सिंहसेन नामक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम रामदत्ता था। इस राजा का श्रीभूति नाम का पुरोहित था, पुरोहित की स्त्री का नाम श्रीदत्त था।

भरतक्षेत्र में ही स्थित पद्मखण्डनगर में सुमित्र नामक वैश्य अपनी स्त्री सुमित्रदत्ता के साथ रहता था, उसके पुत्र का नाम था सुमित्रदत्त। एक बार धनार्जन की इच्छा से वे सब सिंहपुर आये। वहाँ श्रीभूति की सत्यवादिता के विषय में सुनकर अपने दिव्य मणि-रत्न सौंपकर और अपना धन किसी वैश्य के यहाँ रखकर पुनः सभी पद्मखण्डपुर लौट गये। कुछ दिनों के पश्चात् सुमित्र अपने पुत्र और मित्रों के साथ रत्नद्वीप गया। समुद्र में तूफान आ जाने के कारण सभी वैश्य तो मृत्यु को प्राप्त हो गए, किन्तु सुमित्रदत्त उस उपद्रव से बचकर सिंहपुर पहुँचा।

अपने पिता की वार्ता उसने अपनी माता और स्त्री को सुनाई; पिता को जलदान दिया; और तत्पश्चात् श्रीभूति ब्राह्मण के पास गया। थोड़ी देर रुककर उसने अपने रत्नों की पोटली माँगी। उसके वचन सुनकर वाणी को आडम्बरयुक्त करके श्रीभूति ने उससे कह दिया कि मैं तुम्हारे रत्नों के विषय में कुछ नहीं

---

१. सुदर्शनोदय, ८।३३-३४
२. सुदंसणचरिउ, १२।७
३. सुदर्शनोदय, ९।८५-९३
४. वही. ४।१८-२२

जानता। श्रीभूति के प्रभाव के कारण राजा एवं पुरवासियों ने भी उसकी बात का विश्वास नहीं किया। व्याकुल होकर सुमित्रदत्त रामदत्ता के गृह के निकट स्थित पीपल के वृक्ष पर रात्रि के अन्त में चढ़कर रोज कहने लगा कि हे राजन्! तुम्हारे राज्य में निवास करने वाले श्रीभूति ने माँगने पर भी मेरे पाँच रत्न नहीं लौटाए।

एक दिन रात्रि में पति के साथ सोती हुई रामदत्ता ने उसकी आवाज सुनकर राजा से कहा कि यह बात मैं छः महीनों से सुन रही हूँ। आप सत्यासत्य की परीक्षा करके बताईये कि रत्न किसके हैं? रामदत्ता के वचन सुनकर राजा ने कह दिया कि यह पागलपन के कारण ऐसा कह रहा है। रामदत्ता के पुनः आग्रह करने पर राजा ने श्रीभूति को अपने घर बुलाया और पूंछा कि तुमने इस वैश्य के रत्न लिये हैं अथवा नहीं। राजा के वचन सुनकर श्रीभूति ने रत्नों के विषय में अस्वीकृति प्रकट कर दी।

एक दिन रामदत्ता के कहने से राजा ने पुरोहित के साथ द्यूतक्रीड़ा की। उस समय रानी ने पुरोहित से वस्तु प्राप्त करने के लिए उसके अभिज्ञान के अक्षर पूंछे। अभिज्ञान के अक्षर जानकर रानी की दासी बुद्धिमती ब्राह्मणी के घर गई और अभिज्ञान की सहायता से उसने ब्राह्मणी से वणिक् के रत्न माँगे। उसकी बात सुनकर ब्राह्मणी ने कह दिया कि मैं उन रत्नों के विषय में नहीं जानती। द्यूतक्रीड़ा में यज्ञोपवीत जीतने पर रानी ने दासी को पुनः श्रीभूति के घर भेजा। दासी ने ब्राह्मणी से कहा कि इस दूसरी पहिचान को देखकर रत्न दे दो। तब भी उसने कह दिया कि वे रत्न तो नष्ट हो गए, न मालूम कहाँ गये। तीसरी बार दासी श्रीभूति के नाम से अंगूठी लाई और बोली कि श्रीभूति ने कहा है कि वैश्य के रत्न मुझे दे दो। अंगूठी देखकर पति पर क्रोध करती हुई उसकी स्त्री ने पाँचों रत्न लाकर बुद्धिमती के हाथ में दे दिए। बुद्धिमती ने वे सब रत्न रानी को दे दिए। रामदत्ता ने वे रत्न लेकर राजा से द्यूतक्रीड़ा बन्द करने को कह दिया। द्यूतकारों के चले जाने पर रानी ने राजा को पाँचों रत्न दे दिए।

तत्पश्चात् राजा ने उन रत्नों को अन्य रत्नों के साथ मिलाकर सुमित्रदत्त को दिखाया। सुमित्रदत्त ने उनमें से अपने ही रत्न उठा लिए। यह देखकर धन चुराने वाले श्रीभूतिपुरोहित को राजा ने अपने देश से बाहर निकाल दिया। अपमानित श्रीभूति हृदय फट जाने से मर गया। आर्तध्यान करके मरने के बाद वह सिंहसेन राजा के ही भण्डार में सर्प के रूप में पहुँचा।

श्रीभूति के स्थान पर राजा ने धम्मिल्ल नामक ब्राह्मण को पुरोहित का पद दे दिया। इसके बाद सुमित्रदत्त ने पद्मखण्डपुर जाकर साधुओं को दान दिया और बोला कि मैं अगले जन्म में रामदत्ता का पुत्र बनूंगा। विमलकान्तार नामक पर्वत पर जाकर वरधर्म मुनि के समीप उसने तपस्वियों का व्रत धारण कर लिया। उसकी

माता उसके जैनधर्माचरण से विरोध करके मरने के बाद उसी पर्वत पर भयानक व्याघ्री के रूप में उत्पन्न हुई ।

एक दिन सुमित्रदत्त मुनि की वन्दना करने के लिए गया, तब उस व्याघ्री ने उसको खा लिया । तत्पश्चात् वह राजा सिंहसेन और रामदत्ता के पुत्र सिंहचन्द्र के नाम से उत्पन्न हुआ । उसके भाई का नाम पूर्णचन्द्र था ।

एक दिन राजा सिंहसेन अपना धन देखने की इच्छा से अपने भण्डार में प्रविष्ट हुआ, तब पूर्व वैर के कारण गन्धन नामक सर्प (श्रीभूति के जीव) ने क्रुद्ध होकर उसे डस लिया । विष दूर करने के लिए गरुड़-मन्त्र का ज्ञाता सिंहपुर में बुलाया गया । उसने काकोदर के मन्त्रों से सब सर्पों को बुलाया और गरुड़मन्त्र की शक्ति से वास्तविक अपराधी को पहचान लिया और कहा—या तो अपना विष वापिस लो या अग्निकुण्ड में प्रवेश करो ।

इस समय सर्प को पूर्वजन्म का वृत्तान्त याद आया । तब राजा के प्रति अपने वैर के कारण उसने अग्निकुण्ड में ही प्रवेश कर लिया; और मरकर कालवन में चमरी मृग हुआ । राजा सिंहसेन विन्ध्यवन में मदस्रावी हाथी के रूप में जन्मा । धम्मिल्ल नामक पुरोहित बन्दर हुआ । इसके बाद सिंहचन्द्र सिंहपुर का राजा हुआ ।

पोदनपुर में पूर्णचन्द्र नाम का राजा था । उनकी स्त्री का नाम हिरण्यमती था । ये ही रामदत्ता के माता-पिता थे । एक दिन भद्रबाहु नामक गुरु से धर्म के विषय में जानकर पूर्णचन्द्र श्रमण हो गए । दत्तक्षान्तिका आर्यिका के पास हिरण्यमती भी आर्यिका हो गई । हिरण्यमती ने अपने पति पूर्णचन्द्र मुनि को प्रणाम करके उनसे रामदत्ता का वृत्तान्त पूछा । पूर्णचन्द्र ने अपनी पुत्री रामदत्ता और जामाता सिंहसेन का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया । हिरण्यमती दत्तक्षान्तिका के साथ रामदत्ता के समीप पहुँची । रामदत्ता ने माता को दीक्षा ग्रहण किए हुए देखा, तो उसने भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली । सिंहचन्द्र ने भी माता के संन्यास लेने पर पूर्णचन्द्र को राज्यभार देकर भद्रबाहु मुनि के समीप में तप किया और चारण मुनि बन गया ।

पूर्णचन्द्र राजा बनकर जिनवाक्यों से विमुख हो गया, तब रामदत्ता ने सिंहचन्द्र से पूँछा कि पूर्णचन्द्र धर्माचरण कब करेगा ? तो सिंहचन्द्र ने कहा—

इसी भरतक्षेत्र में कौशल देश में स्थित वर्धक ग्राम में मृगायण नाम का ब्राह्मण था । उसकी पत्नी का नाम मथुरा था । मृगायण ब्राह्मण मरकर साकेत नगर में राजा अतिबल और श्रीमती की पुत्री हिरण्यमतिका के रूप में उत्पन्न हुआ । उसका विवाह पोदनपुर के नरेश पूर्णचन्द्र के साथ हुआ । मथुरा ने उसकी पुत्री रामदत्ता के रूप में जन्म लिया । मृगायण ब्राह्मण की वरुणा नाम की लड़की ने तुम्हारे पुत्र पूर्णचन्द्र के रूप में जन्म लिया । मैं ही पहले जन्म में सुमित्रदत्त था । मेरे पिता सिंहसेन मरकर हाथी के रूप में जन्मे । चमरीमृग मरकर वन में

सर्प हुआ। सर्प ने हाथी को डस लिया। वह हाथी सहस्रार स्वर्ग में श्रीप्रभारण्य विमान में श्रीधर नाम का देव हुआ। धम्मिल्ल जब बन्दर के रूप में उत्पन्न हुआ तो उसने श्रीभूति रूप को नष्ट कर दिया। वन में विचरण करने वाले किरातराज के सेवक एक भील ने हाथी के मस्तक से मोती और दाँत निकालकर अपने एक वैश्य मित्र को दे दिये। उसने वे मुक्ताएँ और हाथी दाँत तुम्हारे पुत्र पूर्णचन्द्र को दिये हैं। हाथीदाँत का उपयोग तो उसने अपना पलंग बनवाने में किया है और मोतियों को अपने हार में डाल लिया है।

सिंहचन्द्र मुनि के वचन सुनकर रामदत्ता अपने पुत्र को धर्मोपदेश देने के लिए गई। पूर्णचन्द्र ने रामदत्ता के वचन सुनकर श्रावक धर्म अंगीकृत कर लिया; और अन्त में वह सहस्रार स्वर्ग के वैडूर्य विमान में देव हुआ। रामदत्ता भी स्वयंप्रभ विमान में सूर्यप्रभ देव के रूप में उत्पन्न हुई। तपश्चरण के बाद सिंहचन्द्र ग्रैवेयक में देव हुआ।

सूर्यप्रभ देव स्वर्ग से निकलकर भरतक्षेत्र में विजयार्ध पर्वत के दक्षिण में स्थित धरणीतिलक नगर में अतिबल राजा और रानी सुशीला की पुत्री श्रीधरा के रूप में उत्पन्न हुआ। उसका विवाह कालकपुर के सुदर्शन के साथ हो गया। वैडूर्य विमान वाला देव उसकी पुत्री यशोधरा के रूप में उत्पन्न हुआ।

विजयार्ध पर्वत की उत्तरश्रेणी में प्रभात नामक नगर है। वहाँ सूर्यदत्त नामक विद्याधरों का राजा राज्य करता था। यशोधरा का विवाह इसी के साथ हुआ। इन दोनों का रश्मिवेग नाम का पुत्र हुआ। इस पुत्र को राज्य सौंपकर सूर्यदत्त ने मुनिचन्द्र के समीप दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रीधरा और यशोधरा ने गुणमती आर्यिका के समीप तप करना प्रारम्भ कर दिया।

एक बार रश्मिवेग सिद्धकूट में स्थित जिनदेव के पूजन हेतु गया। वहाँ पर हरिचन्द्र मुनि के पास में उसने तप किया। एक बार श्रीधरा के साथ यशोधरा उस मुनि को प्रणाम करके वहीं बैठ गई। तब अजगर के रूप में उत्पन्न श्रीभूति के जीव ने उन तीनों को खा लिया। रश्मिवेग कापिष्ठ नामक स्वर्ग में अर्कप्रभ नामक देव हुआ। दोनों आर्यिकायें भी मरकर उसी स्वर्ग में देवता हुईं। अजगर ने दुःख से युक्त चतुर्थ नरक को प्राप्त किया।

चक्रपुर में अपराजित नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम सुन्दरी था। सिंहचन्द्र इन दोनों का पुत्र चक्रायुध हुआ। उसकी प्रिया का नाम चित्रमाला था। अर्कप्रभ नामक देव इनके पुत्र वज्रायुध के रूप में उत्पन्न हुआ। यह पूर्वजन्म में सिंहसेन था।

पृथ्वीतिलक नगर में अतिवेग नाम का राजा था। उसकी पत्नी प्रियंकरा से रामदत्ता के जीव ने जो श्रीधरा के रूप में उत्पन्न हुई थी, इनकी पुत्री रत्नमाला के रूप में जन्म लिया। इसका विवाह पूर्वजन्म की प्रीति के कारण वज्रायुध से हुआ। यशोधरा ने इनके पुत्र रत्नायुध के रूप में जन्म लिया। वह पूर्वजन्म में

पूर्णचन्द्र था। चक्रायुध ने अपनी राज्यलक्ष्मी वज्रायुध को दे दी और स्वयं जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली, तत्पश्चात् मोक्ष प्राप्त कर लिया। × × × × ×।[1]

आराधनाकथाकोश में वर्णित 'श्रीभूतेः कथा' का सारांश

सिंहपुर में राजा सिंहसेन राज्य करता था। उसकी रानी का नाम रामदत्ता था। उनका श्रीभूति नाम का पुरोहित था, जिसने सत्यवक्ता के रूप में अपनी झूठी प्रसिद्धि फैला रखी थी।

पद्मखण्डपुर में सुमित्र नामक श्रेष्ठ वैश्य रहता था। उसकी पत्नी सुमित्रा के गर्भ से समुद्रदत्त नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। एक बार व्यापार के लिए यह सिंहपुर गया। वहाँ इसने श्रीभूति के पास अपने पाँच रत्न रखकर रत्नद्वीप के लिए प्रस्थान किया। समुद्र के मध्य में पहुँचते ही जहाज के टूट जाने पर बहुत से यात्री मर गये, किन्तु समुद्रदत्त किसी प्रकार से बचकर सिंहपुर पहुंचा। उसने श्रीभूति से अपने रत्न माँगे। धन के लोभी श्रीभूति ने उसको पागल बताकर उसकी याचना अस्वीकृत कर दी। समुद्रदत्त ने भी यह श्रीभूति मेरे पाँच रत्न नहीं दे रहा है, यह बात सारे नगर में फैला दी।

रात के समय राजमन्दिर के पास में वह छः महीने तक रोज चिल्लाकर उक्त तथ्य दोहराया करता था। उसका कथन सुनकर रामदत्ता सिंहसेन के पास गई। उसने राजा से कहा कि पुरुष पागल नहीं है। तत्पश्चात् उस रानी ने द्यूतक्रीड़ा में संलग्न श्रीभूति से कहा कि आज आपने क्या खाया है? उसके बताने पर रानी ने अपनी चतुर सेविका को श्रीभूति की स्त्री के पास भेजा। लेकिन उसने सेविका को रत्न नहीं दिये। तत्पश्चात् रानी ने श्रीभूति के नाम से युक्त अंगूठी जीतकर पुनः दासी को भेजा। लेकिन ब्राह्मणी ने उन रत्नों को लोभ के कारण नहीं दिया। पुनः श्रीभूति के यज्ञोपवीत के सहारे दासी ने रत्न माँगें, तब डरकर उसने उन रत्नों को दे दिया।

रानी ने वे रत्न राजा को दिखाये। राजा सिंहसेन ने उन रत्नों को अन्य रत्नों से मिलाकर वणिकपुत्र समुद्रदत्त से कहा कि जो तुम्हारे रत्न हैं, उन्हें ले लो। समुद्रदत्त ने रत्नों में से अपने रत्न उठा लिए। सिंहसेन ने उसके आचरण पर प्रसन्न होकर उसको श्रेष्ठिपद दे दिया। तत्पश्चात् श्रीभूति के दुराचरण से रुष्ट राजा ने धर्माधिकारियों से पूछा कि इसको क्या दण्ड दिया जाय? उनकी सम्मति के अनुसार श्रीभूति का सब धन ले लिया गया; तीस पहलवानों ने उस पर मुष्टि-प्रहार किया और कांसे के बर्तन में रखकर ताजा गोबर खिलाया गया। नगर-वासियों से इस प्रकार दण्डित होकर श्रीभूति अन्तर्ध्यान पूर्वक मरा।[2]

उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में वर्णित कथा को जब हम श्रीज्ञानसागर द्वारा

---

१ हरिषेणाचार्यविरचित बृहत्कथाकोश, श्रीभूतिकथानकम्, श्लोक संख्या २८-१८५

२. ब्रह्मचारीनेमिदत्तविरचित आराधनाकथाकोश, २।२७

रचित श्रीसमुद्रदत्तचरित्र की कथा से मिलाते हैं तो ज्ञात हो जाता है कि मुनिश्री ने अपने काव्य के कथानक का स्रोत इन्हीं से लिया है।

अब देखना यह है कि कवि ने अपने काव्य में इन दोनों ग्रन्थों से क्या और कितना अंश परिवर्तित और परिवर्धित किया है। सर्वप्रथम बृहत्कथाकोश और श्रीसमुद्रदत्तचरित्र की तुलना प्रस्तुत है :—

बृहत्कथाकोश और समुद्रदत्तचरित्र

(क) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णित संजयन्त मुनि से सम्बन्धित[1] घटनाओं का 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में अभाव है।

(ख) 'बृहत्कथाकोश' में सिंहपुर और उसके राजा का वर्णन पहले किया गया है[2] जबकि श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में पद्मखण्डपुर और उसके निवासी भद्रमित्र वैश्य का वर्णन पहले किया गया है।[3]

(ग) 'बृहत्कथाकोश' में नायक एक सुमित्रदत्त है,[4] जबकि 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में भद्रमित्र है।[5]

(घ) 'बृहत्कथाकोश' में सुमित्रदत्त की माता का नाम सुमित्रदत्ता और पिता का नाम सुमित्रा है[6] परन्तु 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में माता का नाम सुमित्रा और पिता का नाम सुदत्त है।[7]

(ङ) बृहत्कथाकोश' के अनुसार सुमित्र सपरिवार धनार्जन की इच्छा से सिंहपुर आया।[8] श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में भद्रमित्र पिता-माता की आज्ञा से धनार्जन के लिए रत्नद्वीप गया।[9]

(च) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णन मिलता है कि सिंहपुर आकर उन्होंने अपने रत्न श्रीभूति को सौंपे, पुनः सभी वैश्य पद्मखण्डपुर लौटे। कुछ दिनों के बाद सुमित्र वैश्य बहुत से मित्रों के साथ रत्नद्वीप को गया। समुद्र में तूफान आने के कारण वे सभी वैश्य मृत्यु को प्राप्त हो गये, केवल सुमित्रदत्त ही बचा।[10] 'किन्तु

---

१. बृहत्कथाकोश, ७८।१-२७, १८६-२६०
२. वही, ७८।२६
३. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, १।२६-३०
४. बृहत्कथाकोश, ७८।३६
५. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, १।३०
६. बृहत्कथाकोश, ७८,२६
७. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, १।२६
८. बृहत्कथाकोश, ७८।३७
९. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।२-१७
१०. बृहत्कथाकोश, ७८।३६-४४

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में वैश्यों की इस आकस्मिक मृत्यु का उल्लेख नहीं है। अपितु इसमें वर्णन है कि रत्नद्वीप से रत्न अर्जित करके भद्रमित्र सिंहपुर पहुँचा, वहाँ पर श्रीभूति को सात रत्न सौंपकर उसकी सहमति से अपने माता-पिता को लेने पहुँच गया और उनको लेकर सिंहपुर आ गया।[1]

(छ) 'बृहत्कथाकोश' में सुमित्रदत्त की भार्या का भी उल्लेख मिलता है,[2] जो 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में नहीं है।

(ज) 'बृहत्कथाकोश' में सुमित्रदत्त द्वारा पाँच रत्नों के सौंपने का उल्लेख है,[3] पर श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में इनकी संख्या सात है।[4]

(झ) बृहत्कथाकोश' में रानी छः महीनों तक सुमित्रदत्त की पुकार सुनती रही, तब उसने सत्य की खोज करने के लिए राजा से निवेदन किया,[5] किन्तु श्रीसमुद्रदत्त-चरित्र' में भद्रमित्र के पुकारने की कोई निश्चित अवधि नहीं पाई गई है।

(ञ) 'बृहत्कथाकोश' में राजा ने श्रीभूति को घर बुलाकर डाँटकर उससे रत्नों के विषय में पूछा है।[6] लेकिन 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं है।

(ट) 'बृहत्कथाकोश' में रानी की सम्मति पर राजा ने श्रीभूति के साथ जुआ खेला।[7] लेकिन 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में रानी रामदत्ता ने राजा को दरबार लगाने के लिए कहा और अनायास उपस्थित श्रीभूति को अपने साथ शतरंज खेलने में लगा लिया।[8]

(ठ) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णन है कि द्यूतक्रीड़ा के बीच में श्रीभूति के चिह्न को जानकर, फिर यज्ञोपवीत जीतने पर और अन्त में श्रीभूति की नामांकित अंगूठी जीतने पर रानी रामदत्ता ने तीनों वस्तुओं को अपनी बुद्धिमती नाम की दासी द्वारा श्रीभूति की पत्नी श्रीदत्ता के पास भेजा। श्रीदत्ता ने प्रथम दो वस्तुओं को देखने पर रत्न नहीं दिये किन्तु पति की नामांकित अंगूठी देखकर उसे विवश होकर रत्न देने पड़े।[9] 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में रामदत्ता की दासी और श्रीभूति की पत्नी का नाम

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३.२४-२७
२. बृहत्कथाकोश, ७८।४६
३. वही, ७८।५५
४. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।१७
५. बृहत्कथाकोश, ७८।५६
६. वही, ७८।६४-६५
७. बृहत्कथाकोश, ७८।६७
८. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।१
९. बृहत्कथाकोश, ७८।८१-८३

बताया गया है। दासी को श्रीभूति के घर तीन बार नहीं भेजा गया। वह एक ही बार शतरंज में जीती हुई तीनों वस्तुओं को लेकर गई और मन्त्री जी ने रत्न मंगाये हैं, ऐसा कहकर रत्न माँग लाई। वहाँ श्रीभूति की पत्नी के क्रोध का भी उल्लेख नहीं है।[1]

(ड) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णन है कि रानी ने चतुराई से रत्न पाकर राजा से द्यूतक्रीड़ा समाप्त करने को कहा। द्यूतकारों के चले जाने के बाद एकान्त में उसने राजा को रत्न दिए।[2] 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में वर्णन है कि रानी ने वे रत्न राज-दरबार में पहुँचाये।[3]

(ढ) 'बृहत्कथाकोश' में बताया गया है कि धन के लोभ में श्रीभूति को निर्वासन का दण्ड मिला,[4] किन्तु 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में केवल कठोर दण्ड दिये जाने का वर्णन है।[5]

(ण) 'बृहत्कथाकोश' में अपने रत्न पाने के बाद सुमित्रदत्त के पद्मखण्डपुर जाने का वर्णन है।[6] किन्तु 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में दुबारा पद्मखण्डपुर जाने का वर्णन नहीं मिलता।

(त) 'बृहत्कथाकोश' में धरणीतिलक के राजा का नाम अतिबल है,[7] जबकि 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में इसका नाम आदित्यवेग है।[8]

(थ) 'बृहत्कथाकोश' के अनुसार श्रीधरा का विवाह कालकपुर के राजा सुदर्शन के साथ हुआ है।[9] 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में अलकापुरी के राजा दशंक के साथ श्रीधरा का विवाह हुआ है।[10]

(द) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णित यशोधरा के पति का नाम सूर्यप्रभ एवं उसकी राजधानी का नाम प्रभातनगर है।[11] 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में इनका नाम सूर्यावर्त और भास्करपुर है।[12]

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।४२-४४
२. बृहत्कथाकोश, ७८।८१-८३
३. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।१
४. बृहत्कथाकोश, ७८।८८
५. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।४
६. बृहत्कथाकोश, ७८।९२
७. वही, ७८।१५५
८. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ५।१७
९. बृहत्कथाकोश, ७८।१५६-१५७
१०. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ५।२०
११. बृहत्कथाकोश, ७८।१५९-१६०
१२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ५।२२

(घ) बृहत्कथाकोश' में चक्रायुध के अतिरिक्त वज्रायुध एवं रत्नायुध के वृत्तान्त भी हैं,[1] लेकिन 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में इनका केवल उल्लेख है ।[2]

आराधनाकथाकोश और श्रीसमुद्रदत्तचरित्र

'आराधनाकथाकोश' में वर्णित 'श्रीभूतेः कथा' और श्रीज्ञानसागर विरचित 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में निम्न भिन्नतायें दृष्टिगोचर होती है :—

(क) 'आराधनाकथाकोश' में कथा केवल राजा द्वारा श्रीभूति के दण्डित होने और तत्पश्चात् उसके मर जाने तक है ।[3] 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में श्रीभूति से सम्बन्धित सभी पात्रों के जन्म-जन्मान्तरों के भी वर्णन हैं ।[4]

(ख) 'आराधनाकथाकोश' में नायक का नाम समुद्रदत्त है,[5] जबकि 'श्रीसमुद्रदत्त-चरित्र' में इसका नाम भद्रमित्र है ।[6]

(ग) 'आराधनाकथाकोश' में रत्नों की संख्या पाँच है,[7] जबकि 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में सात है ।[8]

(घ) 'आराधनाकथाकोश' में समुद्रदत्त के मित्रों के समुद्र में डूब जाने और समुद्रदत्त के जीवित रह जाने का वर्णन है ।[9] परन्तु 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में यह वर्णन नहीं है ।

(ङ) 'आराधनाकथाकोश' में वर्णन है कि समुद्रदत्त ने रत्न ठग लिये जाने पर छः महीनों तक पुकार की थी,[10] लेकिन 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में समय की किसी निश्चित अवधि का उल्लेख नहीं है ।

(च) 'आराधनाकथाकोश' में रामदत्ता चिह्न, अंगूठी और यज्ञोपवीत को क्रमशः भिजवाती है, लेकिन श्रीभूति की स्त्री यज्ञोपवीत देखने पर ही रत्न देती है[11] किन्तु 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' के अनुसार रानी तीनों वस्तुएं एक साथ भिजवाकर रत्न मंगा लेती है ।[12]

---

१. बृहत्कथाकोश, ७८।१८६-२४५
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।२४, २६
३. आराधनाकथाकोश, २७।१-३१
४. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, तीसरे से छठे सर्ग तक
५. आराधनाकथाकोश, २७।४
६. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, १।३०
७. आराधनाकथाकोश, २७।५
८. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।१से
९. आराधनाकथाकोश, २७।६।८
१०. वही, २७।१७
११. वही, २७।१७-२१
१२. वही, २७।२६-३१

(छ) 'आराधनाकथाकोश' में श्रीभूति को दिये जाने वाले दण्डों का नामोल्लेख है; जबकि श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में इनका नामोल्लेख नहीं है।

उपर्युक्त परिवर्तन के अतिरिक्त कवि ने अपने इस काव्य में दो परिवर्धन भी किए हैं, जो इस प्रकार हैं :—

(क) श्रीज्ञानसागर ने धनार्जन के पूर्व स्वावलम्बन सम्बन्धी कथा का वर्णन किया है,[1] जो 'बृहत्कथाकोश' एवं 'आराधनाकथाकोश' में नहीं मिलती।

(ख) 'श्रीसमुद्रदत्तचरित' में राजा ने भद्रमित्र को राजसेठ का पद दिया है।[2] किन्तु यह वर्णन 'बृहत्कथाकोश' में नहीं है।

'दयोदयचम्पू' काव्य के कथानक का स्रोत ढूंढते समय हमें उसकी कथा दो स्थलों पर देखने को मिली है, एक तो हरिषेणाचार्यकृत 'बृहत्कथाकोश' और दूसरी ब्रह्मचारी श्री नेमिदत्त जी रचित 'आराधनाकथाकोश' की 'मृगसेन धीवर की कथा' के रूप में। सर्वप्रथम 'बृहत्कथाकोश' में वर्णित कथानक का सारांश प्रस्तुत है—

'अवन्ती नामक देश में शिप्रा नदी के किनारे शिशपा नामक मछुओं के ग्राम में भवदेव नामक मछुआ अपनी स्त्री भवश्री के साथ रहता था। उनके पुत्र का नाम था मृगसेन। वहीं पर सोमदास नामक मछुआ और उसकी स्त्री सेना अपनी पुत्री घण्टा के साथ रहते थे। मृगसेन और घण्टा का विवाह हो गया। पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के मन्दिर में एक मुनि से धर्मोपदेश श्रवण करके मृगसेन ने प्रतिज्ञा की कि जल में सर्वप्रथम आने वाली मछली को वह छोड़ देगा। तत्पश्चात् कन्धों में जाल डालकर वह नदी की तरफ चला गया। वहाँ जाकर जैसे ही उसने नदी में जाल फैलाया, वैसे ही एक बड़ी मछली जाल में फँस गई। उसने उस मछली को मुक्त कर दिया; और पुनः नदी में जाल डाला, तब बार-बार वही मछली उसके जाल में फँसी। फलस्वरूप विरक्त होकर खाली जाल को कन्धे पर लटकाकर वह घर की ओर चल पड़ा। उसकी पत्नी घण्टा ने पति को खाली हाथ आता हुआ देखकर निष्ठुर वचन कहे। मृगसेन ने उसे अपनी प्रतिज्ञा के विषय में समझाया और कहा कि एक ही मछली चार बार जाल में फँसी, इसीलिए उसे मुक्त करके खाली हाथ घर आ गया हूँ। घण्टा ने उसके समक्ष आजीविका की समस्या प्रस्तुत की और उसे घर से बाहर निकाल दिया।

घर से निकलकर वह एक सूनी धर्मशाला में पहुँचा। कुछ देर बाद निद्रित होने पर एक सर्प के डसने से उसकी मृत्यु हो गई। भूख से व्याकुल घण्टा धीवरी भी उसे खोजती हुई वहीं आ गई; और पति के द्वारा गृहीत व्रत का अनुसरण करने की इच्छा से उसने सर्प के बिल में हाथ डाल दिया। दुष्ट सर्प के काटने से उसकी भी मृत्यु हो गई।

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, दूसरा सर्ग।

२. वही, ३।३

उज्जयिनी नगरी में राजा वृषभदत्त राज्य करता था; उसकी रानी का नाम था वृषभदत्ता। उसी राजा के राजश्रेष्ठी का नाम था गुणपाल। गुणपाल की गुणश्री नाम की पत्नी थी। घण्टा धीवरी ने इन्हीं दोनों की पुत्री विषा के रूप में जन्म ग्रहण किया। इसी नगर में श्रीदत्त नाम का सार्थवाह अपनी स्त्री श्रीमती के साथ रहता था। मृगसेन ने उसके पुत्र सोमदत्त के रूप में जन्म लिया। सोमदत्त जब गर्भ में था तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई। बालक के बढ़ते-बढ़ते उसका सम्पूर्ण कुल नष्ट हो गया। भूख से व्याकुल सोमदत्त एक दिन भोजन की इच्छा से गुणपाल के घर पहुँचा। श्रेष्ठी के बर्तनों में पड़ी हुई जूठन को उसने खाना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय एक मुनि अपने शिष्यमुनि के साथ वहाँ पहुँचे। सोमदत्त की सुन्दर आकृति को देखकर छोटे मुनि ने बड़े मुनि से कहा कि यह बालक श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त होते हुए भी माता-पिता और बन्धुओं से रहित हो गया है और कटोरे में पड़ी हुई जूठन खा रहा है। उसके वचन सुनकर बड़े मुनि ने कहा कि यह बालक सेठ गुणपाल की सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी होगा। मुनि के इस वाक्य को सुनकर गुणपाल विस्मित हो गया और मुनि के वचन की सत्यता पर विचार करने लगा। तत्पश्चात् उसने उस बालक को मारने के लिए एक चाण्डाल को बुलाया और उसे धन का प्रलोभन भी दिया। चाण्डाल ने उसकी बात सुनकर बालक को उठाया और नदी के किनारे गहन वन में छोड़ दिया और लौटकर उसकी मृत्यु की घोषणा कर दी। नहाकर, नदी का जल पीकर और फल खाकर वह बालक वृक्ष के नीचे सो गया।

थोड़ी देर बाद गोविन्द ग्वाले ने वहाँ उसे सोता हुआ देखा। उस बालक को देखकर गोविन्द ने प्रसन्नतापूर्वक घर लाकर अपनी स्त्री धनश्री को दे दिया। धनश्री उसे अपने पुत्र के ही समान पालने लगी। धीरे-धीरे सोमदत्त युवक हुआ।

एक दिन सेठ गुणपाल वहाँ पहुँचा तो सोमदत्त को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उसने गोविन्द से उसके विषय में जिज्ञासा प्रकट की। गोविन्द ने सोमदत्त को अपने पुत्र के रूप में घोषणा कर दी। तब गुणपाल ने कहा कि अपने पुत्र को जरा मेरे घर भेज दीजिए। गुणपाल की बात सुनकर गोविन्द ने अपने पुत्र को सुसज्जित किया, तब सेठ ने उसे एक पत्र देकर विदा किया। उस पत्र में गुणश्री के लिए आदेश था कि पत्रवाहक को विष दे देना।

पत्र लेकर सोमदत्त शीघ्रता से एक उद्यान में पहुँचकर एक वृक्ष के नीचे सो गया। उसी समय वसन्तसेना नाम की वेश्या ने वहाँ आकर उसके गले में पड़े हुए पत्र को पढ़ा। पत्र के विषय की असंगति का विचार करके उसने पत्र में सुधार कर दिया कि पत्रवाहक को अपनी पुत्री विषा दे देना। पुनः पत्र को सोमदत्त के गले में डालकर वसन्तसेना शीघ्र ही अपने घर चली गई। सोमदत्त वहाँ से उठकर गुणपाल के घर गया और गुणपाल के पुत्र महाबल को उसने पत्र दे

दिया। महाबल ने पत्र पढ़कर माता एवं अन्य बान्धवों से परामर्श करके शुभ दिन और शुभनक्षत्र में उन दोनों (विषा और सोमदत्त) का विवाह बड़ी धूमधाम से करने का आयोजन किया। वरवधू वेदी में बैठे ही थे कि गुणपाल अपने घर पहुँच गया। वर और वधू को देखकर क्रोध के कारण धूलिधूसरित शरीर से ही बिस्तर पर लेट गया। पिता को बिस्तर पर लेटा हुआ देखकर महाबल ने निवेदन किया कि यह कार्य आपकी इच्छा से सम्पन्न किया जा रहा है, अतः आप मौन क्यों है? महाबल की बात सुनकर गुणपाल बोला कि जब तक मैं घर में नहीं आया, तब तक तुमने विषा का विवाह कैसे निश्चित किया? महाबल ने उत्तर दिया कि आपका पत्र पढ़कर ही मैंने वह विवाह निश्चित किया है।

महाबल की बात सुनकर गुणपाल अत्यधिक दुःखी हुआ। गुणश्री को आग्रह करने पर उसने सम्पूर्ण पूर्व-वृत्तान्त सुना दिया। इसके बाद सन्ध्याकाल में धूपपुष्पादि देकर गुणपाल ने अपने जामाता सोमदत्त को नागमन्दिर भेजा। उसको अकेले जाता हुआ देखकर महाबल ने उसके हाथ से पूजा की सामग्री बलपूर्वक लेकर उसे वहीं रोक दिया; और स्वयं नागमन्दिर की ओर चल पड़ा। वहाँ पूजा की सामग्री लाने वाले युवक की हत्या के लिए गुणपाल ने एक चाण्डाल को नियुक्त कर दिया था। महाबल जैसे ही नागमन्दिर पहुँचा, वैसे ही चाण्डाल ने तलवार से उसकी हत्या कर दी।

गुणपाल जामाता को जीवित देखकर और पुत्र की मृत्यु का समाचार जानकर मौन और दुःखी हो गया। इसके बाद गुणपाल ने गुणश्री से शत्रुरूप जामाता को मारने का उपाय पूछा। उसके वचन सुनकर गुणश्री ने शीघ्र ही विषमय लड्डू तैयार किये। उसने अपनी पुत्री विषा को समझाया कि ये लड्डू केवल अपने पति को देना, अन्य किसी व्यक्ति को नहीं। ऐसा कहकर वह बाहर चली गई। इसके बाद ही भूख से व्याकुल सेठ गुणपाल ने विषा से कहा कि राजकार्य से मुझे राजा ने बुलाया है। अतः जो कुछ भोजन है, वही मुझे दे दो। उसके वचन सुनकर विषा ने शीघ्र ही विषयुक्त लड्डू खाने को दे दिए। फलस्वरूप गुणपाल की मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु से शोकाकुल गुणश्री ने भी उन लड्डुओं को खाकर मृत्यु को प्राप्त कर लिया।

इस घटना के बाद राजा ने सोमदत्त को पास बुलाया; अपनी पुत्री, अपना आधा राज्य, गुणपाल का धन एवं राजश्रेष्ठी का पद उसे दे दिया। राजश्रेष्ठी ने नगर में सुखपूर्वक भोगों का अनुभव किया।

सुकेतु सूरि नामक मुनि को आहार इत्यादि से सत्कृत करके उनसे धर्मोपदेश पूर्वजन्म के वृत्तान्त इत्यादि के विषय में सुना। तत्पश्चात् वह तपश्चरण करने लगा। चारों प्रकार की आराधनाओं का सम्पादन करके सोमदत्त मुनि ने सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त किया।

इस प्रकार एक मछली को दया के कारण चार बार मुक्ति देने से सोमदत्त के जन्म में मृगसेन धीवर ने भी चार बार दया प्राप्त की।[1]

आराधनाकथाकोश में वर्णित मृगसेन धीवर की कथा—

अवन्ती प्रदेश में शिरीष नामक ग्राम में मृगसेन नामक मछुआ रहता था। एक बार कन्धे पर जाल लटकाकर वह मछलियाँ पकड़ने के लिए शिप्रा नदी को गया। मार्ग में उसने यशोधर नामक मुनिराज के दर्शन किए। उनको देखकर जाल इत्यादि छोड़कर उसने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उसने किसी नियम के उपदेश हेतु निवेदन किया। मुनि ने उसकी हिंसात्मक वृत्ति का विचार करके उससे दयापूर्वक कहा कि हे महाभाग ! आज से तुम्हारे जाल में जो मछली सबसे पहले आए उसे छोड़ देना। इस नियम के साथ ही तुम पंचनमस्कार मन्त्र का भी ध्यान करना। मुनि का वाक्य सुनकर मृगसेन शीघ्र ही शिप्रा नदी पर पहुँचा और व्रत को स्मृतिपूर्वक जाल को जल में डालकर उसने एक बड़ी मछली पकड़ी। मुनि के सम्मुख की गई प्रतिज्ञा के अनुसार उसने मछली को चिह्नित करके पुनः जल में छोड़ दिया। इसके बाद उसने जाल फैलाया तो वही मछली जाल में बार-बार आई। इस प्रकार जब उसने पाँच बार मछली को मुक्त किया, तब तक सूर्यास्त हो चुका था। मृगसेन गुरुवचन को स्मरण करता हुआ घर की ओर चला।

अपने पति को खाली हाथ आता देखकर उसकी घण्टा नाम की स्त्री ने उस पर क्रोध प्रकट किया और झोपड़ी में प्रवेश करके शीघ्र ही द्वार बन्द कर दिया।

तत्पश्चात् मृगसेन बाहर ही पंचनमस्कार मन्त्र का स्मरण करता हुआ एक पुराने काठ पर सो गया। रात्रि में उसमें से एक सर्प ने निकलकर उसके प्राण हर लिये। प्रातःकाल घण्टा उसे मरा हुआ देखकर अत्यधिक शोकाकुल हो गई और जिस पवित्र व्रत का पालन इसने किया, मैं भी उसी का पालन करूंगी। अगले जन्म में भी यह मेरा स्वामी हो ऐसा निश्चय करके उसने मृगसेन के साथ ही अग्नि में प्रवेश कर लिया।

विशाला नगरी में विश्वंभर नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम था विम्बगुणा। उसी नगर में गुणपाल नामक सेठ धनश्री नामक सेठानी के साथ रहता था। उनकी सुबन्धु नाम की पुत्री थी। उस धनश्री के गर्भ में मृगसेन के जीव ने प्रवेश किया। राजा विश्वंभर ने अपने मन्त्रिपुत्र नर्मधर्म के लिए गुणपाल से उसकी पुत्री सुबन्धु की याचना की। किन्तु नर्मधर्म के दुराचरण से भयभीत गुणपाल के हृदय में सुबन्धु को देने का साहस नहीं हुआ; सर्वस्वनाश रोकने की इच्छा से गुणपाल ने अपनी गर्भिणी स्त्री को अपने मित्र श्रीदत्त सेठ के घर ठहरा दिया और पुत्री को लेकर चुपचाप कौशाम्बी नगर में पहुँच गया।

---

१. हरिषेणाचार्यविरचित बृहत्कथाकोश; ७२वीं कथा।

इस वृत्तान्त को जानकर गुणपाल कौशाम्बी से उज्जयिनी नगरी आ गया। इस प्रकार धनकीर्ति की अपने पिता से भी भेंट हो गई। भगवान् जिनेन्द्र की पूजा और परोपकार में उसने सुख का अनुभव किया।

एक दिन सेठ गुणपाल धनकीर्ति एवं अनंगसेना वेश्या सहित यशोध्वज नाम के मुनि के दर्शन करने के लिए गया। गुणपाल ने मुनि से धनकीर्ति के जीवन में आने वाले उत्थान-पतन के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। मुनि ने बताया कि पूर्वजन्म में धनकीर्ति मृगसेन धीवर था और श्रीमती उसकी उस जन्म की घण्टा नाम की स्त्री थी। जिस मछली को इसने पाँच बार मुक्त किया था, वही इस जन्म में अनंगसेना के रूप में उत्पन्न हुई है।

मुनि के मुख से अहिंसा का फल एवं जैनधर्म का उपदेश सुनकर वे सब जैनधर्म में रत हो गये। धनकीर्ति, श्रीमती और अनंगसेना ने जातिस्मृति की शक्ति को प्राप्त करके वैराग्य धारण कर लिया। धनकीर्ति ने केशों को उखाड़ दिया; और जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। तपश्चरण के पश्चात् वह केवली हो गया और उसने सर्वार्थसिद्धि के सुख को प्राप्त किया। श्रीमती और अनंगसेना ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली और अपने-अपने आचरण के अनुसार स्वर्ग प्राप्त किया।[1]

उपर्युक्त ग्रन्थों में आये हुए मृगसेन धीवर के कथानक को देखने से ज्ञात होता है कि श्रीज्ञानसागर विरचित 'दयोदयचम्पू' का कथानक 'बृहत्कथाकोश' के कथानक से पूर्ण समानता रखता है। चूँकि 'आराधनाकथाकोश' में इस कथानक का अत्यधिक परिवर्तित रूप मिलता है। अतः 'बृहत्कथाकोश' में वर्णित 'मृगसेन धीवर की कथा' को ही 'दयोदयचम्पू' का स्रोत मानना चाहिए, 'आराधनाकथाकोश' को नहीं।

अब देखना यह है कि 'बृहत्कथाकोश' में आई हुई कथा में महाकवि ने कहाँ-कहाँ परिवर्तन किया है :—

(क) 'बृहत्कथाकोश' में मृगसेन धीवर और घण्टा धीवरी के माता-पिता का उल्लेख है,[2] जो 'दयाचम्पू' में नहीं है।

(ख) 'बृहत्कथाकोश' में कथा का प्रारम्भ धीवर के वृत्तान्त से ही होता है,[3] किन्तु 'दयोदयचम्पू' में कथा का प्रारम्भ उज्जयिनी नगरी के राजा के वर्णन से हुआ है।[4]

(ग) 'बृहत्कथाकोश' में खाली हाथ लौटे हुई मृगसेन धीवर से घण्टा का वार्तालाप

---

१. ब्रह्मचारी नेमिदत्तकृत 'आराधनाकथाकोश', २।२५

२. बृहत्कथाकोश, ७२।२

३. वही, ७१।१-२

४. दयोदयचम्पू, १।१२

पाकर धनकीर्ति शीघ्रता से गन्तव्य की ओर चल पड़ा। उज्जयिनी नगरी में वह एक महान् आम्रवन में प्रविष्ट हुआ। राह की थकान को दूर करने के लिए एक वृक्ष के नीचे सो गया। थोड़ी देर बाद अनङ्गसेना वेश्या वहाँ आई; और उसने उस युवक को सोते हुए देखा। पूर्वजन्म के उपकार के कारण उत्पन्न स्नेह के वश उसने उसके पास रखे पत्र को पढ़कर उसके अक्षरों पर विचार किया। तत्पश्चात् अपने नेत्र के काजल को सलाई में लगाकर पत्र में लिखा—'मेरी भार्या ! यदि तुम मुझसे स्नेह करती हो, और पुत्र महाबल ! यदि तुम मुझे अपना पिता समझते हो तो मेरी अपेक्षा के बिना ही धूम-धाम से मेरी पुत्री श्रीमती इसको दे देना।' इस कार्य को करके पुनः पत्र को पूर्ववत् रखकर चली गई।

जब धनकीर्ति सोकर उठा तो श्रीदत्त के घर जाकर उसने वह पत्र उन माता-पुत्र को सौंप दिया। शीघ्र ही उसका विवाह श्रीमती के साथ हो गया।

इस वृत्तान्त को सुनकर श्रीदत्त ने व्याकुल मन से लौटकर नगर के बाहर चण्डिका के मन्दिर में एक पुरुष को धनकीर्ति के वध के लिए नियुक्त कर दिया। घर आकर उसने धनकीर्ति से कहा कि मेरे घर की यह रीति है कि विवाह के बाद लड़का रात्रि के समय में कात्यायनी के मन्दिर में जाता है। ऐसा सुनकर धनकीर्ति सहमति प्रकट करके पूजा की सामग्री लेकर निकला तो नगर के बाहर उसके साले ने उसे देखा, और पूछा कि इस समय अंधेरा हो जाने पर आप अकेले कहाँ जा रहे हैं ? उसने बताया कि माता की आज्ञा से दुर्गा के मन्दिर में जा रहा हूँ। महाबल ने धनकीर्ति को रोक दिया और स्वयं मन्दिर चला गया। धनकीर्ति तो निर्बाध घर पहुँच गया; और महाबल यमलोक को गया। पुत्रशोक से विह्वल श्रीदत्त ने एकान्त में अपनी पत्नी से कहा कि यह धनकीर्ति किस प्रकार मारा जाए ? उसने कहा कि आप चुप ही रहें, आपका वांछित कार्य मैं करूँगी। तत्पश्चात् उसने विष डालकर लड्डू बनाये और अपनी पुत्री से कहा कि उज्ज्वल कान्ति वाले लड्डू अपने पति को देना और श्यामवर्ण वाले लड्डू अपने पिता को देना। पुत्री को निर्देश देकर वह शीघ्र ही स्नान के लिए नदी को चली गई। माता की दुश्चेष्टा से अनभिज्ञा श्रीमती ने उज्ज्वल कान्ति वाला लड्डू अपने पिता को दे दिया, उस लड्डू को खाते ही सेठ श्रीदत्त की मृत्यु हो गई।

श्रीमती की माता विशाखा ने घर आकर जब स्वामी को जीवित नहीं देखा, तब शोकाकुल होकर अपने पति के क्रूरकर्म की निन्दा की; श्रीमती को आशीर्वाद दिया; और स्वयं भी विषमय लड्डू खाकर यमलोक चली गई।

इस प्रकार पाँच बार मृत्यु के मुख से बचकर धनकीर्ति सुखपूर्वक रहने लगा। एक दिन शुभमुहूर्त में विश्वंभर ने अपनी पुत्री धनकीर्ति को दे दी; और उसे महाश्रेष्ठिपद पर आसीन किया।

एक दिन श्रीदत्त के गृह में शिवगुप्त और गुप्त नामक दो मुनि आये। श्रीदत्त के गृह में निवास करती हुई गर्भिणी धनश्री को देखकर गुप्तमुनि ने ज्येष्ठ मुनि से पूंछा कि कौन दुःखदायी पुत्र इसके गर्भ में है जिसके कारण यह स्त्री इतनी दुःखी दिखाई दे रही है। उनके वचन सुनकर शिवगुप्त ने गुप्त मुनि से कहा कि यह सेठानी अभी तो दुःखी दिखाई दे रही है, लेकिन दुःख के दिन बीत जाने पर इसका पुत्र जैनधर्म का धुरन्धर होगा। राजश्रेष्ठी के पद को प्राप्त करके विश्वंभर राजा की कन्या का पति होगा।

दुष्ट श्रीदत्त मुनि के वचनों को सुनकर गर्भस्थ बालक को मारने की इच्छा करने लगा। धनश्री ने प्रसूतिवेला में पुत्र को जन्म दिया। प्रसूति के कष्ट से वह मूर्च्छित हो गई। यह समाचार पाकर श्रीदत्त ने घर की वृद्ध स्त्रियों से यह घोषणा करा दी कि मरा हुआ बालक उत्पन्न हुआ है; और सद्योजात शिशु को वध हेतु एक चाण्डाल के हाथों में सौंप दिया। चाण्डाल ने उस बालक के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसे मारने के बदले एकान्त स्थान में छोड़ दिया और घर चला गया।

श्रीदत्त का बहनोई सेठ इन्द्रदत्त घूमता हुआ उसी स्थान पर पहुंचा। ग्वालों की बातों से उस बालक का समाचार जानकर निःसन्तान होने के कारण बालक को प्रसन्नतापूर्वक उठा लिया और घर जाकर अपनी स्त्री राधा से उसका पालन करने को कह दिया। अपने पुत्र की उत्पत्ति की घोषणा करके उन्होंने महान् उत्सवों की आयोजना की।

श्रीदत्त ने जब यह समाचार सुना तो वह इन्द्रदत्त के घर आया और कपट-पूर्वक बहिन के साथ उस बालक को अपने घर ले गया। बालक को मारने की इच्छा से उसने उसको एक चाण्डाल को दे दिया। बालक की रूप-सम्पदा से द्रवित होकर चाण्डाल ने उसे घने वृक्षों के बीच एकान्त स्थित नदी के किनारे रख दिया और घर चला गया।

सन्ध्याकाल में उस बालक को वहाँ देखकर ग्वालों ने उसे उठाकर ग्वालों के मुखिया गोविन्द को दे दिया। पुत्र की इच्छा से गोविन्द ने उसे घर लाकर अपनी स्त्री सुनन्दा को सौंप दिया। उन्होंने उस बालक का नाम धनकीर्ति रखा और बड़े स्नेह से उसका पालन किया। धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त करते हुए धनकीर्ति को एक दिन दुष्ट श्रीदत्त ने देख लिया। उसका वृत्तान्त जानकर उसने गोविन्द से कहा कि मेरे घर में एक आवश्यक कार्य है, अतः इस पत्र को लेकर अपने पुत्र को भेज दो। गोविन्द ने धनकीर्ति को जाने की स्वीकृति दे दी। उस दुष्ट ने अपने पत्र में पुत्र महाबल को सम्बोधित करते हुए लिखा था कि इस कुल का नाश करने वाले व्यक्ति को अवश्य ही मार देना। उस पत्र को लेकर पिता और सेठ की अनुमति

संक्षिप्त है,[1] किन्तु 'दयोदयचम्पू' में यह विस्तृत है।[2]

(घ) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णन है कि मृगसेन को मरा हुआ देखकर घंटा धीवरी ने उसके मार्ग का अनुसरण करने के लिए सर्प के बिल में हाथ डाला,[3] किन्तु 'दयोदयचम्पू' में वर्णन है कि जैसे ही घण्टा ने पति का अनुसरण करने का विचार किया, वैसे ही जिस सर्प ने मृगसेन को डसा था, उसी ने घंटा को भी डस लिया।[4]

(ङ) 'बृहत्कथाकोश' में उल्लिखित है कि गुणपाल ने गोविन्द से कहा कि वह आवश्यक कार्य से सोमदत्त को उसके घर भेज दे,[5] किन्तु 'दयोदयचम्पू' में वह सोमदत्त से पूछता है कि आवश्यक कार्य से किसको घर भेजा जाय, तब सोमदत्त कह देता है कि मैं ही चला जाऊँगा।[6]

(च) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णन है कि विषा और सोमदत्त के विवाह का कार्य जिस दिन सम्पन्न होना था, गुणपाल उसी दिन अपने घर आ धमका; और अपने पुत्र पर क्रोधित हुआ,[7] किन्तु 'दयोदयचम्पू' में जब गुणपाल को विषा और सोमदत्त के विवाह का समाचार ज्ञात होता है, उस समय वह गोविन्द ग्वाले के घर में ही होता है। गोविन्द ग्वाले के जिज्ञासा करने पर ऊपरी तौर पर प्रसन्नता प्रकट करके उसे उन दोनों के विवाह की सूचना देता है। घर लौटकर पुत्र और पत्नी से बात बनाते हुए कहता है कि तुम लोगों से तो इस विवाह के सम्बन्ध में स्वीकृति माँगी थी, कार्य सम्पन्न करने को नहीं कहा था।[8]

(छ) 'बृहत्कथाकोश' में नागमन्दिर वृत्तान्त के पहले ही गुणपाल, गुणश्री के आग्रह पर अपनी व्याकुलता का कारण बता देता है,[9] किन्तु 'दयोदयचम्पू' में यह वृत्तान्त नागमन्दिर के बाद का है।[10]

(ज) 'बृहत्कथाकोश' में वर्णन है कि गुणश्री पुत्री को निर्देश देती है कि ये लड्डू केवल अपने पति को ही देना, अन्य किसी को नहीं,[11] किन्तु 'दयोदयचम्पू' में

---

१. बृहत्कथाकोश, ७१।१५-२३
२. दयोदयचम्पू, २ श्लोक ७ के बाद से श्लोक २३ के पूर्व तक।
३. बृहत्कथाकोश, ७२।७६
४. दयोदयचम्पू, २ श्लोक ३२ के पूर्व से श्लोक ३३ के बाद तक।
५. बृहत्कथाकोश, ७२।५७
६. दयोदयचम्पू, ४ श्लोक के बाद के गद्यभाग।
७. बृहत्कथाकोश, ७२।७६-८१
८. दयोदयचम्पू, ५ प्रारम्भ के गद्यभाग एवं १ से ६ श्लोक तक।
९. बृहत्कथाकोश, ७२।८४-८७
१०. दयोदयचम्पू, ६ प्रारम्भ का गद्यभाग एवं १ से ३ श्लोक तक।
११. बृहत्कथाकोश, ७२।९६-९७

गुणश्री सद्दू तो बनाती है, किन्तु पुत्री को इनके विषय में कोई निर्देश नहीं देती।[1]

(ख) 'बृहत्कथाकोश' में सोमदत्त को उपदेश देने वाले मुनि का नाम सुकेतुसूरि बताया गया है।[2] किन्तु दयोदयचम्पू' में ऋषि का नाम नहीं मिलता है।

उपर्युक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त कवि ने 'दयोदयचम्पू' में तीन परिवर्धन भी किये हैं, जो इस प्रकार हैं :—

(क) 'दयोदयचम्पू' में सोमदत्त की शिक्षा का भी उल्लेख है[3], जो 'बृहत्कथाकोश' में नहीं पाया जाता।

(ख) 'दयोदयचम्पू' में विषा विवाह के पूर्व ही सोमदत्त का दर्शन करके उस पर आसक्त हो जाती है[4], पर 'बृहत्कथाकोश' में ऐसा प्रसंग नहीं है।

(ग) 'दयोदयचम्पू' में वर्णन है कि जब सोमदत्त नागमन्दिर जा रहा था, उस समय महाबल आदि बालकों के साथ गुल्ली-डण्डा खेल रहा था। सोमदत्त को आता हुआ देखकर उसने सोमदत्त को क्रीड़ा में अपने स्थान पर नियुक्त किया और स्वयं पूजा सामग्री लेकर मन्दिर चला गया।[5] किन्तु बृहत्कथाकोश' में इस खेल का उल्लेख नहीं है।

स्पष्ट है कि ये परिवर्तन एवं परिवर्धन काव्यास्वाद में सहृदयता लाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

(ङ) सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि के काव्यों के मूलस्रोत के रूप में छः ग्रन्थ सामने आते हैं—महापुराण, बृहत्कथाकोश, आराधनाकथाकोश, सुदंसणचरिउ, पुण्यास्रव कथाकोश और सुदर्शनचरित। कविवर के जयोदय एवं वीरोदय महाकाव्यों के कथानक का स्रोत महापुराण है; सुदर्शन के कथानक का स्रोत बृहत्कथा के अतिरिक्त आराधना कथाकोश, सुदंसणचरिउ, पुण्यास्रवकथाकोश और सुदर्शनचरित नामक चार ग्रन्थ हैं; एवं ग्रन्थ दोनों—श्रीसमुद्रदत्तचरित्र और दयोदयचम्पू-काव्यों के स्रोत बृहत्कथाकोश और आराधनाकथाकोश—ये दो ग्रन्थ हैं।

महाकवि श्रीज्ञानसागर ने मूलकथा में अधिक परिवर्तन किया है। पौराणिक आख्यान को महाकाव्य का रूप देने में कवि को सफलता दिलाने वाला महाकाव्य 'वीरोदय' है। यह 'जयोदय' की अपेक्षा अधिक रोचक बन गया है। वैसे कवि ने

---

१. दयोदयचम्पू, ६ श्लोक ५ के बाद का गद्य भाग।
२. बृहत्कथाकोश, ७२।१०६
३. दयोदयचम्पू, ४ श्लोक ६ एवं उसके बाद का गद्यभाग।
४. वही, ४ श्लोक १४ के पूर्व का गद्यभाग एवं १४-१६
५. वही ५ श्लोक १४ के पूर्व का गद्यभाग।

दोनों ही काव्यों की कथा की अन्तः कथाओं को हटाने का प्रयत्न किया है। 'वीरोदय' महाकाव्य में वर्णित जन्माभिषेक 'महापुराण' में वर्णित जन्माभिषेक की अपेक्षा अधिक रोचक है।

'सुदर्शनोदय' की कथा जिन छः ग्रन्थों में मिलती है;—उनमें मूल स्रोत 'बृहत्कथाकोश' ही है। अन्य ग्रन्थकारों ने इसी के आधार पर अपनी रचनायें प्रस्तुत की हैं, किन्तु हमारे कवि ने इन रचनाओं से भी कुछ बातें ग्रहण की हैं :— यथा सुदर्शनोदय' में 'आराधनाकथाकोश' के अनुसार ही सुकान्त की उत्पत्ति एवं सात पुतलों का वर्णन नहीं मिलता, वरन् उसमें पूर्वजन्मवृत्तान्त एवं पाँच स्वप्नों का वर्णन मुनि नयनंदि विरचित 'सुदंसणचरिउ' के भी अनुसार है। सेठ वृषभदास का मुनिदर्शन भी नयनंदि के अनुसार है। सुभग ग्वाले द्वारा रातभर मुनि की सेवा का वर्णन 'सुदर्शनोदय' के समान ही 'पुण्यास्रव-कथाकोश' एवं सकलकीर्ति विरचित 'सुदर्शनचरित' में भी मिलता है। श्रीज्ञानसागर ने 'बृहत्कथाकोश' के समान ही अपने इस काव्य में अन्तःकथाओं को नहीं बढ़ाया है। कथा को काव्य रूप में परिणत करने में उन्हें सफलता मिली है। कवि द्वारा किये परिवर्तनों एवं परिवर्धनों से काव्य में पर्याप्त रोचकता आ गई है। साथ ही काव्य के नायक का स्थान भी पाठक के समक्ष ऊंचा हो गया है।

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' का कथास्रोत निस्सन्देह 'बृहत्कथाकोश' ही है। 'आराधनाकथाकोश' की कथा भी इसी के आधार पर लिखी गई है। किन्तु कवि ने भद्रमित्र को राजश्रेष्ठी बनाने का वर्णन 'आराधना-कथाकोश' के ही अनुसार किया है। इस काव्य के मध्यभाग में रोचकता की कमी है।

'दयोदयचम्पू' काव्य के भी कथानक का स्रोत 'बृहत्कथाकोश' ही है। कोश की कथा को 'चम्पूकाव्य' के रूप में परिणत करने में कवि को जो परिवर्तन एवं परिवर्धन करने पड़े हैं, उनसे काव्य में रोचकता एवं नाटकीयता का समावेश हो गया है।

यद्यपि कवि ने अपने काव्य मुख्य रूप से 'महापुराण' एवं बृहत्कथाकोश' के ही आधार पर लिखे हैं, तथापि हम ऐसा नहीं कह सकते कि कवि की कृतियाँ इन दोनों की अनुकृतियाँ हैं। कवि ने अपने वर्णनकौशल, अलंकार-प्रयोग, जैनदर्शनोपदेश इत्यादि से कथाओं को काव्य में बदल दिया है। इस प्रकार सात्त्विक अभिरुचि वाले और दार्शनिक अभिरुचि वाले—दोनों ही प्रकार के पाठकों के लिए सामग्री जुटाने में कवि को अद्भुत सफलता मिली है।

चतुर्थ अध्याय

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्य-ग्रन्थों की काव्यशास्त्रीय विधाएँ

(क) काव्य एवं काव्यविधाएँ : एक संक्षिप्त परिचय

काव्य—

'काव्य' शब्द कव् धातु में ष्यत् प्रत्यय के योग मे निष्पन्न हुआ है। 'कव्' का तात्पर्य है—वर्णन करना। इस प्रकार काव्य शब्द का अर्थ है—कविकृत किसी पदार्थ का सुन्दर वर्णन।

किसी भी व्यक्ति के स्वरूप का ज्ञान करने के लिए हम उसके नख-शिख का आलोचन करते हैं। इसी प्रकार काव्य का क्या स्वरूप है? यह जानने के लिए हमें उसके प्रमुख अंगों के विषय में जानना चाहिए। लीजिए, आपके समक्ष काव्य-पुरुष के अंगों का परिचय प्रस्तुत है :—

शब्द :—

कवि को किसी पदार्थ का वर्णन करते समय सर्वप्रथम शब्दावली का सहारा लेना पड़ता है। वर्णन में प्रयुक्त किये जाने वाले शब्द सार्थक होने चाहिएँ।

अर्थ :—

कवि जब किसी पदार्थ का वर्णन करता है तो उस वर्णन का कुछ न कुछ अर्थ अवश्य निकलता है। जब चाहे यह अर्थ पाठक का मनोरञ्जन करे या उसे बौद्धिक व्यायाम कराये।

अलंकार :—

पुरुष अपने को सुसज्जित करने के लिए, अपनी समृद्धि-बहुलता को प्रकट करने के लिए और स्त्रियाँ अपने सौभाग्य को सूचित करने के लिये कटक कुण्डल-हारादि अलंकारों का उपयोग करती हैं। इसी प्रकार कवि अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए अपनी कविता-कामिनी को अनुप्रास, उपमा, श्लेष इत्यादि से सुसज्जित करता है। एक यशस्वी व्यक्ति के लिए कुण्डलादि आवश्यक नहीं, इसी प्रकार कवि के काव्य का भावपक्ष प्रबल होने पर काव्य के लिए उपमा-अनुप्रासादि की आवश्यकता नहीं है।

छन्द—

पुरुष को गतिशील बनाने का महत्वपूर्ण और मूर्त साधन हैं—उसके चरणद्वय। इसी प्रकार काव्य-पुरुष की गति अवरुद्ध न हो, उसमें प्रवाह हो—इसके लिए कवि छन्दों का आवलम्बन लेता है। गद्य-काव्यों में इसकी इतनी आवश्यकता नहीं होती, किन्तु पद्य-काव्य पूर्णतया इनका सहारा लेकर लिखा जाता है। छन्दों की इसी महत्ता के कारण महर्षि पाणिनि ने छन्दों को वेदों का चरण कहा है।[1]

आत्मा (हृदय)—

पुरुष केवल अपने शरीर के बल पर जीवित नहीं रह सकता। उसे जीवित रखने वाली एक अमूर्त शक्ति है, और वह है आत्मा। इसी प्रकार काव्य भी केवल शब्दार्थमय शरीर से ग्राह्य नहीं बन सकता और न केवल छन्द और अलंकार ही उसे ग्राह्य बना सकते हैं। वरन् काव्य को ग्राह्य बनाने के लिये भी आत्म-शक्ति आवश्यक है—उस आत्मशक्ति को हम साहित्यिक भाषा में 'रस' कहते हैं। इसके बिना काव्य या तो निष्प्राण होता है, या पाठक के बौद्धिक व्यायाम का साधन। अतः बुद्धि और सहृदयता से युक्त अच्छे पुरुष के समान एक अच्छा काव्य भी वही माना जाता है जिसमें बुद्धि-पक्ष और हृदय-पक्ष का समन्वय हो।

वर्ण्य-विषय—

प्रत्येक काव्य का कोई न कोई वर्ण्य-विषय होता है। चाहे काव्य किसी कथा पर आधारित हो, या किसी की भक्ति पर, या देश-प्रेम पर। वर्ण्य-विषय न होने पर कवि किसका वर्णन करेगा?

शैली—

पुरुष अपना मुख्य ध्येय प्राप्त करने के लिए कोई न कोई मार्ग चुनता है। कवि के काव्य लिखने का मुख्य उद्देश्य है—'सद्यः परनिर्वृत्ति'। अपने इस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए उसे काव्य में कोई न कोई मार्ग चुनना पड़ता है। साहित्य में इसी मार्ग का प्रचलित नाम है शैली।

गुण-दोष—

जिस प्रकार मनुष्यों में गुण-दोष देखने को मिल जाते हैं, उसी प्रकार काव्यों में भी ये पाये जाते हैं। पर जिस प्रकार 'पूज्य ऋषिजन पुरुष को गुणों को ग्रहण करने का और दोषों से बचने का उपदेश देते हैं, उसी प्रकार साहित्यशास्त्री

---

१. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा प्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

—पाणिनीय शिक्षा, श्लोक ४१ और ४२

भी अच्छे कवि को यह उपदेश देते हैं कि वह भी यथा-सम्भव अपने काव्य में 'माधुर्यादि गुणों का आधान करे, और दुष्क्रमत्वादि दोषों से बचे।

मेरा विचार है कि उपर्युक्त विवेचन से काव्य का स्वरूप स्पष्ट हो गया होगा। अनेक प्राचीन काव्याचार्यों ने काव्य के एक से एक बढ़िया लक्षण किये हैं। मेरा यह उपर्युक्त विवेचन उन्हीं के लक्षणों का सार है। अतः अलग से काव्य का लक्षण देना यह प्रकट करेगा कि मुझे उन विद्वानों का लक्षण मान्य नहीं। यहाँ सभी आचार्यों के लक्षण न देकर केवल दो आचार्यों के लक्षण दिये जा रहे हैं :—

१. 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।
—मम्मटाचार्य विरचित काव्यप्रकाश।

१. 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।'
—पण्डितराज जगन्नाथ विरचित रसगंगाधर, १।१

काव्य-विधाएँ—

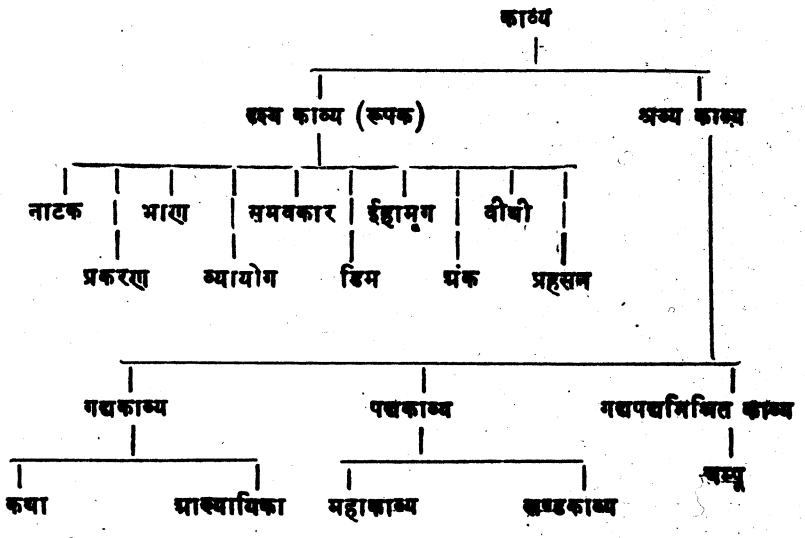
काव्य के सर्वप्रथम दो भेद होते हैं :—पहला दृश्य-काव्य और दूसरा श्रव्य-काव्य। दृश्य काव्य वे काव्य होते हैं जिन्हें रंगमंच पर अभिनीत किया जाता है, और व्यक्ति पात्रों के अभिनय को देखकर रसास्वादन करता है। दृश्य-काव्य के अन्तर्गत नाटक, प्रकरण आदि आते हैं। श्रव्य-काव्य वे काव्य हैं, जिन्हें केवल सुना और पढ़ा जाता है। वक्ता सुनाकर और श्रोता सुनकर रसानुभूति करते हैं। दृश्य-काव्य के १० प्रमुख भेद होते हैं—१—नाटक, २—प्रकरण, ३—भाण, ४—व्यायोग, ५—समवकार, ६—डिम, ७—ईहामृग, ८—अंक, ९—वीथी और १०—प्रहसन।

श्रव्य-काव्य के सर्वप्रथम तीन भेद किये जाते हैं—१-पद्यात्मक काव्य, २-गद्यात्मक काव्य और ३-गद्यपद्यात्मक काव्य।

पद्यात्मक काव्य के दो प्रमुख भेद हैं—१-महाकाव्य और २-खण्डकाव्य।

गद्यात्मक काव्य के भी दो प्रमुख भेद माने गये हैं—१-कथा और २-आख्यायिका

गद्यपद्यात्मक काव्य को चम्पू-काव्य कहा जाता है। यद्यपि काव्याचार्यों ने इन काव्यों के अन्य भी भेदोपभेदों की गणना की है, किन्तु यहाँ अपने शोध-प्रबन्ध की विषय-वस्तु और स्वरूप का विचार करते हुए मैंने काव्य के प्रमुख एवं प्रचलित भेदों का ही उल्लेख किया है। इन प्रमुख-प्रमुख काव्य-भेदों का रेखाचित्र इस प्रकार होगा :—



(ख) कवि के संस्कृत-काव्य एवं काव्य-शास्त्रीय विधा : एक समन्वय

महाकवि श्री ज्ञानसागर ने संस्कृत-भाषा का आश्रय लेकर जिन कृतियों का प्रणयन किया, वे इस प्रकार हैं—१-जयोदय, २-वीरोदय, ३-सुदर्शनोदय, ४-श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ५-दयोदय, ६-मुनिमनोरंजन शतक, ७-प्रवचनसार और ८-सम्यक्त्वसार शतक। काव्य का स्वरूप ध्यान में रखते हुए हम इन आठ रचनाओं में से प्रथम छः को संस्कृत-काव्यों की कोटि में रख सकते हैं। अब देखना यह है कि इन संस्कृत-काव्यों में कौन काव्य, काव्य की किस विधा के अन्तर्गत आता है। इस परीक्षण हेतु हम सर्वप्रथम जयोदय को ही लेते हैं :—

जयोदय—

यह एक महाकाव्य है। भारतीय आचार्य महाकाव्य में जिन विशेषताओं का होना आवश्यक समझते थे, वे इस प्रकार हैं।

१—कथावस्तु सर्गबद्ध होनी चाहिए और सर्ग भी आठ से अधिक तथा उचित आकार वाले होने चाहिएँ।

२—प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण होना चाहिये।

३—कथानक इतिहास या किसी सज्जन से सम्बद्ध होना चाहिये।

४—पुरुषार्थ-चतुष्टय में से एक की सिद्धि करनी ही चाहिये।

५—नायक चतुर, उदात्त और उच्चकुलीन होना चाहिए।

६—नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, वन, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, सूर्योदय, सूर्यास्त, सन्ध्या, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, मध्याह्न, जलक्रीड़ा, मधुपान, प्रेमोत्पत्ति, मृगया, वियोग, प्रेम, विवाह, कुमारोत्पत्ति, संवाद, दूताभियान, युद्धवर्णन, मृगया, नायकाभ्युदय, मुनि यज्ञ इत्यादि का यथावसर सुन्दर वर्णन होना चाहिये।

७—शृङ्गार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस अङ्गी (प्रधान) होना चाहिए, और शेष रस उस अङ्गी रस के अङ्ग (सहायक) होने चाहिएँ।

८—नाटक के ही समान पंचसन्धियों (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, उपसंहृति) का समावेश होना चाहिए।

९—प्रायः पूरे सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये, पर सर्ग के अन्त में छन्द अवश्य बदल जाना चाहिए।

१०—प्रत्येक सर्ग के अन्त में अग्रिम सर्ग में आने वाली कथा की सूचना होनी चाहिये।

११—सर्ग का नामकरण उस सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर करना चाहिये।

१२—काव्य को लोकरंजक एवं उत्तम अलंकारों से अलंकृत होना चाहिए।

१३—दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा होनी चाहिए।

१४—महाकाव्य को मनोहर बनाने के लिए आवश्यक है कि नायक के गुणों का वर्णन करने के पश्चात् उसके द्वारा उसके शत्रुओं की पराजय का वर्णन हो। साथ ही शत्रु के भी वंश और पराक्रम का वर्णन करना चाहिए, ताकि यह सिद्ध हो जाय कि नायक अपने से हीन व्यक्ति को नहीं, अपितु अपने समान ही बलशाली व्यक्ति को हराने में समर्थ है।

१५—महाकाव्य का नामकरण कवि, कथावस्तु, नायक या अन्य किसी आधार पर किया जाना चाहिये।[1]

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों में से यदि कोई लक्षण महाकाव्य में न घटे, पर उसका प्रतिपाद्य अच्छा हो, उसका वर्णन सहृदय को सहज ही आकृष्ट कर सके तो भी ऐसे काव्य को महाकाव्य की संज्ञा देना उचित ही होगा।[2]

जयोदय के अनुशीलन से यह स्पष्ट हुआ है कि महाकाव्य की ये सभी विशेषतायें उसमें पाई जाती हैं, विवरण इस प्रकार है।

१. जयोदय की कथावस्तु २८ सर्गों में निबद्ध है।

---

१. (क) भामह, काव्यालंकार १।१९-२३
(ख) दण्डी, काव्यादर्श, १।१४-१९
(ग) विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६।३१५ के उत्तरार्ध से ३२५ के पूर्वार्ध तक।

२. दण्डी, काव्यादर्श, १।२०-२२

२. प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में कवि ने जिनदेव की वन्दना की है।—

"श्रिया श्रितं सन्मतिमात्मयुक्त्याखिनज्ञमीशानमपीति मुक्त्या।
तनोमि नत्वा जिनप सुभक्त्या जयोदयं स्वाभ्युदयाय शक्त्या॥

—जयोदय, १।१

३. जयोदय का कथानक 'महापुराण' में कहे गये जयकुमार और सुलोचना वृत्तान्त पर आधारित है।

४. जयोदय महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ-चतुष्टय का भी यथास्थान वर्णन है।[1] काव्य के अन्त में जयकुमार द्वारा की गई तपस्या मोक्षरूप पुरुषार्थ को सिद्ध करती है।[2]

५. जयोदय महाकाव्य के नायक जयकुमार हैं। भरत चक्रवर्ती के सेनापति का पद उन्हें प्राप्त है।[3] वह क्षत्रियकुलोत्पन्न हैं। वह धीरोदात्त और चतुर हैं। उनमें राजनीतिज्ञता, वीरता, बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता, धार्मिकता, अपराजेयता आदि श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं।

३. जयोदय में विविध स्थलों का और वृत्तान्तों का सुन्दर वर्णन है। इस महाकाव्य में कवि ने काशी,[4] हस्तिनापुर,[5] और अयोध्या[6] नामक नगरों का यथास्थान वर्णन किया है। कवि ने अपने इस महाकाव्य में पर्वत,[7] वन,[8] सूर्योदय,[9] सूर्यास्त,[10] चन्द्रोदय,[11] चन्द्रास्त,[12] प्रभात,[13] सन्ध्या,[14] अन्धकार[15] और रात्रि[16] इन सभी का मनोहारी वर्णन किया है।

---

१. (क) जयोदय, २४।५८८५
(ख) वही, १०-१३ सर्ग
(ग) वही, २६-२८ सर्ग

२. वही, २८।१-६८

३. वही, ६।११४

४. वही, ३।३०

५. वही, ११।६७।८६

६. वही, २०।२-६

७. वही, २४।२-५७

८. वही, २१।४१-६४, १४।४-६

९. वही, १८।१-३२

१०. वही, १५।१-९

११. वही, १५।९, ७४-८२

१२. वही, १८।६३

१३. वही, १८वां सर्ग

१४. वही, १५।५३-३७

१५. वही, १५।३५-३७

१६. वही, १५।३८-१०८

वनक्रीड़ा,[1] मधुपान,[2] सुरतक्रीड़ा,[3] विवाह,[4] दूताभियान,[5] संवाद[6] एवं तीर्थयात्रा[7] इत्यादि भी कवि द्वारा काव्य में वर्णित किये गये हैं।

जयकुमार 'जयोदय' के नायक हैं। कवि ने इस महाकाव्य में जयकुमार के द्वारा अनेक बार बाह्य और आन्तरिक विपत्तियों के ऊपर प्राप्त विजय का वर्णन किया है।[8] अन्त में जयकुमार की अपने ऊपर विजय द्वारा कवि ने नायकाभ्युदय को और भी अधिक महत्त्व प्रदान किया है।[9]

प्रायः सभी धार्मिक काव्यों में ऋषि-मुनियों का वर्णन अवश्य ही होता है। 'जयोदय' जैनधर्म पर आधारित महाकाव्य है। इसमें दो बार मुनियों का उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम जब जयकुमार वनक्रीड़ा के लिये जाते हैं, तब वहाँ एक तपस्वी पहुंचते हैं[10] ऋषि-वर्णन से सम्बद्ध द्वितीय स्थल वह है जहाँ पर पुत्र का राजतिलक करने के बाद जयकुमार ऋषभदेव के पास जाकर उनसे दीक्षा की याचना करते हैं।[11]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि 'जयोदय' विविधस्वभाव वर्णन और वृत्तान्तों से सुशोभित है। कवि का यह विविध-वर्णन उसकी सूक्ष्म-दर्शन-शक्ति का परिचायक है।

७. जयोदय' महाकाव्य में स्थान-स्थान पर शृङ्गार,[12] वीर,[13] और शान्त रसों[14] का और भक्तिभाव[15] का परिपाक देखने को मिलता है। शृङ्गार रस, वीर रस और भक्ति भाव इस काव्य के अंगीरस—शान्तरस—को पुष्ट करने वाले हैं।

---

१. जयोदय, १४।७-९९
२. वही, १७वाँ सर्ग
३. वही, १७वाँ सर्ग
४. वही ५, ६, १०, ११, १२ सर्ग
५. वही, ३।२१-९५, ७।५६-७३, ९।५८-९४
६. वही, ७वाँ सर्ग
७. वही, २४वाँ सर्ग
८. वही, (क) अष्टम सर्ग।
(ख) २८वाँ सर्ग।
९. वही, २८।७१
१०. वही, १।७७
११. वही, २६।७३-७४
१२. वही, २२वाँ और २८वाँ सर्ग।
१३. वही, ७।८५-११५, ८वाँ सर्ग।
१४. वही, २५-२८ सर्ग।
१५ वही, १९वाँ सर्ग, २४।५८-८५

८. जयोदय में पंचसन्धियों का भी निर्वाह किया गया है। जयोदय के प्रथम सर्ग में जयकुमार का परिचय दिया गया है,[1] अतः यह इस काव्य की 'मुखसन्धि' माना जा सकता है। काव्य के तृतीय सर्ग में दूत काशीनरेश की पुत्री सुलोचना के स्वयंवर का सन्देश लाता है,[2] इस सर्ग को काव्य की 'प्रतिमुख सन्धि' माना जा सकता है क्योंकि प्रथम सर्ग में सुलोचना का भी उल्लेख आया है।[3] तृतीय सर्ग में पुनः जयकुमार और सुलोचना के विवाह की सूचना मिलती है। काव्य का मुख्य उद्देश्य सुलोचना और जयकुमार के संयोग के पश्चात् जयकुमार में वैराग्य उत्पत्ति है। इस उद्देश्य का सूचक काव्य का २३वाँ सर्ग है जिसमें जयकुमार की मूर्च्छा और पूर्वभव-स्मरण का वर्णन है।[4] अतः यह सर्ग इस काव्य की 'गर्भसन्धि' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। २४वाँ सर्ग काव्य की 'विमर्शसन्धि' के रूप में विद्यमान है। इसमें एक देव की पत्नी विरहिणी के रूप में जयकुमार को विचलित करने आती है।[5] तब श्रोता के मन में यह शंका होने लगती है कि कदाचित् जयकुमार अपना लक्ष्य प्राप्त न कर सकें। काव्य के २५वें सर्ग में जयकुमार के वैराग्य का वर्णन है,[6] अतः यह सर्ग काव्य की 'उपसंहृतिसंधि' को सूचित करता है।

८. 'जयोदय' में २८ सर्ग हैं। कवि ने कुछ सर्गों में तो एक ही छन्द को पूरे सर्ग में प्रयुक्त करके अन्तिम श्लोकों में छन्द बदल दिया है, लेकिन अन्य सर्गों में कवि ने छन्दों के स्वतन्त्र प्रयोग किये हैं। उन्होंने विशेषरूप से उपजाति,[7] अनुष्टुप्,[8] वियोगिनी,[9] मात्रासमक,[10] कालभारिणी,[11] रथोद्धता,[12] द्रुतविलम्बित,[13] आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

---

१. जयोदय, १।२-७६
२. वही, ३।२१-९५
३. वही, १,७५, ६९
४. वही, २३।११-९७
५. वही, २४।१०४-१४७
६. वही, २५वाँ सर्ग
७. वही, १।२-३, ५-६, ८-१०, १२, १४, १५-१९, २१-२५
८. वही, ७।१-५४
९. वही, १३-१-८१
१०. वही, १४।१-८२, ८७, ९३-९४, ९९
११. वही, १२।१-८१, ८३-१०८, १२२-१३९
१२. वही, २।१-९३, ११३, १२२-१२६, १३६, १३१, १४०-१४१, १५४
१३. वही, ९।१-८६

१०. प्रायः प्रत्येक सर्ग में अगले सर्ग में वर्णित घटना की सूचना है। जैसे सप्तम सर्ग में अर्ककीर्ति और जयकुमार के युद्ध की सूचना है, और आठवें सर्ग में दोनों के युद्ध का वर्णन है। सर्गों का नाम भी उनमें घटना के आधार पर रखा गया है—यथा—प्रथम सर्ग में जयकुमार ने मुनि की वन्दना की है— इसलिये इस सर्ग का नाम 'मुनिवन्दनावर्णन सर्ग' है। चतुर्थ सर्ग में स्वयंवर के लिये अर्ककीर्ति भी काशी पहुंचता है, इसलिये इस सर्ग का नाम 'अर्ककीर्तिसमागमसर्ग' है। अष्टादश सर्ग में प्रभात-वर्णन होने के कारण सर्ग का नाम 'प्रभात-वर्णन-सर्ग' रखा गया है।

११. 'जयोदय' काव्य को कवि ने विविध अलंकारों से सुसज्जित किया है। उनके प्रिय अलंकार हैं—अनुप्रास,[1] यमक,[2] उपमा,[3] उत्प्रेक्षा,[4] अपह्नुति,[5] रूपक[6] विरोधाभास,[7] और चित्रालंकार[8]।

१२. जयोदय महाकाव्य में दुष्ट-निन्दा और सत्प्रशंसा यद्यपि कवि ने सीधे-सीधे नहीं की है, किन्तु काव्य के खलनायक अर्ककीर्ति का पराभव[9] और जयकुमार के गुणसहित परिचय[10] में ही दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा छिपी हुई है।

१३. 'जयोदय' में जयकुमार के प्रशंसात्मक परिचय में कवि ने अनेक श्लोक लिखे हैं।[11] उन्होंने नायक का भौतिक-अभ्युदय दिखाने के बाद[12] आध्यात्मिक अभ्युदय भी दिखा दिया है।[13]

१४. कवि ने काव्य का नामकरण इस काव्य के नायक के नामानुसार 'जयोदय' रखा है। साथ ही इस काव्य का एक और नाम कवि को अभीष्ट है; वह है—'सुलोचना-स्वयंवर'। कवि ने इस काव्य के ये दोनों ही नाम सार्थक रखे हैं।

---

१. जयोदय, प्रायः सभी सर्ग
२. वही, २४।५५, २५।६, १४, ४६, ८२-८४
३. वही, ६।५१, १०।५, १८।३७, ६३
४. वही, ३।५२, १०।११, १५।५३
५. वही, १।५२, १३।१०२, २४।३६
६. वही, ८।६३, २५।३०
७. वही, २८।५-६५
८. वही, प्रत्येक सर्ग का उपान्त्य श्लोक एवं २८।७१
९. वही, ८।८४, ६५
१०. वही, १।२-७६, १०४-११७
११. वही, १-२-७६, १०४-११७
१२. वही, ८।८४
१३. वही, २८।६६-६८

'जयोदय' का तात्पर्य है—जय का उदय अर्थात् विजय। यह पहले ही कहा जा चुका है कि जयकुमार की पूर्ण विजय और आध्यात्मिक उन्नति रूप जीवन का मुख्य लक्ष्य ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य का निर्वहण भी कवि ने खूब कुशलता के साथ किया है। अतः इस काव्य का 'जयोदय' नाम पूर्णरूपेण ठीक है। इस काव्य की प्रमुख घटना है—जयकुमार और सुलोचना का स्वयंवर। इसी घटना के कारण ही जयकुमार और अर्ककीर्ति का युद्ध होता है, और हमें जयकुमार के पराक्रम का वास्तविक ज्ञान भी हो जाता है। अतः इस काव्य का दूसरा नाम 'सुलोचना-स्वयंवर' भी सही है, किन्तु 'जयोदय' जैसा छोटा और सार्थक नहीं। वैसे दोनों ही नाम मान्य हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'जयोदय' पूर्णरूपेण महाकाव्य की कोटि में आ जाता है। काव्य-शास्त्रियों को मान्य महाकाव्य की प्रायः प्रत्येक विशेषता हमें 'जयोदय' में देखने को मिलती है। इस काव्य को पढ़कर श्रोता की बुद्धि और हृदय दोनों प्रसन्न हो सकते हैं।

वीरोदय—

काव्यशास्त्रियों को मान्य महाकाव्य की विशेषताओं की कसौटी में 'वीरोदय' को कसने से यह ज्ञात हो जाता है कि 'वीरोदय' भी एक महाकाव्य है। अब 'वीरोदय' का महाकाव्यत्व आपके सामने प्रस्तुत है :—

१. 'वीरोदय' की कथावस्तु २२ सर्गों में निबद्ध है।

२. प्रत्येक कार्य के पूर्ण होने में कोई विघ्न-बाधा न आये, इसलिये व्यक्ति अपनी बाधाओं को दूर करने के लिये प्रायः प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में अपने अभीष्ट की प्रार्थना करता है। महाकवि श्री ज्ञानसागर ने भी सम्भवतः इसीलिये 'वीरोदय' के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में श्रीभगवान् की स्तुति की है। मंगलाचरण का एक श्लोक प्रस्तुत है।

'चन्द्रप्रभं नौमि यदङ्गसारस्तं कौमुदस्तौममुरीचकार।
सुखंजनः संलभते प्रणश्यत्तमस्तयाऽऽत्मीयपदं समस्य॥"

—वीरोदय, १।३

३. भगवान् महावीर जैन धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर थे। भारतवर्ष में ऋषभदेव के समान ही महावीर जी की भी प्रसिद्धि है। इन्हीं वीर भगवान् के जीवन पर यह काव्य आधारित है। 'वीरोदय' के कथानक का स्रोत 'महापुराण' से लिया गया है।

४. इस काव्य में 'मोक्ष' रूप पुरुषार्थ की सिद्धि का स्पष्ट ही संकेत है। कवि के कथनानुसार :—

"पावानगरोपवने मुक्तिश्रियमनुगतो महावीरः ।
तस्या वर्त्मानुसरन् गतोऽभवत् सर्वथा वीरः ॥"

—वीरोदय, २१।२१

कार्तिक मास की चतुर्दशी तिथि की रात्रि को वीरभगवान् ने मुक्ति-लक्ष्मी का वरण किया ।

५. इस काव्य के नायक लोकविश्रुत भगवान् महावीर हैं । महावीर में एक नायक के सभी गुण विद्यमान हैं । वह परमधार्मिक, अद्भुत सौन्दर्यशाली, सांसारिक राग से दूर, जैन-धर्म के उद्धारक, दुःखियों का कल्याण करने वाले हैं । कुण्डनपुर के राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी को महावीर के पिता-माता होने का गौरव प्राप्त है ।[1]

६ 'वीरोदय' में विविध-स्थलों और वृत्तान्तों का भी यथास्थान वर्णन मिलता है । इस काव्य में कवि ने कुण्डनपुर के वैभवपूर्ण वर्णन से हमारे समक्ष एक समृद्ध नगर की झांकी प्रस्तुत कर दी है ।[2] समुद्र का भी सुन्दर वर्णन यथास्थान किया गया हैं ।[3] 'वीरोदय' में कवि ने हिमालय,[4] विजयार्ध[5] और सुमेरु[6] इन तीनों पर्वतों का प्रासंगिक उल्लेख किया है । 'वीरोदय' का सर्वाधिक मनोहारी उसका ऋतु-वर्णन है । कवि ने वर्षा,[7] वसन्त,[8] शीत,[9] ग्रीष्म,[10] शरद्[11] इन पाँच ऋतुओं का वर्णन इस काव्य में किया है । 'वीरोदय' में भगवान् महावीर के जन्माभिषेक का बड़ा दिव्य-वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है ।[12] सर्वप्रथम देवगणों ने और तत्पश्चात् राजा सिद्धार्थ ने भगवान् का जन्माभिषेक धूम-धाम से किया ।

---

१. वीरोदय, ७।३८
२. वही, २।२१-५०
३. वही, ७।२२-३३
४. वही, २।७
५. वही, २।८
६. वही, २।२, ३, ७।१७-२२
७. वही ४।२-२६
८. वही, ६-१२-३३
९. वही, ९।१८-४५
१०. वही, १२।१-३१
११. वही, २१।१-३०
१२. वही, ८।१-७

'वीरोदय' में तीन संवाद देखने को मिलते हैं—(क) रानी प्रियकारिणी—राजा सिद्धार्थ का संवाद,[1] (ख) रानी प्रियकारिणी-देवी-संवाद,[2] और (ग) राजा सिद्धार्थ-वर्द्धमान-संवाद।[3]

'वीरोदय' में एक स्थल पर देवगणों की यात्रा का वर्णन है।[4] इसके अतिरिक्त कवि ने देवालय[5] और समवसरण-मण्डप[6] का भी वर्णन अपने इस काव्य में किया है। काव्य में भगवान् के पूर्वजन्मों का वर्णन भी विस्तार से किया गया है।[7] काव्य के उपसंहार में वर्णित जैन-धर्म एवं दर्शन कवि को सच्चा जैन-धार्मिक सिद्ध करने में समर्थ हैं।[8]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि 'वीरोदय' में विविधस्थलीय-वर्णन और वृत्तान्त-वर्णन मिलते हैं। ये सब वर्णन कवि की सूझ-बूझ के परिचायक हैं। कवि ने यथाशक्ति प्रकृति-वर्णन और नगर-वर्णन भी अपने इस काव्य में किया है।

७. 'वीरोदय' में हमें शृंगाररस,[9] अद्भुत रस[10] वात्सल्य-भाव[11] और भक्ति-भाव[12] की छटा यत्र-तत्र देखने को मिलती है। लेकिन अंगीरस का स्थान 'शान्त-रस' को ही प्राप्त है।[13] शेष रस एवं भाव इस रस के अंग ही हैं।

८. 'वीरोदय' पंचसन्धियों की दृष्टि से सरल काव्य है। काव्य के प्रथम सर्ग में वीरभगवान् के जन्म का उल्लेख है[14], यह काव्य की मुखसन्धि है। इसके पश्चात्

---

१. वीरोदय, ४।३४-६१
२. वही, ५।२७-३४
३. वही ८।२२-४६
४. वही, ७।६-१२
५. वही, २।३३-३४
६. वही, १३।१-२५
७. वही, ११वाँ सर्ग
८. वही, १६वाँ सर्ग १८वाँ सर्ग, १९वाँ सर्ग और २वाँ सर्ग
९. वही, ४।३७
१०. वही, ६।१०
११. वही, ८।७, ४६
१२. वही ४।६३
१३. वही, नवम सर्ग और दशम सर्ग
१४. वही, १।३१

छठे सर्ग में पुनः वीरभगवान् के जन्म का सविस्तार वर्णन है,[1] यह काव्य की प्रतिमुख सन्धि है। इस काव्य में कवि का प्रमुख उद्देश्य वीरभगवान् की मुक्ति द्वारा शान्तरस की स्थापना करना है। कवि का यह उद्देश्य महावीर द्वारा किए गये विवाह के विरोध में छिपा हुआ है,[2] यह इस काव्य की गर्भसन्धि है। काव्य के एकादश, द्वादश, त्रयोदश सर्गों में भगवान् अपने पूर्वभवों का विचार करते हैं, उग्र तपस्या करते हैं। इस प्रकार काम-क्रोध इत्यादि आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके कैवल्यज्ञान प्राप्त करते हैं; और गौतम को सदुपदेश देते हैं। काव्य के इन स्थलों को विमर्श-सन्धि कहा जा सकता है।

१२वें सर्ग में कवि ने भगवान् महावीर के मोक्ष लाभ का उल्लेख किया है;[3] कवि की उद्देश्यपूर्ति रूप यह स्थल काव्य की निर्वहण-सन्धि है।

९. छन्दों के निर्वाह में भी इस काव्य में कवि ने कुशलता का परिचय दिया है। इस काव्य में यथाशक्ति छन्दों के नियमों का पालन हुआ है। यथा—प्रथम सर्ग में उपजाति छन्द का उपयोग है; और इस सर्ग का अन्तिम श्लोक मात्रासमक छन्दोबद्ध है। इसके अतिरिक्त कवि ने अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका इत्यादि छन्दों का बहुतायत से प्रयोग किया है।

१०. 'वीरोदय' में प्रत्येक सर्ग के अन्त में अग्रिम सर्गों में आने वाली घटनाओं की ओर संकेत है। उदाहरण के लिए प्रथम सर्ग का ही अन्तिम श्लोक प्रस्तुत है—

"इति दुरितान्धकारके समये नक्षत्रौघसङ्कुलेऽधमये।
अजनि जनाऽह्लादनाय तेन वीराह्वयं वसुधास्पदेन॥"

वीरोदय, १।३९

इस श्लोक से इस बात का संकेत मिल जाता है कि अब काव्य में भगवान् महावीर के जन्म, उनके वैराग्य, लोककल्याण के लिए प्रयत्नशीलता और मोक्ष इत्यादि का वर्णन होगा। कवि ने सर्गों का नाम भी उनमें वर्णित कथाओं के अनुसार किया है। यथा प्रथम सर्ग का नाम कवि ने 'प्राक्कथन' रखा है। दूसरे सर्ग में जम्बू द्वीप, भरतक्षेत्र, भारतवर्ष, कुण्डनपुर इत्यादि का वर्णन है; इसलिए इस सर्ग का नाम कवि ने 'द्वीपप्रान्तपुराभिवर्णनकरः' रखा है। इसी प्रकार तृतीय सर्ग का नाम उसके वर्ण्य-विषय के अनुसार 'श्रीसिद्धार्थतदङ्गनाविवरणः' है।

११. 'वीरोदय' में कवि ने अनेक उत्तम अलंकारों का प्रयोग किया है। 'जयोदय'

---

१. वीरोदय, ६।३८-३९
२. वही, ८।२३-४५
३. वही, २१।२२

की तरह 'वीरोदय' अन्त्यानुप्रास से अलंकृत है। यमक[1], उपमा[2], अपह्नुति[3], उत्प्रेक्षा[4], भ्रान्तिमान्[5], परिसंख्या[6], आदि अलंकारों की छटा काव्य में विशेष दर्शनीय है।

१२. काव्य के प्रारम्भ में ही कवि ने सज्जनों की प्रशंसा विस्तार से की है[7] और दुर्जनों की आलंकारिक आलोचना भी कर दी है।[8]

१३. इस काव्य के नायक भगवान् महावीर की कवि ने स्थान-स्थान पर प्रशंसा की है।[9] काव्य के परिशीलन से यह ज्ञात हो जाता है कि वीरभगवान् युद्धवीर तो नहीं, पर धर्मवीर अवश्य हैं।[10] उन्हें वाह्य शत्रुओं से युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं हुई, हाँ भीतर के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके वीरभगवान् ने मोक्ष प्राप्त कर लिया।[11] इस प्रकार 'वीरोदय' में नायक का ही अभ्युदय दिखाया है।

१४. नायकप्रधान इस काव्य का नाम काव्य के नायक के नाम पर ही आधारित है। नायक का नाम है—महावीर; और महावीर के अभ्युदय से शान्त-रस की स्थापना ही कवि का लक्ष्य है; इस लक्ष्य का निर्वहण कवि ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ किया हैं। अतः काव्य के नायक और काव्य के लक्ष्य के आधार पर कवि ने इस काव्य का नाम जो 'वीरोदय'—वीर का उदय—अभ्युन्नति—रखा, वह सर्वथा उचित है।

'वीरोदय' की उपर्युक्त काव्यशास्त्रीय आलोचना से स्पष्ट हो जाता है कि वह शान्त-रस-प्रधान महाकाव्य की कोटि में आने के लिए पूर्ण समर्थ काव्य है। महाकाव्य के लिये बताये गये प्रेमोत्सव, विवाह, मधुपान, जलक्रीड़ा इत्यादि का भले ही इसमें वर्णन न हो—(पूर्णतया शान्त रस-प्रधान होने के कारण)—तथापि भगवान् के जन्माभिषेक, तपश्चरण, कैवल्यज्ञान लाभ, जनता को सम्बोधन इत्यादि

---

१. वीरोदय, ३।२५, १७।११
२. वही, १।३, २।२०, ३।१६, ६।३६
३. वही, २।४६, ४७, ६।३०, ७।२१, ३०
४. वही, १।१५, ३।३६, ४३
५. वही, ७।१०
६. वही, २।४८-४९
७. वही, १।१०-१५
८. वही, १।२६-२१
९. वही, ६।९, ८।१२-२१, १०।६५
१०. वही, १०।२८-३६
११. वही, दशमसर्ग, ११।३७-४४, १२।३२-४५, २१।२२

का खूब विस्तार से वर्णन है। इसके अतिरिक्त काव्य-शास्त्रियों द्वारा स्वीकृत महाकाव्य की सर्गसम्बन्धी, भावपक्षसम्बन्धी, कलापक्षसम्बन्धी, चरित्रसम्बन्धी सभी विशेषतायें इसमें दृष्टिगोचर होती हैं। साथ ही सहृदय को प्रभावित करने में भी यह काव्य पूर्ण समर्थ है। अतः हम निर्विवाद रूप से इसको महाकाव्य कह सकते हैं।

सुदर्शनोदय—

'सुदर्शनोदय' के परिशीलन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक महाकाव्य है, तथापि विद्वानों और सहृदय-सामाजिकों की तुष्टि के लिए; महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर किया गया सुदर्शनोदय का परीक्षण आपके समक्ष प्रस्तुत है—

१. 'सुदर्शनोदय' की कथावस्तु नौ सर्गों में निबद्ध है।

२. इस काव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में कवि ने वीरभगवान् की स्तुति की है :—

"वीरप्रभुः स्वीयसुबुद्धिनावा भवाब्धितीरं गमितप्रजावान्।
सुधीवराराध्यगुणान्वया वाग्यस्यास्ति नः शास्ति कवित्वगावा॥"

—सुदर्शनोदय, १।१

३. 'सुदर्शनोदय' की कथा का आधार हरिषेणकृत 'बृहत्कथाकोश' का 'सुभगगोपाल' नामक कथानक है।

४. इस काव्य में भी कवि ने मोक्ष रूप पुरुषार्थ की सिद्धि उपस्थित की है। काव्य के अन्त में उन्होंने कहा है :—

"नदीपो गुणरत्नानां जगतामेकदीपकः।
स्तुतांजनतयाऽऽधीतः स निरंजनतामधात्॥"

—सुदर्शनोदय, ९।८७

५. इस काव्य का नायक सेठ सुदर्शन है। सुदर्शन में धीरप्रशांत नायक के सभी गुण हैं। वह चतुर,[१] परमधार्मिक,[२] वैश्यकुलोत्पन्न,[३] मनोहर आकृति,[४] सुकुमार-हृदय,[५] और दृढ़ व्यक्तित्व[६] वाला है। चम्पापुरी के सेठ वृषभदत्त और जिनमति सुदर्शन के माता-पिता हैं।[७]

---

१. सुदर्शनोदय, ५।१९-२०
२. वही, ५ प्रारम्भ के गीत
३. वही, ३।१
४. वही, ३।१५
५. वही, ८।१४-१६
६. वही, ५।१९-२०, ७।२९-३०, ९।२८
७. वही, ३।१-१६

६. अन्य महाकाव्यों की भाँति 'सुदर्शनोदय' में भी विविध-स्थलों और वृत्तान्तों का स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलता है। अंगदेश,[1] चम्पापुरी[2] और अंगदेश के ग्रामों[3] का कवि ने प्रसंगानुकूल वर्णन किया है। वसन्तवर्णन[4] प्रभातवर्णन[5], रात्रि-वर्णन[6], उद्यानविहारवर्णन[7], नायक-नायिका प्रेमवर्णन,[8] विवाहवर्णन[9] और सुदर्शनकुमार की उत्पत्ति का वर्णन[10] कवि के प्रकृति-प्रेम एवं वर्णन-कौशल के परिचायक हैं।

'सुदर्शनोदय' में हमें कुछ संवाद भी दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—(क) वृषभ-दास-जिनरति-संवाद[11], (ख) वृषभदास-मुनिराज-संवाद,[12] (ग) वृषभदास-सागर-दत्तसंवाद,[13] (घ) वृषभदास-मुनिराज-संवाद[14] आदि।

'सुदर्शनोदय' में मुनियों[15] एवं जिनदेव की मूर्ति[16] का भी वर्णन मिलता है। कई स्थलों पर कवि ने जैनधर्म के कुछ सारभूत-तत्त्वों का वर्णन अपने काव्यों में किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि 'सुदर्शनोदय' में कवि ने विविध-स्थलीय-वर्णन, प्राकृतिक-पदार्थ-वर्णन, विविध-वृत्तान्त-वर्णन और स्त्री-पुरुषों के मनोवैज्ञानिक चित्रण द्वारा अपनी सूक्ष्म-दर्शन-शक्ति का अद्भुत परिचय दिया है।

७. सुदर्शनोदय' में जिन रसों एवं भावों का वर्णन किया गया है, वे इस प्रकार हैं :—

---

१. सुदर्शनोदय, १।१५-२४
२. वही, १।२५-३७
३. वही, १।२०-२२
४. वही, ६ प्रारम्भ के २ गीत, १-४
५. वही, ५ प्रथम गीत।
६. वही, ७ श्लोक ६ के बाद का दूसरा गीत।
७. वही, ६।२-४
८. वही, ३।३५
९. वही, ३।४८
१०. वही, २।२९-५०, ३।१-१०
११. वही, २।१३-२३
१२. वही, २।२९-४०
१३. वही, ३।४५-४७
१४. वही, ४।५-१२
१५. वही, ४।१, १६-३८
१६. वही, ५ पृ० ८२ का गीत।

(क) शृङ्गार रस[1], (ख) वात्सल्य रस, [2] (ग) अद्‌भुत रस,[3] (घ) भक्तिभाव,[4] (ङ) शृङ्गाराभास[5] और शान्तरस।[6] काव्य के परिशीलन से ज्ञात हो जाता है कि शान्तरस अंगी रस है। शेष रस एवं भाव इसके अंग हैं।

८. 'सुदर्शनोदय' में यथाशक्ति पाँच सन्धियों' का निर्वाह हुआ है। काव्य के द्वितीय सर्ग में ऋषि ने वृषभदत्त और जिनमति के सम्मुख उनके पुत्र होने की घोषणा की है;[7] यह काव्य की 'मुख-सन्धि' है। तृतीय सर्ग में सुदर्शन की उत्पत्ति का वात्सल्य रस' से परिपूर्ण वर्णन है;[8] यह काव्य की 'प्रतिमुख-सन्धि' है। काव्य की चरम-परिणति सुदर्शन की मोक्ष-प्राप्ति में है; और काव्य का मुख्य रस है—शान्त रस। काव्य का यह उद्देश्य पिता की विरक्ति के पश्चात् सुदर्शन के मुनि के प्रति कहे हुए विरक्तिपूर्ण वचनों में छिपा हुआ है;[9] अतः यह स्थल काव्य की 'गर्भ-सन्धि' है। काव्य में कपिला-ब्राह्मणी, अभयमती रानी और देवदत्ता वेश्या के प्रपंचों में जब-जब सुदर्शन पड़ता है,[10] तब-तब पाठक को यही लगता है कि सम्भवतः सुदर्शन अपने उद्देश्य को प्राप्त न करे। काव्य के ये सभी स्थल 'विमर्श-सन्धि के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। अन्त में सुदर्शन ने सभी विपत्तियों पर विजय प्राप्त की। उन्हें कैवल्यज्ञान भी प्राप्त हुआ, तत्पश्चात् उन्होंने मोक्ष भी प्राप्त कर लिया।[11] यह काव्य की निर्वहण-सन्धि' है, जिसके द्वारा कवि ने अपने उद्देश्य का निर्वाह किया है।

९. 'सुदर्शनोदय' में कवि छन्दों के प्रति स्वतन्त्र हो गये हैं। केवल पंचम सर्ग में ही अनुष्टुप् और अन्तिम श्लोक में द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग किया गया है। इस सर्ग में भी बीच-बीच में गीत आ गए हैं। उपजाति, इन्द्रवज्रा, रथोद्धता, वंशस्थ, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित छन्दों का क्रम-रहित प्रयोग इस काव्य में यत्र-तत्र मिल जाता है। उपजाति छन्द का काव्य में सर्वाधिक प्रयोग किया गया है।

१०. 'सुदर्शनोदय' में ९ सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग का अन्त आगे के सर्ग की सूचना देता है, यथा—

---

१. सुदर्शनोदय, ३।३५
२. वही, ३।९
३. वही, ८।१
४. वही, ४।४६
५. वही, ६।१७
६. वही, ८।२५, ३२, ९।८४
७. वही, २।२९-४०
८. वही, ३।१-१५
९. वही, ४।१५
१०. वही, ५।१-२०, ७।१०-३६, ९-१२-२९
११. वही, ९।४८-८६

"सार्धसहस्रद्वयात्तु हायनानामिहाद्यतः ।
बभूवायं महाराजो महावीरः प्रभोः क्षणे ॥"

—सुदर्शनोदय, १।४५

काव्य का यह श्लोक धात्रीवाहन की राजधानी चम्पापुरी से ही आगे की कथा संबद्ध है, ऐसी सूचना देता है। कवि ने प्रत्येक सर्ग का नामकरण उस सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर किया है। यथा—काव्य में प्रथम सर्ग में अंगदेश के धात्रीवाहन का वर्णन है; इसीलिए सर्ग का नाम कवि ने 'देशादेर्नृपतेश्च वर्णनपरः आद्यः सर्गः' रखा है। इसी प्रकार द्वितीय सर्ग में सुदर्शन की माता उसके जन्म से पूर्व कुछ सुन्दर स्वप्न देखती है, जिनका परिणाम सुदर्शन के माता-पिता एक ऋषि से ज्ञात करते हैं; अतः सर्ग का नाम कवि ने 'श्रीयुक्तस्य सुदर्शनस्य जननीस्वप्नादि-वाक्सम्मतः द्वितीयः सर्गः रखा है।

११. 'सुदर्शनोदय' में कवि ने अनेक उत्तम उपमालंकारों का प्रयोग करके अपने प्रबल कला-कौशल का परिचय दिया है। 'जयोदय' एवं 'वीरोदय' की भाँति ही 'सुदर्शनोदय' में भी हमें प्रायः अन्त्यानुप्रास की शोभा दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त यमक,[1] श्लेष,[2] उपमा,[3] उत्प्रेक्षा,[4] आदि अलंकार प्रमुख रूप से प्रयुक्त किये गए हैं।

१२. काव्य के प्रारम्भ में ही कवि ने सज्जनों की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है; कवि के अनुसार सज्जनों की परम्परा विपत्तियों का विनाश करने वाली होती है।[5] सुदर्शन का वध करने हेतु वधिक को आज्ञा देने वाले राजा धात्रीवाहन की, एक नागरिक से कवि ने जो निन्दा करवाई है उससे दुष्टों की ही निन्दा अभिव्यक्त होती है।[6]

१३. महाकाव्य में स्थान-स्थान पर कवि ने सेठ सुदर्शन के गुणों का उल्लेख किया है। सुदर्शन जैन धर्म पर आस्था रखने वाला[7], ऋषि-मुनियों की भक्ति करने वाला,[8] अपनी पत्नी मनोरमा से पूर्ण संतुष्ट[9], दृढ़व्यक्तित्व वाला[10] और मोक्षरूप

१. सुदर्शनोदय, ३।१६, ६ सारंगनामराग।
२. वही, ५ प्रभातकालीन राग।
३. वही, १।४३
४. वही, ३।७
५. वही, १।८-९
६. वही, ८।३
७. वही, ३।३४, पंचम सर्ग के गीत, ७।११
८. वही, ४।१५, ४६, ९।२९-३२
९. वही, ६।२२
१०. वही, ७।२९, ९।२९, ८३

पुरुषार्थ की ओर अग्रसर है।[1] कवि ने सुदर्शन के जन्म से लेकर निर्वाण तक के सभी वृत्तान्तों का उल्लेख काव्य में कर दिया है। 'सुदर्शनोदय' के परिशीलन से ज्ञात होता है कि सुदर्शन का शत्रु और कोई नहीं, उसका रूप और गुण ही उसके शत्रु हैं, इन्हीं के कारण रानी अभयमती, कपिला ब्राह्मणी और देवदत्ता वेश्या उसके मोक्षमार्ग में बाधक बनती हैं। किन्तु सुदर्शन अपने रूप के प्रति निस्पृह है; अतः वह इन कुटिल स्त्रियों की कुचेष्टाओं के प्रति भी निःस्पृह ही बना रहता है; और विजय भी प्राप्त करता है। तीनों ही स्त्रियों को उसके पर्वततुल्य व्यक्तित्व के समक्ष झुकना पड़ता है; और सुदर्शन मोक्षरूप अभ्युदय को प्राप्त कर लेता है।

१४. 'सुदर्शनोदय' सेठ सुदर्शन की कथा पर आधारित काव्य है। काव्य के नाम से स्पष्ट है कि कवि ने काव्य का नाम नायक के नाम पर रखा है। सुदर्शन इस काव्य का नायक है; और सुदर्शन द्वारा मोक्ष रूप पुरुषार्थ की सिद्धि से शान्त रस की संस्थापना ही कवि का मुख्य लक्ष्य है। काव्य के नायक और मुख्य रस के स्थापन के उद्देश्य से ही कवि ने काव्य का नाम 'सुदर्शनोदय' रखा है।

इस प्रकार 'सुदर्शनोदय' के परिशीलन से और उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'सुदर्शनोदय' शृङ्गार रस से परिपुष्ट शान्त रस प्रधान महाकाव्य है। उसका कलेवर 'जयोदय' और 'वीरोदय' के समान विशालकाय नहीं है, तथापि महाकाव्य के सभी गुण उसमें परिलक्षित हैं। अपने अन्य काव्यों की भाँति कवि ने इस काव्य में भी नायकाभ्युदय को बड़े कौशल से दर्शाया है। उनके शब्दालंकारों और मनमाने ढंग से प्रयुक्त छन्दों ने कहीं भी कथानक के प्रवाह को अवरुद्ध नहीं किया है। इस काव्य में महाकाव्य की सभी विशेषताएं सहज ही में प्राप्त हैं; इसलिए हम निर्विवाद रूप से इसको महाकाव्य की कोटि में पहुँचा हुआ काव्य मान सकते हैं। इस काव्य की एक और विशेषता है जिसके कारण यह काव्य सहृदयग्राह्य बन जाता है;—वह है इसमें स्थल-स्थल पर पात्रों के मनोभावों को प्रकट करने वाले सुन्दर रागों में बद्ध गीतों की विद्यमानता।

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र—

अब श्रीज्ञानसागर की चतुर्थ कृति 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' के परीक्षण का क्रम है। महाकाव्य की विशेषताओं द्वारा इस काव्य के परीक्षण से यह सिद्ध हो जाता है कि 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' भी एक महाकाव्य है। विद्वानों के संतोष हेतु हम काव्य की महाकाव्य-सम्बन्धी विशेषताओं का प्रस्तुतीकरण कर रहे हैं :—

१. इस काव्य की कथावस्तु नौ सर्गों में निबद्ध है।

२ इस काव्य के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण के रूप में भगवान् ऋषभदेव, भगवान् वर्धमान एवं अन्य तीर्थङ्करों की वन्दना की गई है।

---

१. सुदर्शनोदय, ८।१४-२७

"नमाम्यहं तं पुरुषं पुराणमभूद् युगादौ स्वयमेकशाणः ।
धियोऽसि पुत्र्या दुरितच्छिदर्थमुत्तेजनायातितरां समर्थः ॥
श्रीवर्द्धमानं भुवनत्रये तु विपत्पयोधेस्तरणाय सेतुम् ।
नमामि तं निर्जितमीनकेतुं न मामितो हन्तु यतोऽघहेतुम् ॥'
प्रणौमि शेषानपि तीर्थनाथान् समस्ति येषां गुणपूर्णगाथा ।
भवान्धगर्ते पतते जनायाऽनुकीर्तितालम्बनसम्प्रदाया ॥"

—श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, १।१-३

३. गुणभद्राचार्य रचित 'महापुराण' इस काव्य के कथानक का स्रोत है। साथ ही हरिषेणाचार्यरचित 'बृहत्कथाकोश' भी।

४. कवि के अन्य काव्यों के समान ही यह काव्य भी मोक्षरूप पुरुषार्थ की सिद्धि करने वाला है।[1]

५. सत्यवादी भद्रमित्र इस काव्य का नायक है जो एक श्रेष्ठ वैश्य का पुत्र है।[2] बाद में वह राजा सिंहचन्द्र,[3] ग्रैवेयक के अहमिन्द्र[4] और चक्रायुध[5] के रूप में भी जन्म ग्रहण करता है। सत्याचरण,[6] जैनधर्म के प्रति निष्ठा,[7] स्वावलम्बन[8] आदि उसके प्रधान गुण हैं।

६. महाकवि ज्ञानसागर ने इस काव्य को विविध-वस्तुओं एवं वृत्तान्तों के वर्णन से इस प्रकार आच्छादित कर दिया है कि कभी-कभी पाठक भ्रान्त होकर मूल-कथानक से दूर भी चला जाता है। लीजिए प्रस्तुत है कवि के विविध वर्णन का परिचय। कवि ने इस काव्य में स्वर्ग,[9] नरक,[10] अलकापुरी[11], चक्रपुर,[12] विजयार्ध-पर्वत,[13] राजा ऐरावण और राजकुमारी प्रियङ्गुश्री का विवाह,[14] चक्रायुध का जन्म,[15]

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ७।३०-३३
२. वही, १-२९-३०
३. वही, ४।९
४. वही, ५।१६
५. वही, ६।१५
६. वही, ४।२-३
७. वही, ७।३०
८. वही, १।३१-३६, ३।१-४
९. वही, ४।३६, ५।१४, १५, ३३
१०. वही, ४।३७, ५।३४
११. वही, २।१०
१२. वही, ६।१-८
१३. वही, २।१-९
१४. वही, २।१-९
१५. वही, ६।१४-१६

महाकच्छ की स्तम्बकगुच्छनगर की यात्रा,[1] भद्रमित्र की रत्नद्वीप यात्रा,[2] नायकाभ्युदय[3] इत्यादि का वर्णन यथास्थान किया है। जैन-धर्म का काव्य होने के कारण इसमें मुनि-वर्णन भी दृष्टिगोचर होता है।[4] पात्रों के पूर्वजन्मों और पुनर्जन्मों और पुनर्जन्म के वृत्तान्त भी इसमें यथास्थान हैं।[5] काव्य के अष्टमसर्ग में जैन-धर्म का विस्तृत उपदेश प्रस्तुत किया गया है, और नवम सर्ग में चक्रायुध के उग्र तपश्चरण का वर्णन है।

७. 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में शान्त,[6] रौद्र,[7] वत्सल[8] रसों एवं भक्तिभाव[9] का वर्णन मिलता है। इस काव्य में अङ्गी रस का पद शान्तरस ने ही प्राप्त किया है।

८. इस काव्य में कवि ने पंचसन्धियों का भी निर्वाह करने का प्रयास किया है। प्रथम सर्ग में भद्रमित्र का उल्लेख काव्य की 'मुख-सन्धि' है।[10] तृतीय सर्ग में भद्रमित्र की चारित्रिक-विशेषताओं का ज्ञान होता है,[11] यह काव्य की 'प्रतिमुख-सन्धि' है। सत्यघोष नामक राजा के मंत्री से अपना धन पाकर भद्रमित्र एक मुनिराज के दर्शन और उपदेश से प्रभावित होता है;[12] यह काव्य की 'गर्भसन्धि' है

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।१८-१९
२. वही, ३।१५-१७
३. वही, ९।२९-३०
४. (क) वही, ४।६
   (ख) वही, ५।२७
५. (क) वही, १।३०
   (ख) वही, ४।९
   (ग) वही, ५।१६
   (घ) वही, ६।१४
   (ङ) वही, ४।२९
   (च) वही, ४।३२
   (छ) वही, ४।३३
६. वही, ७।१-२४, ९।१-२९
७. वही, २।३२
८. वही, ३।१०
९. वही, ७।२६
१०. वही, १-२९-३१
११. वही, ३।१-४, ७-९, १४, १५, २७, ३१, ३३
१२. वही, ४।६

क्योंकि इसमें काव्य का मुख्य उद्देश्य 'आगे नायक का वैराग्य एवं सत्य की विजय छिपा हुआ है। भद्रमित्र की माता द्वारा व्याघ्री के रूप में भद्रमित्र को खा जाना,[1] पुनः सिंहचन्द्र के रूप में जन्म,[2] नवग्रैवेयक के अहमिन्द्र के रूप में जन्म[3] ये सब 'विमर्श-सन्धि' से सम्बन्धित स्थल हैं। पुनः पुनः जन्म-मरण के चक्र से ऐसा लगता है कि सम्भवतः नायक मोक्ष न प्राप्त कर सके। अन्त में चक्रायुध (भद्रमित्र) सांसारिक पदार्थों का परित्याग करके कैवल्यज्ञान प्राप्त कर लेता है। अतः मोक्ष एवं सत्य की विजय होती है,[4] यही काव्य की 'निर्वहण सन्धि' है।

९. 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने महाकाव्य-विषयक छन्दों के नियमों को अपनाने का पूर्ण प्रयास किया है। काव्य के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम और नवम सर्गों में क्रमशः उपजाति, वियोगिनी, वंशस्थ, स्वागता, द्रुतविलम्बित और अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग किया गया है। तृतीय सर्ग में उपजाति, इन्द्रवज्रा और वसन्ततिलका छन्दों का मिश्रित प्रयोग है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द बदला गया है।

१०. 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' में भी अन्त्यानुप्रास की छटा सर्वत्र विद्यमान है। इसके अतिरिक्त कवि ने इस काव्य को यमक[5] उपमा,[6] अर्थान्तिरन्यास,[7] परिसंख्या[8], विरोधाभास,[9] आदि अलंकारों से सुसज्जित किया है।

११. प्रस्तुत काव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने सज्जनों की प्रशंसा[10] एवं दुर्जनों की निन्दा की है।[11]

१२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' का नायक भद्रमित्र है। इस काव्य में शत्रुरूप में कवि ने सिंहपुर के राजा सिंहसेन के ब्राह्मण-मंत्री सत्यघोष को प्रस्तुत किया है। सत्यघोष भद्रमित्र के रत्नों को हड़पना चाहता है, किन्तु सत्य की विजय होती है; और भद्रमित्र को उसके रत्न प्राप्त हो जाते हैं। सत्यघोष की वास्तविकता सबको ज्ञात

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।९
२. वही, ४।९
३. वही, ५।१६
४. वही, ९।३०-३१
५. वही, १।१५
६. वही, ३।१७
७. वही, ४।२
८. वही, ६।६
९. वही ९।५-७
१०. वही, १।१५, १७-१८, २१-२४
११ वही, १।१६-१७, १९-२४

हो जाती है, अतः उसे अपदस्थ कर दिया जाता है। भद्रमित्र सत्य के बल पर अपने अन्य तीन जन्मों में भी सुखपूर्वक समय व्यतीत करता है। तत्पश्चात् अपने ऊपर भी विजय प्राप्त करके, कैवल्यज्ञानलाभ करता है। भद्रमित्र की इसी विजय द्वारा कवि ने नायकाभ्युदय दिखाया है।

१३. प्रस्तुत काव्य के कवि ने दो नाम रखे हैं :—१. भद्रोदय और २. श्रीसमुद्रदत्त-चरित्र। ये दोनों ही नाम काव्य के नायक के नाम पर आधारित हैं। भद्रोदय का तात्पर्य है भद्र (मित्र) की उन्नति। काव्य में भद्रमित्र के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार से अभ्युदय प्राप्त करने का वर्णन है; इसलिये इस काव्य का भद्रोदय नाम सार्थक है। भद्रमित्र का दूसरा नाम समुद्रदत्त भी है। काव्य में उसके चार जन्मों का वर्णन मिलता है। चारों ही जन्मों में उसकी चारित्रिक विशेषताओं पर कवि ने प्रकाश डाला है, इसलिए इस काव्य का 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' नाम भी सार्थक है।

'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्य में कवि ने सर्गों का नामकरण नहीं किया है। प्राकृतिक वर्णन के नाम पर इसमें केवल कवि ने विजयार्ध-पर्वत का ही वर्णन किया है। स्थान-स्थान पर राजाओं द्वारा जैन-मुनियों से दीक्षा-प्राप्ति का वर्णन है; और काव्यों के पात्रों के कई जन्मों का वर्णन कवि ने किया है। फलस्वरूप काव्य में प्रवाहहीनता और नीरसता आ गयी है। इतना होने पर भी 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' को महाकाव्य मानने में हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए। क्योंकि महाकाव्य के काव्य-शास्त्रियों द्वारा बताये गए एक-दो लक्षणों को छोड़कर शेष सभी लक्षण इसमें घटित होते हैं।

दयोदय-चम्पू—

कवि की पाँचवीं कृति 'दयोदय' है। कवि ने इस पुस्तक के नाम के आगे 'चम्पू' शब्द जोड़ दिया है; अतः कवि के कथन को स्वीकार करते हुए हमें भी इसे 'चम्पू' मान लेना चाहिए। स्पष्टीकरण के लिए—काव्यशास्त्रियों द्वारा बताई गई 'चम्पू-काव्य' की विशेषताएं कहाँ तक इस काव्य में दृष्टिगोचर होती हैं—इसकी जानकारी के लिए चम्पूकाव्य की विशेषताएँ और उसके आधार पर 'दयोदय' की आलोचना प्रस्तुत है :—

अनेक काव्यशास्त्रियों और चम्पूकाव्य का प्रणयन करने वाले कवियों ने अपने-अपने तरीके से 'चम्पूकाव्य' के लक्षण बताए हैं। उनके बताए गए लक्षणों की ही सारभूत विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

१. गद्य-पद्य-मिश्रित—

चम्पू-काव्य वह काव्य होता है, जिसमें गद्य-पद्य दोनों का व्यवहार होता है। चम्पू का यह लक्षण भ्रामक प्रतीत होता है। क्योंकि गद्य-पद्य का मिश्रण नाटक कथासाहित्य में भी मिलता है। साथ ही चम्पू-काव्य के अतिरिक्त गद्य-पद्य मिश्रित काव्य के दो और भी भेद हैं :—

(क) विरुद काव्य—जब किसी राजा की गद्य-पद्य के माध्यम से स्तुति की जाय तो उस काव्य की संज्ञा विरुद होती है। चम्पूकाव्य में राजस्तुतिरूप राजभक्तिभाव का ही वर्णन नहीं होता। उसमें महाकाव्य, कथाकाव्यों के समान ही सरसता, सगुणता आदि विशेषताएं पाई जाती हैं।

(ख) करम्भक—जो काव्य अनेक भाषाओं में लिखा जाता है, उसे करम्भक कहते हैं। चम्पूकाव्य केवल एक भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, इसलिए चम्पूकाव्य करम्भक से भी पृथक् काव्य-भेद है; और करम्भक एवं विरुद की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण भी।

साहित्य में संवाद और गद्य भाग की पुष्टि के लिये ही पद्य का प्रयोग होता हैं, जबकि चम्पू में कवि गद्य एवं पद्य दोनों के प्रति निष्पक्ष होता है। वह कहीं भी गद्य या पद्य को प्रयुक्त कर सकता है। प्रायः चम्पूकाव्यों में गद्य और पद्य की मात्रा समान होती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नाटक, कथा-साहित्य, विरुदकाव्य और करम्भकाव्यों में गद्य-पद्य का मिश्रण अवश्य पाया जाता है, किन्तु नाटक में संवाद की पुष्टि के लिये, कथा-साहित्य में किसी पात्र का गुण-विशेष दिखाने के लिए, विरुद में राजस्तुति के लिए, करम्भक में विविध भाषाओं के माध्यम से पद्यों का प्रयोग गद्य के साथ होता है, इस प्रकार इनमें संवाद, पात्र, राजस्तुति और विविध-भाषाज्ञान प्रदर्शन का ही प्राधान्य होता है, शेष बातें गौण होती हैं। अतः गद्य-पद्यात्मक काव्य को चम्पू कहा जाता है, इस कथन में अतिव्याप्ति की संभावना नहीं करनी चाहिये।

२. श्रव्य-काव्य—

श्रव्य-काव्य के तीन भेद होते हैं—गद्य, पद्य और चम्पू—यह काव्यविधाओं के विभाग रेखाचित्र से स्पष्ट हैं। अतः चम्पूकाव्य गद्यपद्यात्मक होकर भी नाटक के समान दृश्य-काव्य की श्रेणी में नहीं आता। वह गद्यकाव्य या पद्यकाव्य की ही तरह श्रव्य होता है।

३. प्रबन्धात्मकता—

प्रबन्ध-काव्य वह काव्य है जिसमें पूरे काव्य में हमें एक कथा का ही विकास मिलता है; अतः चम्पूकाव्य में भी एक कथा के क्रमिक विकास का होना काव्य-शास्त्रियों द्वारा स्वीकृत है।

४. वर्णन-प्रधान—

अन्य काव्यों के समान ही चम्पू-काव्य में भी प्राकृतिक-पदार्थ, वैकृतिक पदार्थ और विविध वृत्तान्तों का वर्णन होना चाहिए।

५. अलंकारसुसज्जित—

चम्पूकाव्य में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रयोग होना चाहिए।

६. सरस

'चम्पूकाव्य' काव्य की श्रेणी में आता है, अतः अन्य काव्यों के समान उसमें भी काव्य की आत्मा रस की विद्यमानता अपेक्षित है।

७. उदात्तनायकोपेत—

चम्पूकाव्य की कथा किसी श्रेष्ठ नायक से सम्बन्धित होनी चाहिए।

८. गुण—

यथास्थान इसमें प्रसाद, माधुर्य्य और ओज गुणों का समावेश होना चाहिए।

९. भागों में विभक्त—

महाकाव्य सर्गों में निबद्ध कथा वाला काव्य है, इसी प्रकार चम्पू-काव्य की कथा भी उच्छ्वास, अंक, लम्ब इत्यादि में विभक्त होनी चाहिए।

१०. चमत्कारप्रधान—

चमत्कार का तात्पर्य है—उक्ति की विचित्रता। यह लक्षण प्रायः सभी काव्यों में घटित होता हैं; किन्तु चम्पूकाव्य में गद्य-पद्य के माध्यम से कवि को दुगुना चमत्कार दिखाने का अवसर प्राप्त हो जाता है। अतः 'चम्पूकाव्य' अन्य काव्यों की तुलना में अधिक चमत्कार प्रधान होता है।[1]

अब देखना यह है कि 'दयोदय' काव्य में 'चम्पू-काव्य' की कौन-कौन विशेषताएं प्राप्त होती हैं :—

१. गद्य-पद्य-मिश्रण—

दयोदय के परिशीलन से ज्ञात हो जाता है कि उसमें गद्य-पद्य का अद्भुत संमिश्रण है। कवि ने गद्य और पद्य का यथेच्छ व्यवहार किया है। कहीं-कहीं पद्यों के अतिशय प्रयोग के मध्य गद्य के दर्शन भी नहीं होते, तो कहीं पर पद्य और गद्य को साथ-साथ प्रयुक्त किया गया है। कवि का न तो गद्य के प्रति विशेष आग्रह है और न पद्य के प्रति। गद्य और पद्य के प्रति निष्पक्ष व्यवहार ही कवि को अभीष्ट है।

अन्यकाव्यत्व—

काव्य की मुख्य रूप से दो विधाएं हैं—दृश्य और श्रव्य। चम्पू-काव्य गद्यकाव्य और पद्यकाव्य रूप अन्य काव्यों का मिश्रण है; अतः वह भी श्रव्य-काव्य

---

१. (क) विश्वनाथः साहित्यदर्पण, ६।३३६-३३७
(ख) दण्डी : काव्यादर्श, १।३१
(ग) हेमचन्द्राचार्यः काव्यानुशासन, ८।९
(घ) त्रिविक्रमभट्टः नलचम्पू १।२४-२५
(ङ) डॉ० छविनाथ त्रिपाठीः चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं साहित्यिक अध्ययन, पृ० सं० ४९

ही हैं, दृश्य नहीं। श्रोता को कभी गद्य का आनन्द मिलता रहे और कभी पद्य का। 'चम्पूकाव्य का यह लक्षण 'दयोदय' में घटित होता है।

३. प्रबन्धात्मकता—

'दयोदय' में मृगसेन धीवर और घण्टा धीवरी की कथा क्रम से विद्यमान है। इस कथा का स्रोत हरिषेणाचार्य रचित 'बृहत्कथाकोश' है। मृगसेन धीवर एक मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर अहिंसा धर्म को स्वीकार कर लेता है; और पत्नी की फटकार सुनकर एक धर्मशाला में पहुँचकर लेट जाता है। वहाँ एक सर्प के डसने से उसकी मृत्यु हो जाती है। पति को ढूंढती हुई घण्टा-धीवरी भी उसी धर्मशाला में पहुँचती है; और सर्प के काटने से उसकी भी मृत्यु हो जाती है। धीवर सोमदत्त के रूप में और धीवरी श्रेष्ठी की पुत्री के रूप में उत्पन्न होती है। गुणपाल श्रेष्ठी के बाधक होने पर भी सोमदत्त का विवाह गुणपाल श्रेष्ठी की पुत्री विषा से हो जाता है। सोमदत्त के तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राजा भी अपनी पुत्री का विवाह सोमदत्त से कर देता है; और अपना आधा राज्य भी उसे दे देता है। एक मुनिराज के दर्शन के फलस्वरूप सोमदत्त और उसकी दोनों पत्नियों को वैराग्य हो जाता है। तपश्चरण के फलस्वरूप तीनों को स्वर्ग मिल जाता है। स्पष्ट है कि एक ही कथा के पल्लवित होने के कारण 'दयोदय' प्रबन्धकाव्यगुणोपेत है।

४. वर्णन-प्रधान—

'दयोदय में कवि ने प्राकृतिक पदार्थों और वृत्तान्तों का प्रसंगानुसार वर्णन किया है। प्रातःकाल,[1] रात्रि,[2] शिप्रा-नदी,[3] उज्जयिनीनगरी,[4] विषा-सोमदत्त का विवाह[5] मुनि-माहात्म्य[6] एवं गुणपाल की हठधर्मिता[7] का वर्णन कवि ने अत्यन्त आलंकारिक शैली में किया है।

---

१. दयोदयचम्पू, ३ श्लोक ७ के पूर्व के गद्यभाग, ७-९, श्लोक ९ के बाद के गद्यभाग।

२. वही, २ श्लोक २ से पूर्व का गद्यभाग एवं श्लोक २

३. वही, पृ० १० का गद्यभाग

४. वही, १।१०-११

५. वही, ४।१८-२५

६. वही, १।१८, श्लोक २२ से पूर्व का गद्यभाग और २२-२६, ७ श्लोक १७ के बाद के गद्यभाग से श्लोक ३७ के बाद के गद्यभाग तक।

७. वही, १।१५

५. अलंकारसुसज्जित—

कवि ने 'दयोदय' को शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से सुसज्जित किया है। अन्त्यानुप्रास,[१] श्लेष,[२] उपमा,[३] उत्प्रेक्षा,[४] रूपक,[५] विषम[६] इत्यादि अलंकारों की छटा काव्य में विशेष दर्शनीय है।

६. सरस—

वैसे तो 'दयोदय' में शृङ्गार रस,[७] वत्सल रस[८] और भक्तिभाव[९] का आस्वादन पाठक को यत्र-तत्र होता रहता है। किन्तु कवि की सभी कृतियों की भाँति इस काव्य का अङ्गीरस शान्त[१०] ही है।

७. उदात्तनायकोपेत—

'दयोदय' काव्य की कथा एक ऐसे व्यक्ति पर आधारित है, जो अपने पूर्वजन्म में एक ऋषि के उपदेश से प्रभावित होकर अहिंसा-व्रत अपना चुका था; और मुनि के आदेशानुसार उसने जाल में आई मछली को जीवन-दान दिया था। अपने वर्तमान में वह एक मातृ-पितृविहीन बालक के रूप में गुणपाल की कुदृष्टि से बचता हुआ एक ग्वाले के पास पहुँच जाता है। बार-बार गुणपाल की दुर्भावना का शिकार होने से बचता है। सेठ गुणपाल की पुत्री विषा और राजकुमारी गुणमाला से उसका विवाह होता है। राजा उसके गुणों पर रीझ कर अपना आधा राज्य उसे सौंप देता है। अन्त में ऋषि का उपदेश सुनकर सोमदत्त को वैराग्य हो जाता है और वह जैन-मुनि बन जाता है। इस प्रकार काव्य का नायक सोमदत्त सौन्दर्यशाली दिव्यगुणोपेत, दयालु और सरलहृदय है। अतः 'दयोदय' की कथा एक निर्मल चरित्र वाले व्यक्ति पर आधारित है।

---

१. दयोदयचम्पू, १।२६, २।३२, ६।३
२. वही, ७।२
३. वही, ३ श्लोक ९ के बाद के गद्यभाग।
४. वही, ३ श्लोक ७ और उसके पूर्व के गद्यभाग।
५. वही, २।३१
६. वही, ५।५
७. वही, ४।१४-१६
८. वही, ३ श्लोक १० के बाद के गद्यभाग।
९. वही, ७ पृ० १४३ का गीत।
१०. वही, ७ श्लोक १७ के बाद के गद्यभाग से श्लोक ३८ तक।

८. गुणयुक्त—

'दयोदय' माधुर्य[1] और प्रसाद गुण[2] सम्पन्न रचना है।

९. भागों में विभक्त—

प्रायः देखा जाता है कि चम्पू-काव्य उच्छ्वास, स्तबक इत्यादि में विभक्त होता है। हमारे आलोच्य कवि की यह कृति 'दयोदय' भी सात लम्बों में विभक्त है। इन लम्बों के पद्यों में अनुष्टुप्, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, वसन्ततिलका, वियोगिनी, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित इत्यादि छन्दों का प्रयोग किया गया है।

'दयोदय' के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि इसकी कथा चमत्कारोत्पादक है। स्थान-स्थान पर उक्तिवैचित्र्य के दर्शन होते हैं। पद्य के माध्यम से शाब्दी क्रीड़ा,[3] गद्य के माध्यम से शाब्दी क्रीड़ा,[4] प्रसाद-माधुर्य-गुण एवं अन्योक्ति का मिला जुला चमत्कार,[5] तथा सुभाषित मुक्ता-राशि[6] के स्थल यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य-शास्त्रियों द्वारा मान्य चम्पू-काव्य की सभी विशेषताएं हमें 'दयोदय चम्पू में मिलती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें गद्य पद्य के मिश्रण का जितना प्राधान्य है, उतना और किसी अन्य तत्त्व का नहीं। 'विरुद-काव्य' में प्राप्य राजस्तुति का इसमें सर्वथा अभाव है। विविध भाषा में रचित करम्भक काव्य के समान इसमें अनेक भाषायें न होकर केवल संस्कृत भाषा है। इसके पद्य संवादों की पुष्टि के लिए नहीं हैं। कथा-साहित्य की भाँति इसमें पद्यमात्रा विरल न होकर अविरल है। अतः स्पष्ट है कि 'दयोदय' एक चम्पू-काव्य है, जो गद्य-पद्यमयी-गंगा-यमुना के संगम को जलधारा रूप वाणी से पाठक को आह्लादित करने में पूर्ण समर्थ है।

मुनि मनोरंजन शतक—

संस्कृत भाषा में लिखी गई कवि की यह छठी साहित्यिक कृति है। यह कृति

---

१. दयोदयचम्पू, ४।२०
२. वही, १।२३
३. वही, २।२४
४. वही, १ श्लोक २१ के बाद का चतुर्थ गद्यभाग।
५. वही, १ श्लोक ९ के बाद की सूक्ति, ३ प्रथम गद्यभाग की सूक्ति।
६. वही, ४।२१

मुक्तक नामक पद्य-काव्य भेद के अन्तर्गत आती है। संस्कृत काव्य-शास्त्रियों की दृष्टि में मुक्तक-काव्य ऐसा छन्दोबद्ध काव्य है, जिसके पद्यों की विषय-वस्तु स्वतन्त्र होती है। अतः निरपेक्ष विषय-वस्तु वाले पद्यों के संग्रह को मुक्तक-काव्य कहते हैं।[1]

अस्मदालोच्य महाकवि ज्ञानसागर जी की उक्त रचना में मुक्तक काव्य का यह लक्षण पूर्णरूपेण घटित होता है। किन्तु इसके 'मुनिमनोरंजनशतक' नाम में 'मुनि' एवं शतक' शब्द तो ठीक है, किन्तु 'मनोरंजन' शब्द का प्रयोग आपत्तिजनक है। क्योंकि इस कृति का आद्योपान्त परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि इसमें मनोरंजन नाम की कोई वस्तु नहीं। इसमें तो मुनियों के आचार-व्यवहार के विषय में लिखा गया है। इस दृष्टि से महाकवि यदि इसका नाम 'मुनिधर्मनिरूपण' रखते तो अधिक संगत होता। किन्तु यह भी सम्भव है कि वह स्थूल मनोरंजन को मनोरंजन मानते ही न हों। उन्हें कर्त्तव्य-पालन एवं धर्मयुक्त चेष्टाओं में ही मनोरंजन-प्राप्ति होती हो। यदि ऐसा रहा है, तब तो ठीक ही है।

इसमें १०० श्लोक पाए जाते हैं, जैसाकि इसके नाम में आए हुए 'शतक' शब्द से ही स्पष्ट है। इस रचना की विषय-वस्तु है मुनियों के कर्त्तव्यों का निरूपण। मुनवेश धारण वाले व्यक्ति को बाह्य आडम्बर पूर्णरूपेण छोड़ देना चाहिए। उसे अपने उपयोग के लिए एक मयूरपिच्छिका और कमण्डलु धारण करना चाहिए। एक ही समय भोजन एवं जल, ग्रहण करना चाहिए। रात्रि के समय कहीं नहीं जाना चाहिए। जब कोई श्रद्धापूर्वक भोजन दे, तभी ग्रहण करना चाहिए। पंच-महाव्रतों के प्रति अतीव सावधान रहना चाहिए। भाषा, एषणा इत्यादि पंच समिति, त्रिगुप्ति, सम्यक्दृष्टि, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र— इस रत्न-त्रय को धारण करना चाहिए। जनता को प्रबुद्ध करना, धर्म पर आस्था रखना, आत्म-स्वरूप को पहिचानना आदि मुनियों के कर्त्तव्य हैं।

कवि की इस रचना की भाषा-शैली सरल एवं सुबोध है। यह त्याग का आचरण करने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों के लिए आज अत्यन्त उपयोगी है।

---

१. 'छन्दोबद्धपदं पद्यं तेनैकेन च मुक्तकम्।'

—साहित्यदर्पण, ६।३१३

कवि की संस्कृत काव्यसम्पदा

का

परिचयात्मक अतिसंक्षिप्त रेखाचित्र

	जयोदय महाकाव्य	वीरोदय महाकाव्य	सुदर्शनोदय महाकाव्य	श्रीसमुद्रदत्तचरित्र महाकाव्य	दयोदयचम्पू	मुनिमनोरंजनशतक
सर्गसंख्या	२८	२२	९	९	७	+
श्लोकसं.	३०७९	९८९	४१२	३४५	१६६	१००
छन्दःसं.	४६	१८	१९	१२	११	१
अंगी रस	शान्त	शान्त	शान्त	शान्त	शान्त	शान्त
अंग रस	शृङ्गार, वीर, रौद्र, हास्य बीभत्स और वत्सल ।	हास्य, अद्भुत और वत्सल	शृङ्गार, रौद्र, अद्भुत और वत्सल	वीर, करुण, रौद्र और वत्सल ।	शृङ्गार, करुण और वत्सल	+
शैली	वैदर्भी	वैदर्भी	वैदर्भी	वैदर्भी	वैदर्भी	वैदर्भी

कवि के दार्शनिक ग्रन्थ—

उपर्युक्त साहित्यिक ग्रन्थों के अतिरिक्त कवि ने संस्कृत भाषा में दो दार्शनिक ग्रन्थ भी लिखे हैं—प्रवचनसार एवं सम्यक्त्वसारशतक। प्रवचनसार में द्रव्य का स्वरूप निरूपित किया गया है; और सम्यक्त्वसारशतक में सम्यक्त्व का स्वरूप एवं सम्यक्दृष्टि, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—नामक उसके तीन प्रकारों के विषय में बताया गया है। दोनों ही ग्रन्थों की उक्त वर्ण्य-वस्तु दार्शनिक है। इन दोनों ही ग्रन्थों में काव्य-शास्त्रीय विधाओं का कोई भी लक्षण नहीं मिलता है; चूंकि हमें अपने शोध-प्रबन्ध में कवि की संस्कृत भाषा में रचित साहित्यिक कृतियों का ही मूल्यांकन करना है, इसलिए इन दोनों दार्शनिक कृतियों का परिचय हम यहाँ न देकर शोधग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में जहाँ कवि की हिन्दी रचनाओं का परिचय दिया जायगा, प्रस्तुत करेंगे।

सारांश

इस प्रकार श्री ज्ञानसागर की कृतियों के काव्यशास्त्रीय परिशीलन से यह ज्ञात हो जाता है कि कवि ने संस्कृत भाषा की साहित्यिक विधा में चार महाकाव्य, एक चम्पूकाव्य और एक मुक्तक काव्य की रचना की है। कवि की ये सभी साहित्यिक कृतियाँ उसकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देती हैं। साहित्य के प्रायः अधिकांश ग्रन्थों में रसराज शृङ्गार की महिमा गाई गई है, किन्तु कवि की रचनाओं के परिशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने सभी रसों की परिणति शान्त रस में मान ली है। पूर्वजन्म की कथाओं से बोझिल 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' के अतिरिक्त अन्य किसी भी रचना में कथानक का प्रवाह अवरुद्ध नहीं हुआ है। 'सुदर्शनोदय' और 'दयोदय' के कथानकों में तो अद्भुत प्रवाह है। काव्यशास्त्रीय मानदण्डों को स्वीकार करती हुई महाकवि ज्ञानसागर की ये सभी साहित्यिक कृतियाँ सहृदय सामाजिकों, धार्मिकों और काव्यशास्त्रियों को सन्तुष्ट करने में पूर्णतया समर्थ हैं।

——

पञ्चम अध्याय

महाकवि ज्ञानसागर की पात्रयोजना

(क) काव्य में पात्रों का महत्त्व

'पात्र' शब्द का तात्पर्य है—रक्षा करने वाला। इस दृष्टि से यदि हम काव्य में 'पात्र' की परिभाषा करें, तो उस परिभाषा की शब्दावली होगी—'काव्य में कथानक की रक्षा करने वाले व्यक्तियों को पात्र कहा जाता है।'

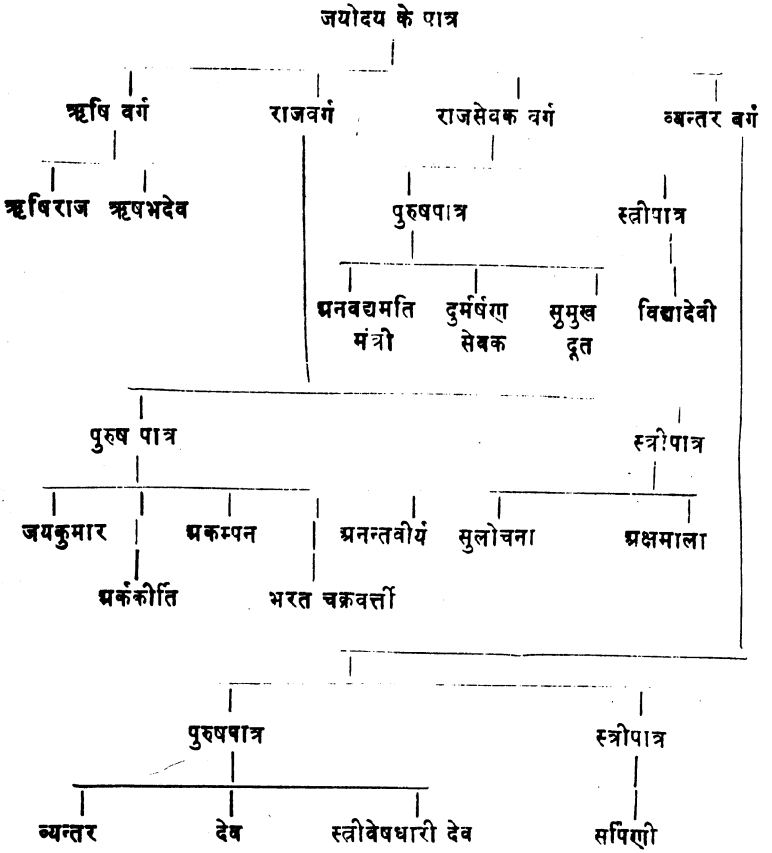
किसी भी काव्य के लिए कथानक-तत्त्व बहुत आवश्यक हैं; किन्तु इस तत्त्व की महत्ता, उस काव्य में प्रयुक्त पात्रों पर आधारित होती है। भोजन की महत्ता भोक्ता पर, सृष्टि रूपी रंचमंच की महत्ता जीवधारी रूप कलाकार पर, शरीर की महत्ता उस शरीर में रहने वाली शक्ति पर निर्भर है, इसी प्रकार काव्य के कथानक की महत्ता पात्रों पर आधारित है। पात्रों को कथानक रूपी शरीर की शक्ति माना जा सकता है। शक्ति के बिना शरीर शव ही होता है, इसी प्रकार पात्रों के बिना कथानक की सत्ता नहीं मानी जा सकती है। जिस प्रकार किसी सुरभित कुसुम के चारों ओर भ्रमर मंडराते हैं, उसी प्रकार कथानक के चारों ओर पात्र घूमते रहते हैं। अतः काव्य के कथानक और पात्रों के सम्बन्ध को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। एक पाचक अपने भोजन की प्रशंसा भोक्ता के माध्यम से सुन सकता है, इसी प्रकार कवि अपने कथानक का प्रशंसनीय प्रस्तुतीकरण पात्रों की समुचित योजना से ही कर पाता है। पात्र ही कवि के मानदण्डों को सामाजिकों तक पहुँचाते हैं। जिस प्रकार यज्ञ में अग्नि ही यजमान की आहुति देवगणों तक पहुँचाता है, उसी प्रकार कवि इन पात्रों के माध्यम से स्वयं को समाज के बीच पहुँचाने में समर्थ होता है। पात्रों के माध्यम से ही कवि अपने साहित्य को समाज का दर्पण बना पाता है। नाटककार की तो सारी सफलता पात्रों के ही प्रस्तुतीकरण पर निर्भर करती है। नाटक के अतिरिक्त उपन्यास, महाकाव्य और खण्डकाव्यों के लिए भी काव्यशास्त्री पात्रयोजना में महत्त्व का उद्घोष करते प्रतीत होते हैं, तभी तो वे कहते हैं कि काव्य की कथा किसी सज्जन के जीवनवृत्त पर आधारित होनी चाहिए। काव्य का नायक उदात्त होना चाहिए और काव्य में उसकी विजय भी दिखाई जानी चाहिए।

अतएव किसी भी कवि को काव्य के कथानक के ही समान पात्रों की योजना का भी ध्यान रखना चाहिए। काव्य में पात्रों की संख्या ऐसी हो कि पाठक पूरा

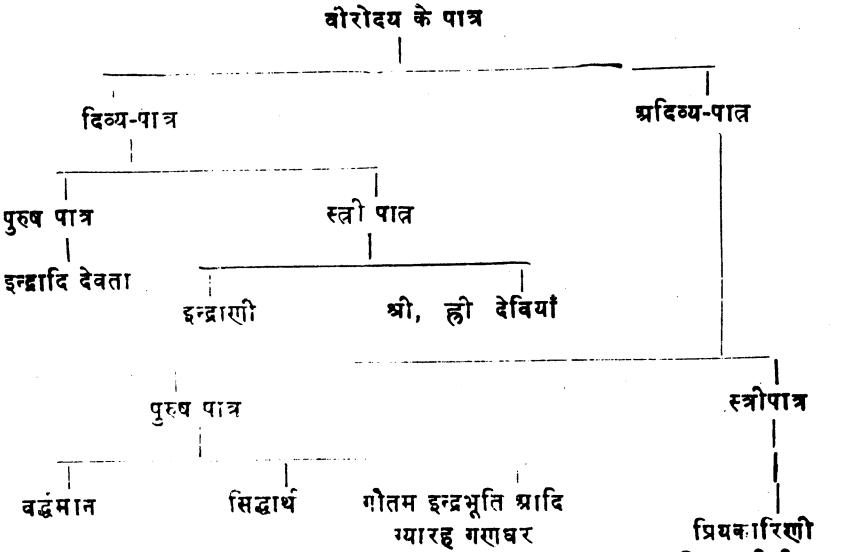
काव्य पढ़ते समय उन सभी से परिचित रहे; और प्रमुख पात्रों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व हमारे समक्ष प्रस्तुत हो जाय।

(ख) कविवर ज्ञानसागर के पात्रों का आकलन एवं वर्गीकरण

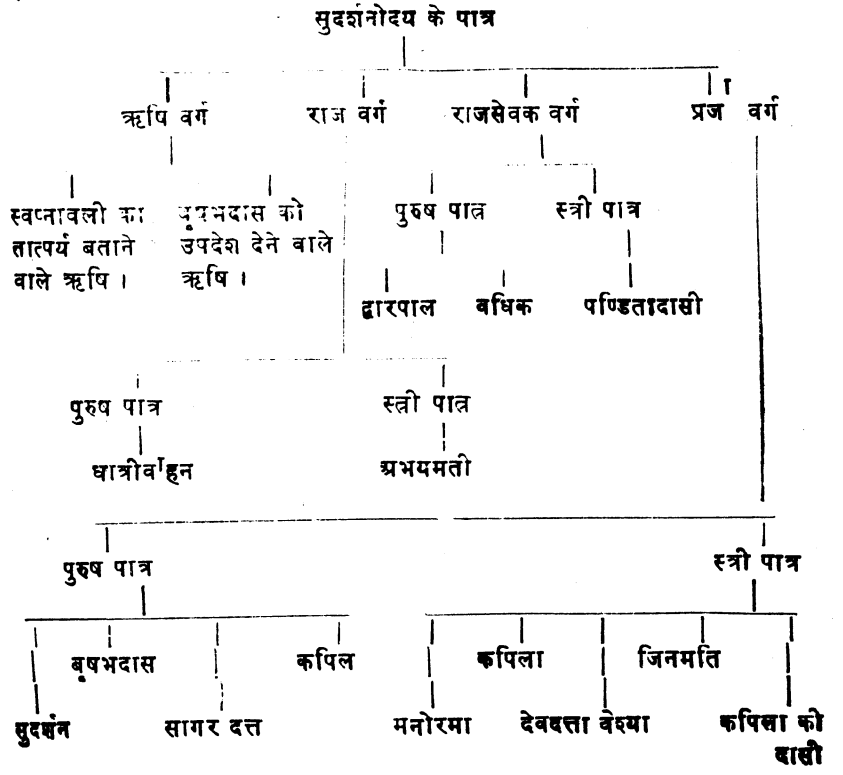
श्री ज्ञानसागर ने पाँच संस्कृत काव्य ग्रन्थों की रचना की है—जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र और दयोदय-चम्पू। सर्वप्रथम 'जयोदय' के पात्र आपके समक्ष प्रस्तुत हैं। 'जयोदय' काव्य में कथा को पाठकों तक पहुँचाने वाले पात्रों की संख्या सत्रह हैं। उनका परिचयात्मक रेखाचित्र इस प्रकार है—



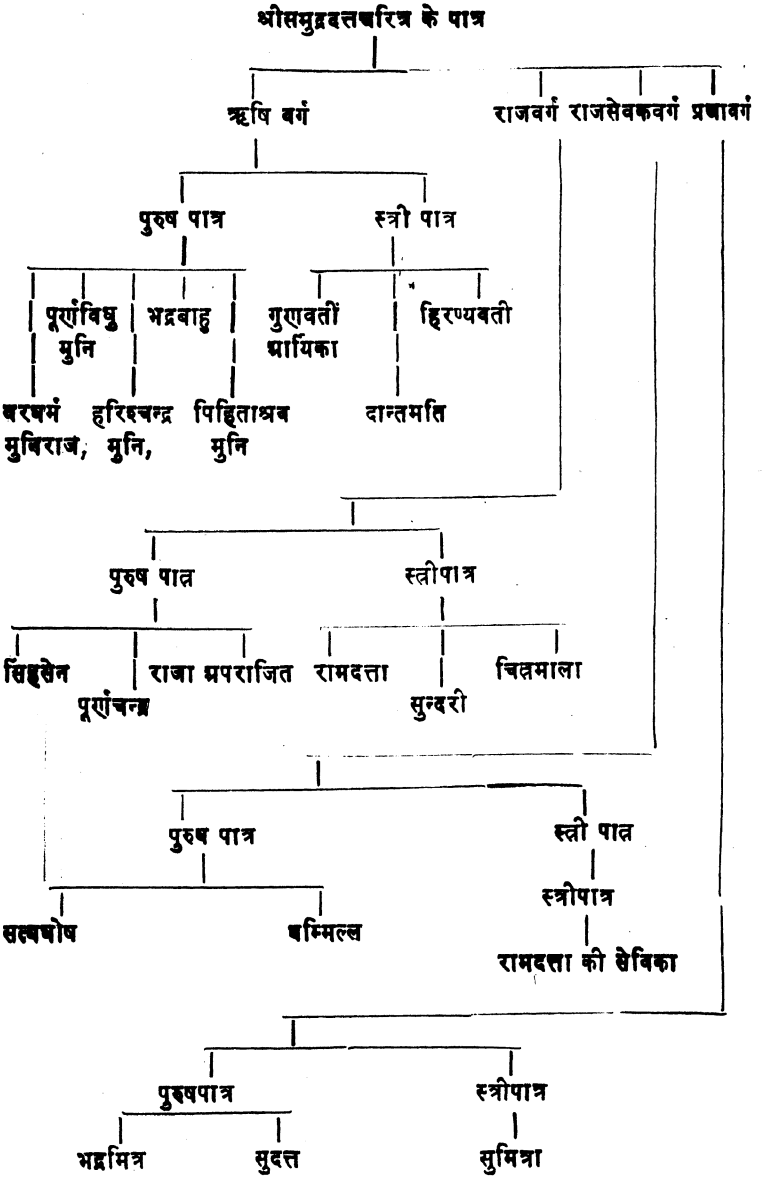
'वीरोदय' में कवि ने जिन पात्रों का अवलम्बन लेकर कथानक को गति प्रदान की है, वे सात प्रकार के हैं। उनका परिचय निम्नलिखित रेखाचित्र से किया जा सकता है—



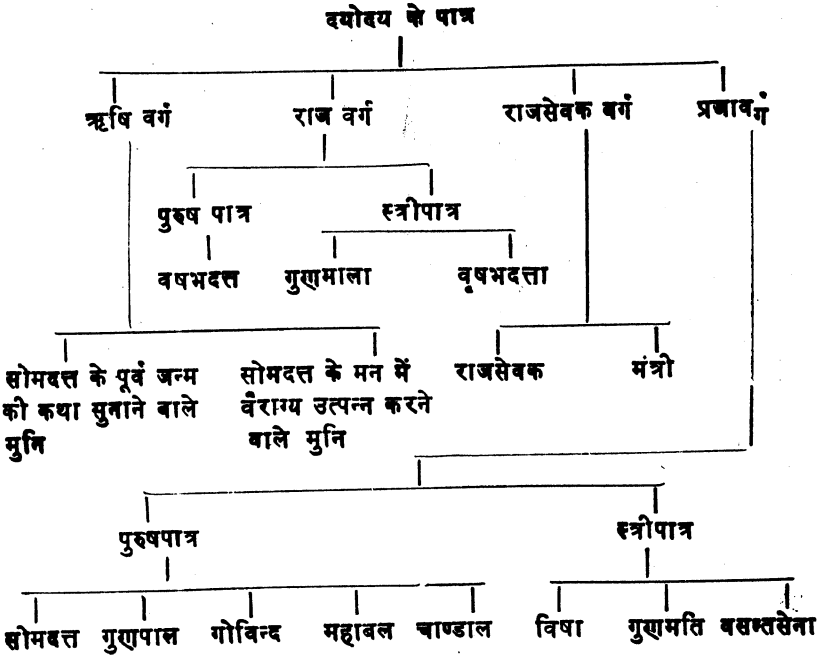
'सुदर्शनोदय' काव्य की कथा कवि ने सोलह पात्रों द्वारा उपस्थित की है। इस काव्य के पात्रों का रेखाचित्र इस प्रकार है—



अब प्रस्तुत है—श्री समुद्रदत्तचरित्र के बीस पात्रों का परिचयात्मक रेखाचित्र—

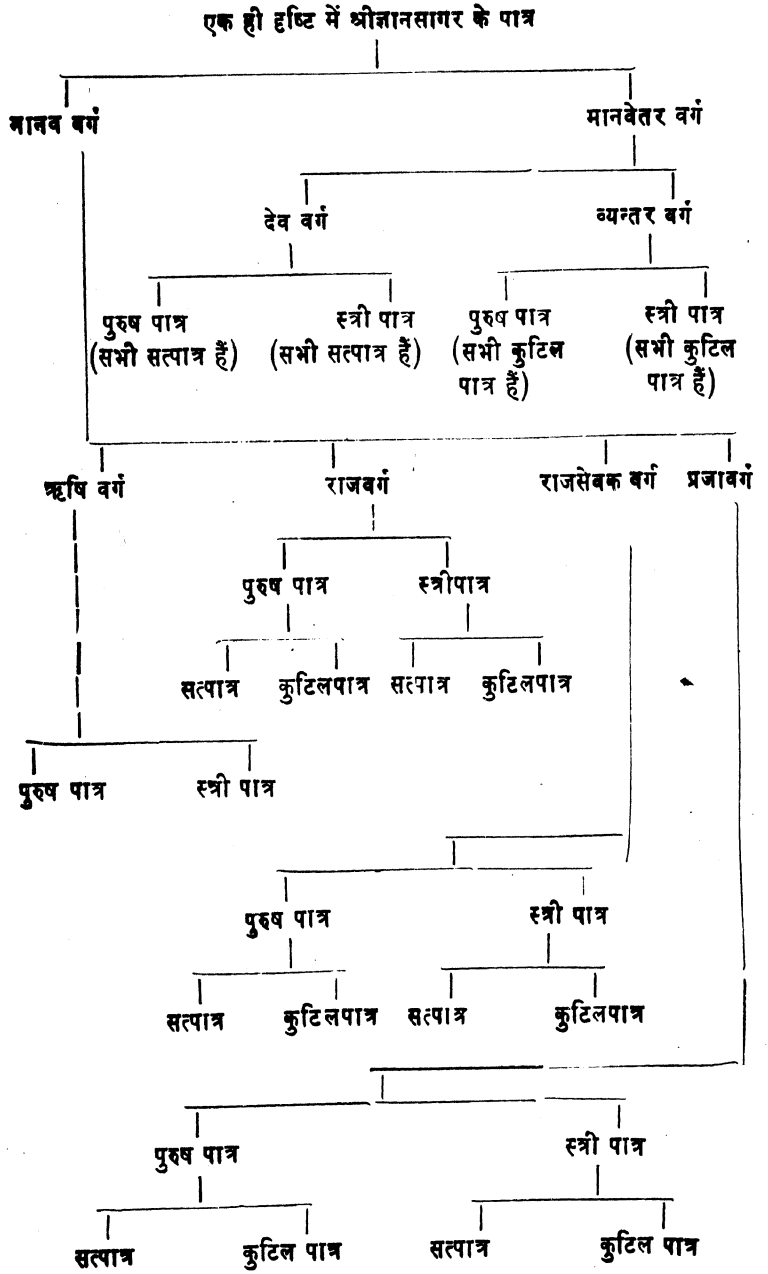


'दयोदयचम्पू' में कवि ने कथानक-निर्वाह के लिए पन्द्रह पात्रों की परिकल्पना की है, जिनका परिचयात्मक रेखाचित्र इस प्रकार है—



श्री ज्ञानसागर के काव्य-ग्रन्थों का अनुशीलन करने से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने काव्यों में समाज के प्रायः प्रत्येक वर्ग के पात्रों को लिया है। जहाँ एक ओर उनके काव्यों में इन्द्रादि देवताओं को लिया गया है, वहाँ दूसरी ओर चाण्डाल वधिक और पिशाच योनि वाले प्राणियों को भी लिया है। एक ओर अपने पति सिद्धार्थ से प्रेम करने वाली रानी प्रियकारिणी है, तो दूसरी ओर वासना से अन्धी रानी अभयमती भी है। इस प्रकार उनके पात्रों में कौतुकजनक विविधता विद्यमान है।

अब श्रीज्ञानसागर के सभी पात्रों का, उनकी कोटि के आधार पर, निम्न-लिखित रेखाचित्र प्रस्तुत किया जा सकता है—


एक ही दृष्टि में श्रीज्ञानसागर के पात्र
मानव वर्ग
मानवेतर वर्ग
देव वर्ग
व्यन्तर वर्ग
पुरुष पात्र (सभी सत्पात्र हैं)
स्त्री पात्र (सभी सत्पात्र हैं)
पुरुष पात्र (सभी कुटिल पात्र हैं)
स्त्री पात्र (सभी कुटिल पात्र हैं)
ऋषि वर्ग
राजवर्ग
राजसेवक वर्ग
प्रजावर्ग
पुरुष पात्र
स्त्रीपात्र
सत्पात्र
कुटिलपात्र
सत्पात्र
कुटिलपात्र
पुरुष पात्र
स्त्री पात्र
पुरुष पात्र
स्त्री पात्र
सत्पात्र
कुटिलपात्र
सत्पात्र
कुटिलपात्र
पुरुष पात्र
स्त्री पात्र
सत्पात्र
कुटिल पात्र
सत्पात्र
कुटिल पात्र

उपर्युक्त रेखाचित्र को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि श्री ज्ञानसागर के काव्यों में हमें अठारह कोटि के पात्र दृष्टिगोचर होते हैं। निम्नलिखित सारिणी से यह भी स्पष्ट हो जायगा कि कवि के समस्त पात्र कितने हैं ? और किस कोटि में आते हैं—

कोटि	वर्ग	नाम	संख्या
१.	(क) मानव वर्ग ऋषिवर्ग के पुरुष पात्र	स्वप्नावली का अर्थ बताने वाले ऋषिराज, सेठ वृषभदास को दीक्षा देने वाले मुनिराज, सोमदत्त के पूर्वजन्म की कथा सुनाने वाले मुनि, सोमदत्त के मन में वैराग्यभावना जगाने वाले मुनिराज, वरधर्म मुनिराज, पूर्णविधु मुनि, हरिश्चन्द्र मुनि, भद्रबाहु, पिहितास्रव मुनि, जयकुमार को उपदेश देने वाले मुनिराज एवं ऋषभदेव।	११
२.	ऋषिवर्ग के स्त्री पात्र	गुणवती आर्यिका, दान्तमति एवं हिरण्यवती।	३
३.	राजवर्ग के पुरुषसत्पात्र	सिद्धार्थ, वर्धमान, धात्रीवाहन, वृषभदत्त, सिंहसेन, पूर्णचन्द्र, राजा अपराजित, जयकुमार, अकम्पन, भरतचक्रवर्ती एवं जयकुमार का पुत्र।	११
४.	राजवर्ग के कुटिल पुरुषपात्र	अर्ककीर्ति।	१
५.	राजवर्ग के स्त्रीसत्पात्र	प्रियकारिणी, वृषभदत्ता, गुणमाला, रामदत्ता, सुन्दरी, चित्रमाला, सुलोचना और अक्षमाला।	८
६.	राजवर्ग के स्त्री कुटिलपात्र	रानी अभयमती।	१
७.	राजसेवक वर्ग के पुरुष पात्र	धम्मिल्ल, द्वारपाल, वृषभदत्त का सेवक, काशीनरेश का दूत, अनवद्यमति मंत्री एवं धात्रीवाहन का राजवधिक।	६
८.	राजसेवक वर्ग के पुरुष कुटिल पात्र	सत्यघोष तथा अर्ककीर्ति का सेवक	२
९.	राजसेवक वर्ग के स्त्रीसत्पात्र	रामदत्ता की सेविका तथा विद्यादेवी।	२
१०.	राजसेवक वर्ग के कुटिल स्त्री पात्र	पण्डिता दासी	१

११.	प्रजावर्ग के पुरुष सत्पात्र	गौतम इन्द्रभूति, वृषभदास, सुदर्शन, सागरदत्त, कपिल, महाबल, सोमदत्त, गोविन्द, भद्रमित्र, सुदत्त, वधिक एवं चाण्डाल।	
१२.	प्रजावर्ग के कुटिल पुरुषपात्र	सेठ गुणपाल	१
१३.	प्रजावर्ग के स्त्रीसत्पात्र	जिनमति, मनोरमा, गुणमति, विद्या, वसन्तसेना एवं सुमित्रा।	६
१४.	प्रजावर्ग के कुटिल स्त्रीपात्र	कपिला, देवदत्ता तथा कपिला की दासी	३
(क) मानवेतर वर्ग			
१५.	देववर्ग के पुरुष सत्पात्र	इन्द्र तथा अन्य देवगण	२
१६.	देववर्ग के स्त्री सत्पात्र	इन्द्राणी तथा अन्य श्री, ह्री आदि देवीगण	२
१७.	व्यन्तर वर्ग के कुटिल पुरुष पात्र	व्यन्तरी की योनि में अवस्थित सर्पिणी का स्वामी व्यन्तर, मकररूपधारी देव तथा स्त्रीरूप धारी देव।	३
१८.	व्यन्तरवर्ग के कुटिल स्त्री पात्र	सर्पिणी	१
		पात्रों का कुल योग	७६

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि कवि ने अपने काव्यों में कुल ७६ पात्र प्रयुक्त किये हैं। इनमें से मानव वर्ग में ६८ और मानवेतर वर्ग में ८ पात्र आते हैं। मानव वर्ग के कुल पुरुष पात्रों की संख्या ४४ है। इनमें से ४० पात्र सत्पात्र हैं और ४ कुटिल हैं। मानव वर्ग के स्त्रीपात्रों की संख्या २४ है। इनमें से १९ सत्पात्र हैं और ५ कुटिल पात्र। देववर्ग में चार पात्र हैं, पर हैं सभी सत्पात्र। व्यन्तर वर्ग में भी चार ही पात्र हैं, पर ये सभी कुटिल पात्र हैं।

महाकवि ज्ञानसागर के पात्रों के उपरिलिखित वर्गीकरण में 'मानव वर्ग' से हमारा तात्पर्य उस वर्ग के पात्रों से है जो पृथ्वी पर जन्म लेते हैं; बढ़ते हैं और अपनी जीवनलीला इसी वसुन्धरा पर करते हैं। इस वर्ग में भी वरीयता की दृष्टि से हमने ऋषिवर्ग को सर्वप्रथम माना है।

(क) ऋषिवर्ग—

श्री ज्ञानसागर के काव्यों में ऋषिवर्ग के पात्रों में हमने उन्हें माना है जो मोक्ष की ओर अग्रसर हैं, पूर्णतया सत्त्वगुणोपेत हैं; सांसारिक भोगविलासों से निर्लिप्त हैं, अज्ञानान्धकार में निमग्न जनता के प्रबोधक हैं, अपने देवोपम व्यवहार से मानवलोक एवं देवलोक के मध्य में स्थित रहते हैं और मनुष्य जैसे होते हुये भी अपने दिव्य गुणों के कारण सर्ववन्द्य हैं।

कविवर श्री ज्ञानसागर ने अपने काव्यों में ऋषिवर्ग के चौदह (पुरुष और स्त्री) पात्रों का उल्लेख किया है। उनके ये पात्र व्यक्तिगत परिचय से हीन होकर हमारे सामने आते हैं। इसमें इनकी ऐतिहासिकता एवं वास्तविकता सन्दिग्ध हो जाती है। अतः ये हमें काल्पनिक पात्र से प्रतीत होने लगते हैं। किन्तु ये पात्र हमारे लिए वन्द्य भी हो जाते हैं। क्योंकि जब पुरुष मुनि बनता है, तब सांसारिक भोग-विलास का परित्याग करके अपने सांसारिक नाम का भी त्याग कर देता है; उसके लिए आत्मा का कोई महत्त्व नहीं रहता; परमात्मा ही उसके लिए सर्वस्व होता है। ऐसी स्थिति में जनता को प्रबुद्ध करना ही उसका नाम और काम होता है। फिर समाज उनके नाम को नहीं, काम को पूजता है। समाज को जागरित करने वाली ऐसी ही दिव्यविभूतियों का वर्णन कवि ने ऋषिवर्ग के पात्रों के रूप में किया है।

(ख) राजवर्ग—

कवि द्वारा प्रयुक्त राजवर्ग के पात्रों से हमारा तात्पर्य उन पात्रों से है, जो किसी देश के राजा हैं, राजा की स्त्रियाँ हैं, राजकुमार हैं और राजकुमारियाँ हैं। अतः राजवर्ग के पात्रों से तात्पर्य है राजपरिवार पात्र। कवि ने राजवर्ग के २१ पात्रों को प्रयुक्त किया है। इस वर्ग के पात्र अच्छी से अच्छी प्रकृति वाले हैं और दुष्ट से दुष्ट प्रकृति वाले भी। जहाँ मुनि अपनी दिव्य वाणी से जनता पर शासन करते हैं, वहाँ इस वर्ग के पात्र अपने भुजबल से जनता पर शासन करते हैं। अतः वरीयता की दृष्टि से इनका स्थान द्वितीय है।

(ग) राजसेवक वर्ग—

इस वर्ग में राजवर्ग की सेवा करने वाले पात्र आते हैं। इनको तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। मंत्री, सभासद् इत्यादि राजकर्मचारी प्रथम श्रेणी के पात्र हैं। द्वारपाल, दूत इत्यादि द्वितीय श्रेणी के पात्र हैं। वधिक, चाण्डाल इत्यादि तृतीय श्रेणी के पात्र हैं। हम देखते हैं कि हमारे आलोच्य महाकवि श्री ज्ञानसागर ने इन तीनों ही श्रेणियों के पात्रों को काव्यों में आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किया है। इन पात्रों की कुल संख्या ११ है। इस संख्या में पुरुष पात्र एवं स्त्रीपात्र—दोनों ही सम्मिलित हैं।

(घ) प्रजावर्ग—

उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त नागरिक पात्र 'प्रजावर्ग' के अन्तर्गत आते हैं। इन पात्रों को राजकीय कर्मचारियों के अधीन रहना पड़ता है, इसलिए वरीयता की दृष्टि से इनका चतुर्थ स्थान है। आर्थिक दृष्टि से इन पात्रों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है, उच्चवर्गीय पात्र—जैसे सेठ वृषभदास, सेठ गुणपाल, सेठ सागरदत्त आदि; मध्यवर्गीय पात्र जैसे, गोविन्द ग्वाला, कपिल आदि; और निम्नवर्गीय

पात्र—जैसे वधिक, चाण्डाल आदि । कवि ने अपने काव्यों में तीनों ही श्रेणी के पात्रों को प्रयुक्त किया है । कवि के काव्यों में इन पात्रों की संख्या २२ है ।

मानवेतर वर्ग—

इस वर्ग में वे पात्र आते हैं, जिनका पृथ्वी से सम्बन्ध नहीं होता; और यदि होता भी है तो बहुत ही कम । ये पृथ्वीलोक के अतिरिक्त अन्य लोकों में भी विचरते रहते हैं । इस वर्ग के पात्रों के भी दो विभाग किये गये हैं, देव वर्ग और व्यन्तर-वर्ग ।

(क) देव वर्ग—

स्वर्ग लोक में रहने वाले, अलौकिक गुणों और समृद्धि से युक्त पात्र इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं । कवि के काव्य में इस वर्ग के ४ पात्र प्रयुक्त किये गये है—इन्द्र, देवगण, इन्द्राणी और श्री, ह्री देवियाँ । ये सभी पात्र मनुष्य लोक के प्राणियों का कल्याण करने के कारण सत्पात्रों की कोटि में आते हैं ।

(ख) व्यन्तर वर्ग—

इस वर्ग में पिशाच और यक्ष योनि के पात्र आते हैं, जिनमें मनुष्यों में प्राप्त होने वाली सामान्य विशेषताओं का अभाव होता है ।[1] प्रायः इस वर्ग के पात्र मायाचारी होते हैं और अपनी माया से जनसामान्य को कष्ट देते हैं । श्री ज्ञानसागर के काव्यों में इन कुटिल पात्रों की संख्या ४ है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमारे आलोच्य कवि श्री ज्ञानसागर ने समाज में प्राप्य प्रत्येक प्रमुख वर्ग और प्रकृति वाले पात्रों को अपने काव्यों में उपस्थित किया है । अब उन पात्रों में से कतिपय ऐसे पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत है, जिन्होंने काव्यों के कथानकों को प्रमुखरूप से प्रभावित किया है ।

जयोदय के पात्र

जयकुमार—

यह सम्राट् भरत के सेनापति हैं ।[2] हस्तिनापुर का शासन इनके ही अधीन है । जयकुमार के पिता का नाम है सोमदेव । काशीनरेश महाराज अकम्पन की पुत्री सुलोचना इनकी पत्नी हैं । जयकुमार 'जयोदय' नामक काव्य के नायक हैं । काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इनको धीरोदात्त नायक की श्रेणी में रखा जा

---

१. व्यन्तरः (विशिष्टः अन्तरो यस्य—प्रा० ब०) । पिशाच, यक्ष आदि एक प्रकार का अतिप्राकृतिक प्राणी ।

—वामन शिवराम आप्टे का संस्कृत-हिन्दी-कोश,
(प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास) पृष्ठ संख्या ९८५

२. जयोदय, ६।१

सकता है।[1]

वीरता—जयकुमार अप्रतिम योद्धा है। एक चक्रवर्ती के सेनापति में जो गुण होने चाहिएं, वे सब इनमें हैं। जयकुमार के ही कारण भरत को सदैव विजय की प्राप्ति हुई है। अपने भी सभी शत्रुओं को इन्होंने समाप्त कर दिया है। इनकी वीरता का उदाहरण देखिये—सुलोचना ने स्वयंवर में जयकुमार का चुनाव किया; और इनके गले में जयमाला डाल दी. अतएव जयकुमार के साथ सुलोचना का विवाह होना निश्चित हो गया। इसी बीच जयकुमार का एक प्रतिद्वन्द्वी—अर्ककीर्ति अपने एक सेवक के कहने पर जयकुमार से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। ऐसे समय में जयकुमार महाराज अकम्पन को धैर्य बँधा कर युद्ध करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह अपनी सेना सहित अर्ककीर्ति के साथ बड़ी वीरता से लड़ते हैं और विजय भी प्राप्त कर लेते हैं।[2]

परम जैन धार्मिक—

जयकुमार की जिनेन्द्र भगवान् पर पूर्ण आस्था है।[3] प्रतिदिन नियमपूर्वक यह सन्ध्योपासना के साथ जिन भगवान् की पूजा करते हैं। यह प्रत्येक ऋषि का स्वागत करते हैं और उनके द्वारा बताई गई धर्म की सभी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते भी हैं।[4] अर्ककीर्ति को पराजित करने के बाद भी यह प्रायश्चित्त रूप में जिनदेव की स्तुति करते हैं।[5] जब यह और सुलोचना दोनों अपने पूर्वजन्मों का स्मरण करते हैं, तब जयकुमार अपना सम्पूर्ण राज्य अपने भाई विजय को सौंप कर तीर्थाटन के लिए निकल पड़ते हैं। हिमालय पर्वत में स्थित एक देवालय में जाकर यह जिनदेव की स्तुति करते हैं।[6] जब जयकुमार के हृदय में वैराग्य उत्पन्न होता है, उस समय यह जैन धर्म तीर्थंकर ऋषभदेव के पास चले जाते हैं और उनसे दीक्षा की याचना करते हैं। इसके पश्चात् तपस्या करते हैं।[7]

प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं सौन्दर्य—

जयकुमार प्रभावशाली व्यक्तित्व और सौन्दर्य के स्वामी हैं। इन्होंने कच्छप

---

१. महासत्त्वोऽनिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ॥
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।
—दशरूपक, २।४ का उत्तरार्ध और ५वीं का पूर्वार्ध।

२. जयोदय, ७।८३-११५, ८।१-८४

३. वही, १९वाँ सर्ग

४. वही, १।८८-११२, २।१-१४१

५. वही, ८।८९-९५

६. वही, २४।५८-८५

७. वही, २६।३८-१०७, २७वाँ सर्ग, २७।१-६६

की भाँति पृथ्वी का भार सम्भाल रखा है। यह विद्वान् भी हैं। प्रताप में सूर्य के समान हैं। इनकी कीर्ति चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान है। यह याचकों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले हैं। इनकी भुजायें इन्द्र के हाथी की सूँड के समान लम्बी और बलशाली हैं। राजा जयकुमार से ही पृथ्वी का राजन्वती नाम सार्थक है। इनके सुन्दर चरणों के समक्ष कमलों की कोई गिनती नहीं। इनके हाथ कल्पवृक्ष के समान हैं। इनके नेत्र नीलकमल के समान हैं। कमल और चन्द्रमा प्रयत्न करके भी इनके मुख की समता नहीं कर सके हैं। इनका गला शंख को पराजित करने वाला है।[1] अत्यन्त यशस्वी जयकुमार के उपर्युक्त गुणों से प्रभावित होकर ही सुलोचना ने चक्रवर्ती के पुत्र को भी छोड़कर उनका वरण किया। काशीनरेश का दूत भी जब सुलोचना के स्वयंवर का समाचार लाता है, तब वह भी जयकुमार को सुलोचना के लिए सर्वथा योग्य बता देता है।[2]

राजनीतिज्ञ और चित्रज्ञ—

जयकुमार एक श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ भी हैं। इनकी सभा शरत्कालीन राजहंस के परिवार के समान है, जिसमें विद्वान् और सहृदय सभासद् बैठते हैं। उस सभा में प्रजा का हित चाहने वाले मंत्री, कुशल पुरोहित और कार्य में तत्पर दूत हैं। जयकुमार के गुणों का प्रसार करने वाले चारण भी हैं। एक योग्य राजा के समान जयकुमार सभा में आये हुये काशीनरेश के दूत का स्वागत करते हैं। युद्ध में अर्ककीर्ति को पराजित करने के बाद जब यह सुलोचना से विवाह कर लेते हैं, तब यह भरत चक्रवर्ती के पास अयोध्या जाकर अपने अपराधहेतु क्षमायाचना भी करते हैं।[3]

भ्रमणशील—

जयकुमार को घूमने का बहुत शौक है। यह आये दिन वन-उपवन में विहार करने जाते रहते हैं। विवाह के पश्चात् अपने साथियों सहित गंगा नदी के तट पर पड़ाव डाल देते हैं। यहाँ पर इनके साथी वन-क्रीडा करते हैं।[4] जब सुलोचना और जयकुमार को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो जाता है, तब जयकुमार सुलोचना के साथ तीर्थाटन को निकल पड़ते हैं। सुमेरु, उदयाचल और हिमालय पर्वत पर भ्रमण करते हैं।[5]

---

१. जयोदय, १।३-६३
२. वही, ३।६७
३. वही, २०।१-३१
४. वही, त्रयोदश एवं चतुर्दश सर्ग।
५. वही, ३४।१-५७

इस प्रकार हम देखते हैं कि जयकुमार में यशस्विता, सत्यप्रियता, भक्ति, सुन्दरता, अपराजेयता आदि सभी श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं।

सुलोचना—

यह काशी के राजा अकम्पन की पुत्री है। इसकी माता का नाम सुप्रभा है। यह 'जयोदय' काव्य के नायक जयकुमार की पत्नी और काव्य की नायिका है। इसकी छोटी बहिन का नाम अक्षमाला है।

सौन्दर्यशालिनी—

सुलोचना लावण्य की निधि है। इसका अंग-प्रत्यंग सुन्दर है। नित्य नवीन सौन्दर्य को धारण करने वाली सुलोचना चन्द्रलेखा के समान सबको प्रसन्न करने वाली है। इसने कुमारावस्था को छोड़कर युवावस्था में प्रवेश कर लिया है। इसके हाथ कमल के समान हैं। चन्द्रमा इसके मुख की कान्ति की कुछ ही समता धारण करता है। काजल से युक्त इसकी आँखें लोगों के हृदय को अनायास ही आकर्षित कर लेती हैं। इसकी भौंहें कामदेव की धनुर्लता के समान हैं। इसका अधरोष्ठ बिम्ब फल के समान रक्तवर्ण वाला है। इसकी चोटी नागिन के समान लहराती हुई काले बालों वाली है। मध्यदेश में रसकूपिका के समान नाभि सुशोभित है। विधाता ने मानों नाभिरूपी बावड़ी को खरीदने के लिए ही रोमराजिरूपी कुदाली का निर्माण किया है। इसका शरीर सुवर्ण के समान कान्तियुक्त है। इसकी जंघायें गोल और रोमों से रहित हैं। उदर पर त्रिवलि सुशोभित है।[1] इसके नेत्र मछली के समान चंचल हैं। इसके स्तन कालागुरु के लेपन से युक्त एवं पुष्ट हैं। इसके चरण-कमलों की कान्ति लाल है। इस मृगनयनी का सौन्दर्य रम्भा को भी पराजित करने वाला है। इस विशाल नितम्बों वाली सुलोचना की त्रिवली में सरस्वती, लक्ष्मी और सती की शोभा विद्यमान है।[2]

चतुर और गुणग्राहिका—

स्वयंवर-मण्डप में अनेक राजा बैठे हैं। विद्यादेवी सुलोचना को प्रत्येक राजा का परिचय देती जाती है। विद्यादेवी के परिचय में कैसी व्यंजना है? इसे यह अच्छी तरह समझ जाती है। सब राजाओं को छोड़कर जब सुलोचना जयकुमार के पास पहुँचती है, तब विद्यादेवी जयकुमार का विस्तृत प्रशंसात्मक परिचय देती है। जयकुमार के गुणों से प्रभावित होकर यह जयकुमार के गले में जयमाला डालकर अन्य राजाओं को निराश कर देती है।[3]

---

१. जयोदय, ३।३७-६२
२. वही, ११वाँ सर्ग।
३. वही, ६।५-१२७

वीर और पतिव्रता—

आर्यललनाओं के समान सुलोचना पतिव्रता स्त्री है। अपने गुणों से इसने जयकुमार को अपने वश में कर लिया है। जब चक्रवर्ती भरत के पास से लौटकर पुनः जयकुमार गंगानदी के तट पर पहुँचते हैं, तब एक देव मकर का रूप धारण करके जयकुमार के हाथी पर आक्रमण करना चाहता है। इस समय जयकुमार को विपत्ति में देखकर यह 'नमोंकार' मन्त्र का जाप करती है; और अपने सतीत्व के प्रभाव से जयकुमार की रक्षा करती है।[1] तीर्थाटन के समय पर्वत की शोभा देखते हुए सुलोचना पति से अलग हो जाती है। इसी समय एक देवी विरहिणी स्त्री के रूप में जयकुमार के पास आती है। जयकुमार जब उसके संग की प्रार्थना को ठुकरा देते हैं, तब वह उनको लेकर भागती है। उस समय भी सुलोचना किंकर्त्तव्यविमूढ़ न होकर उस देवी को फटकारती है। फलस्वरूप वह देवी जयकुमार को छोड़कर चली जाती है।[2]

इस प्रकार सुलोचना में शील, स्वाभिमान, धैर्य, पतिभक्ति आदि सभी श्रेष्ठ गुण मिलते हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण यह अपने पति को प्रसन्न करने में समर्थ है।

अर्ककीर्ति—

यह चक्रवर्ती भरत का पुत्र है। यद्यपि काव्य के नायक जयकुमार इसके पिता के ही सेनापति हैं, किन्तु प्रेम के क्षेत्र में यह उनका प्रतिद्वन्द्वी है।

ईर्ष्यालु—

सुलोचना स्वयंवर में अन्य राजाओं के समान ही अर्ककीर्ति को भी निराश होना पड़ता है। अर्ककीर्ति का एक सेवक दुर्मर्षण जयकुमार के उत्कर्ष को सहने में असमर्थ होकर अपने स्वामी को जयकुमार और राजा अकम्पन के विरुद्ध भड़काता है। तब यह सेवक के कहे वचनों को बिना विचारे मान लेता है; और काशीराज को मारकर उनकी पुत्री सुलोचना को लाने का आदेश दे देता है।[3] इस समय इसको जयकुमार के सेनापतित्व से भी ईर्ष्या हो जाती है।

अविनीत—

काशीराज एवं जयकुमार के विरुद्ध एवं निराशा और क्रोध से युक्त वचन सुनकर इसका अनवद्यमति नाम का मंत्री इसे समझाता है और काशी और जयकुमार से भरत चक्रवर्ती के स्नेह-सम्बन्धों की बात पर विचार करने का उपदेश

---

१. जयोदय, २०।४८-६५
२. वही, २४।१०५-१४६
३. वही, ७।२२

देता है। किन्तु अर्ककीर्ति क्रोधाविष्ट होकर मंत्री के उपदेश से जरा भी प्रभावित नहीं होता।[1]

आत्मविश्वास में कमी—

अर्ककीर्ति का अपनी ही बुद्धि पर अविश्वास है। स्वयंवर में पराजित होकर वह स्वयं जयकुमार से वैर नहीं ठानता। किन्तु अपने सेवक के उत्तेजित करने पर ही इसे जयकुमार के प्रति क्रोध आ जाता है।[2]

दम्भी एवं मदोन्मत्त—

अर्ककीर्ति की इच्छा का समाचार काशीराज अकम्पन के पास भी पहुँचता है। तब वह अपना एक दूत इसको शान्त करने के लिए भेजते हैं। पर यह टस से मस नहीं होता और जयकुमार से युद्ध की तैयारी करने लगता है। फलस्वरूप इसका जयकुमार से घोर युद्ध होता है। युद्धवीर जयकुमार के समक्ष इसका गर्व चूर हो जाता है और जयकुमार इसको बन्दी बना लेते हैं।[3] इसे अपने चक्रवर्ती के पुत्र होने का गर्व है।

देशकाल के ज्ञान एवं स्वाभिमान से रहित—

जयकुमार अर्ककीर्ति के पिता के सेनापति हैं, अतएव उनके शौर्य में कोई संदेह नहीं होना चाहिए। इतना जानते हुए भी यह उनसे युद्ध करने को तैयार हो जाता है। मदोन्मत्त अर्ककीर्ति समझता है कि सुलोचना का विवाह उसी से होना चाहिए था, अतः देशकाल का विचार किये बिना ही विवाह के मांगलिक अवसर पर बाधा उपस्थित कर देता है।[4] इसके मन में स्वाभिमान का पूर्णरूपेण अभाव है। पराजित एवं अपमानित होने के बाद भी यह काशीराज अकम्पन की दूसरी पुत्री अक्षमाला से विवाह करने को तैयार हो जाता है।[5]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यद्यपि अर्ककीर्ति भरतचक्रवर्ती का पुत्र है, तथापि दम्भ, मदोन्मत्तता, क्रोध, वैर, ईर्ष्या, अविश्वास इत्यादि इसमें प्रचुर मात्रा में हैं। अपने इन दुर्गुणों के कारण ही यह प्रेम के क्षेत्र में तो पराजित होता ही है, युद्धक्षेत्र में भी पराजय ही प्राप्त करता है। इसकी इन विशिष्टताओं को देखकर इसे काव्य का खलनायक कहा जा सकता है।[6]

---

१. जयोदय, ७।३२-४४
२. वही; ७।१-७
३. वही, ७।५५-११५, ८।१-८४
४. वही, ७।४५-४६
५. वही, ६।१६
६. 'लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः।'
—दशरूपक, २।६ का उत्तरार्ध।

राजा अकम्पन—

राजा अकम्पन भरत चक्रवर्ती के अधीनस्थ राजा हैं। यह काशी नगरी पर शासन करते हैं। इनकी पत्नी का नाम सुप्रभा है। हेमांगद इत्यादि इनके एक हजार वीर पुत्र हैं। सुलोचना और अक्षमाला इनकी दो पुत्रियाँ हैं। यह राजनीतिज्ञ हैं।

भीरु—

इनके स्वभाव में किंचित् भीरुता भी है। स्वयंवर में सुलोचना जयकुमार का वरण करती है और पराजित अर्ककीर्ति क्रुद्ध हो जाता है। तब चक्रवर्ती के पुत्र के क्रोध को देखकर यह घबड़ा जाते हैं। अपनी पुत्री के सौभाग्य और चक्रवर्ती के पुत्र के क्रोध के बीच यह अत्यन्त किंकर्तव्यविमूढ़ता का अनुभव करते हैं।[1] चक्रवर्ती की कोप-भाजनता से बचने के लिए अपनी दूसरी पुत्री अक्षमाला का विवाह अर्ककीर्ति से कर देते हैं।[2]

योग्य सामन्त एवं जिम्मेदार अभिभावक—

राजा अकम्पन एक योग्य सामन्त हैं। वह अपने राज्य की प्रत्येक घटना भरत चक्रवर्ती के पास भेजते रहते हैं। अर्ककीर्ति के विवाह का समाचार भी यह उनके पास भेज देते है।[3] इससे सम्राट् के प्रति इनकी विनम्रता का ज्ञान हो जाता है।

प्रत्येक सुयोग्य अभिभावक के समान राजा अकम्पन भी अपनी पुत्रियों के विवाह के प्रति चिन्तित हैं। सुलोचना का विवाह वह स्वयंवर-विधि से सम्पन्न करते हैं,[4] और अक्षमाला का विवाह अर्ककीर्ति को योग्य समझकर उसके साथ कर देते हैं।[5]

दया, ममता, स्नेह से युक्त राजा अकम्पन वास्तव में स्तुत्य हैं।

वीरोदय के पात्र—

भगवान् महावीर—

भगवान् महावीर के लोकविश्रुत चरित्र को आज न केवल जैनधर्मानुयायी जानते हैं, अपितु भारत का प्रायः प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक जानता है। भगवान् महावीर जैनधर्म के २४वें तीर्थङ्कर हैं। कुण्डनपुर के शासक राजा सिद्धार्थ की पटरानी प्रियकारिणी के गर्भ से आपका जन्म चैत्रमास की शुक्ल-पक्ष की त्रयोदशी

---

१. जयोदय, ७।५५
२. वही, ६।१६
३. वही, ६।६२
४. वही, सर्ग ३, सर्ग ७
५. वही, ६।३, १६

को हुआ था। भगवान् महावीर लोकनायक तो हैं ही, साथ ही 'वीरोदय' महाकाव्य के नायक भी हैं।[1] काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भगवान् को धीरशान्त श्रेणी में रखा जा सकता है।[2]

प्रभावशाली व्यक्तित्व—

भगवान् महावीर अद्‌भुत व्यक्तित्व के स्वामी हैं। अभी उनका गर्भावतरण ही हुआ है कि सारी पृथ्वी हरी-भरी हो गई है। महापुरुषों के जन्म से पहले उन्हें जन्म देने वाली माताएं कुछ दिव्य स्वप्न देखती हैं, ऐसे ही सोलह स्वप्नों को महावीर की माता प्रियकारिणी ने देखा था।[3] यह भगवान् का ही प्रभाव है कि उनके गर्भावतरण के पश्चात् उनकी माता की सेवा के लिए इन्द्र ने श्री, ह्री आदि देवियों को भेज दिया।[4] देवराट् इन्द्र भगवान् के जन्म पर उनके अभिनन्दन के लिए, अन्य देवगणों के साथ भगवान् की जन्मभूमि कुण्डनपुर पहुँच जाते हैं और सुमेरु पर्वत पर ले जाकर भगवान् का अभिषेक करते हैं।[5] भगवान् के बढ़ते हुए सौन्दर्य को देखकर ही उनके पिता ने उनका नाम 'श्रीवर्धमान' रख दिया।[6] उनका शरीर पूर्ण स्वस्थ था। युवावस्था की ओर बढ़ते हुए भगवान् महावीर में हमें दृढ़ता, त्याग और संयम की त्रिवेणी देखने को मिलती है। वह पिता द्वारा किए गए विवाह के प्रस्ताव को दृढ़ता से अस्वीकृत कर देते हैं।[7] कौन सा युवक होगा, जो विवाह से अपने को विमुख रख सके? पर महावीर तो त्याग और संयम की मूर्ति हैं। उनके पिता राजा सिद्धार्थ को भी उनके इस दृढ़ निश्चय के आगे झुकना ही पड़ता है।[8] उनसे द्वेष रखने वाला गौतम इन्द्रभूति भी अपने को उनके चरणों में समर्पित कर देता है।[9] यह नहीं, उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर न जाने जितने लोग जैन-मतावलम्बी बन जाते हैं।

---

१. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥
—दशरूपक, २।१-२

२. वही, २।४
३. वीरोदय, २।२७, ३४-६१
४. वही ५।१-८
५. वही, ७।६-३८
६. वही, ८।६
७. वही, ८।२२-४५
८. वही, ८।४६
९. वही, १३।३२

वैराग्य भावना—

राजकुमार होते हुए भी भगवान महावीर में त्याग और वैराग्य वैसे ही विद्यमान हैं जैसे वस्त्र में तन्तु। युवक महावीर के समक्ष एक ओर पिता द्वारा प्रस्तुत विवाह का प्रस्ताव है और दूसरी ओर सांसारिक प्राणियों के दुःख से उत्पन्न वैराग्य का आगमन है। ऐसी स्थिति में भगवान् किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होते। वह स्थिरहृदय से भोग का मार्ग छोड़ कर त्याग और वैराग्य का मार्ग चुन लेते हैं।[1] प्राणियों में शान्ति के अभाव और समाज में वर्गवाद तथा विषमता के साम्राज्य ने उन्हें त्याग की ओर अग्रसर कर दिया। संयम का अवलम्बन लेकर भगवान् ने समस्त सांसारिक सुखों को तिलांजलि दे ही दी।[2]

तर्कणा और चिन्तनशीलता—

भगवान् महावीर अपने पिता के विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव को ठुकराते समय अद्भुत तर्कणाशक्ति का परिचय देते हैं। स्त्री को वह सबसे बड़ा बन्धन मानते हैं, उनकी शक्ति से उनके पिता भी प्रभावित होते हैं।[3] चिन्तनशील तो इतने हैं कि संसार की दुःखमयी दशा को देखकर उसके दुःख को कम करने के अतिरिक्त फिर अन्य किसी वस्तु के बारे में नहीं सोचते। चिन्तन करते-करते अपने पूर्वजन्म का भी उन्हें ज्ञान हो जाता है। तब अपने पूर्वजन्म में किए गए दुष्कृत्यों से उत्पन्न पाप को दूर करने के लिए वह आत्मशुद्धि की ओर अग्रसर हो जाते हैं।[4]

निष्कपट व्यवहार और नम्रता—

भगवान् में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध इत्यादि दुर्गुणों का लेशमात्र भी नहीं है। उन्होंने अपनी नम्रता और विवेकशीलता से ही सबको जीत लिया है। उनके साथ कोई भी कैसा ही व्यवहार क्यों न करे, पर उनका आचरण सबके प्रति निष्कपट ही रहता है। गौतम इन्द्रभूति जो उनसे द्वेष रखता है, उसके साथ भी वह नम्रता का व्यवहार करते हैं। प्रतिशोध की भावना का उनके मन में कोई स्थान नहीं है।[5]

तपस्वी—

भगवान् के आत्मचिन्तन से अपने पूर्वजन्म में किए गए अच्छे बुरे कार्यों का जब ज्ञान होता है, तब आत्मशुद्धि के उपायरूप में उग्रतपश्चरण करते हैं। उन्हें अपने शरीर से जरा भी ममता नहीं है। सभी प्रकार के प्राकृतिक परिवर्तनों को

---

१. वीरोदय, ८।२९-४५
२. वही, ९।१-१७, १०।१-२६
३. वही, ८।३०, ४६
४. वही, १०।३८, ११।१-४४
५. वही, १३।२५-२९

वह सहते रहे। शीत में सिहरन, वर्षा में जलधारा और ग्रीष्म का संताप, उनका कुछ न विगाड़ सके। उन्होंने भूख-प्यास पर भी विजय प्राप्त कर ली। अन्त में वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को उन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया और उनका अन्तःकरण पूर्णरूपेण निर्मल हो गया।[1]

परोपकारी—

भगवान् ने जो उग्रतपश्चरण किया, उनमें कोई स्वार्थ निहित न था। सांसारिक प्राणियों के दुःख ने ही उन्हें वैराग्य की ओर अग्रसर किया था। जिस प्रकार एक अच्छा चिकित्सक रोगियों की उचित चिकित्सा के लिए स्वयं प्रशिक्षण ग्रहण करता है, उसी प्रकार जनता को प्रबुद्ध करने के लिए भगवान् ने आत्मशुद्धि की, और फिर जनता की सेवा में लग गए।[2]

जैन धर्म के व्याख्याता—

भगवान् में अद्भुत व्याख्यानशक्ति है। उन्होंने अपने व्याख्यानों द्वारा जनता को ऋषभदेव के जैनधर्म के सम्पूर्ण सार-तत्व से परिचित कराया। उनकी अद्भुत व्याख्यान शक्ति से प्रभावित होकर ही गौतम इन्द्रभूति इत्यादि गणधर उनके वशवर्ती हो गए। अपनी व्याख्यान-शक्ति के कारण वह आराजरंक सभी के वन्द्य बन गए थे।[3]

सांसारिक प्राणियों के दुःख से दुःखी, त्रिकालज्ञ, भक्तवत्सल, अहिंसाधर्म के उपदेशक, भगवान् महावीर वास्तव में हम सबके लिए पूज्य हैं।[4]

राजा सिद्धार्थ—

राजा सिद्धार्थ विदेह देश में अवस्थित कुण्डनपुर नगर के शासक हैं। उनमें सौन्दर्य, धैर्य, दानशीलता, प्रजावत्सलता, स्वास्थ्य, पराक्रम, यश, सम्पत्ति इत्यादि गुण विद्यमान हैं। वह श्रेष्ठ धनुर्धर हैं। पुरुषार्थ-चतुष्टय के ज्ञाता हैं। वर्णाश्रम-व्यवस्था का सम्यक् प्रबन्ध करने में रुचि रखते हैं। सम्पूर्ण विद्याओं से सम्पन्न हैं एवं राजनीतिज्ञ भी हैं।[4] उनमें ज्ञानचक्षु प्रबुद्ध है। रानी प्रियकारिणी की स्वप्नावली का अर्थ बताने में उन्हें किसी की सहायता उपेक्षित नहीं है। शत्रुओं का संहार करने वाले वह राजा अपनी रानी प्रियकारिणी से अत्यधिक प्रेम करते हैं, और उसकी सुरक्षा हेतु प्रयत्न भी करते हैं।[5]

---

१. वीरोदय, १२।२२-४०
२. वही, ६।१-१७, १०।२-२१
३. वही, ६३।२४, ३३-३८
४. वही, ३।१-१४
५. वही, ४।३७-६२

ऐसे ही योग्य शासक को, भगवान् महावीर ने उनके घर में जन्म लेकर पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त कराया है। भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करके सिद्धार्थ अधिक हर्षित होते हैं। उनका लालन-पालन बड़े चाव से करते हैं। अपने पुत्र की हर इच्छा पूरी करने में सचेष्ट रहते हैं। उत्तरदायी पिता की तरह युवावस्था आने पर पुत्र का विवाह भी करना चाहते हैं। किन्तु पुत्र की वैराग्य भावना को देखकर, उसके ज्ञान और उसके प्रति अतिशय स्नेह के कारण उससे पुनः पुनः गृहस्थ जीवन बिताने हेतु हठ भी नहीं करते।[1] अतः राजा सिद्धार्थ ज्ञान, संतोष, धर्मशीलता इत्यादि गुणों के समूहरूप हैं।

प्रियकारिणी—

यह राजा सिद्धार्थ की पट्टमहिषी हैं। इन्हें महावीर की माता होने का सौभाग्य प्राप्त है। यह सौन्दर्य और प्रभावशाली व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं। यह रानी अपने मधुर व्यवहार से सबको आकर्षित करने वाली हैं। सभी याचकों की कामना पूर्ण करने वाली हैं। इनका मुख चन्द्र के समान सुन्दर है। इनके शरीर के अंग श्रेष्ठ उपमानों के उपमेय हैं। इनके नेत्र चंचल और करतल मूंगे के समान लाल हैं। यह सुन्दर चेष्टाओं और सौन्दर्य से राजा सिद्धार्थ के मन को जीतने में पूर्ण समर्थ हैं। इनकी भुजलताओं में कमलनाल की सी कोमलता है, बाल अत्यन्त घने हैं, गला शंख के समान है, जंघायें पुष्ट और सुन्दर हैं, तथा स्तनद्वय पर्याप्त समुन्नत हैं। इनमें विद्या और बुद्धि दोनों विद्यमान हैं। विनम्रता, सरलता, निर्मलता, दूरदर्शिता इत्यादि गुण इनमें अतिशयता से विद्यमान हैं।[2] यह जैनधर्ममतावलम्बिनी हैं। साथ ही यह जैन-धर्म के नियमों और पालनीय कर्तव्यों को अच्छी तरह जानती भी हैं। अपनी सेवा के लिए आई हुई देवियों के साथ यह मधुर व्यवहार करती हैं। उन्हें समय-समय पर जैन-धर्म का उपदेश भी देती हैं।[3] इनके गुणों से आकृष्ट देवियाँ इनकी सेवा बड़ी तत्परता से करती हैं।[4]

यह पतिव्रताओं में अग्रगण्य हैं। अपने मन की कोई बात पति से नहीं छिपाती हैं। यह पति को प्रसन्न करना भी जानती हैं। रात्रि में देखे गए सोलह-स्वप्नों को यह प्रातःकाल होते ही अपने पति को बता देती हैं।[5] भगवान् को पुत्र रूप में पाकर यह अपने को धन्य समझती हैं।[6] इस प्रकार यह श्रेष्ठ स्त्रियों में अपने गुणों से मूर्धन्य हैं।

---

१. वीरोदय, ८।२२-४६
२. वही, ३।१५-३६
३. वही, ५।२१-३४
४. वही, ५।६-१८, ३५-४२
५. वही, ४।२७-३६
६. वही, ४।६२, ६।४०

श्री, ह्री देवियाँ —

भगवान् महावीर के गर्भावतरण के पश्चात् देवराट् इन्द्र की आज्ञा से श्री, ह्री इत्यादि देवियाँ माता प्रियकारिणी की सेवा हेतु आती हैं। राजा की अनुमति पाते ही रानी की सेवा में जुट जाती हैं। यह देवियाँ भगवान् महावीर के प्रति हृदय में भक्ति को धारण करती हैं। अपने आराध्य देव की माता की सेवा करके वे अपने को धन्य समझती हैं। माता के साथ-साथ ही भगवान् की पूजा भी कर लेती हैं।[1]

ये अत्यन्त आज्ञाकारिणी हैं। रानी प्रियकारिणी की प्रत्येक आज्ञा शिर झुका कर स्वीकार कर लेती हैं, और पुनः नवीन आज्ञा की प्रतीक्षा करती हैं। वे रानी की सेवा निष्काम भाव से करती हैं। उन्हें सेवा के बदले में कोई पारिश्रमिक नहीं लेना है। बस, उनका काम तो इन्द्र की आज्ञा को पूरा करना है।[2]

ये सभी देवियाँ अत्यन्त कार्यकुशल हैं। रानी को स्नान कराने, उसकी साज सज्जा करने, उसे सुस्वादु भोजन कराने, गीत-नृत्य-वाद्यादि से उसका मनोरञ्जन करने, उसे भ्रमण कराने, उसके साथ धर्मवार्ता करने इत्यादि सभी कार्यों में पारंगत हैं। व्यवहारकुशलता भी इनका गुण है। ये रानी से अत्यन्त मधुर और विनम्र व्यवहार करती हैं। उसको कभी अकेला नहीं छोड़ती। उसकी सेवा में अहमहमिकया भाग लेती हैं। रानी की इच्छाओं में कोई बाधा उपस्थित नहीं करतीं।[3]

अपने सुन्दर व्यवहार से शीघ्र ही ये देवियाँ माता को अनुकूल करने में सफल हो गयीं, और उसके हृदय में इन्होंने अपने लिए स्थान भी बना लिया।

सुदर्शनोदय के पात्र :—

सुदर्शन—

सुदर्शन वैश्यकुलभूषण है। उसके पिता नगर के प्रतिष्ठित सेठ हैं। उसकी माता जिनमति वास्तव में ही जिनमति भगवान् के प्रति बुद्धि रखने वाली है।[4] अधिक सौन्दर्यशाली होने के कारण ही पिता ने उनका नाम सुदर्शन रखा है।[5]

---

१. वीरोदय, ५।४, ६, १६
२. वही, ५।५, ७
३ वही, ५।८-१६, २५, २६, ३३-४२
४. सुदर्शनोदय, २।४
५. 'सुतदर्शनतः पुराऽसको जिनदेवस्य ययौ सुदर्शनम्।
इति चकार तस्य सुन्दरं सुतरां नाम तदा सुदर्शनम्॥'
वही, ३।१५

उसने अपनी बालक्रीड़ाओं से अपने माता पिता एवं परिजनों को मोह लिया है।[1] उसमें महापुरुषों के लक्षण हैं। इसी कारण उसकी माता उसके जन्म के पूर्व उसकी धीरता, दानवीरता; सद्गुणसम्पन्नता, देवप्रियता, मुमुक्षता आदि गुणों को सूचित करने वाले सुमेरु पर्वत, कल्पवृक्ष, रत्नाकर, निर्धूम अग्नि और आकाशचारी विमान को स्वप्न में देखती हैं।[2]

सुदर्शनोदय महाकाव्य का नायक—

सुदर्शन 'सुदर्शनोदय' महाकाव्य की कथा का केन्द्र होने के कारण इस काव्य का नायक है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उसे धीरप्रशान्त नायक की कोटि में रखा जा सकता है।[3]

अद्भुत ग्रहण शक्ति—

सुदर्शनोदय में किसी वस्तु को ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता है। कुमारावस्था में विद्याप्राप्ति के लिए उसे गुरुजनों के पास भेजा गया। शीघ्र ही उसने सभी विद्याओं को ग्रहण कर लिया। सरस्वती देवी उसकी वशवर्तिनी हो गई।[4]

आदर्श प्रेमी और पति—

जिन मन्दिर में पूजन के लिए गया हुआ सुदर्शन, सेठ सागरदत्त की पुत्री मनोरमा के प्रति आकर्षित हो जाता है। बाद में सुदर्शन एवं मनोरमा का विवाह भी हो जाता है,[5] किन्तु सुदर्शन ऐसा अनुकूल नायक है[6] कि मनोरमा के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता। साधारण स्त्रियों की तो बात ही क्या, रानी अभयावती के आमन्त्रण को भी वह ठुकरा देता है।[7] स्पष्ट है कि पूर्वजन्म के समान ही इस जन्म में भी वह मनोरमा से सच्चा प्रेम करता है।

वैराग्यभावना—

जैसे ही सुदर्शन के पिता एक ऋषिराज से दीक्षा लेकर मुनि बन जाते हैं,

---

१. सुदर्शनोदय, ३।२०-२७
२. वही, २।११-१८, ३९-४०
३. सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः।
—दशरूपक: २।चतुर्थ का उत्तरार्ध।
४. सुदर्शनोदय, ३।३१
५. वही, ३।३४, ४८
६. 'अनुकूलस्त्वेकनायिकः।'
—दशरूपक, २।७वीं कारिका के उत्तरार्ध का अन्तिम चरण।
७. सुदर्शनोदय, ७।२९

वैसे ही उसके मन में भी विरक्ति उत्पन्न हो जाती है।[1] वह भी उन मुनि से अपने हृदय की दुर्बलता का निवेदन करता है।[2] कपिल ब्राह्मणी, रानी अभयमती और देवदत्ता वैश्या के कुत्सित आचरण से उसके मन में उत्पन्न हुआ वैराग्य का बीज अंकुर का रूप धारण कर लेता है।[3] अन्त में अपनी पत्नी के सहयोग और सहमति से वैराग्य का अंकुर वृक्ष का रूप धारण कर लेता है।[4] अपने सत्प्रयत्न से बाद में वह कैवल्य लाभ भी कर लेता है।[5]

ऋषि-भक्ति एवं सेवा भावना—

अपने पिता के ही समान सुदर्शन के हृदय में भी समाज के उद्धारक ऋषियों प्रति भक्ति-भावना है। सेठ वृषभदास को दीक्षा देने वाले ऋषि के प्रति तो वह नतमस्तक हो ही जाता है, साथ ही उनके समझाने पर आदर्श-गृहस्थ धर्म का पालन भी करता है।[6] वैराग्य उत्पन्न हो जाने पर वह जिनमन्दिर के एक मुनिराज से दीक्षा लेकर दिगम्बर मुनि बन जाता है।[7] उसके मन में ऋषि मुनियों के प्रति भक्तिभावना इस जन्म से नहीं, अपितु पूर्वजन्म से ही विद्यमान है। पूर्वजन्म में भी उसने एक ऋषि की निष्काम भाव से सेवा की थी।[8]

जैन धर्म के प्रति आस्थावान्—

सुदर्शन की जैनधर्म और जिनेन्द्रदेव पर अत्यधिक श्रद्धा है। समय-समय पर वह जिनमन्दिरों में जाकर अपने भक्तिभावना से ओतप्रोत गीतों से भगवान् को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहता है।[9] मुनियों द्वारा व्याख्यात जैनधर्म के उपदेशों का भी उस पर खूब प्रभाव पड़ता है। अन्त में स्वयं जैनधर्म का महान् ज्ञाता बन जाता है और जनता को धर्माचरण-हेतु प्रेरित भी करता है।[10]

त्यागी—

सुदर्शन के पास भोग के साधनों की कोई कमी नहीं है। उसके रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर कपिला, अभयमती और देवदत्ता उसे आमन्त्रित करती हैं।

---

१. सुदर्शनोदय, ४।१५
२. वही, ४।१५
३. वही, ५।२०, ७।२१-२६
४. वही, ८।२३-३२
५. वही, ६।८५-८६
६. वही, ४।४७
७. वही, ८।३२
८. वही, ४।३२-३५
९. वही, पञ्चम सर्ग के प्रारम्भ के गीत।
१०. वही, ६।१-१०, ३३-७३

किन्तु वह युक्तिपूर्वक तीनों स्त्रियों को ठुकरा देता है, वासना का कोई भी कण उसे छूने में असमर्थ है।[1] सुदर्शन के प्रभावशाली व्यक्तित्व से आश्चर्यचकित राजा धात्रीवाहन उसे अपना राज्य तक देने को तैयार हो जाता है, किन्तु वह उसे ग्रहण नहीं करता। अन्त में अपना घर भी छोड़ देता है।[2] वास्तव में उसका त्याग सराहनीय है।

संगीत-प्रिय—

सुदर्शन में साहित्य, संगीत और भक्ति का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। वह जिनदेव का भक्त है। जिनदेव का पूजन करते समय वह जिन भजनों को गाता है, उनमें अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग करता है। उसे प्रभातकालीन राग रसिक राग, काफी होलिकाराग, श्यामकल्याण आदि शास्त्रीय रागों का ज्ञान है। उसके द्वारा प्रस्तुत एक भजन में उसकी साहित्यप्रियता, संगीतप्रियता और भक्तिभावना का दर्शन कीजिये—

"कदा समयः स समायादिह जिनपूजायाः ॥
कञ्चनकलशे निर्मलजलमधिकृत्य मञ्जुगङ्गायाः।
वारांधाराविसर्जनेन तु पदयोर्जिनमुद्रायाः
लयोऽस्तु कलङ्ककलायाः।।"

—'सुदर्शनोदय'-५। काफी होलिकाराग-गीत की प्रथम पंक्तियाँ।

चारित्रिक दृढ़ता—

सुदर्शन में पाठक को प्रभावित करने वाला गुण है—उसकी चारित्रिक दृढ़ता। मनोरमा से विवाह हो जाने के पश्चात्, कपिला, अभयमती और देवदत्ता ने पृथक्-पृथक् उसे डिगाने की कोशिश की, किन्तु वह पर्वतराज हिमालय की तरह अचल रहा। उसकी दृढ़ता के सामने तीनों कुलटाओं के प्रयत्न निष्फल हो गये।[3] कल्पना कीजिये कि स्त्रियों के इन कुचक्रों से पुरुष अप्रभावित कैसे रह सकता है? यह तो सुदर्शन जैसे दृढ़ व्यक्तित्व से ही सम्भव है। वह कपिला को युक्ति से, अभयमती को मौन से और देवदत्ता वेश्या को धार्मिक वचनों से पराजित करके अपनी स्तुत्य सहनशीलता का परिचय देता है।

विनम्र एवं सरल—

सुदर्शन में एक ओर हिमालय की सी दृढ़ता है तो दूसरी ओर फलों के भार से नत वृक्षों के समान विनम्रता भी। कपिला की दासी के वचनों पर वह शीघ्र

---

१. सुदर्शनोदय, ५।४७, ७।२९, ९।३०
२. वही, ८।१२-२८
३. वही, ५।४७, ७।३०, ९।३०

ही विश्वास करके उसके घर चल पड़ता है। स्त्रियों के दुराचरण के प्रतिशोध की भावना उसके मन में नहीं आती। वह इतना लज्जाशील है कि अपने और मनोरमा के प्रेम का निवेदन स्वयं अपने माता-पिता के समक्ष नहीं कर पाता। मित्रों के माध्यम से ही उसके पिता उसकी मनोदशा जान पाते हैं।[1] राजा धात्री-वाहन जब अपनी रानी के झूठे प्रपञ्च पर विश्वास करके उसको दण्डित करना चाहते हैं, तब भी वह विनम्र होकर अपने मौन से उनकी आज्ञा स्वीकार कर लेता है।[2]

अतएव सुदर्शन मधुर व्यवहार वाला, लोकप्रिय, नवयुवावस्था में विद्यमान, तेजस्वी, परमधार्मिक एवं पवित्र आचरण करने वाला है।

मनोरमा—

यह चम्पापुर में निवास करने वाले सागरदत्त नामक सेठ की पुत्री है और 'सुदर्शन' काव्य के नायक सुदर्शन की पत्नी है। अतः यह इस काव्य की नायिका है। काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से इसे स्वीय नायिका की श्रेणी में रखा जा सकता है।[3]

सौन्दर्यशालिनी—

मनोरमा का सौन्दर्य नगर में प्रसिद्ध है। उसके इसी सौन्दर्य पर सुदर्शन मुग्ध हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है। सुदर्शन के पूर्वजन्म की कथा बताने वाले ऋषिराज भी उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं।[4] उसके सौन्दर्य और सौभाग्य का वर्णन रानी अभयमती भी करती है।[5] कपिला भी उसके सौन्दर्य की ओर आकृष्ट है।[6]

पतिव्रता—

मनोरमा सुदर्शन को प्रथम दर्शन से ही प्रेम करने लगती है। मित्रों से समाचार जानकर जब वृषभदत्त मनोरमा और सुदर्शन का विवाह कर देते हैं, तब तो मनोरमा पूर्णरूपेण ही उसकी हो जाती है। उसके पातिव्रत्य में उसका पूर्वजन्म

---

१. सुदर्शनोदय, ३।४२
२. वही, ७।३६, ८।४-८
३. 'नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता ॥
विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्म्मणा पतिव्रता स्वीया।
—साहित्यदर्पण, ३।६८-६९
४. देवीयं ते महाभाग समा समतिलोत्तमा।'
—सुदर्शनोदय, ४।३८ का उत्तरार्ध।
५. वही, ६।५
६. वही, ६।४

का संस्कार भी सहायक है। वह पूर्वजन्म में भी, जब सुदर्शन भील था, उसकी पत्नी थी।[1] यह उसके पातिव्रत्य का ही प्रभाव है कि सुदर्शन अन्य किसी स्त्री पर आसक्त नहीं होता। जब सुदर्शन उसके समक्ष मोक्षानुगामी होने की इच्छा प्रकट करता है, तो वह भी उसी मार्ग का अनुसरण करती है और आर्यिका बनने का निश्चय कर लेती है।[2] वह सर्वथा पति के अनुकूल रहती है और उसकी इच्छाओं का आदर करती है।

वैराग्यभावना से युक्त—

सत्पथगामिनी मनोरमा ने पूर्वजन्म में एक बार एक धोबी की पुत्री के रूप में जन्म लिया था। इस जन्म में आर्यिका-संघ की संगति में वह क्षुल्लिका हो गई और उच्चकुलीन स्त्रियों के ही समान पूज्या हो गई। अत्यावश्यक वस्त्र और पात्रों के अतिरिक्त उसने अन्य सभी वस्तुओं का परित्याग कर दिया। अनेक गुणों से सम्पन्न वह उपवास इत्यादि भी रखती थी, और हिंसा से सर्वथा दूर थी।[3] इस जन्म में भी मनोरमा वैसी ही निर्मल अन्तःकरणवाली है। पूर्वजन्मों के संस्कारवश पति के वैराग्य धारण करते ही वह स्वयं भी आर्यिका बनने का निश्चय कर लेती है। मनोरमा के निश्चय से सुदर्शन का आत्मबल और भी बढ़ जाता है। आर्यिका बनकर मनोरमा सारे प्रपंचों को त्याग देती है।[4]

संक्षेप में मनोरमा अपने सौन्दर्य, पतिभक्ति, मधुरव्यवहार, सरलता, संतोष इत्यादि गुणों के कारण ही स्त्रियों में श्रेष्ठ हो जाती है, और अभयमती, कपिला, इत्यादि को पराजित करके पाठक के हृदय में नायिका के रूप में स्थान पा लेती है।

अभयमती—

यह चम्पापुर के राजा धात्रीवाहन की रानी है। अपने रूप, सौन्दर्य और चातुर्य से यह अपने पति को रिझाने में समर्थ है। साथ ही कुटिलता भी इसमें कूट-कूट कर भरी हुई है। यह कामान्ध है और अपने दुराचरण से काव्य की खल-नायिका भी है।

---

१. सुदर्शनोदय, ४।२८-२९, ३७

२. "प्राणाधार भवांस्तु मां परिहरेत्समवाञ्छया निर्वृतेः
किन्त्वानन्दनिबन्धनस्त्वदपरः को मे कुलीनस्थितेः।
नाहं त्वत्सहयोगमुज्झितुमलं ते या गतिः सैव मेऽ-
स्त्वार्याभूयतया चरानि भवतः सान्निध्यमस्मिन् क्रमे॥"
—सुदर्शनोदय, ८।२७

३. वही, ४।२८-३७

४. वही, ८।३३-३४

सुदर्शन की प्रशंसक—

उद्यान-विहार के लिए एकत्र लोगों में कपिला, अभयमती इत्यादि स्त्रियाँ भी हैं। कपिला मनोरमा का परिचय जानना चाहती है तो रानी अभयमती उसे राजसेठ सुदर्शन को बताती है। वह सुदर्शन को दर्शनीय पुरुषश्रेष्ठ बताती है।[1]

कान्मान्ध —

सुदर्शन से समागम की इच्छुक रानी वासना में इतनी अन्धी हो जाती है कि उसे अपनी और अपने पति की प्रतिष्ठा का जरा भी ध्यान नहीं रहता। स्पष्ट है कि वह मात्र अपने पति से सन्तुष्ट नहीं है, वह अपनी पण्डिता दासी से सुदर्शन को महल में ले आने का आग्रह करती है।[2] पण्डिता दासी उसे उसकी स्थिति समझाती है कि एक राजमहिषी की ऐसी चेष्टा ठीक नहीं। साथ ही वह सीता जैसी पतिव्रता स्त्रियों का आदर्श उसके समक्ष रखती है[3], किन्तु कामान्ध, हठी रानी उसकी किसी बात से प्रभावित नहीं होती, वह पुनः-पुनः पण्डिता दासी से येन-केन प्रकारेण सुदर्शन को ले आने का आग्रह करती है, विवश होकर पण्डिता को उसका आग्रह मानना ही पड़ता है।[4]

निर्लज्ज—

पण्डिता दासी युक्तिपूर्वक सुदर्शन को रानी के पास ले आती है और उसको पलंग पर लिटा दिया जाता है। रानी हर्षित होकर सुदर्शन के समक्ष अपनी संभोग-इच्छा प्रकट कर देती है। निर्लज्जता के साथ-साथ वह शरीर के वस्त्रों को उतारते हुए सुदर्शन की कामाग्नि को प्रज्वलित करने की चेष्टा करती है।[5]

दुराचारिणी—

सुदर्शन को डिगाने में असमर्थ होकर जब रानी अभयमती निराश हो जाती है, तो वह पण्डिता दासी से उसको कक्ष से बाहर करने का उपाय पूँछती है। पण्डिता दासी के समझाने पर जोर-जोर से हल्ला मचाकर समस्त परिजनों को एकत्र कर लेती है। जिस सुदर्शन से समागम की उसने इच्छा की थी, उसको

---

१. सुदर्शनोदय, ६।५
२. वही, ६।१६
३. वही, ६।२०-२३, एवं २३ के बाद का गीत।
४. वही, ६।२६ एवं साथ का गीत।
५. वही, ७।१६-२०

अपमानित करवाने में भी उसने कोई कसर न रखी ।[1]

सुदर्शन के निर्दोष सिद्ध हो जाने पर उसने निन्दा के भय से आत्म-हत्या कर ली और पाटलिपुत्र में वह व्यन्तरी देवी हो गई ।[2] इस योनि में आकर भी उसने तपस्वी सुदर्शन को नहीं छोड़ा; और उसे भाँति-भाँति के कष्ट दिये ।

इस प्रकार रानी अभयमती कुटिला स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने वाली है ।

सेठ वृषभदास—

यह चम्पापुर का प्रसिद्धिप्राप्त वैश्यवर है। सद्गुण, चतुराई, चिन्तनशीलता दानशीलता इत्यादि गुण इसमें प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। यह काव्य के नायक सुदर्शन का पिता है ।

पत्नी एवं पुत्र से प्रेम रखने वाला—

सेठ वृषभदास को अपने पुत्र और पत्नी से अत्यधिक प्रेम है। मुनि के मुख से सन्तान-प्राप्ति के विषय में सुनकर इसे अत्यधिक हर्ष होता है; और पत्नी के गर्भवती होने पर यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करता है ।[3] अपने यहाँ पुत्रोत्पत्ति का समाचार जानकर हर्षित होता है । वात्सल्य से इसका हृदय भर जाता है। प्रसूतिका-गृह में जाकर माता एवं शिशु का गन्धोदक से संस्कार करता है । पुत्र के सौन्दर्य को देखते हुए यह उसका नाम 'सुदर्शन' रख देता है ।[4]

उत्तरदायी पिता—

सुदर्शन और मनोरमा के परस्पर प्रेम व्यवहार को जानकर यह पुत्र के लिए चिन्तित हो जाता है । मनोरमा के पिता सागरदत्त की प्रार्थना पर यह प्रसन्नतापूर्वक मनोरमा और सुदर्जन के विवाह की स्वीकृत दे देता है ।[5]

जिनदेव का भक्त और दानशील—

सेठ वृषभदेव की जिनदेव पर पूर्ण आस्था है । पत्नी के स्वप्न देखने पर

---

१. "आव्रजताऽव्रजत त्वरितमितः भो द्वास्थजनाः कोऽयमधमितः ।
मुक्तकञ्चुको दंशनशीलः स्त्रयमसरलचलनेनाश्लीलः ।
भुजगोऽयं सहसाऽभ्यन्तरितः आव्रजताऽव्रजत त्वरितमितः ॥१॥
अरिरूपोऽस्माकं योऽप्यमनाककुसुमन्ध्यताभिसर्तुमनाः (?)।
कामलतामिति गच्छत्यभितः आव्रजताऽव्रजत त्वरितमितः ॥२॥
—सुदर्शनोदय, ७।श्लोक ३४ के बाद का गीत

२. वही, ८।३५
३. वही, २।३७-४६
४. वही, ३।४-५, ७, १२, १५
५. वही, ३।४६-४७

यह उसको लेकर मन्दिर जाता है।[1] पुत्र-प्राप्ति हो जाने पर भी जिनदेव के मन्दिर जाकर उसका पूजन करता है।[2] इसी अवसर पर नागरिकों को प्रचुर मात्रा में धन देता है।[3]

जैन-मुनियों पर आस्था—

सेठ वृषभदास जिन मुनियों के प्रति अतिश्रद्धावान् हैं। पत्नी के द्वारा देखे गए स्वप्नों का वृत्तान्त जानने के लिए यह एक मुनि की ही शरण में जाता है, और और विनय पूर्वक अपना अभिप्राय उनसे कहता है।[4] सुदर्शन के विवाह के पश्चात् नगर के उपवन में आए हुए ऋषिराज का दर्शन करने के लिए सपरिवार प्रस्थान करता है। उनके धर्मोपदेश से प्रभावित होकर दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर लेता है।[5]

स्पष्ट है कि सेठ वृषभदास स्नेहशील पति, पिता एवं एक धार्मिक नागरिक है।

जिनमति—

यह सेठ वृषभदास की पत्नी है। यह सुकुमार देहयष्टि वाली, सौन्दर्य-सम्पन्ना, सरल, पतिव्रता, अतिथिवत्सला, आभूषणसुसज्जिता, काले केशपाशों से युक्त, अच्छे कार्य करने वाली, मधुरभाषिणी और जिनदेव की परम भक्त है।[6] इसे सुदर्शन की माता होने का सौभाग्य प्राप्त है। श्रेष्ठ पुरुषों की माता के समान ही इसे भी पुत्र के जन्म से पूर्व दिव्य स्वप्न दिखाई देते हैं।[7] इस प्रकार कुलीन स्त्रियों के गुणों से यह विभूषित है।

धात्रीवाहन—

यह अंग देश में स्थित चम्पापुरी का शासक है। यह अनुपमेय, प्रतापशाली, नीतिज्ञ, युद्धवीर, प्रजावत्सल और अत्यधिक दानशील है। कुटिला रानी अभयमती इसी की पत्नी है। यह भगवान् महावीर का ही समकालिक है।[8] अपनी पत्नी पर इसका अत्यधिक विश्वास है और यह सबसे अधिक प्रेम भी करता है। सम्भवतः

---

१. सुदर्शनोदय, २।२४
२. वही, ३।५
३. वही, ३।६
४. वही, २।२२-३४
५. वही, ४।१४
६. वही, २।४-६
७. वही, २।१०-१६
८. वही, १।३८-४०, ४५

अभयमती की कुटिलता पर ध्यान नहीं देता। अपनी पत्नी से प्रेम के कारण और जल्दबाजी से यह किसी और की बात नहीं सुनता। इसलिए अभयमती के प्रलाप को सुनकर यह बिन सोचे-बिचारे सुदर्शन को अपने सेवकों द्वारा चाण्डाल के पास भेज देता है।[1]

चाण्डाल के प्रहार के निरर्थक हो जाने पर राजा स्वयं ही सुदर्शन को मारने की इच्छा से घटनास्थल पर पहुँच जाता है। किन्तु आकाशवाणी से वास्तविकता का ज्ञान होते ही यह सुदर्शन की महिमा से परिचित हो जाता है, उससे क्षमा माँगता है, यहाँ तक कि अपना राज्य भी उसे सौंपने को तैयार हो जाता है।[2]

एक नृप में स्थिरमतिता एवं विवेकशीलता का जो गुण होता है, उसका धात्रीवाहन में पूर्ण अभाव है। गम्भीरता से विचार करने की इसमें शक्ति नहीं है। यह कभी किसी के पक्ष में हो जाता है और कभी किसी के। इसी कारण यह उचित न्याय करने में भी असमर्थ है।

कपिला ब्राह्मणी—

यह चम्पापुर में रहने वाले कपिल ब्राह्मण की स्त्री है। यह कामवासना से दग्ध रहती है। अन्य विघ्नबाधाओं के समान सुदर्शन के साधना-मार्ग में यह भी बाधा-स्वरूपा ही है।

कामुकी—

मन्दिर से लौटते हुए सुदर्शन के रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो जाती है। अपनी दासी से छल-पूर्वक सुदर्शन को घर बुलवाती है। तत्पश्चात् उससे प्रणय-निवेदन करती है।[3]

प्रतिशोधभावनावती—

वसन्तोत्सव में सभी नगरवासियों के साथ यह भी वन-विहार के लिए पहुँचती है। सुदर्शन की पत्नी मनोरमा को देखकर यह रानी अभयमती से उसका परिचय पूँछती है। रानी अभयमती से मनोरमा और सुदर्शन का परिचय पाकर अपने को ठगा जानकर यह प्रथम तो लज्जित होती है और फिर रानी द्वारा दिए गए उलाहनों की चिन्ता न करके रानी को सुदर्शन को वश में करने के लिए चुनौती दे देती है।[4]

---

१. सुदर्शनोदय, ७।३६
२. वही, ८-५-७, १०, १२-१३
३. वही, ५।१-२०
४. वही, ६।१-१५

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कपिला नारीजाति के लिए कलंक के समान है। उसमें कामुकता, निर्लज्जता, धूर्तता, प्रतिशोध की भावना, चंचलता और अज्ञानता इत्यादि सभी दुर्गुण विद्यमान हैं।

पण्डिता दासी—

यह रानी अभयमती की दासी है। यह परमबुद्धिमती, आज्ञाकारिणी और स्वामिभक्त है। अवसर आने पर यह अच्छे से अच्छा और बुरे से बुरा काम कर सकती है, बस रानी की आज्ञा होनी चाहिए। सुदर्शन को पाने के लिए व्याकुल रानी की मानसिक वेदना को यह नहीं सह पाती, और शीघ्र ही उसके दुःख का कारण भी पूछती है। अभयमती की वास्तविकता का ज्ञान होते ही यह उसे समझाती है। अपनी बातों से यह रानी को प्रबुद्ध करना चाहती है, इसे अपनी स्वामिनी के पद की प्रतिष्ठा का बहुत ध्यान है। स्वामिनी को समझाने के लिए दासी होते हुए भी सीता जैसी स्त्रियों के पातिव्रत्य धर्म का परिचय देकर पाठक को स्वामिनी के प्रति अपने हितचिन्तन का परिचय देती है।

बुद्धिमती—

जब यह देखती है कि इसके वचनों का रानी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब यह पुनः रानी को समझाती है। उसे सुदर्शन के यश का भी ज्ञान है। साथ ही परपुरुष और परस्त्री के प्रति दृष्टिपात को उसी प्रकार समझती है, जैसे कि कोई कुत्ता जूठे भोजन को खाये।[1]

स्वामिभक्त—

अन्त में स्वामिनी के दुराग्रह पर अपने अस्तित्व का भी स्मरण करती है कि वह रानी की दासी है, उपदेशिका नहीं। इसलिए अपनी उपदेशात्मक प्रवृत्ति को छोड़कर स्वामिभक्त सेवक का रूप धारण करती है और पूजा हेतु मिट्टी के पुतले लाने के बहाने वह सुदर्शन को श्मशान से उठा लाने की योजना बनाती है[2] और एक दिन उठा भी लाती है।[3]

धूर्त—

जब रानी अपनी चेष्टा में असफल हो जाती है, तब वह पुनः पण्डितादासी से सुदर्शन को वहाँ से हटाने का उपाय पूछती है। तब हृदय से दुःखी पण्डितादासी रानी से 'त्रियाचरित्र' दिखाने की युक्ति प्रयोग में लाने को कह देती है। उसकी यह युक्ति भी काम कर जाती है और सुदर्शन के प्राणों पर बन आती है।[4]

---

१. सुदर्शनोदय, ६। श्लोक २५ के बाद का गीत।
२. वही, ६।१६ और उसके बाद का गीत।
३. वही, ७।८, १६
४. वही, ७।३३।३६

प्रतिशोधभावनावती—

सुदर्शन के निर्दोष हो जाने पर जब रानी आत्मघात कर लेती है, तब पण्डितादासी चम्पापुर छोड़कर पाटलिपुत्र पहुँच जाती है। वहाँ रहने वाली एक देवदत्ता वेश्या की सेवा करने लगती है, और उसे सब वृत्तान्त सुना देती है। यह उसे सुदर्शन के व्रत को भंग करने के लिए प्रेरित करती है। पर असफलता मिलने पर अन्त में देवदत्ता के साथ-साथ वह भी आर्यिका-व्रत धारण कर लेती है।[1]

इस प्रकार पण्डितादासी में हमें स्वामिभक्ति, कुशलता, बुद्धिमत्ता इत्यादि गुणों के साथ ही धूर्त्तता, प्रतिशोध की भावना इत्यादि दुर्गुणों की भी झांकी देखने को मिल जाती है। जहाँ अपनी स्वामिभक्ति से यह पुरस्करणीय है वहाँ सुदर्शन जैसे निर्दोष व्यक्ति को बार-बार पीड़ा पहुंचाने के कारण दण्डनीय भी है।

देवदत्ता वेश्या—

यह पाटलिपुत्र में रहने वाली एक वेश्या है। रानी अभयमती की दासी चम्पापुर से भागकर इसी की शरण में आती है।

विवेकहीन—

यह विवेकहीन स्त्री है। यह सुदर्शन को अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि पण्डितारानी के कहने पर पथभ्रष्ट करने की चेष्टा करती है। पण्डितादासी से सुदर्शन का परिचय पाकर उसे घर ले आती है।[2]

कामुकी—

यह सुदर्शन के यतिवेश की हंसी उड़ाती है, और बार-बार उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करती है। सुदर्शन के धर्मसम्मत वचनों से अप्रभावित रहकर अपनी काम-चेष्टाओं से उसे प्रभावित एवं उत्तेजित करने में प्रयत्नशील हो जाती हैं।[3]

सुदर्शन की दृढ़ता से प्रभावित—

देवदत्ता के तीन दिन तक प्रयत्न करने पर भी सुदर्शन अविचलित ही रहते हैं, तब यह उनकी दृढ़ता से अत्यन्त प्रभावित भी हो जाती है, उनकी सहनशीलता, नम्रता, बुद्धिमत्ता, परोपकारपरायणता आदि गुणों की स्तुति करके उनसे क्षमा-याचना करती है और उनसे धर्मोपदेश करने की याचना करती है।[4]

---

१. सुदर्शनोदय, ६।७४

२. वही, ६।१२-१३

३. वही, ६।१४-१६, २७ और उसके बाद के गीत, एवं २८

४. 'इत्येवं पदयोर्दयोदयवतोनूनं पतित्वाऽथ सा
सम्प्राहाऽऽदरिणी गुणेषु शमिनस्त्वात्मीयनिन्दादृशा।
स्वामिंस्त्वय्यपराद्धमेवमिह यन्मोहान्मया साम्प्रतं
क्षन्तव्यं तदहो पुनीत भवता देयं च सूक्तामृतम्॥

—सुदर्शनोदय ६।३१

सुदर्शन के वचनों से प्रभावित—

सुदर्शन के जैनधर्मोपदेशामृत को सुनकर और उनका आशीर्वाद पाकर देवदत्ता का मोह नष्ट हो जाता है। मन में विरक्ति उत्पन्न हो जाने के कारण यह सुदर्शन मुनिराज से दीक्षा लेकर आर्यिका व्रत को धारण कर लेती है।[1]

देवदत्ता में कामचेष्टायें, वासनायुक्त कथन इत्यादि तो इसके व्यवसाय के अनुरूप ही हैं। इसमें एक ही दुर्गुण विद्यमान है, वह यह कि सुदर्शन को डिगाने में उसने पण्डिता दासी की कुबुद्धि का उपयोग किया, अपने मस्तिष्क का नहीं। अन्य स्त्रियों (कपिला और अभयमती) की अपेक्षा यह भाग्यशालिनी है, तभी तो अपने अपराध के मार्जन हेतु यह सुदर्शन से क्षमायाचना करके त्याग और वैराग्य का मार्ग अपना लेती है।

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र के पात्र—

भद्रमित्र—

श्रीपद्मखण्डनगर में रहने वाले वैश्यवर सुदत्त और उनकी पत्नी सुमित्रा के पुत्र का नाम भद्रमित्र की। अपने गुणों के कारण वह बालक सत्पुरुषों में प्रशंसनीय है। अच्छी-अच्छी बातों को वह शीघ्र ही ग्रहण करने वाला है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से वह 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' महाकाव्य का धीर-प्रशान्त नायक है। कवि ने उसके चार जन्मों का चित्र इस काव्य में खींचा है।

स्वावलम्बी और कर्मठ—

भद्रमित्र अपने साथियों के बीच एक ऐसी कथा सुनाता है जिसमें स्वावलम्बन की शिक्षा मिलती है। उस कथा को सुनते ही भद्रमित्र अपने साथियों के साथ स्वयं धनार्जन करने का निश्चय कर लेता है।[2] अपने निश्चय को वह अपने पिता के समक्ष प्रस्तुत कर देता है। उसके निश्चय को सुनकर जब उसके माता-पिता, उसके दूर जाने की बात से दुःखी होकर उसे रोकना चाहते हैं तो वह भावुक न होकर पिता का ध्यान कर्तव्य की ओर लगाता है और घर से विदा ले लेता है। रत्नद्वीप जाकर वह रत्नादि प्राप्त भी कर लेता है।[3]

विनम्र और तार्किक—

भद्रमित्र एकमात्र पुत्र होने पर भी अपने माता-पिता के समक्ष विनम्र होकर ही अपनी इच्छा प्रस्तुत करता है। उसके धनवान् पिता जब उसके धनार्जन की चेष्टा को अनावश्यक बताते हैं, तब अपने तर्कों से वह पिता का मुंह बन्द कर देता है।

---

१. सुदर्शनोदय, ९।३४
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।१
३. वही, ३।२-१७

सरल और चतुर—

भद्रमित्र सरल हृदय वाला युवक है। सिंहसेन के धूर्तमंत्री सत्यघोष पर वह एकदम विश्वास कर लेता है और उसे अपनी सारी अर्जित जमा पूँजी सौंप देता है।[१] किन्तु जब वह पुनः माता-पिता के साथ सिंहपुर लौटता है और सत्यघोष से अपनी धनराशि माँगता है तो सत्यघोष स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर देता है। भद्रमित्र यह सुनकर पहले तो उससे प्रार्थना करता है, किन्तु जब वह नहीं मानता तो उसे नीचा दिखाने की ठान लेता है, अपनी चतुराई से वह इस कार्य में भी सफल हो जाता है।[२]

सत्यवादी और सन्तोषी—

भद्रमित्र का सत्य पर पूर्ण विश्वास है। अपनी सत्यता से ही वह अपना अर्जित धन राशि ले पाता है। राजा के हाथ में रखे हुये रत्नों के मध्य में केवल अपने ही रत्न उठाता है। अन्य रत्नों को भी देखकर उसकी नीयत खराब नहीं होती।[३]

दानशील—

अपने रत्न पाकर भद्रमित्र दानशील और सन्तोषी बन जाता है। वह अपनी सम्पदा का मुक्तहृदय से दान करता है।[४] उसकी इस दानशील प्रवृत्ति से उसकी माता चिन्तातुर होकर उसे दान करने से रोकना चाहती है, पर माता की लोभी प्रकृति पर वह बिल्कुल ध्यान नहीं देता। यहाँ तक कि माता उससे क्रुद्ध भी हो जाती है, और अगले जन्म में व्याघ्री बनकर उसको खा भी जाती है।[५]

संयमी और रागहीन—

भद्रमित्र में संयम और वैराग्य दोनों ही गुण प्राप्त होते हैं। राजा के हाथ में रखे हुए अन्य रत्नों को उठाने में उसका सत्य, संयम एवं सन्तोष बाधक हैं। अपनी माता, सत्यघोष मंत्री इत्यादि किसी ने भी उसके साथ कैसा ही व्यवहार किया हो; वह अपना संयम नहीं खोता। इस काव्य में भद्रमित्र के चार जन्मों का वृत्तान्त है—भद्रमित्र-सिंहचन्द्र-अहमिन्द्र-चक्रायुध। हम देखते हैं कि अपने इन सभी जन्मों में अन्ततोगत्वा उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वह समस्त सांसारिक सुखों को छोड़ देता है।[६]

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।२५-२७
२. वही, ३।३४-३८
३. वही, ४।१-२
४. वही, ४।६
५. ४।८, ९
६. वही, ४।१८, ७।२३-३३

भूतभविष्यत् का ज्ञाता और जैनधर्मोपदेशक—

सिंहचन्द्र का जन्म पाकर जब भद्रमित्र वैराग्य धारण करता है, उस समय अपनी माता रामदत्ता को उसके पूर्वजन्म के वृत्तान्तों से अवगत कराता है। उसे जैन-धर्म के ऐसे-ऐसे उपदेश देता है कि पाठक को उसकी सराहना करनी ही पड़ती है।[1]

तपस्वी और भक्त—

प्रायः प्रत्येक जन्म में भद्रमित्र ने वैराग्य धारण करके तपस्या की है। अपने प्रथम जन्म में वरधर्म नामक मुनिराज का उपदेश सुनकर ही भद्रमित्र में दानशीलता का गुण बढ़ गया।[2] अपने दूसरे जन्म में पूर्णविधु मुनि के सामीप्य में भद्रमित्र (सिंहचन्द्र) मुनि बन गया, उसने तप किया। इसी जन्म में उसने अपनी माता को भी प्रबुद्ध किया।[3] अपनी कठिन तपस्या के फलस्वरूप सिंहचन्द्र ने अन्तिम ग्रैवेयक में इकतीस सागर की आयु वाले अहमिन्द्र का पद प्राप्त किया।[4] अपने चतुर्थ जन्म में भी भद्रमित्र (चक्रायुध) जिनेन्द्र भगवान् का भक्त था। प्रौढ़ावस्था आने पर जब उसने देखा कि उसके केश कालिमा को छोड़कर श्वेतिमा धारण कर रहे हैं तो उसके मन में वैराग्य आ गया। वह अपना सारा राजपाट छोड़कर अपने ही पिता अपराजित जो दिगम्बर मुनि हो चुके थे—के पास पहुँचा। उनके उपदेश से वह भी मुनि बन गया। उसने उपभोग की सारी सांसारिक-वस्तुओं का परित्याग कर दिया। निरन्तर तप और साधना में ही उसने अपना ध्यान लगा दिया। अन्त में उस योगिराज ने कैवल्य प्राप्त कर लिया।[5]

सत्यघोष—

यह सिंहपुर के राजा सिंहसेन का मंत्री है। इसका नाम श्रीभूति है और जाति से ब्राह्मण है। इसने अपने गले में एक छुरी बाँध रखी थी; और यह घोषणा कर रखी थी कि—'मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा, यदि कभी झूठ बोला तो इसी छुरी से आत्मघात करूंगा'। उसके इसी प्रचार के कारण इसका नाम 'सत्यघोष' पड़ गया है।

असत्यवादी और कपटी—

इसकी प्रसिद्धि तो सत्यवादी के रूप में है, किन्तु है यह झूठ बोलने वालों में

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।२२-३९
२. वही, ४।६
३. वही, ४।१८, ४।२२-३९
४. वही, ५।१६
५. वही, सातवाँ सर्ग।

अग्रगण्य। भद्रमित्र की धरोहर को यह वापस नहीं करता है और उल्टे उसे ही झूठा कहकर सभा से निकलवा देता है।[1]

प्रमादी—

सत्य के प्रति तो सत्यघोष प्रमादी है ही, साथ ही व्यवहार में भी प्रमाद करता है। वह तो अपने को कुशल समझता है, किन्तु दूसरे की चतुराई नहीं समझ पाता। रानी रामदत्ता के आमन्त्रण पर वह उसके साथ शतरंज खेलने को तैयार हो जाता है। रानी रामदत्ता उसे हराकर उसकी छुरी, जनेऊ और मुद्रिका पर अधिकार प्राप्त कर लेती है। इन्हीं तीनों वस्तुओं को वह उसकी अनुपस्थिति में उसके घर भेज कर दासी से भद्रमित्र के सातों रत्न माँग लेती है। भद्रमित्र को ठगने वाला सत्यघोष रानी के द्वारा मात खा जाता है।[2]

प्रतिशोध की भावना से युक्त—

जब दरबार में सत्यघोष की वास्तविकता का ज्ञान होते ही उसे अपदस्थ करके घम्मिल को मंत्री और भद्रमित्र को राजसेठ बना दिया जाता है तो सत्यघोष अपनी मानहानि से क्षुब्ध होकर, चिन्ता में घुल-घुल कर मृत्यु को प्राप्त होता है।[3] मरकर सर्प हो जाता है। राजा के भण्डार में सर्प रूप में रहने वाला वह दुष्ट एक दिन राजा सिंहसेन को डस लेता है और स्वयं भी मरकर चमरमृग हो जाता है।[4] चमरमृग की योनि से पुनः उसे सर्प की योनि मिलती है, वह फिर राजा के जीव अशनिघोष हाथी के मस्तक को डस लेता है।[5] घम्मिल का जीव बन्दर उस सर्प को मार देता है। इस योनि में मरकर सत्यघोष तीसरे नरक में जाता है, पुनः अजगर की योनि में आता है, और श्रीधरा और यशोधरा नामकी आर्यिकाओं और सिंहसेन के रूप में उत्पन्न भद्रमित्र (सिंहचन्द्र मुनिराज) को खा जाता है। फलस्वरूप पंकप्रभा नाम के चौथे नरक के कष्टों का भागी बनता है।[6] इस प्रकार मरने के पश्चात् भी वह राजा सिंहसेन और भद्रमित्र से बदला लेता ही रहता है। उन्हें तो अपने पुण्यों के कारण सद्गति ही प्राप्त होती है, किन्तु यह पापमय प्रवृत्ति होने के कारण दुःख पूर्ण जीवन ही व्यतीत करता है, और नरक के कष्टों को सहता है।

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।२८-३२
२. वही, ३।४०-४४
३. वही, ४।५
४. वही, ४।११, ३५
५. वही, ४।३५
६. वही, ४।३७, ५।३२

रामदत्ता—

सिंहपुर के राजा सिंहसेन की रानी है। इसके दो पुत्र हैं—सिंहचन्द्र (भद्रमित्र) और पूर्णचन्द्र। रूप और सौन्दर्य की स्वामिनी होते हुए भी वह प्रजाहित में रुचि लेती है। सत्यघोष से ठगा हुआ और अपमानित भद्रमित्र जब अपना वृत्तान्त सुनाते हुए और सत्यघोष को शाप देता हुए प्रत्येक प्रातःकाल को आवाज लगाने लगता है, तब रामदत्ता वृक्ष पर चढ़े हुए भद्रमित्र के करुण वृत्तान्त को जानकर वास्तविकता का पता लगाने को तत्पर हो जाती है। राजा से सलाह करके उसको दरबार में भेज देती है; और स्वयं सत्यघोष को मीठी-मीठी बातों में फंसाकर शतरंज में उसे हराकर, उसकी मुद्रिका, जनेऊ और छुरी प्राप्त कर लेती है। इन तीनों वस्तुओं को मन्त्री के घर भेजकर, अपनी दासी से मन्त्री की पत्नी से रत्नों की पोटली मंगवा लेती हैं।[1]

रामदत्ता पतिव्रता स्त्री है। जब सर्प के काटने से इसका पति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तब यह अत्यन्त शोकाकुल हो जाती है। दान्तमति और हिरण्यवती नामकी आर्यिकाओं के आगमन पर यह भी आर्यिका व्रत धारण कर लेती है।[2]

तपस्या करने के बाद जब सिंहचन्द्र मुनि बन जाता है, तब रामदत्ता उसके पास जाकर अपने दूसरे पुत्र पूर्णचन्द्र की भोगप्रवृत्ति की निवृत्ति का उपाय पूछती है। सिंहचन्द्र के द्वारा पूर्ण वृत्तान्त जानकर यह पूर्णचन्द्र के पास पहुँचती है और सांसारिक भोगों के दोषों से अवगत कराती है तथा उसे धर्माचरण में लगा देती है।[3]

अपने को कृतकृत्य समझकर रामदत्ता आर्यिका समाधि से शरीर त्याग कर स्वर्ग पहुँच जाती है।[4]

इस प्रकार रानी रामदत्ता बुद्धिमती, प्रजावत्सल, पतिव्रता, पुत्रों के हित-चिन्तन में लगी रहने वाली और सात्विक आचार-व्यवहार वाली है।

दयोदयचम्पू के पात्र

सोमदत्त—

यह 'दयोदय-चम्पू काव्य का नायक है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से हम इसे धीर-प्रशान्त नायक की कोटि में रख सकते हैं। यह उज्जयिनी नगरी के सार्थवाह

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।२७-४४
२. वही, ४।१५-१६
३. वही, ४।१९-३९, ५।१-१३
४. वही, ५।१४

श्रीदत्त और उनकी पत्नी श्रीमती का पुत्र है। दैव-दुर्विपाक से इस समय यह माता-पिता के स्नेह से वंचित है। पूर्वजन्म में यह उज्जयिनी नगरी की शिशपा नामक वस्ती में मृगसेन नामक धीवर था और इसकी पत्नी का नाम घण्टा था।

प्रबल-भाग्य एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व—

सोमदत्त प्रबलभाग्य और अद्भुत व्यक्तित्व का स्वामी है। इसी कारण अन्त तक उसका बाल-बाँका नहीं होता। सेठ गुणपाल बार-बार-कहीं यह जीवित रहा, तो मुनिवचनों के अनुसार अवश्य ही मेरी पुत्री का स्वामी होगा, यह सोचकर उसका वध करने का प्रयत्न करता है सौभाग्यवश सोमदत्त तो उसके षड्यन्त्रों से साफ साफ बच निकलता है; और उसको मारने के लिए प्रयत्नशील गुणपाल न केवल अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है, अपितु अपने पुत्र और पत्नी की भी मृत्यु का कारण बनता है।[1] इधर सोमदत्त राजकुमारी गुणमाला सहित राजा वृषभदत्त के आधे राज्य का भी स्वामी हो जाता है।[2] विषा तो उसको प्राप्य है ही।

सोमदत्त का प्रभावशाली व्यक्तित्व ही मुनियों की वाणी में गुणपाल को उसके भूत-भविष्य से परिचित करा देता है।[3] चाण्डाल के द्वारा निर्जन स्थान पर छोड़े जाने पर गोविन्द ग्वाला उसे पाल लेता है।[4] उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही वसन्तसेना गुणपाल द्वारा लिखित पत्र की विषय वस्तु बदल देती है।[5] विषा, महाबल एवं राजकुमारी भी उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व के प्रशंसक हैं।

सरल—

सोमदत्त में सरलता का गुण कूट-कूट कर भरा हुआ है। ईमानदार भी इतना है कि मार्ग में गुणपाल द्वारा लिखित पत्र को खोलकर पढ़ने की भी इच्छा नहीं। उसके अभिभावक गोविन्द के घर जब गुणपाल पहुँचता है तो वह सरल मन से उसकी सेवा करता है।[6] उसे गुणपाल से कोई शिकायत नहीं है। उसकी मृत्यु के पश्चात् जब वह राजसभा में बुलवाया जाता है, तो अपने श्वसुर के प्रति शोकाकुल

---

१. दयोदयचम्पू, ४।१४ और उसके बाद का गद्य, ६।९ और उसके बाद का गद्य भाग।
२. वही, ७। श्लोक १६ के पूर्व का गद्यभाग।
३. वही, १।१८-२१
४. वही, ३ श्लोक ६ के बाद का दूसरा गद्यभाग, और श्लोक ९ के बाद का दूसरा भाग।
५. वही, ४। श्लोक ११ के पूर्व के गद्यभाग से श्लोक १३ तक
६. वही, ४।८-१०

हो जाता है।[1]

विनय और विद्या से युक्त—

विनय से सुशोभित विद्या सोमदत्त का आभूषण है। उसका अभिभावक गोविन्द ग्वाला बस्ती में रहता है। उसकी आर्थिक दशा इतनी अच्छी नहीं है कि वह उसे उच्च शिक्षा के लिए बाहर भेज सके। फिर भी उस गाँव में जितनी शिक्षा मिलती थी, उसे वह ग्रहण कर चुका था।[2] यदि आर्थिक सुविधा मिलने पर वह उच्च शिक्षा हेतु विद्यालय जाता तो वह उसे भी ग्रहण कर लेता। विनम्र इतना है कि किसी की भी कही बात बिना आग्रह के ही मान लेता है। राजा वृषभदत्त उसे आधा राज्य और अपनी पुत्री गुणमाला को सौंपते हैं, तो यह बड़ी विनम्रता से दोनों को ग्रहण कर लेता है।[3]

आज्ञाकारी—

सोमदत्त अद्भुत आज्ञाकारी है। वह गोविन्द को अपना वास्तविक पिता मानता हुआ, बिना तर्क-वितर्क के उसकी प्रत्येक आज्ञा को सिर झुकाकर स्वीकार कर लेता है। अपने पिता की ही आज्ञा से वह गुणपाल के आतिथ्य में कोई कसर नहीं छोड़ता।[4] गुणपाल की आज्ञा मिलते ही उसके घर चला जाता है जहाँ विष के स्थान पर भाग्य-प्रावल्य से विद्या की प्राप्ति हो जाती है।[5] गुणपाल के कहने पर वह नागमन्दिर चला जाता है।[6] राजा के बुलाते ही उसकी सभा में उपस्थित हो जाता है; उसी की आज्ञा से वह गुणमाला से भी विवाह कर लेता है।[7]

शक्ति और भक्ति का समन्वय—

सोमदत्त अतिथि-वत्सल है। अपने यहाँ पहुँचे हुए साधुओं का सत्कार करना वह अच्छी तरह जानता है। अपने पूर्वजन्म में भी तो एक मुनि के उपदेश से ही उसने अहिंसा धर्म को अपना लिया था।[8] वह जैन-धर्म का समर्थक है। गृहस्थ-

---

१. दयोदयचम्पू, ७। श्लोक ११ के पूर्व का गद्यांश।
२. वही, ४। श्लोक ६ के पूर्व का गद्यभाग, श्लोक ६ और उसके बाद के गद्यभाग।
३. वही, ७। श्लोक १२ के बाद के गद्यभाग।
४. वही, ४। श्लोक ९ के बाद का गद्यभाग।
५. वही, ४।श्लोक १० के बाद से २५ श्लोक तक।
६. वही, ५।११ के पूर्व के गद्यभाग।
७. वही, ७।२-४ श्लोक १२ के बाद के गद्यभाग।
८. वही, १।श्लोक २२ के पूर्व का गद्यभाग एवं २२-२६

जीवन-काल में ही जब उसके घर एक ऋषि का समागम होता है, तब वह सपत्नीक उनका स्वागत करता है; और उनकी स्तुति में संगीतप्रियता दर्शाते हुए भजन गाता है :—

"जय-जय ऋषिराज पितु जय जय ऋषिराज ।।
भूराज्यादि समस्तमपि भवान् सहसा तत्याज ।।
पोत इवोत तारणाय सदा भवतो भवभाजः ।।

—दयोदयचम्पू, ७।श्लोक २६ के बाद का गीत ।

सोमदत्त में सहनशीलता, दानशीलता और सुख-दुःख के प्रति निर्लिप्तता इत्यादि गुण भी देखने को मिलते हैं । विषा, राजकुमारी और राज्य को वह जैसे स्वीकार कर लेता है, वैसे ही ऋषिराज के उपदेश से प्रभावित होकर इन सभी को छोड़ भी देता है ।[1] अपने इन सभी गुणों के कारण वह लोकप्रिय भी हो गया है । सन्तोष ही उनके जीवन का आदर्श है । अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त के फलस्वरूप, इस जन्म में बार-बार मृत्यु पर विजय प्राप्त करके 'अहिंसा परमो धर्मः' का सिद्धान्त भी अनायास ही पाठकों को समझा देता है; और पाठक के हृदय में धीरप्रशान्त नायक के रूप में प्रवेश कर लेता है ।

विषा—

यह उज्जयिनी के राजसेठ गुणपाल और गुणश्री की पुत्री है । यह काव्य के नायक सोमदत्त की पत्नी है । काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से विषा भी स्वीया नायिका की श्रेणी में आती है।

अद्‌भुत सौन्दर्य और व्यक्तित्व—

विषा अद्‌भुत सौन्दर्य और व्यक्तित्व की स्वामिनी है । उसका सौन्दर्य लक्ष्मी के समान है । यद्यपि उसका नाम विषा है, किन्तु अपने नाम के विपरीत वह है सुधा । अपने गुणों और सौन्दर्य के कारण वह काव्य के नायक सोमदत्त के सर्वथा अनुकूल है । अपने नाम (विषा) के कारण वह सोमदत्त के लिए सौभाग्योदय का कारण बन जाती है ।[2]

मुग्धा और सरला—

सोमदत्त के अद्‌भुत व्यक्तित्व को देखते ही विषा उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है । किन्तु वह अपने मनोभावों को प्रकट नहीं करती है ।[3] वह स्वभाव से अत्यन्त सरल है । गुणपाल के किसी षड्‌यन्त्र का उसको ज्ञान नहीं है । जब गुणपाल उससे भोजन देने को कहता है तो वह सोमदत्त के लिए माता द्वारा बनाए हुए

---

१. दयोदयचम्पू, ७।श्लोक ३७ के बाद के गद्यभाग ।
२ वही, ४।१२ के बाद का गद्यभाग ।
३. वही, ४।श्लोक १४ के पूर्व का गद्यभाग, १४-१६

विषयुक्त लड्डू अनजाने में ही उसे देती है, गुणपाल की मृतप्राय दशा देखकर वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है।[1]

माता-पितृ-भ्रातृ-भक्ति—

विषा अपने माता-पिता की आज्ञा का सदैव पालन करती है। अपने भाई से भी वह अत्यधिक प्रेम करती है। अपने पिता, माता और भाई की आज्ञा के अनुसार ही वह सोमदत्त से विवाह करती है।[2] माता की आज्ञा से भोजन बनाने में सहयोग देती है।[3] भाई महाबल की मृत्यु पर अत्यन्त शोकाकुल हो जाती है। इतना ही नहीं कि वह केवल पारिवारिक जनों की ही आज्ञा मानती हो, वरन् अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् वह राजा वृषभदत्त को भी पिता के समान मानती है और उनकी हर आज्ञा को सहर्ष स्वीकार करती है।[4]

ईर्ष्या से रहित मधुर व्यवहार वाली—

जब सोमदत्त राजा की आज्ञा से गुणमाला से विवाह कर लेता है, तब भी विषा को कोई आपत्ति नहीं है। यहाँ तक कि इस विवाह की उसको कोई पूर्व-सूचना भी नहीं हैं। सोमदत्त और गुणमाला के विवाह के अवसर पर वह अचानक ही राजभवन पहुँच जाती है और हर्षित होकर इस विवाह का अनुमोदन करती है। राजा विषा से कहते हैं कि वह राजकुमारी को अपनी छोटी बहिन माने। तब विषा कहती है कि राजकुमारी के साथ तो एक और एक ग्यारह की कहावत चरितार्थ होगी। इससे मुझे बड़ी मदद मिलेगी। इसलिए इसको पाकर एकादशी तिथि के समान पुण्य-सम्पादनी बन जाऊंगी और द्वितीया तिथि के ही समान भद्र आचरण करने वाली हो जाऊंगी।[5] अपने इस कथन के कारण विषा अत्यन्त आदरणीय हो गई है। विषा ने राजकुमारी के साथ अत्यन्त मधुर व्यवहार किया है। काव्य के अनुशीलन से ज्ञात हो जाता है कि उसने कभी अपने सिद्धान्तों को सोमदत्त या राजकुमारी पर नहीं लादा है। उसके मधुर व्यवहार से प्रभावित होकर ही महाबल

---

१. दयोदयचम्पू, ६।श्लोक ६ के पूर्व के गद्यभाग।

२. वही, ४।२०-२१

३. वही, ६।श्लोक ५ के बाद का गद्यभाग।

४. वही, ७।श्लोक ३६ के पूर्व के गद्यभाग।

५. 'भो तात, भवतामतीव कृपाऽस्तीवस्ति यतोऽहमधुनैकाकिनी सैवानया किलैका-दशीव पुण्यसम्पादिनी भविष्यामि, द्वितीयेव च भद्राचरणपरायणा।'
वही, ७।श्लोक १५ के बाद ५वाँ गद्यभाग।

उसका विवाह सोमदत्त से करना चाहता है।[1]

अतिथि-वत्सला—

अपने पति के समान ही विषा अतिथि-वत्सला है। जब सोमदत्त उसे द्वार पर एक ऋषिराज के आगमन की सूचना देता है तो वह हर्षित होकर अपने सौभाग्य की सराहना करती है। अपने पति के साथ ऋषिराज का आदर-सत्कार करती है; उनकी प्रदक्षिणा करती है और शीघ्र ही भोजन बनाकर उन्हें समर्पित करती है। अपने इस आचरण से वह राजकुमारी को और भी आकृष्ट कर लेती है।[2]

पतिव्रता और पतिमार्गानुयायिनी—

विषा और सोमदत्त का विवाह हुआ, विषा का मनोरथ पूर्ण हुआ। पूर्वजन्म के प्रभाव से ही वह पुनः इस जन्म में भी सोमदत्त की पत्नी बनती है। अपने पति द्वारा किये गए दूसरे विवाह का भी अनुमोदन करती है। बस, वह तो पति की सेवा करना ही अपना धर्म समझती है। पति की इच्छानुसार ऋषियों की सेवा करती है। ऋषिराज का उपदेश सुनकर जैसे ही सोमदत्त दिगम्बर मुनि बन जाता है, वैसे ही विषा भी तप करने का निश्चय कर लेती है; और आर्यिका व्रत अपना लेती है। अपने तप के ही अनुसार स्वर्ग की प्राप्ति करती है।[3]

स्पष्ट है कि विषा सोमदत्त और राजकुमारी के साथ-साथ पाठक को प्रभावित करने में पूर्ण समर्थ है और आर्यललनाभूषण के पद को सुशोभित करती है।

गुणपाल—

यह उज्जयिनी का राजसेठ है। इसकी पत्नी का नाम गुणश्री है। और पुत्र तथा पुत्री का नाम क्रमशः महाबल और विषा है। गुणपाल अत्यधिक धनी और दृढनिश्चयी है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उसे 'दयोदय' काव्य का प्रतिनायक कहा जा सकता है। वह गुणी और नगर में प्रसिद्ध भी है। किन्तु ऋषि की मुंह से बात निकलते ही वह सोमदत्त को मारने का ऐसा हठ पकड़ता है कि अपनी कुचेष्टाओं से वह पाठकों की दृष्टि में पतित हो जाता है और सोमदत्त को मारने की चेष्टा में स्वयं पञ्चत्व को प्राप्त कर लेता है।

---

१. 'वनश्रिया वसन्तस्य सम्प्रयोग इवोत्तमः।
विषया फुल्लवक्त्रस्य सम्पल्लवसमेतया॥'

—दयोदयचम्पू, ४,२०

२. वही, ७ श्लोक १८-२६

३. दयोदयचम्पू, ७ ३८ के पूर्व का गद्यभाग और ३८

ऋषि-वचनों को सार्थक समझते हुए भी कुकार्य हेतु प्रयत्नशील—

वह जानता था कि ऋषियों का वचन मिथ्या नहीं होता, किन्तु एक अनाथ बालक उसकी पुत्री का पति बनेगा—इस बात को उसका मन स्वीकार नहीं कर सका। अतः ऋषियों के वचनों को मिथ्या करने के लिए वह सोमदत्त का वध करने को तुल गया।[1]

अभिमानी—

गुणपाल को अपने पद और सामाजिक स्थिति पर बहुत अभिमान है। सम्भवतः वह ऊंचे-ऊंचे स्वप्न देखता है कि उसकी पुत्री भरे-पूरे धनी, कुलीन घर में जायगी। इसीलिए मुनि की घोषणा पर वह सोचता है कि मेरी पुत्री विषा का स्वामी अज्ञातकुलशील यह निर्धन बालक कैसे हो सकता है? वह सोमदत्त और अपनी पुत्री के साथ को वैसा ही समझता है, जैसे यह साथ बकरी के बच्चे और शेर की बच्ची का हो रहा हो।[2]

धूर्त और निर्दय—

धूर्तता और निर्दयता, ये दोनों दुर्गुण गुणपाल के रोम-रोम में विद्यमान हैं। ऋषियों के वचनों को मिथ्या करने के लिए अनेक बार सोमदत्त के वध का प्रयत्न करता है। वह सोमदत्त का नाम मिटा देना चाहता है। सर्वप्रथम वह एक चाण्डाल को लालच देकर सोमदत्त के वध हेतु राजी कर लेता है। किन्तु चाण्डाल उसकी आशा के विपरीत निर्जन स्थान पर मारे बिना उसे छोड़ देता है। भाग्यवश सोमदत्त गोविन्द ग्वाले के पास पहुँच जाता है।[3] एक दिन गुणपाल गोविन्द ग्वाले की बस्ती में पहुँचता है, तो पुनः उसके हृदय में उसे मारने की इच्छा प्रबल हो उठती है। नवनीतलेपन में भी गुणपाल चतुर है। वह अपनी मीठी बातों से गोविन्द को तो प्रभावित करता ही है, भोले-भाले सोमदत्त को भी वश में कर लेता है। उसकी हत्या हेतु एक पत्र वह सोमदत्त के द्वारा अपने घर भिजवाता है। सोमदत्त के प्रबल-भाग्यवश मार्ग में पत्र की विषयवस्तु बदल दी जाती है और विष के स्थान पर गुणपाल की कन्या विषा उसका वरण करती है। गुणपाल यह वृत्तान्त सुनते ही मन के भाव छिपाते हुए गोविन्द को इस वृत्तान्त से खुश करता है, और घर लौट आता है।[4] एक दिन नागपंचमी तिथि को गुणपाल मन्दिर के

१. दयोदयचम्पू, ३।श्लोक ४ के पूर्व का गद्यभाग।
२. किन्तु खलु श्रुतलोऽपि पञ्चाननतनयाया भर्ता भवितुमर्हतीति।
—वही, ३।प्रथम गद्यभाग का अन्तिम वाक्यांश
३. वही, ३।४-१०
४. वही, ५।श्लोक। के पूर्व के गद्यभाग और श्लोक १ से ३ के बाद के गद्यभागों तक।

मार्ग में एक वधिक को लोभ देकर नियुक्त कर देता है। घर आकर वह सोमदत्त को मन्दिर पूजा की सामग्री सहित भेजता है। मार्ग में महाबल कन्दुक-क्रीड़ा में सोमदत्त को लगाकर स्वयं पूजा-सामग्री लेकर मन्दिर को चल देता है। सोमदत्त और महाबल से अनभिज्ञ वधिक महाबल का ही वध कर देता है। गुणपाल यह बुरा समाचार सुनकर अपना सिर पीट लेता है।[1] किन्तु फिर भी सोमदत्त के वध की इच्छा उसके मन से नहीं निकलती। उसे वह अपने मार्ग से निकालना ही चाहता है। यहाँ तक कि वह यह भी गम्भीरता से नहीं सोचता कि सोमदत्त की हत्या से उसकी पुत्री विधवा हो जाएगी। अब परेशान होकर वह अपनी इच्छा अपनी पत्नी को भी बता देता है। उसके दुःख-निवारण हेतु गुणश्री विषयुक्त लड्डू तैयार करती है। गुणपाल के भोजन मांगने पर विषा अनजाने में उन विषयुक्त लड्डुओं को ही उसे दे देती है। फलस्वरूप सोमदत्त को मारने के प्रयत्न में वह खुद ही बलि का बकरा बन जाता है।[2] वह कितना निर्दयी है कि न सोमदत्त की निराश्रितता की उसे चिन्ता है, न उसके रूप-गुण, शुभ लक्षणों के प्रति उसकी रुचि है, न उसे गोविन्द ग्वाले के वात्सल्य की चिन्ता है, यहाँ तक कि वह अपनी पुत्री के वैधव्य का विचार भी नहीं कर पाता। अपनी एक दुर्भावना के कारण धन का लालच देकर वह दो व्यक्तियों को प्रेरित करता है। गोविन्द और सोमदत्त से बार-बार झूठ बोलता है। अपने पुत्र और पत्नी की हत्या के कारण उपस्थित करता है और स्वयं अपनी दुर्भावना की आग में भस्म हो जाता है।

अतः गुणपाल वात्सल्य रस से हीन, निर्दयी, मोहान्ध और सोमदत्त का प्रबलतम धूर्त शत्रु है।

गुणश्री—

यह 'दयोदयचम्पू' के खलनायक गुणपाल की पत्नी और विषा की माता है। यह सौन्दर्यवती, चतुर और पुत्रवत्सल है। अपने पुत्र महाबल से प्रेम होने के कारण ही उसकी सम्मति से अपनी पुत्री का विवाह सोमदत्त से करने को तैयार हो जाती है।[3] पुत्र की असामयिक मृत्यु पर अत्यन्त दुःखित हो जाती है।[4] वह पति के हर अच्छे-बुरे काम में सहयोग देने को तैयार रहती है। पति की दुश्चिन्ता को दूर करने के लिए और अपने वैधव्य का विचार करके विषयुक्त लड्डू तैयार करती है।[5] भाग्यवश इन लड्डुओं को खाकर उसका पति मृत्यु के मुंह में पहुँच

---

१. दयोदयचम्पू, ५।श्लोक ९ के बाद के गद्यभाग से श्लोक १४ के बाद के गद्यभाग तक।

२. वही, ६।प्रारम्भ से श्लोक ६ के पूर्व तक।

३. वही, ४ श्लोक १७ के पूर्व का गद्यभाग एवं ११-२२

४. वही, ५ अन्तिम गद्यभाग में एक।

५. वही, ६ प्रारम्भ के गद्यभाग से श्लोक ६ के बाद के गद्यभाग तक।

जाता है, तब अपने पति के दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करती है; और बचे हुए विषयुक्त लड्डू खाकर पति के मार्ग का ही अनुसरण करती है।[1]

गोविन्द ग्वाला—

यह ग्वालों की बस्ती में रहने वाला ग्वालों का प्रमुख व्यक्ति है। इसकी पत्नी का नाम धनश्री है।

सन्तानवत्सल—

गोविन्द-ग्वाला और इसकी पत्नी सन्तति सुख से वंचित है। भाग्यवश गुणपाल के षड्यन्त्र का शिकार बालक सोमदत्त इसे मिल जाता है; वह उसके प्रति वात्सल्य से भर उठता है; वह उसे पुत्रवत् उठा लेता है; और घर जाकर अपनी पत्नी को देता है। गोविन्द एवं धनश्री यत्न से उसका पालन-पोषण करते हैं। गोविन्द बस्ती में उपलब्ध शिक्षा भी सोमदत्त को दिलवाता है। फलस्वरूप सोमदत्त इससे वास्तविक पिता का व्यवहार करने लगता है।[2]

सरल हृदय एवं अतिथि प्रेमी—

गोविन्द बड़ा सरल हृदय पुरुष है। साथ ही अतिवत्सल भी है। दुष्ट गुणपाल जब इसके घर पहुंचता है तो यह उसका खूब आतिथ्य सत्कार करता है; और सोमदत्त को भी उसकी सेवा करने का आदेश देता है। गुणपाल के किसी षड्यन्त्र को यह नहीं जानता। भाग्यवश जब सोमदत्त, गोविन्द के आने बिना ही गुणपाल का जामाता बन जाता है तो भी गोविन्द ग्वाला हर्षित होकर सोमदत्त को गुणपाल को ही सौंप देता है[3] जबकि सोमदत्त की अनुपस्थिति में उसका हृदय बार-बार सोमदत्त की ओर लगा रहता है। यह अतिथि के आगमन पर सुख का और जाने पर दुःख का अनुभव करता है।[4] निम्नमध्यवर्गीय पात्र होते हुए भी यह अपने इन मानवोचित गुणों से स्तुत्य है।

वसन्तसेना—

यह उज्जयिनी नगरी की वेश्या है। वेश्या होते हुए भी दया, ममता, प्रेम और त्याग आदि गुण इसमें दृष्टिगोचर होते हैं। काव्य में इसका किंचित्काल के लिए ही उपस्थितिकरण कथानक को नया मोड़ दे देता है। हृदय की उदारतावश यह एक निर्दोष व्यक्ति को मृत्यु के मुंह में जाने से बचा लेती है।[5] गुणपाल और

---

१. दयोदयचम्पू, ६। श्लोक ६ के बाद का गद्यभाग।
२. वही, ३ श्लोक १० के पूर्व का गद्यभाग, १०-१४
३. वही, ५।१-३
४. वही, ५। श्लोक ३ के बाद का दूसरा भाग।
५. वही, श्लोक ११ के पूर्व का गद्यभाग, ११-१३

उसके परिवार से इसका अच्छा परिचय है। विषा इसकी सखी भी है।[1]

जिस समय यह सोमदत्त के वैराग्य के बारे में सुनती है, उस समय संसार में सुख के अभाव का अनुभव करती है। अतः सोमदत्त के साथ ही यह भी आत्मोद्धार में प्रयत्नशील हो जाती है। यह विषा के साथ ही आर्यिकाव्रत की धारणा कर लेती है और अपनी तपस्या के अनुरूप स्वर्ग को प्राप्त करती है।[2]

अन्यपात्र--

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पात्र भी हैं, जिनका महत्व उपर्युक्त पात्रों के समान तो नहीं है, किन्तु फिर भी उनका उल्लेख करना असंगत न होगा। सर्वप्रथम जयोदय' महाकाव्य के पात्र प्रस्तुत हैं :—

अनवद्यमति राजकुमार अर्ककीर्ति का मन्त्री है। वह जयकुमार की योग्यता से परिचित है, इसलिए राजा को समझाता है कि सुलोचना और जयकुमार एक दूसरे के योग्य हैं। राजा को उनसे शत्रुता नहीं करनी चाहिए।[3] किन्तु अर्ककीर्ति का एक सेवक बहुत धूर्त है, वह अर्ककीर्ति को जयकुमार से युद्ध के लिए उकसाता है।[4] काशीनरेश अकम्पन का दूत सार्थक वाणी में बोलता है। वह राजा अकम्पन, राजकुमारी सुलोचना की प्रशंसा करता है।[5] अक्षमाला सुलोचना की छोटी बहिन है। काशीनरेश इसका विवाह अर्ककीर्ति से करते हैं।[6] भरतचक्रवर्ती सार्वभौम सम्राट् हैं। जयकुमार इन्हीं के सेनापति हैं। प्रत्येक राजा अपने राज्य की सम्पूर्ण गतिविधियां इनको बताता है।[7] ऋषभदेव तो आदि तीर्थङ्कर हैं। यह सम्राट् भरत के पिता हैं। यह जयकुमार को उपदेश देते हैं। इन्हीं से दीक्षा प्राप्त करके जयकुमार तपस्या करने में संलग्न हो जाते हैं।[8]

वीरोदय महाकाव्य के एक पात्र हैं—देवराट् इन्द्र। यह उत्सवप्रिय हैं। भगवान् महावीर के भक्त हैं। भगवान् के जन्म के अवसर पर इन्द्र उनके अभिनन्दन

---

१. जयोदय, ४।श्लोक १२ के बाद का गद्यभाग।
२. वही, ७ श्लोक ३८ के पूर्व के गद्यभाग और बाद का गद्यभाग।
३. वही, ७।३२-४३
४. वही, ७।१-१७
५. समना मनुजो यस्यां महिला सा रसालया।
श्रीधरोऽधीश्वरो यस्याः सा काशी रुचिरा पुरी॥
—वही, ३।३०
६. वही, ६।३, १६
७. वही, ६।६, २०।१०
८. वही, २७वां सर्ग।

के लिए कुण्डनपुर पहुँचते हैं; और अन्य देवगणों के साथ भगवान् का अभिषेक करते हैं।[1] भगवान् महावीर के प्रमुख गणधर हैं—गौतम इन्द्रभूति। भगवान् की महिमा से प्रभावित होकर यह और इनके अन्य भाई भी भगवान् के भक्त हो जाते हैं।[2]

आचार्य श्रीज्ञानसागर के काव्यों में स्थान-स्थान पर ऋषियों का भी उल्लेख है। ऋषि प्रायः जनता को प्रबुद्ध करने में ही लगे रहते हैं। उनकी कठिन समस्याओं को सुलझाते हैं। मुक्ति हेतु साधक का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इन्होंने स्वयं सांसारिक वस्तुओं को सर्वथा त्याग दिया है। 'सुदर्शनोदय' और 'दयोदयचम्पू' में उल्लिखित मुनि तो कथानक को भी प्रभावित करते हैं।[3]

कपिल 'सुदर्शनोदय' में उल्लिखित सुदर्शन के मित्रों में से एक है; और मर्म्म को जानता है।[4] इसी काव्य में वर्णित द्वारपाल बड़े भीरु स्वभाव का है, वह पण्डिता दासी से मात खा जाता है।[5] राजा का वधिक आज्ञाकारी सेवक है। सुदर्शन के प्रबल भाग्यवश वह राजा की आज्ञा पूर्ण करने में असमर्थ है।[6]

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में उल्लिखित सिंहसेन सिंहपुर का राजा है। सत्यघोष के अपदस्थ हो जाने पर धम्मिल्ल नामक व्यक्ति इसका मन्त्री बनता है। अपने बन्दर के जन्म में यह सत्यघोष के जीव को नष्ट कर देता है।[7] सुदत्त दोनों अपने एकमात्र पुत्र से अत्यधिक प्रेम करते हैं।[8] सुमित्रा में धन का लोभ भी आ जाता है। इसी कारण व्याघ्री के जन्म में वह अपने पुत्र को खाने में नहीं हिचकती।[9]

सुन्दरी, राजा अपराजित की पत्नी है। राजा अपराजित चक्रपुर का श्रेष्ठ शासक है। वह परमधार्मिक और त्यागी है। उसकी रानी सुन्दरी अत्यधिक सौन्दर्यशालिनी है। सुन्दरी और राजा अपराजित से भद्रमित्र चक्रायुध के रूप में जन्म लेता है।[10] चित्रमाला चक्रायुध की नवयुवती सुन्दरी पत्नी है। इसी से

---

१. वीरोदय, ७वाँ सर्ग।
२. वही, १३।३२ और १४।२
३. (क) सुदर्शनोदय, चतुर्थ सर्ग।
   (ख) दयोदय, १।१८ श्लोक से द्वितीय लम्ब तक।
४. सुदर्शनोदय ३-३८-४१
५. वही, ७-१-७
६. वही, ८।५, ६
७. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।१८, ४।४, ३७
८. वही, १।२६-३०
९. वही, ४।७-९
१०. वही, ६।९-१५

चक्रायुध के पुत्र वज्रायुध का जन्म हुआ।[1]

महाबल 'दयोदयचम्पू' की नायिका विषा का प्रिय भाई है। वह गुणज्ञ, आज्ञाकारी है। अपनी बहिन से उसे प्रेम है; उसका हित करने के लिए वह शीघ्र ही सोमदत्त को योग्य समझ कर, सोमदत्त के साथ उसका विवाह कर देता है। सोमदत्त के प्रति उसका अत्यधिक आदर और प्रेम है। वह सदैव सोमदत्त के सिर कार्यभार को हल्का करने में सचेष्ट रहता है। इसी चेष्टा में सोमदत्त के स्थान पर हत्या का पात्र बनकर कथानक को कुछ और ही रूप प्रदान कर देता है।[2] इसी काव्य में वधिक के दो रूप हैं। इन दोनों ही वधिकों को धन का लालच देकर गुणपाल ने सोमदत्त की हत्या करने के लिए तैयार किया था। पहला वधिक तो सोमदत्त के ऊपर दया करके और प्राप्त हुए धन को अपना प्राप्य समझकर सोमदत्त को नहीं मारता।[3] दूसरा वधिक मारता तो है, किन्तु सोमदत्त को नहीं महाबल को। वह सोमदत्त और महाबल में भेद नहीं कर पाता।[4]

राजा वृषभदत्त उज्जयिनी का स्वामी है। उसकी पत्नी का नाम वृषभदत्ता है। राजा प्रजावत्सल है।[5] वह गुणपाल का आदर करता है। गुणपाल की मृत्यु होने पर उसे गुणपाल की वास्तविकता का ज्ञान होता है, तब शीघ्र ही अपने दूत से सोमदत्त को बुलवा लेता है। उसे सर्वथा योग्य समझकर अपनी पुत्री गुणमाला का विवाह उससे कर देता है।[6] अतः राजा को भी सद्गुणों की अच्छी पहचान है। राजा का दूत बोलने में बड़ा चतुर है। उसकी वाक्चतुरता सोमदत्त और उसके वार्तालाप से ज्ञात होती है।[7] राजा का मंत्री अत्यधिक योग्यता से कर्तव्यपालन करता है। नगर की एक-एक गतिविधि का उसे ज्ञान है। इसलिए वह गुणपाल की मृत्यु के विषय में राजा को बताता है।[8]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीज्ञानसागर ने समाज में प्राप्त होने वाले सभी व्यक्तियों के स्वभाव के अनुसार ही भिन्न-भिन्न

---

१. समुद्रदत्तचरित्र ६।१८-२४
२. दयोदयचम्पू, ४ श्लोक १७ के पूर्व के गद्यभाग, १७-२२, श्लोक १२ के बाद के गद्यभाग से १४ तक।
३. वही, ३ श्लोक ६ के बाद के गद्यभाग से श्लोक ७ तक।
४. वही, ५। श्लोक ६ के गद्य भाग, श्लोक १२ के पूर्व के गद्यभाग, श्लोक १२ से श्लोक १४ के बाद का गद्यभाग।
५. दयोदयचम्पू, १-१२-१३
६. वही, ७।१-२३
७ वही, ७।२-५
८. वही, ७। श्लोक १ के बाद के गद्यभाग।

स्वभाव वाले अपने पात्रों को अपने काव्यों में लिया है। उन्होंने लगभग ७६ पात्रों का नियोजन अपने काव्यों में किया है। ये सभी पात्र काव्य में पात्रों की संख्या बढ़ाने के लिए प्रयुक्त नहीं किये गये हैं अपितु इनके द्वारा समाज को कुछ न कुछ देने के लिये ही इनका प्रयोग किया गया है। कवि के काव्यों के परिशीलन से स्पष्ट है कि कवि के सभी काव्य शिक्षाप्रद हैं। यह शिक्षा हमें पात्रों के माध्यम से मिलती है।

'जयोदय' काव्य के नायक जयकुमार पराक्रम, निश्छलप्रेम, कर्तव्यपरायणता न्यायप्रियता और नम्रता की शिक्षा देते हैं 'वीरोदय' महाकाव्य के नायक भगवान् महावीर हमें ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या और सहिष्णुता की शिक्षा देते हैं। 'सुदर्शनोदय के नायक सुदर्शन समाज को एकपत्नीव्रत, भगवान् के प्रति आस्था, दृढ़ता और त्याग की शिक्षा देते हैं। 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' के नायक भद्रमित्र हमें सत्य, अस्तेय, और धर्म की शिक्षा देते हैं। 'दयोदयचम्पू' के नायक सोमदत्त विनम्रता, आज्ञाकारिता, अहिंसा, करुणहृदयता और अतिथि-वत्सला की शिक्षा देते हैं।

सुलोचना, मनोरमा, त्रिपा ('जयोदय', 'सुदर्शनोदय' और 'दयोदयचम्पू' की नायिकाएं) भारतीय स्त्रियों के लिए आदर्श है। ये सभी स्त्रियां हमें एक और एकनिष्ठ प्रेम की शिक्षा देती हैं, तो दूसरी ओर पातिव्रत्य, पतिमार्गानुसरण, त्याग और जिनेन्द्रभक्ति की भी शिक्षा देती है।

हमारे समाज में कुछ जनसुधारक लोग होते हैं। उनका जीवन त्याग, तपस्या, नम्रता और जनहित इत्यादि श्रेष्ठ भावनाओं से परिपूर्ण होता है। ऐसे ही लोकनायकों के रूप में कवि ने ऋषि-मुनियों का उल्लेख किया है। ये तपस्वी महापुरुष प्रतिक्षण हमें संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान कराते रहते हैं; और मानव का वास्तविक गन्तव्य क्या है?—इसकी शिक्षा देते हैं।

अर्ककीर्ति, अभयमती, सत्यघोष और गुणपाल इत्यादि के चरित्र हमें बुराई का स्वरूप बताते हुए उससे बचने की प्रेरणा देते हैं। पाठक इनके विषय में पढ़ते हुए ऐसे दुष्ट व्यक्तियों से दूर रहने को सचेष्ट हो जाता है। पण्डिता दासी; चाण्डाल इत्यादि हमें आज्ञाकारिता और स्वामी के हितचिन्तन की ओर प्रेरित करते हैं। इन पात्रों के अनुसार अपने स्वामी की हर इच्छा पूर्ण करना उसके सेवक का कर्तव्य है।

अतएव कवि के काव्यों के सभी पात्र सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हैं। किसी भी पात्र को कवि ने पात्रों की संख्या बढ़ाने के लिए प्रयुक्त नहीं किया है। उनके काव्य का राजा यदि समाज को कुछ दे सकता है तो सेवक वर्ग भी इसमें पीछे नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमारे आलोच्य महाकवि ज्ञानसागर

व्यक्ति-मनोविज्ञान के अच्छे जानकार हैं। व्यक्तियों की रुचि और स्वभाव भिन्न-भिन्न होते हैं, इसका भी पूरा-पूरा ध्यान उनको है। एक अनाथ बालक को देखकर एक पुरुष तो उसका भविष्य अपनी पुत्री से जुड़ता हुआ जानकर उससे द्वेष करने लगता है; इसके विपरीत दूसरे पुरुष के हृदय में वात्सल्य का स्रोत उमड़ पड़ता है। एक स्त्री पति पर अत्यधिक भक्ति रखती है; दूसरी स्त्री अन्य पुरुषों पर कुदृष्टि रखती है। एक सेवक राजा को उचित मन्त्रणा देता है, तो दूसरा कुटिल पुरुष उसे युद्ध के लिए प्रेरित करता है। मद्यपान के पश्चात् व्यक्ति का मस्तिष्क कैसा विकृत हो जाता है, इसका चित्रण भी कवि ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ किया है। एक राजा पराक्रमी, आत्मविश्वासी और प्रजावत्सल है, तो दूसरा राजा भीरु प्रकृति का है। वह प्रजा की बात नहीं सुनता, अपितु अपनी स्त्री के झूठे प्रपञ्च पर विश्वास कर लेता है। कवि ने हर वर्ग के पात्रों को अपने काव्यों में स्थान दिया है। राजमहलों में रहने वाले राजा-रानी अपने वैभव से आकर्षित करते हैं, तो सामान्य बस्ती में रहने वाले ग्वाल इत्यादि का सरल जीवन भी स्पृहणीय है। राजकर्मचारियों में उच्चस्तर के मंत्री भी हैं और निम्नस्तर के सेवक भी। राजकुमारियों की सखियाँ भी हैं और रानियों की दासियाँ भी। जिनमति जैसी कुलवधू हैं तो वसन्तसेना जैसी वारांगना भी।

सब कुछ मिलाकर कवि की पात्रयोजना प्रशंसनीय है। काव्यों में चित्रित पात्रों की मनोदशा उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचायक है। काव्य में कोई भी व्यक्ति अपने पूर्वजन्म से कितना प्रभावित रहता है, इसका चित्रण करने में भी कवि ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

महाकवि ज्ञानसागर का वर्णन कौशल

कवि अपने काव्यों में कुछ पदार्थों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करता है। यह वर्णन काव्य का अत्यन्त अनिवार्य अङ्ग है। यहाँ कुछ प्रश्न उठते हैं कि पदार्थों के इतने वर्णन की आवश्यकता क्या है? क्या पदार्थों का उल्लेख मात्र होने से काम नहीं चल सकता? क्या इस वर्णन के कारण हम प्रसंग से दूर नहीं हो जाते? इन प्रश्नों का उत्तर है कि यदि केवल कथा-प्रवाह को ही ध्यान में रखकर पदार्थ का नाम-मात्र के लिये उल्लेख कर दिया जाय, तो इतिहास और काव्य में क्या अन्तर होगा, और यदि इन पदार्थों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन रोचक न हो तो ऐसे पदार्थ-वर्णन को काव्य के स्थान पर भूगोल की संज्ञा देनी होगी। कवि का काव्य इतिहास और भूगोल से सर्वथा भिन्न, पाठक के हृदय में शीघ्र आनन्दोत्पत्ति के लिए होता है। अतः यह आवश्यक है कि कवि जिस पदार्थ का भी वर्णन करे, वह उस पदार्थ की प्रायः सभी विशेषताओं से युक्त भी है और रोचक भी।

उदाहरणस्वरूप यदि काव्य में इतना लिख दिया जाय कि अमुक राजकुमार अमुक नदी-तीर या अमुक नगर में गया, और इन नदी-तीर या नगर इत्यादि की विशेषताओं का उल्लेख न हो तो सहृदय सामाजिक सोचेगा कि राजकुमार उन-उन स्थलों पर क्यों गया? उसके हृदय में आए हुए इस प्रश्न का उत्तर है कि राजकुमार नदी-तीर की जनशून्यता, गोपनीयता, प्राकृतिक-सुन्दरता, शीतलता और पवित्रता से आकृष्ट होकर उस नदी-तीर पर गया होगा। अथवा अपने दुःखी मन को शान्त करने के लिए नदी-तीर पर भ्रमण करने की उसकी इच्छा होगी। इसी प्रकार राजकुमार किसी नगर में इसलिए गया क्योंकि उसके हृदय में अत्यन्त वैभवपूर्ण नगर को देखने की चाह थी, वह नगर युद्धस्थल होने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकता है, एक धार्मिक-स्थल भी हो सकता है, उस नगर और अपने नगर के बीच में व्यापारिक या राजनैतिक सम्बन्ध भी लाभदायक हो सकते हैं। उस नगर के वैकृतिक-स्थल इतने आकर्षक हैं कि फिर-फिर उन्हें देखने की इच्छा होती है।

इसलिए कवि इन पदार्थों का विस्तृत एवं रोचक वर्णन करता है तो सहृदय सामाजिक के हृदय में उठे हुए प्रश्नों का उत्तर भी मिल जाता है। इन वर्णनों के

द्वारा कवि अपने विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का भी परिचय दे देता है। इन पदार्थों के रोचक-वर्णन से वह पाठक को आकर्षित कर पाने में भी सफलता प्राप्त करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य में वर्णन-कौशल कवि की समर्थता को प्रकट करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

कवि अपने काव्यों में पदार्थों का जो वर्णन करता है, उसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक तो प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन और दूसरा वैकृतिक पदार्थों का वर्णन। अब सर्वप्रथम आपके सामने प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रकृति शब्द प्र उपसर्ग पूर्वक कृ धातु के योग से निष्पन्न हुआ है। प्र= उत्तम, कृति=रचना, इस प्रकार प्रकृति शब्द का तात्पर्य है, सर्वोत्कृष्ट रचना। हम प्रकृति की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं :—

"प्रकृति ईश्वर की वह सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसके निर्माण में मानव का कोई योग-दान नहीं होता।"

प्रकृति और मानव का ऐसा सम्बन्ध है कि कोई भी मानव उसकी क्रीड़ा से अप्रभावित नहीं रह सकता। गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति भी प्रकृति की गोद में सरलता की अनुभूति करता ही है। जब साधारण मानव-समाज ही प्रकृति-नटी के क्रिया-कलापों से इतना प्रभावित होता है तो फिर सहृदय-सामाजिक की तो बात ही क्या है? उसके हृदय की सुकुमार भावनाएं ही प्रकृति के कार्य-कलापों को देखकर प्रस्फुटित होती हैं। इसीलिए प्रत्येक कवि मानव द्वारा निर्मित पदार्थों की अपेक्षा प्रकृति-वर्णन में अपने हृदय के भावों को उड़ेल कर रख देता है। उसके काव्य का उपागमन किसी निराश हृदय में आशा का सञ्चरण है; हिमालय की ऊंची और दृढ चोटियां किसी की ऊंची कल्पना और हृदय की दृढ़ता की प्रतीक हैं, सरोवर में खिले हुए कमल किसी के सुकुमार चरणों का स्मरण दिलाते हैं; पूर्णचन्द्र किसी के मुख की आभा को लेकर उदित होता है, पक्षियों का मधुर कलरव किसी की वीणा का निदान है—इस प्रकार कवि प्रकृति-नटी के सौन्दर्य का वर्णन करने के साथ ही उसका उपयोग उपमान इत्यादि के रूप में भी कर लेता है।

प्रायः सहृदय-सामाजिक होने के कारण कवि प्रकृति-वर्णन करता ही है, यह बात उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाती है। फिर किसी भी काव्य में प्रकृति वर्णन एक अनिवार्य तत्त्व है। प्रकृति-वर्णन काव्य में आई हुई घटनाओं के उपस्थितीकरण के लिए आवश्यक देश-काल और वातावरण का निर्माण करने में सहयोग देता है। कवि अपने काव्य के पात्रों के लिए सुखपूर्ण वातावरण को उपस्थित करते समय प्रकृति की सुकुमारता का वर्णन करता है और पात्रों की दुःखमयी अवस्था में उसी प्रकृति का भीषण रूप भी पाठकों के सामने उपस्थित कर देता है। संयोगावस्था में

जो चन्द्रोदय किसी नायक वा नायिका के लिए सुखकारी होता है, वियोगावस्था में वही नायक या नायिका की पीड़ा को बढ़ा देता है। इस प्रकार कवि-कृत प्रकृति-वर्णन काव्य में निष्पन्न होने वाले रस की निष्पत्ति में भी विशेष रूप से सहायक होता है। साथ ही उसके हृदय की सुकुमारता, प्रकृति-प्रेम और वर्णन-कौशल का भी वास्तविक ज्ञान पाठक को हो जाता है। अतएव हम कह सकते हैं कि काव्य में वर्ण्यमान छन्द, अलङ्कारों के समान ही प्रकृति-वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है। प्रकृति वर्णन से और भी अधिक मनोहारिणी बनी हुई कृतियां साहित्यक प्रकृति वर्णन के महत्त्व को सिद्ध कर देती हैं।

संस्कृत-साहित्य का विकास जितना अधिक प्रकृति-नटी के अंक में हुआ, उतना राज्याश्रय में नहीं। यही कारण है कि संस्कृत-साहित्य का प्रकृति-वैभव अन्य किसी भी साहित्य के प्रकृति-वैभव से कहीं बढ़ा-चढ़ा है। कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तल' और बाणभट्ट की 'कादम्बरी' इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। अपनी चिरसहचरी प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करते समय, कवि कभी-कभी तो अपना वर्ण्य-विषय को भी भूल जाता है; और काव्य के पूरे सर्ग में प्रकृति-नटी के ही वैभव का वर्णन करता चला जाता है। यह बात पद्य-कवियों में गद्य-कवियों की अपेक्षा अधिक देखी जाती है। क्योंकि गद्य-कवियों का प्रकृति-वर्णन कथा-प्रवाह के अधीन होता है।

हमारे आलोच्य महाकवि श्रीज्ञानसागर भी अपने काव्यों में स्थान-स्थान पर प्रकृति-नटी के इस रूप-वैभव से प्रभावित होते हैं। उन्होंने यथासम्भव अपने काव्यों में प्रकृति-नटी की रूप-सम्पदा का वर्णन किया है। महाकवि का यह प्राकृतिक-वर्णन कृत्रिमता और कल्पना की उड़ान से दूर स्वाभाविकता से ओत-प्रोत है। इनके काव्यों में वर्णित रात्रि जहां पाठक के हृदय में भीति को उत्पन्न करता है, वहां प्रभात-वर्णन एक नवीन-आशा को लिए हुये उपस्थित होता है। एक ओर पाठक ग्रीष्म की भयानकता से कम्पित हो उठता है तो दूसरी ओर वसन्त का सौन्दर्य उसे आकर्षित कर लेता है। अपने काव्यों में श्रीज्ञानसागर ने पर्वत, नद, नदी, सरोवर, समुद्र, द्वीप, ऋतु, प्रभात, सन्ध्या, रात्रि इत्यादि प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन करते हुए, प्रकृति के प्रति अपने असीम प्रेम को प्रस्तुत किया है।

अब आपके समक्ष इन सभी प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन प्रस्तुत किया जायगा।

पर्वत-वर्णन—

पर्वतीय स्थलों के अवलोकन से प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभव होता है कि प्रकृति का जो सौन्दर्य हमें गगनचुम्बी पर्वतों पर देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। इसीलिए सहृदय कवि अपने काव्यों में प्रकृति के इस

मनोहारी अङ्ग का वर्णन अवश्य ही करता है। कुछ नहीं तो सूर्योदय या चन्द्रोदय के बहाने ही वह पर्वत-सुषमा का चित्रण कर देता है; या उसे कोई तीर्थस्थान घोषित करके अपने काव्य के पात्रों को वहाँ पहुँचा देता है।

हमारे आलोच्य महाकवि श्रीज्ञानसागर ने अपने काव्यों में क्रमशः सुमेरु, हिमालय-विजयार्ध, कांचन और श्रीपुर इन पाँच पर्वतों का यथास्थान वर्णन किया है। सर्वप्रथम देवगिरि सुमेरु का वर्णन आपके समक्ष प्रस्तुत है:—

सुमेरु-पर्वत—

इस पर्वत का उल्लेख कवि ने अपने काव्यों में तीन बार किया है, दो बार वीरोदय में और एक बार जयोदय में। वीरोदय में सर्वप्रथम जम्बूद्वीप की स्थिति को बताते समय सुमेरु पर्वत का वर्णन मिलता है; जिसके अनुसार उसे एक लाख योजन ऊंचा बताया गया है। सुमेरु पर्वत को स्वर्ण-निर्मित माना गया है, इसलिए कवि का यह कथन है कि सुमेरु-पर्वत, पृथिवी को धारण करने वाले शेषनागरूप दण्ड के ऊपर स्थित सुवर्ण-कलश के समान है।[1]

इसके पश्चात् कवि ने सुमेरु-पर्वत का वर्णन भगवान् महावीर के जन्माभिषेक के समय किया है। भगवान् महावीर के जन्म के बाद देवगण अभिषेक के उद्देश्य से बालक महावीर को सुमेरु पर्वत पर ले गये। वह सुमेरु पर्वत चारों ओर वनों से घिरा हुआ था; और उसमें जन-समुदाय को छाया देने वाले फलदार वृक्ष थे, इस प्रकार वह पर्वत पुरुषार्थ-चतुष्टय-समन्वित, जनसुखकारी पुरुष के समान शोभायमान था। उस सुर पर्वत पर सोलह जिन-मन्दिर अवस्थित थे, जिस प्रकार नीति-चतुष्टय से समन्वित पुरुष जनता पर शासन करता है, उसी प्रकार वह सुमेरु पर्वत अपने चार वनों से सभी पर्वतों के राजा के रूप में विद्यमान था। देवगणों ने जब भगवान् को सुमेरु पर्वत के उच्च शृङ्ग पर अवस्थित किया, तब ऐसा लगता था, मानो किसी के सम्मुख न झुकने वाला सुमेरु पर्वत भगवान् की गरिमा से प्रभावित होकर झुक गया है।[2]

---

१. 'संविद्धि सिद्धि प्रगुणामितस्तु पाथेयमाप्तं यदि वृत्तवस्तु।
इतीव यो वक्ति सुराद्रिदम्भोदस्तस्वहस्तांगुलिरङ्गिनम्भोः॥
अधस्थविस्फारिफणीन्द्रदण्डश्छत्रायते वृत्ततयाऽप्यखण्डः।
सुदर्शनेऽत्युत्तमशैलदम्भं स्वयं समाप्नोति सुवर्णकुम्भम्॥
—वीरोदय, २।२-३

२. सुरदन्तिशिरःस्थितोऽभवद् घनसारे स च केशरस्तवः।
शरदभ्रसमुच्चयोपरि परिणिष्ठस्तमसां स चाप्यरिः॥
वनराजचतुष्टयेन यः पुरुषार्थस्य समर्थिना जयन्।
प्रतिभाति गिरीश्वरः स च सफलच्छायविधिं सदाचरन्॥

'जयोदय' में सुमेरु-पर्वत-वर्णन से सम्बन्धित वर्णन वहाँ है, जहाँ जयकुमार सुलोचना के साथ तीर्थयात्रा के लिए जाते हैं। सूर्य और चन्द्र को साथ-साथ धारण करता हुआ वह पर्वत जयकुमार को ऐसा लगता है, जैसे वह पीताम्बर को धारण करने से देह का लुप्त हो गई वास्तविक छवि वाले और दोनों हाथों में चक्र और शङ्ख धारण करने वाले भगवान् विष्णु का रूप हो। बादलों के विस्तार के संयोग से सुन्दर, ताजे चन्दन से युक्त तलहटी वाला वह पर्वत, अपने आधे शरीर में पार्वती को स्थित करने वाले भगवान् शङ्कर के समान सुशोभित था।[1]

हिमालय-पर्वत—

श्रीज्ञानसागर के काव्यों में हिमालय-पर्वत का वर्णन दो बार मिलता है; एक बार वीरोदय में, और एक बार जयोदय में। वीरोदय के स्थल पर भारतवर्ष

जिनसद्मसमन्वयच्छलाद् धृतमूर्त्तीनि बिभर्ति यो बलात्।
अपि तीर्थकरत्वकारणान्युपयुक्तानि गतोऽत्र धारणाम्॥
निजनीतिचतुष्टयान्वयं गहनव्याजवशेन धारयन्।
निखिलेष्वपि पर्वतेष्वयं प्रभुरूपेण विराजते स्वयम्॥
गुरुमभ्युपगम्य गौरवे शिरसा मेरुरुवाह संस्तवे।
प्रभुरेष गभीरताविधेः स च तन्वा परिवारितोऽब्धिधेः।,

—वीरोदयः ७।१८-२२

१. विहाय सासौ विहरन्महाशयः शयद्वयं सकलयंश्च सावलः।
बलप्रभुश्चैत्यनिकेतनं प्रति प्रतिष्ठितो मेरुगिरौ विभाविह।
परीतपीताम्बरलुप्तदेहरुक् करद्वयी प्रापितचक्रकम्बुकः।
विराजते विष्णुरिवाजतेजसा गिरौ रवीन्दू द्वयतः स उद्वहन्।
पयोधराभोगसुयोगमंजुलां तटीं समन्ताद् हरिचन्दनाञ्चिताम्।
गिरीश्वरः सेवत एव सततां निजार्द्धदेहानुमितां च पार्वतीं॥
अथापि जम्बूपदेऽन्तरीरके स एव सम्यक् खलु कर्णिकायते।
विदेहदेवोत्तरदेशपत्रकैः पयोधिमध्ये श्रिय आसनायते॥
चतुर्गुणीकृत्य जिनालयानसौ सदातनान्दिक्षु महाजनाञ्चितान्।
जिनश्रियः षोडशकारणानि वै बिभर्ति भव्यानि च तानि सर्वदा॥
यदन्तिके द्वौ द्विरदौ विमुञ्चतो जलोरुधारामपि नीलनैषधौ।
रवीन्दुबिम्बे द्वयतोऽब्जदर्पणे वहन्तसौ तल्लभते रमाकृतिम्॥
तथैव सव्येतरनीलनैषधः सटायमानोडुपरम्परः परम्।
गिरीः सनीलाम्बरपीतवाससो विरञ्चिपुत्रस्य बिभर्ति सच्छबिम्॥
भियेव भव्यो भवभावितच्छलस्स्वयं महोद्यानचतुष्टयच्छलात्।
सुवृत्त एताः परिवर्तिताकृती विभर्ति धर्मार्थनिकामनिर्वृतीः॥

—जयोदय, २४।४-११

की भौगोलिक स्थिति बनाते हुए कवि ने हिमालय का अतिसंक्षिप्त किन्तु आलंकारिक वर्णन किया है, उसे कवि के ही शब्दों में देखिए—

'हिमालयोल्लासिगुणः स एष द्वीपाधिपस्येव धनुर्विशेषः'।[1]

(अर्थात् भारतवर्ष के उत्तरपूर्व में हिमालय की स्थिति है, जो भारतवर्ष रूप धनुष की डोरी के समान है)।

सम्भवतः कवि को अन्य स्थल पर इस पर्वत वर्णन को विस्तार देने की अभिलाषा रही होगी, इसीलिए उसने इस प्रथम स्थल में हिमालय का वर्णन केवल उसकी भौगोलिक स्थिति बताने के लिए ही किया है।

हिमालय-वर्णन हमें दूसरे स्थल पर, वहाँ देखने को मिलता है, जहाँ जयकुमार और सुलोचना सुमेरु, कुलाद्रि, श्रीपुरु इत्यादि पर्वतों में भ्रमण करने के बाद इस पर्वत पर पहुँचते हैं। तब वह इस पर्वत के नैसर्गिक-सौन्दर्य से अपनी पत्नी को परिचित कराते हुए कहते हैं :—हे प्रिये ! बादलों का स्पर्श करने वाला, ऊंची चट्टानों वाला, सूर्य की गति को अवरुद्ध करता हुआ यह पर्वत अभ्युदय को प्राप्त कर रहा है। इस पर्वत में सालवृक्ष का वन है। अपनी बर्फ के बहाने ही मानो यह पर्वत शुभ्र-यश को धारण कर रहा है। यहाँ पर जल से परिपूर्ण शुभ्र-बादलों की पंक्ति दृष्टिगोचर हो रही है। देवगण इस पर्वत पर देवाङ्गनाओं के साथ विहार कर रहे हैं। अपने अन्दर मणियों को धारण करने वाला शिलातलों को प्रकट करने वाला, गुफाओं वाला यह पर्वत ऊंची चोटियों से सुशोभित है। किसी राजा के यहाँ फहराते हुए ध्वजा के वस्त्रों के समान, झरनों से यह पर्वतराज, मानों स्वामित्व पाने का इच्छुक हो रहा है। इस पर्वत की गुफायें ऐसी लगती हैं, मानों पहले इन्द्र के वज्र द्वारा किए गए घाव हों। × × × ×। शब्दालंकार से अलंकृत इसी पर्वत का वर्णन देखिए—

"विपल्लवानामिह सम्भवोऽपि न विपल्लवानामुत शाखिनामपि।
सदा रमन्तेऽस्य विहाय नन्दनं सदा रमन्ते रुचिनस्ततः सुराः॥"

—जयोदय, २४।५५

अर्थात् इस पर्वत पर विपत्ति के लेशमात्र को भी सम्भावना नहीं है, यहाँ के वृक्षों में पत्तों का अभाव नहीं है। इस पर्वत पर देवगण देवांगनाओं के साथ नन्दन वन को छोड़कर सदैव रमण करते रहते हैं)।

अपनी पत्नी के समक्ष उस पर्वत का वर्णन करके जयकुमार ने देवमन्दिर देखा।[2]

१. वीरोदय,
२. जयोदय, २४।३७-५७

विजयार्द्ध-पर्वत—

इस पर्वत का कवि ने दो बार उल्लेख किया है, एक बार वीरोदय में और एक बार भद्रोदय में। प्रथम बार तो मात्र इसकी भौगोलिक स्थिति ही बता दी गई है[1] पर दूसरी बार अवश्य ही कवि ने इस पर्वत का कुछ विस्तार से वर्णन किया है—

विजयार्द्ध पर्वत भारतवर्ष के मध्य में स्थित है। अतः यह भारतवर्ष को दो बराबर भागों में विभक्त करता है। इसकी कान्ति कर्पूर की राशि को और आकृति शेषनाग को पराजित करने वाली है। कर्पूर की राशि से भी अधिक श्वेतिमा को धारण करता हुआ यह पर्वत, पृथ्वी रूपी वृद्धा स्त्री की चोटी के समान सुशोभित हो रहा है। इस पर्वत ने अपने विस्तार से आकाश, पृथ्वी, पाताल तीनों लोकों को घेर रखा है। इस पर्वत की जो श्रेणियाँ हैं—उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी। इन दोनों श्रेणियों में विद्याधरों की नगरियाँ अवस्थित हैं। इस पर्वत में वहाँ के राजाओं को विजय दिलाने वाली दो सुरंगे विद्यमान हैं। इसके सुखद वातावरण में विहार करने के लिए विद्याधर-कुमारियां आती ही रहती हैं, और यहाँ आकर गीत गाया करती हैं। सुन्दर स्त्री की शोभा को धारण करने वाली इस पर्वत की तलहटी में केले के खम्भे, लीची के पेड़ एवं काश-पुष्प विद्यमान है। इस पर्वत के उत्तर में अलकापुरी की स्थिति है।[2]

१. वीरोदय, २।८

२. भरतेऽत्र गिरिर्महान्नुरुविजयार्द्धो धरणीभृतां गुरुः।
य उदक् समुपस्थितोऽमुतः स्थलतः सम्वलतः प्रवर्तिनः।
स्वयमर्द्धजयाय मध्यमो भरतस्यास्ति च चक्रवर्तिनः॥
स्वरुचा घनसारभारजित्प्रजरत्या अवनेः स भूधरः।
ननु शेषमशेषयन्नहि पृथुवेणीप्रतिमोऽतिसुन्दरः॥
शिखरैरभिगम्य योऽम्बरं स्वदृषद्भिः सकलं भुवस्तलम्।
त्रिजगत्सु पुनारसातलमयमाक्रामति मूलतोऽचलः॥
तटिनीद्वयतो महीभृति परिणामेन महीयसी सती।
नगरीश्विति राजते वृहन्निह विद्याधरलोकसंग्रहः॥
प्रबिभर्ति सुरंगयुग्मकं सहजं येन नरेश्वरोऽनकम्।
इत उत्तरसम्भवस्थलविजयायैति अपैति चोद्वलः॥
इह पर्यटनार्थमागतां खगकन्यासु सुरीं समाहृताम्।
अनिमेषदृशैव पश्यति न परं भेदमुतामरोऽस्यति॥
विपिनेऽस्य कुतोऽपि कौतुकान्मिलितागीतवतीसु तासु का।
अतिमादंवतो नभश्चरी स्ववभातीव गुणेन किन्नरी॥

श्रीपुरु-पर्वत—

इस पर्वत का वर्णन केवल एक स्थल पर मिलता है। जयोदय महाकाव्य में सुमेरु पर्वत को देखने के बाद जयकुमार की इच्छा श्रीपुरुपर्वत देखने की हुई। जब गजराज अपने शरीर की कान्ति को धारण करने वाले, उस पर्वत की शिलाओं को अपना प्रतिद्वन्द्वी गज समझकर उन पर अपने दांतों का प्रहार करता है तो वे टूट जाती हैं। उस पर्वत पर विचरते हुए हाथी ऐसे लगते हैं, मानों पृथ्वीपति इस पर्वत की सेवा के लिए उतरे हों।

× × × अनेक मणियों के समूह की कांति से इन्द्रधनुष की मनोहारिणी शोभा को वह पर्वतराज बादलों तक फैला रहा है। कहीं-कहीं पर नीलमणियों की कान्ति से उत्पन्न बादलों की भ्रान्ति के कारण असमय में ही मयूर नृत्य करने लगते हैं। × × × इधर-उधर घूमते हुए चमरी मृगों के बहाने सुन्दर ओसकणों से चमकता हुआ वह पर्वत उत्तम यश को नित्य धारण करता है। इसके स्वच्छ तट पर कहीं-कहीं गुंजाफल गिरते रहते हैं। × × × गुलाब के फूलों से युक्त यह पर्वत श्यामल, सुवर्ण, लोहित और धवल कांति को धारण कर रहा है। गंगा के शुभ्र जल रूप यश से मानो वह पुरु पर्वत श्वेत बनाया गया हो। समीपस्थ गंगा नदी वाले उस पर्वत को देखकर मनस्वियों के हृदय में अमृततुल्य उस गंगाजल को पीने की इच्छा हो जाती है × ×।[1]

एक स्थल पर कवि ने कंचनगिरि का भी उल्लेख किया है।[2]

वास्तव में पर्वत स्वाभिमान के प्रतीक हैं और ये प्रकृति के आवश्यक अंग हैं। कोई भी कवि जब प्रकृति-वर्णन में लीन होता है तो उसका पर्वतीय-प्रकृति-वर्णन अन्यस्थलीय प्रकृति-वर्णन से कहीं अच्छा बन पड़ता है। श्रीज्ञानसागर ने कथाप्रसंग के अनुसार अपने काव्यों में पर्वतों का उल्लेखमात्र भी किया है और आवश्यकता होने पर उनका विस्तृत वर्णन भी किया है। उनका पर्वतीय वर्णन जहाँ उनके भौगोलिक ज्ञान का परिचय देता है, वहाँ आलङ्कारिक होने के कारण उनके काव्य-शास्त्रीय ज्ञान का भी परिचय देता है।

रुचिमल्लकुचाञ्चिता तटीह पवित्रोद्भविकाशसंकटी।
युवतेः सदृशी महीभृति मृदुरम्भोरुतया मता सती॥
अलकानगरी गरीयसीह गिरावुत्तरतो नहीदृशी।
+ + + ॥

—श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।१-१०

१. जयोदय, २४।१६-३४
२. भद्रोदय, ५।३१

वन वर्णन—

प्रकृति-वर्णन करते समय पर्वत-वर्णन के बाद वन-वर्णन का क्रम है। क्योंकि प्रायः वन पर्वतीय स्थलों में ही होते हैं। वनों में ऋषि-मुनियों के आश्रम एवं कुटी तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्र-पुष्प मन को प्रसन्न करते हैं, साथ ही हिंसक जीवधारियों की उपस्थिति मन में भय भी उत्पन्न करती है। श्रीज्ञानसागर की रचनाओं में नौ बार वनों का उल्लेख मिलता है—भद्रोदय में एक बार, वीरोदय में चार बार, जयोदय में भी चार बार। इनमें से भद्रोदय में आसनाभिधान वन का,[1] वीरोदय में सप्तपर्ण, आम्र, अशोक और चम्पक से युक्त वन का,[2] कल्पवृक्ष वन का,[3] केवल नाम-मात्र के लिए उल्लेख मिलता है तथा वीरोदय में ही एक अन्य स्थल पर वन-सामान्य का एक श्लोक में कुछ आलङ्कारिक वर्णन भी मिलता है।[4] इसी प्रकार जयोदय में हिमालय वर्णन के प्रसङ्ग में सालवान का भी एक श्लोक में उल्लेख मात्र मिलता है।[5]

वीरोदय में वसन्त-ऋतु वर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने यत्र-तत्र वन की शोभा का उल्लेख किया है :—

वसन्त-ऋतु में सारा वन-प्रदेश पुष्पों के पराग से युक्त हो रहा है। कोयल रूप पुरोहित, कामाग्नि रूप यज्ञाग्नि, भ्रमर-गुंजार रूप वाद्य-ध्वनि वन देवता और ऋतुराज वसन्त के शुभ-पाणिग्रहण का मनोहारी दृश्य उपस्थित कर रहे हैं। × × × वसन्त ऋतु में वन में गुलाब और कमल के पुष्प विकसित हो रहे हैं। कमलिनी का पराग वायु के वेग से कमल को जीतने वाले हाथों को धारण करने वाली स्त्रियों की आँखों में पड़ रहा है।[6]

जयोदय में एक स्थल पर काव्य-नायक जयकुमार का शरीर वन-शोभा से रोमांचित हो गया है। वन शोभा से आकृष्ट होकर वह धीरे-धीरे दिशाओं में दृष्टि डाल रहे थे। वहाँ उन्होंने साधुजनों से युक्त, सुन्दर-सुन्दर बगीचों को देखा है और हर्ष का अनुभव किया है।[7]

सुलोचना से विवाह के पश्चात् जयकुमार गङ्गा-नदी के तट पर पहुँचे। इस स्थल पर वन-क्रीड़ा के प्रसंग में वन-शोभा का वर्णन मिलता है। गंगा-नदी के

---

१. भद्रोदय, ४।६
२. वीरोदय, १३।११
३. वही, १३।१३
४. वही, १०।२१
५. जयोदय, २४।३८
६. वीरोदय, ६।१३-१४, ३४-३७
७. जयोदय, १।८८-९०

सुन्दर तट पर जयकुमार की इच्छा उत्सव मनाने की हुई। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर वन देखा। वह वन उस समय कल्पवृक्षों से अतिमनोहारी लग रहा था। सुन्दर-सुन्दर पुष्पों से युक्त वह वन, नन्दन वन के समान पुण्यात्मा ऋषियों के द्वारा सेव्य था। उस वन में ऊंची-ऊंची शाखाओं वाले वृक्ष थे। वह इन फलों की शोभा से समृद्ध था। उसमें सुन्दर-सुन्दर बिल्वफल थे। × × × अपने मुख से स्पर्द्धा के फल को देने के लिए, खिले हुए पुष्पों को लेने के लिए उत्सुक महिला, भ्रमर के द्वारा पीड़ित होकर सीत्कार कर रही थी। ऐसे वन में जयकुमार और सुलोचना सुशोभित हो रहे थे।[1]

जब जयकुमार-सुलोचना के साथ विवाह करके लौट र थे, तब मार्ग में एक सुन्दर वन देखा। तब उन्होंने पत्नी सुलोचना से कहा—'यह वन मनुष्य को रोमांचित करने वाला है। हे प्रिये! इस वन की पवित्र वायु, हमारे मार्ग जनित श्रम का हरण करने वाली है। इस वन में अंजन वनों से मार्ग की पृथ्वी कुलवनों के समान सुशोभित हो रही है। यहाँ के मोरों की कान्ति तुम्हारे केशों जैसी है। हे मन्दगामिनि! तुमसे ही चलने की शिक्षा यहाँ के हाथी प्राप्त कर रहे हैं और देखने की कला में अपने को तुमसे पराजित पाकर यह मृग भाग रहा है।[2]

इस प्रकार श्रीज्ञानसागर के काव्यों में प्राप्त होने वाले वन-वर्णन को देखने से पता चलता है कि कवि ने वन-वर्णन बहुत विस्तृत नहीं किया है, जहाँ किया भी है वहाँ कथा-प्रसंग के अनुसार किया है। श्री ज्ञानसागर के वन-वर्णन का एक वैशिष्ट्य और है, वह यह कि उनका वन-वर्णन सुकुमारता से ओत-प्रोत है। कहीं भी कवि ने हिंसक पशुओं से होने वाली वन की भयानकता का उल्लेख नहीं किया है। मेरे विचार से यदि कवि वनों की निर्जनता, भयानकता, दुर्गमता और हिंसक पशुओं की उपस्थिति का चित्र खींचकर एक बार पाठक के हृदय को कम्पित कर देता तो उसका वन-वर्णन पूर्णता को प्राप्त हो जाता।

नदी-वर्णन—

नदी-वर्णन भी कविकृत प्रकृति-वर्णन का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। प्रकृति-प्रेमी प्रत्येक सुकवि जहाँ पर्वतों और वनों का आलङ्कारिक-वर्णन करने में कुशल होता है, वहाँ वसुन्धरा के वक्षस्स्थल पर हार के समान सुशोभित नदियों का स्वभावोक्तिपूर्ण वर्णन करने में भी उसकी कुशलता प्रकट हो जाती है।

महाकवि श्रीज्ञानसागर की रचनाओं में नदियों का उल्लेख आठ बार आया

---

१. जयोदय, १४।१-१४
२. वही, २१।४१।४६

है। दो स्थलों पर भारतवर्ष और अंगदेश की स्थिति को बताते समय[1] कवि ने नदियों का केवल नाम-मात्र के लिए ही उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त एक स्थल पर विदेह देश की नदियों का, एक स्थल पर अवन्ती-प्रदेश में बहने वाली शिप्रा नदी का, और चार स्थलों पर देवनदी गङ्गा का वर्णन किया है।

विदेह-देश की नदियों का वर्णन करते हुए कविवर लिखते हैं कि 'विदेह देश की नदियाँ स्वच्छ जल वाली थीं, और निरन्तर जल से भरी हुई होकर प्रवाहित होती थीं। उनमें विकसित नीलकमलों के बहाने अपने नेत्रों को खोलकर पृथ्वी मानों उस देश की समृद्धि का अवलोकन करती है। समीपस्थ वृक्षों को छोड़कर नीचे समुद्र की ओर जाती हुई नदियों का यह कार्य वैसा ही है जैसे कोई प्रमदा अपने समीपस्थ तरुण को छोड़कर किसी वृद्ध पुरुष से मिलन के लिए जाय।[2]

अवन्ती प्रदेश में बहने वाली शिप्रा नदी का भी कवि ने बड़ा ही आलङ्कारिक वर्णन किया है :—

अवन्ती प्रदेश में शिप्रा नाम की नदी है, जिसके सम्पर्क से शीतल होकर वायु पथिक जनों का पसीना सुखाने में समर्थ होता है। इस नदी में मछलियाँ प्रसन्नता-पूर्वक क्रीडा करती हैं। अत्यधिक लहरों से युक्त होने के कारण यह नदी बहुत से सिंहों वाली अटवी की समता करती है। अमृततुल्य जल से परिपूर्ण होने के कारण स्वर्गोपम हो रही है, गम्भीरता को धारण करती हुई ब्रह्मविद्या के समान हो रही है, अपने जल से दोनों किनारों को ऐसे तोड़ रही है, जिस प्रकार एक व्यभिचारिणी स्त्री अपने दोनों कुलों-पितृकुल और पतिकुल को कलंकित करती है।[3]

यह पहले ही कहा जा चुका है कि देवनदी गङ्गा का वर्णन कवि ने चार स्थलों पर किया है। सर्वप्रथम आकाशगङ्गा का प्रसङ्ग आता है। भगवान् महावीर के जन्माभिषेक हेतु इन्द्र देवगणों सहित कुण्डनपुर के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में देवगण आकाशगङ्गा के दर्शन करते हैं, उन्हें वह गङ्गा शुभ्रसलिला होने के कारण ऐसी लगती है, जैसे वह अत्यन्त वृद्ध देवलक्ष्मी की वेणी हो, या स्फटिक मणियों से विरचित स्वर्गलोक के मुख्य द्वार की देहली हो।[4]

गङ्गा नदी के वर्णन से सम्बन्धित दूसरा स्थल वहाँ पर है, जहाँ जयकुमार सुलोचना के साथ काशीनगरी से निकलकर गङ्गा-नदी के तट पर ठहरते हैं। गंगा

---

१. (क) वीरोदय, २।८
(ख) सुदर्शनोदय, २।१५
२. दयोदय, २।१५-१७
३. दयोदय, १ श्लोक २१ के बाद का चतुर्थ गद्यभाग।
४. वीरोदय, ३।७-९

नदी पृथ्वी पर विस्तीर्ण, मनोहर और जयकुमार को प्रसन्न करने वाली थी। इस नदी के बहते हुए जल को देखकर जयकुमार को ऐसा लगता है मानों उनके तेज से पिघलती हुई बर्फ हो। × × × इस नदी के किनारे राजहंसों की पंक्ति सुशोभित थी। इसमें अनेक कमल थे। इस प्रकार लहरों से युक्त, जिनवाणी के समान यह नदी संताप को दूर करने वाली थी। कुशावास से युक्त यह नदी अपने सौन्दर्य से सीता की समता धारण करती थी। नदी के किनारे वृक्षों में स्थित तोते पथिकों के मन को आकर्षित करते थे। कमलिनियों से युक्त, पक्षियों से शब्दायमान कीर्ति की साक्षात्स्वरूप, यह नदी जगत्त्रय को जीतने की इच्छा करने वाले कामदेव की सेना के समान थी। कामदेव के द्वारा प्रज्वलित अग्नि से प्रस्फुटित होती हुई चिनगारियों के समान, इस नदी के कमलों के पराग के कण मानों कामदेव की आज्ञा से मनस्वियों के मन को सन्तप्त कर रहे थे। इस नदी के तट पर तिरछी गर्दन वाला बगुला आते हुए मनस्वियों के मन में श्वेत कमल की भ्रान्ति उत्पन्न कर रहा था। इस नदी के तट पर बने हुये शिविर दूर होने के कारण कलहंसों की उपमा को धारण कर रहे थे × × × जल पीने का इच्छुक घोड़ा, इस नदी के जल में पड़ते हुए अपने प्रतिबिम्ब को देखकर, पिपासा को भूलकर अपनी प्रिया को याद कर रहा था। इस नदी के कमलों से सुवासित जलों से हाथियों का झुंड स्नान कर रहा था। + + + इस नदी के निर्मल जल में पड़ती हुई अपनी छाया को देखकर एक हाथी उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी गज समझकर, उसे मारने के लिए जैसे ही क्रोध से दौड़ा, वैसे ही वह नदी के जल में डूबकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। हाथी उस नदी के जल में अपने शरीर के सन्ताप को शान्त कर रहे थे। कोई हाथी इस नदी के जल से कमलनाल ले रहा था। कोई हाथी अपने सिर पर आदर-सहित धूलि धारण कर रहा था। हाथियों का झुण्ड इस नदी के जल में क्रीड़ा करके उसे व्याकुल कर रहा था। ऐसी पवित्र जलवाली इस नदी के समीप में राजा जयकुमार अपनी सेनासहित ठहरा।[1]

गङ्गानदी के वर्णन से सम्बन्धित तृतीय स्थल वह है, जहाँ जयकुमार की वन-क्रीड़ा का वर्णन है।[2] इसके अतिरिक्त कवि ने गङ्गा नदी का विस्तृत और सुन्दर वर्णन वहाँ पर किया है, जहाँ सुलोचना डूबते हुये जयकुमार की रक्षा करने के लिये मन्त्रों का जाप करती हुई गङ्गा-नदी के जल में प्रविष्ट होती है।[3] उपर्युक्त नदी-वर्णन से ही कवि के कौशल का परिचय सुधी पाठकों को हो जाएगा, इसलिए इन

---

१. जयोदय, १३।५३-११६
२. वही, १४।४२-४६
३. वही, २०।४५-७५

दो स्थलों से सम्बन्धित नदी-वर्णन को विस्तार न देकर मैंने इनका परिचय मात्र कराना ही उचित समझा है।

सरोवर-वर्णन—

कविवर ज्ञानसागर की कृतियों के परिशीलन से ऐसा लगता है कि सरोवर-वर्णन की सम्भवतः उन्होंने उपेक्षा कर दी है। कवि ने सरोवर अथवा उसके तीर का वर्णन पाँच बार किया है, पर वह है अत्यन्त संक्षिप्त। विदेह, मालव और अंग देशों की भौगोलिक-स्थिति का परिचय कराते समय कवि ने वहाँ स्थित सरोवरों का उन्हीं देशों की समृद्धि को बताने के लिए उल्लेखमात्र ही किया है।[1] यदि हम एक स्थल पर उल्लिखित उनके अत्यल्प सरोवर-वर्णन को देखें, तो हम यह कल्पना अवश्य कर सकते हैं कि यदि कवि ऋतु इत्यादि के समान सरोवरों के सौन्दर्य का वर्णन करता, तो उसे सफलता अवश्य ही मिलती। वह लघु उद्धरण द्रष्टव्य है :—

"सुप्रसिद्धमालवनामदेशः——ललिताप्सरः।
परिवेषतया च किलापरस्वर्गप्रदेश इव समवभासते।"

—(दयोदय, १ श्लोक ९ के बाद का गद्यभाग।)

(अर्थात्—सुन्दर जलाशयों से युक्त वह मालव देश———मनोहारिणी अप्सराओं से युक्त स्वर्ग के समान सुशोभित होता है।)

ग्रीष्म-ऋतु-वर्णन-प्रसङ्ग में कवि ज्ञानसागर ने सरोवर और उसके तीर का भी अतिसंक्षिप्त किन्तु स्वाभाविक चित्रण किया है :—

जिस प्रकार श्रेष्ठ राजा के शासन करने पर राज्य में मूर्खों का अभाव होने लगता है, उसी प्रकार सहस्ररश्मि भगवान् सूर्य का प्रताप प्रचण्ड होने पर सरोवर का जल भी सूखने लगता है। सरोवर का जल अत्यन्त तप जाता है, इसीलिए भ्रमर कमलों का आश्रय छोड़कर समीपस्थ वृक्षों की लताओं का आश्रय ले लेते हैं। सरोवर के तीर पर राजहंस कमल युक्त मृणालखण्ड को मुंह में रखकर शोभित होते हैं।[2]

समुद्र-वर्णन—

नदी और सरोवर तो जलसम्पदा के छोटे-छोटे रूप हैं, पर जलसम्पदा का वास्तविक सौन्दर्य तो हमें रत्नाकर में ही देखने को मिलता है। श्रीज्ञानसागर ने भी अपनी रचनाओं में सात बार समुद्र का और दो बार उसके तट का वर्णन किया है।

---

१. (क) वीरोदय, २।१९
(ख) सुदर्शनोदय, १।१९
(ग) दयोदय, १।श्लोक ९ के बाद का गद्यभाग।

२ वीरोदय, १२-८-१०

जम्बूद्वीप[1] और भारतवर्ष की स्थिति बताते हुए[2] कवि ने उपमान रूप में समुद्र का केवल उल्लेखमात्र ही किया है। वर्षा ऋतु-वर्णन के प्रसंग में समुद्र का संक्षिप्त वर्णन किया गया है :—

वर्षा ऋतु में अत्यधिक जल वाली नदियों के जल को पाकर समुद्र के जल में वृद्धि हो रही है। अत्यधिक जल-ग्रहण करने से उस समुद्र के ऊपरी भाग में फेन-समूह वैसे ही दृष्टिगोचर हो रहा है, जैसे मद्यपान से उन्मत्त पुरुष के मुंह से झाग निकलने लगते हैं।[3]

भगवान् महावीर के जन्माभिषेक के समय कवि ने समुद्र का विस्तृत वर्णन किया है। नवजात शिशु भगवान् वीर का अभिषेक करने के लिए देवगण उन्हें सुमेरु पर्वत पर ले गए। क्षीर सागर के जल से उनका अभिषेक किया गया। मानों वह समुद्र वृद्धावस्था के कारण ऊपर नहीं जा पा रहा था, इसलिए देवगण ही उसे भगवान् के समीप ले जाकर उस पर बड़ी कृपा कर रहे थे। उसकी तट-सम्पदा युवती स्त्री की शोभा को धारण कर रही थी, जिसमें लीची, अखरोट, बहेड़ तथा तिलक जाति के वृक्ष थे, देवगण इस तट-सम्पदा का निरीक्षण कर रहे थे। जिस प्रकार एक वृद्ध पुरुष का शरीर झुर्रियों वाला होता है वैसे ही समुद्र में तरंगें थी। कोमल पत्तों और आम्रवृक्षों को विकसित करने वाली शरजाति की घास से युक्त समुद्र की वेला देवताओं के लिए सुखदायिनी हुई जब देवगण भगवान् के अभिषेक-हेतु क्षीरसागर से जल ले जा रहे थे, तब ऐसा लगता था मानों वह कोई पूज्य वृद्ध व्यक्ति हो। समुद्र के जल को पवित्र करने के लिए ही मानों इन्द्र ने उससे भगवान् का अभिषेक किया। भगवान् के शरीर के लिए उस समुद्र की जलधारा अंजलि के समान अत्यल्प हो गई। उसका जल चारों ओर फैलकर, दिशाओं की प्रसन्नता को प्रकट सा करने लगा। ऐसा लगता था, मानों भगवान् की देह से उपकृत एवं प्रसन्न समुद्र इन्द्रपुरी पहुंच रहा हो।[4]

महाकवि ज्ञानसागर ने समुद्र एवं समुद्र-तट का जो यह स्वाभाविक चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया हैं, यह प्रसंगवश ही है। इसीलिए उनके अन्य प्राकृतिक पदार्थों के वर्णन के समान यह विस्तार नहीं पा सका है। फिर भी उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों से युक्त होने के कारण यह समुद्र-वर्णन अतीव मनोहर है।

---

१. वीरोदय, २।४
२. वीरोदय, २।७, ८।७-८
३. वीरोदय, ४।२३-२४
४. वीरोदय, ७।२२-२८, ३३

यदि कवि इसे और भी विस्तार देता, तो इसकी मनोहारिता में और भी वृद्धि होती ।

द्वीप-वर्णन—

महाकवि ज्ञानसागर ने अपनी रचनाओं में द्वीप-वर्णन चार स्थलों पर किया है । इन चार स्थलों में से दो स्थलों में वर्णन तो क्या किया है, केवल नाम-मात्र के लिए द्वीपों का उल्लेख कर दिया है —एक तो मालव देश की स्थिति बताते समय जम्बूद्वीप का उल्लेख किया है दयोदय चम्पू, १ श्लोक ९ के बाद का गद्यभाग; और दूसरा जब भद्रमित्र धनार्जन हेतु घर से प्रस्थान करता है, तब रत्नद्वीप का उल्लेख किया है श्री समुद्रदत्तचरित्र ३।१७. पर वीरोदय में भारतवर्ष की स्थिति बताते हुए कवि ने जम्बूद्वीप का कुछ भी वर्णन किया है, जो इस प्रकार है :—

असंख्य द्वीपों वाली, समुद्र से घिरी हुई पृथ्वी के मध्य में 'जम्बू' नामक सर्वद्वीपशिरोमणि द्वीप प्रतिष्ठित है । इस जम्बूद्वीप के मध्य में एक लाख योजन ऊंचा सुमेरु पर्वत है । जम्बूद्वीप के नीचे शेषनाग रूप दण्ड स्थित है; और ऊपर सुवर्ण-कलश के समान सुमेरु पर्वत है, इन दोनों के होने से जम्बूद्वीप छत्र की उपमा को धारण कर रहा है । इस गोलाकार द्वीप के चारों ओर समुद्र की स्थिति है । इसके सात-क्षेत्रों में, दक्षिण-दिशा में स्थित किसी क्षेत्र में भारतवर्ष की स्थिति है (वीरोदय, २।१-५ ।)

इसी प्रकार अङ्ग-देश की स्थिति को बताते समय भी कवि ने पुनः जम्बूद्वीप का वर्णन किया है :—

विद्वानों को आनन्दित करने वाला, द्वीपाधिपति, पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुपर्वत को मुकुट के समान धारण करता हुआ, पृथ्वी के मध्य में प्रसिद्ध जम्बूद्वीप स्थित है । यह जम्बूद्वीप पुरुषार्थचतुष्टय का आश्रय स्थान है, अनादिसिद्ध है, विचारशील लोग इसकी चर्चा करते ही रहते हैं । इस प्रकार का यह श्रेष्ठद्वीप, पुण्यरूप सम्पदा के मंगलदीप की समता को धारण करता है । इसके एक भाग में भरत नामक क्षेत्र की अवस्थिति है (सुदर्शनोदय, १।११-१२ ।)

ऋतु-वर्णन—

प्रत्येक मानव के जीवन की कुछ विशिष्ट अवस्थाएं होती हैं, जिनका क्रम है—शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढावस्था और वृद्धावस्था । इसी प्रकार प्रकृति देवी भी कुछ विशिष्ट अवस्थाओं में होकर गुजरती है—ये अवस्थाएं हैं—शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म और प्रावृट् । प्रकृति अपनी इन अवस्थाओं से स्वयं तो प्रभावित होती ही है, साथ ही अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक प्राणी को भी प्रभावित कर देती है । फिर सुकुमार हृदय कवि तो उससे कुछ ज्यादा ही प्रभावित होता है । अपने आलोच्य महाकवि ज्ञानसागर की

रचनाओं के परिशीलन से ज्ञात होता है कि प्राकृतिक पदार्थों में यदि किसी पदार्थ ने उन्हें अधिक प्रभावित किया है, तो वह है ऋतु। उन्होंने प्रायः प्रत्येक ऋतु का सर्ग-पर्यन्त वर्णन करने का सफल प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने काव्यों में वसन्त, शरद्, हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षा का वर्णन किया है। तो लीजिए, सर्वप्रथम ऋतुराज वसन्त का ही अभिनन्दन कीजिए—

वसन्त-वर्णन—

कवि की रचनाओं में वसन्तवर्णन दो स्थलों पर मिलता है। ऋतुराज वसन्त-वर्णन का प्रथम स्थल तो वह है, जब सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी गर्भवती होती हैं। उस समय ऋतुराज वसन्त के आगमन पर कामदेव के बल में वृद्धि हो गई, सूर्य उत्तरायण पर अवस्थित हो गया, पृथ्वी के चारों ओर फूलों का पराग बिखर गया, वायु इस पराग को वनस्थली में बिखरा रहा है, पुंस्कोकिल का मधुर-स्वररूप मंत्रोच्चारण, कामदेवरूप अग्नि, भ्रमरों का गुंजन, वन-लक्ष्मी और ऋतुराज के विवाह का दृश्य उपस्थित कर रहे हैं। अशोक-वृक्ष पीड़ित-पथिक को मूर्च्छित करके अपने नाम को निरर्थक कर रहा है। चन्दन-वृक्षों की सुरभि से सुरभित मलय-पर्वत से आने वाली हवा उत्तरदिशा की ओर प्रवहमान हो रही है। एक ओर यह ऋतु स्त्रियों को वन-विहार के लिए प्रेरित कर रहा है, दूसरी ओर विरही जनों को संताप दे रहा है। वसन्त-ऋतु में विकसित होती हुई आम्रमंजरी कोयल को सुख पहुँचा रही है। खिले हुए पुष्प त्रिश्वविजिगीषु कामदेव के बाण हैं; और कोयल का स्वर प्रयाण-सूचक शंख निनाद है। भ्रमर कामी-पुरुष के समान ही आम्रमंजरी को चुम्बन कर रहे हैं। भ्रमरों से शब्दायमान, आम्रमंजरी से संयुक्त, सहकार के वृक्ष पथिक जनों की उनकी स्मृति जगाकर पीड़ित कर रहे हैं। पुष्पोत्पत्ति, भ्रमरगुंजन मलयानिलप्रवहण, नारीचेष्टा, कोकिलस्वर—ये पाँचों पुष्पधन्वा कामदेव के बाण हैं, इन्हीं से कामदेव संसार में विजय प्राप्त करता है, और वियोगी जनों को पीड़ित करता है। विकसित पुष्पों का पराग चारों ओर इस प्रकार फैल रहा है, मानों वसन्तश्री के मुख की शोभा को बढ़ाने वाला चूर्ण हो, या वियोगी जन के शरीर में लगाने वाली भस्म हो, या कामदेव की पताका का वस्त्र हो। भ्रमरों की पंक्ति पथिक-जनों को रोकने वाला अंकुश है, अथवा वनस्थली की सुन्दर वेणी है, या कामरूपी गजराज को बाँधने की शृंखला है। पलाश के लाल फूल पथिक को सहज ही में उसकी स्त्री का स्मरण करा देते हैं। सूर्य की मन्दगति को लक्ष्य में रखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि सूर्य सम्भवतः विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित मृगनयनी स्त्रियों के मुखकमलों का दर्शन करने के कारण ही गगन-मार्ग पर धीरे-धीरे जाता है। भ्रमर और कोकिलों द्वारा मानों कामदेव लोगों को अपने वश में कर रहा है। लवंगलता पल्लवित और पुष्पित हो रही है। दक्षिण दिशा से आने वाली

वायु मानों सूर्य से वियुक्त दक्षिण-दिशा का निःश्वास है। कमलिनियों का पराग स्त्रियों की आंखों में पड़ रहा है, ऐसा लगता है मानों कामदेव ने, स्त्रियों के हृदय रूपी धन को चुराने के लिए उन कमलिनियों को नियुक्त किया है। आम्रवृक्षों में संलग्न भ्रमर आज मानों वियोगी जनों को दुःख पहुँचाने का पाप करने वाले वसन्त को दुःखी कर रहे हैं। इस वसन्त ऋतु में वन-प्रदेश अत्यधिक शोभा से सम्पन्न हो रहे हैं। चारों ओर कामदेव का साम्राज्य फैल रहा है। रसराज शृङ्गार के आतिथ्य में जनसमुदाय जुट गया है और लोग प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।[1]

दूसरे स्थल पर वन-विहार के पूर्व मानों कवि अपनी शब्दावली से वसन्त का स्वागत करता है :—

स वसन्त आगतो हे सन्तः, स वसन्तः ॥
परपुष्टा विप्रवराः सन्तः सन्ति सपदि सूक्तमुदन्तः ॥१॥
लताजातिरुपयाति प्रसरं कौतुकसान्मधुरवरं तत् ॥२॥
लसति सुमनसामेष समूहः किमुत न सखि विस्फुरदन्तः ॥३॥
भूरानन्दमयीयं सकला प्रचरति शान्तेः प्रभवं तत् ॥४॥

— — —

स वसन्तः स्वीक्रियतां सन्तः स वसन्तः ॥
सहजा स्फुरति यतः सुमनस्ता जडतायाश्च भवत्यन्तः ॥१॥
वसनेभ्यश्च तिलाञ्जलिमुक्त्वाऽऽह्वयति तु दैगम्बर्यन्तत् ।
सहकारतरोः सहसा गन्धः प्रसरति किन्नहि जगदन्तः ॥३॥
परमारामे पिकरवश्रिया भूरानन्दस्य भवन्तः ॥४॥[2]

(वसन्त ऋतु सब प्राणियों का मन लुभाती है। कोयल की मधुर वाणी के साथ ही साथ विप्रवरों के वेदमन्त्रों का स्वर भी सुनाई दे रहा है। चारों ओर विभिन्न प्रकार के पुष्प खिल रहे हैं। सारी पृथ्वी पर आनन्द का साम्राज्य हो रहा है।

जाड़े की जड़ता को समाप्त करने वाली इस वसन्त ऋतु का स्वागत करो, जिसमें पुष्प विकसित होते हैं; मनुष्य अधिक वस्त्र पहिनना छोड़ देता है। आम्र-वृक्ष की सुरभि चारों ओर फैल रही है। कोयल की वाणी सुनाई दे रही है।)

ग्रीष्म-वर्णन—

पूर्वभवों का स्मरण करने के अनन्तर भगवान् के मन में उठने वाले विचार वृद्धि को प्राप्त हुए। उस समय ग्रीष्मकाल का आगमन हुआ; और दिन वृद्धिगत होने लगे। सूर्य की प्रचण्डता पर कवि की उद्भावना देखिये :—

---

१. वीरोदय, ६।१२-३७
२. सुदर्शनोदय, ६।१-२ गीत।

"स्वतो हि संजृम्भितजातवेदा निदाघके रुग्ण इवोष्णरश्मिः ।
चिरादथोत्थाय करैरशेषान् रसान्निगृह्णात्यनुवादि अस्मि ॥"

(वीरोदय, १२।२)

(अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में बढ़ती हुई सूर्य की गर्मी को देखकर ऐसा लगता है, मानों वह कोई रुग्ण पुरुष हो। जैसे कोई रोगी पुरुष बहुत समय के बाद शय्या से उठता है और जठराग्नि बढ़ने से जो कुछ मिले, उसे ही खाने में शीघ्रता से प्रवृत्त हो जाता है, उसी प्रकार यह सूर्य भी पृथ्वी के सब रसों को मानों खा रहा है।

इस समय वृक्ष अपनी छाया को उसी प्रकार नहीं छोड़ते हैं, जिस प्रकार पुरुष अपनी नवविवाहिता स्त्री को अपने समीप से नहीं हटाता। गर्म हवा विरहिणी स्त्रियों के उष्ण-श्वास के समान प्रवहमान है। पथिक जनों में जलाभिलाषा बढ़ रही है। ग्रीष्म के संताप से व्याकुल हाथी, समीप में सोते हुए सर्प को कमलनाल समझकर अपनी सूंड़ से खींचने लगते हैं। वियोग से सन्तप्त स्त्री के समान ही पृथ्वी भी सूर्य के ताप से सन्तप्त है। + + + कुत्तों की लपलपाती जिह्वा को देखकर ऐसा लगता है, मानों उनके भीतर प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला जिह्वा के बहाने बाहर आ रही हो। जलाशयों का जल घटता जा रहा है। सरोवरों के तपते हुए जलों के कारण भ्रमर कमल को छोड़कर लताओं का आश्रय ले रहे हैं। सूर्य के प्रचण्ड ताप के कारण अपने मुख में कमलयुक्त मृणाल खण्ड को धारण करके सपरिवार सरोवर के तीर पर बैठा हुआ राजहंस श्रेष्ठ राजा के समान सुशोभित हो रहा है। सूर्य के प्रखर ताप से सन्तप्त होकर सर्प दीर्घश्वास छोड़कर अवरुद्ध गति वाला होकर, छाया प्राप्ति की इच्छा से मोर के पङ्खों के नीचे ही बैठ जाता है, उसे यह ध्यान ही नहीं रहता कि मोर से उसकी शत्रुता है। गर्मी के कारण पक्षीगण छज्जों के नीचे बने हुए घोंसलों में आश्रय ले लेते हैं; और मयूरगण भी किसी वृक्ष की घनी, सरस, भीगी हुई क्यारी में चुपचाप बैठ जाते हैं। गर्मी से संतप्त होकर भैंसा अपने अंग की छाया को सघन कीचड़ समझकर उसमें लोट-पोट होने लगता है। किन्तु वहाँ की गर्म-धूलि से और भी पीड़ा को प्राप्त करता है। कुछ धनिक लोग खस से युक्त कुटी में निवास करते हैं; कुछ भूमिगत तहखानों में रहते हैं, निद्रा भी मनुष्यों की दोनों आंखों के पलकों की शरण ले लेती है। वायु तालवृक्ष के डंठलों पर ही पहुँच जाता है, और जल भी सन्तप्त होकर पसीने के बहाने प्रमदाओं के स्तनों की शरण लेता है। यहाँ तक कि कामदेव को भी चन्दन-चर्चित-नवविवाहित स्त्रियों के स्तनों का आश्रय लेने की आवश्यकता हो जाती है। पथिक की गति अवरुद्ध हो जाती है। सूर्य की किरणों से जले हुए भीतरी भाग वाले वृक्षों के कटोरों में पक्षियों के बच्चे प्यास से पीड़ित होकर ऐसे करुण शब्द करते हैं मानों गर्मी से पीड़ित होकर वृक्षों के कोटर ही चिल्ला रहे हों। दिवसों की दीर्घता पर कवि भद्रभावना करते हैं—औरों की बात छोड़ दी जाय, हिम का शत्रु सूर्य

भी मानों हिमालय की गुफा में विश्राम करके ही आगे जाता है, इसीलिए दिवस बड़े हो जाते हैं। सूर्यास्त के पश्चात् भी पृथ्वी बहुत देर तक गर्म रहती है। वसन्तकाल में जो वायु कमलिनियों की सुगन्धि से सुरभित होकर जनसमुदाय को आनन्दित करता है, आज वही वायु गलियों की धूलि को चारों ओर फेंकता हुआ पागल पुरुष के समान अधीर होकर भ्रमण कर रहा है। लू चल रही है। ग्रीष्म ऋतु उसी पुरुष को नहीं सताती है, जो कि स्त्रियों के सामीप्य से होने वाले सुखों का उपभोग करता है। प्रस्वेद से पूर्ण स्तनों और नाभिप्रदेश वाली स्त्रियाँ सरसियों के सूख जाने पर कामीजनों के लिए सरसी का सा आचरण कर रही हैं।[1]

वर्षा-वर्णन—

जब आषाढ़ मास में कुण्डनपुर के राजा सिद्धार्थ की पटरानी प्रियकारिणी गर्भवती हुई, उस समय ग्रीष्म-काल से उत्पन्न संताप को दूर करने वाली वर्षा-ऋतु का आगमन हुआ। इस ऋतु का आगमन होने पर पृथ्वी औषधियों, धान्यों और शरकण्डों से युक्त हो गई है। चारों ओर नीलकमल विकसित होने लगे हैं, अत्यधिक जलवृष्टि के कारण लोगों का आवागमन कम हो गया है। सर्प-समुदाय में वृद्धि हो गई है। अनेक दिनों के बाद भी सूर्य के दर्शन नहीं हो रहे हैं। सारा संसार एक विशाल सरोवर सा प्रतीत होता है। मेढकों का स्वर सुनाई दे रहा है, कोयल की ध्वनि कहीं नहीं सुनाई पड़ती है। मेघगर्जना सुनकर मयूर सुन्दर नृत्य प्रस्तुत कर रहे हैं। बादलों के मध्य में बिजली चमक रही है। ग्रीष्मकाल में समुद्र से लिया गया जल उसी को लौटाया जा रहा है। कभी-कभी ओले भी गिर रहे हैं। कमलोत्पत्ति नहीं हो रही है। यह ऋतु विधवा युवतियों को सन्तप्त कर रही है। कुटज वृक्ष के पुष्पों पर गिरी हुई जल की बूंदें मोतियों के समान प्रतीत होती हैं। वायु अपने प्रचण्ड वेग से चातक के मुख में जाने वाली जलबिन्दु को रोककर उसके ऊपर अत्याचार कर रहा है। रात्रि होने पर जुगनूं चमक रहे हैं, ऐसा लगता है मानों आकाश का नक्षत्र-समूह मेघों से पीड़ित होकर पृथ्वी के पास आ गया है। स्त्रियाँ झूला झूल रही हैं। समुद्र के जल में वृद्धि हो रही है, इसलिए उसमें फेन उत्पन्न हो रहा है। मेघाच्छन्नता के कारण उत्पन्न अन्धकार, दिवस और रात्रि में एकरूपता उत्पन्न कर रहा है, ऐसे समय में चक्रवाकी ही दिवस और रात्रि में भेद करती है। पृथ्वी में नवीन द्वार के अंकुर उत्पन्न हो गए हैं।[2]

शरद्-वर्णन—

सर्वज्ञ भगवान् के दर्शनों के लिए ही मानों शरद् ऋतु का पृथ्वी पर आगमन

---

१. वीरोदय, १२-१-३०
२. वीरोदय, ४।२-२७

हुआ। यह ऋतु बादलों से रहित, निर्मल आकाश में तारागणों को धारण करती हुई नवविवाहिता स्त्री के समान सुशोभित हो रही है। लोगों को प्रमुदित करने वाली स्त्री के समान ही इस ऋतु में कमल विकसित हो रहे हैं। शरद्-ऋतु में नवविवाहिता से मिलने वाले आनन्द का आस्वाद कवि के शब्दों में लीजिए :—

"परिस्फुरत्तारकता ययाऽपि सिताम्बरा गुप्तपयोधरापि।
जलाशयं सम्प्रति मोदयन्ती शरन्नवोढेयमथाव्रजन्ती ॥"

(वीरोदय, २१।२)

इस ऋतु में साठी धान तैयार हो गया है। सूर्य उत्तरायण से दक्षिणायन की ओर जा रहा है। मेघों के सम्पर्क से प्राप्त होने वाला वर्षाकालीन जो जल लोगों के लिए कष्टकारक हो गया था, वही अमृतवर्षी चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से आस्वाद्य हो गया है।

योगियों की सभा में परमात्मरूप सम्बन्धी शब्द का उच्चारण होता है, तो शरद्-ऋतु में हंसों का शब्द सुनाई देता है। योगियों की सभा में भोगी-जन मौन धारण करते हैं तो शरद्-ऋतु में सर्पभक्षी मयूर भी चुप हो जाते हैं। योगियों को सभा में सज्जनों का समूह स्वर्गप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है तो शरद्-ऋतु में चमकते हुए तारागण आकाश में आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं

शरद्-ऋतु में विकसित हुए कमलों में भ्रमर गुंजन कर रहे हैं। पृथ्वी में कीचड़ भी नहीं है। शरत्कालीन पृथ्वी के सौन्दर्य को देखकर ऐसा लगता है मानों कमलमुखी पृथ्वी भ्रमररूपी नेत्रों से शरद्-ऋतु के सौन्दर्य का अवलोकन कर है।

इस ऋतु में आकाश और सरोवर की छवि तुल्य है। सरोवरों में श्वेत कमल विकसित हो रहे हैं; और आकाश में तारागणों की कान्ति फैलर ही है। सरोवर बालहंस से सुशोभित हैं; आकाश में चन्द्रमा गतिमान है। आकाश रूपी गृह से मेघों के दोष को चन्द्रिका रूपी निर्मल जल से धो दिया गया है। रात्रि ने मानों वहाँ चन्द्रमा-रूपी दीपक रखकर तारागणों रूपी अक्षतों को बिखेर दिया है। बिखरे हुए तारागणों को देखकर ऐसा लगता है मानों शरद्-ऋतु के समीप में चन्द्रमा को जाता हुआ देखकर वर्षा-ऋतु क्रोध में आकर मुट्ठी में स्थित मणियों को पटक कर वहाँ से चली गई है। धान्य चरने के लिए आया हुआ मृगसमूह, धान्य की रक्षा करने वाली सुन्दर बालिकाओं के मधुर गीतों को सुनकर धान्य को चरना भूल जाता है। हंसों के सुन्दर शब्दों से पराजित होकर मोर मानों अपने पंखों को उखाड़कर फेंक रहे हैं। कृषक अपने तैयार धान्य को खलिहानों में एकत्र कर रहे हैं। कामदेव के क्रोध से भगवान् सूर्य भी अप्रभावित नहीं है; अतः वह सिंह राशि को छोड़कर कन्या-राशि पर पहुँच गए हैं। सप्तवर्ण वृक्ष की सुगन्धि से सुगन्धित होकर शरत्कालीन वायु मैथुन करने से शिथिल वधुओं की कामवासना को बढ़ा रही है। पुष्पों से झरने

वाले मधुसमूह से युक्त भूमण्डल पर चलता हुआ राहगीर जब देखता है कि भ्रमर कमलिनी का चुम्बन करता है, तो वह अत्यधिक विचलित हो जाता है। कमल-समूह पर बैठी हुई भ्रमरपंक्ति ऐसी लगती है मानों शरद् ऋतु द्वारा लिखित कामदेव का प्रशस्तिलेख हो। पुष्पित कांस रूप चंवर, सप्तपर्ण रूप छत्र और हंसस्वररूप चारणों की विरुदावली कामदेव को सम्राट् बना रहे हैं। इस ऋतु को रात्रि चन्द्रमा सहित अत्यधिक शोभाशालिनी होती है। अन्य ऋतु की रात्रि ऐसी शोभा धारण नहीं करती। ऐसी ही इस सौन्दर्यशालिनी ऋतु में भगवान् महावीर मुमुक्षु हुए।[1]

शीत (हेमन्त) वर्णन—

अपने पिता के सम्मुख विवाह के प्रस्ताव को ठुकराकर जब भगवान् महावीर संसार की स्वार्थपरक मूर्खता को दूर करने का विचार कर ही रहे थे कि शीतकाल का आगमन हो गया। सूर्य कन्या राशि को छोड़कर धन राशि पर आ गया है। इन दिनों हिमपात होते समय जब कोई स्त्री कुएं से जल भर कर लाती है, तो बर्फ से उसके बाल इस प्रकार श्वेत हो जाते हैं कि उसके बच्चे भी उसे नहीं पहिचानते। लोगों की कान्ति मलिन हो रही है, और वृक्ष नष्ट हो रहे हैं। शीतकालीन वायु स्त्रियों के केशों और वस्त्रों को अस्तव्यस्त कर रहा है। इस समय चारों ओर से बन्द मकान में शय्या में स्थित धनी पुरुषों को तो कोई कष्ट नहीं है, किन्तु वस्त्र और आवास के अभाव से ग्रस्त दरिद्र व्यक्ति एकमात्र भगवन्नामस्मरण का ही सहारा लेकर रात्रि व्यतीत करता है। ऊँट गालों को फुलाकर तरह-तरह के स्वर कर रहे हैं। वानरों की चंचलता समाप्त हो रही है। शीतकाल ने कामदेव की चेष्टाओं को निष्फल कर दिया है। रात्रि दिन की अपेक्षा बड़ी हो गई है। चारों ओर शीत का साम्राज्य है, उष्णता केवल पृथ्वी के कुओं में, वटवृक्षों में और सुन्दरी स्त्रियों के स्तनों में ही विद्यमान है। परिवार के सब सदस्य अंगीठी का सेवन कर रहे हैं। सम्भवतः सूर्य भी शीत से व्याकुल होकर × × × जल्दी सोकर देर में उठता है, इसलिए दिन छोटे हो जाते हैं। या यह हेमन्त ऋतु सूर्य से युद्ध करके उसकी उष्ण किरणों को स्त्रियों के स्तनों में पहुँचा रही है। वृक्षों के पत्ते गिर रहे हैं, जल की धारा का उल्लेख भी हृदय को कम्पित कर रहा है। मनुष्य सदैव अग्नि के सामने ही बैठने का विचार करते हैं। पक्षियों का संचार रुक गया है। पुरुष अपनी स्त्री के अधर बार-बार चूमने की इच्छा करता है।

शीतकाल के कारण नवविवाहिता स्त्री अपने पति से अर्द्धरात्रि के समय उपेक्षा नहीं रख पाती। यह शीतकाल तुषार के द्वारा सब को पीड़ित कर रहा है। शीत से रक्षा के लिए ही मानों जनों ने भी बर्फ रूप वस्त्र धारण कर लिया है। कुन्द की श्वेत कलियाँ शीत से भयभीत तारागणों के समान प्रतीत होती हैं। शीतकाल के कारण

---

१. वीरोदय, २१।१-२०

मनुष्यों के दाँत बज रहे हैं। लोग सामने अग्नि और पीठ में सूर्य का सेवन साथ-साथ करने की इच्छा करते हैं। शीतकाल के कारण, हिरण हाथी, सिंह इत्यादि जीव भी अपनी चेष्टाओं में प्रवृत्त नहीं हो पा रहे हैं।[1]

कविवर ज्ञानसागर की कृतियों के ऋतुवर्णन के परिशीलन से हमें उनके प्रकृति प्रेमी-कवि होने का वास्तविक ज्ञान हो जाता है। शरद्-ऋतु और वसन्त-ऋतु के वर्णन में जहाँ हम प्रकृति की सुकुमारता पाते हैं, वहाँ ग्रीष्म-ऋतु में प्रकृति की भयंकरता का भी दर्शन होता है। वैसे तो शरत्कालीन आकाश की आभा ही ऐसी निराली होती है कि अनायास ही दर्शक को वह अपनी ओर खींच लेती है, किन्तु महाकवि श्रीज्ञानसागर जी ने नवविवाहिता स्त्री के रूपक द्वारा शरत्काल का जो उत्प्रेक्षापरक चित्र खींचा है, वह भी सहृदय पाठकों के लिए नयनाभिराम बन गया है। कवि का ग्रीष्म-वर्णन भी यायातथ्य से परिपूर्ण है। साथ ही उत्प्रेक्षाओं से सुसज्जित होने के कारण, भयंकर होते हुए भी सुधी जनों को आनन्दित करके उसे सहस्ररश्मि सूर्य के प्रचण्ड प्रताप से अवगत कराने में भी समर्थ है।

काल-वर्णन—

यह संसार परिवर्तनशील है। यहाँ विद्यमान पदार्थों की एक सी दशा नहीं रहती। मनुष्य सुख, सुखातिशय, सुख-दुःख का सम्मिश्रण, दुःख इत्यादि को समय-समय पर प्राप्त करता है। इसी प्रकार प्रकृति का स्वरूप भी परिवर्तनशील है, कभी प्रकृति-नटी के नीलाम्बर में सूर्योदय होता है, कभी चन्द्रोदय। प्रतिदिन प्रकृति प्रभात, दिवस, सन्ध्या और रात्रि इन चार अवस्थाओं से होकर गुजरती है। प्रकृति प्रेमी श्रीज्ञानसागर ने अपने काव्यों में प्रकृति की इन चारों ही दशाओं का वर्णन कथा-प्रसंग के अनुसार किया है। सर्वप्रथम आशा का संचरण करने वाले प्रभात का वर्णन आपके समक्ष प्रस्तुत है :—

प्रभात-वर्णन—

श्रीज्ञानसागर ने अपनी दयोदय, सुदर्शनोदय और जयोदय नामक तीन कृतियों में प्रभातवर्णन किया है। दयोदय में यह प्रसङ्ग उस समय मिलता है, जब रात्रि में गुणपाल के कहने से एक चाण्डाल सोमदत्त को मारने के लिए एक नदी के तीर पर ले आता है, पर दया उत्पन्न हो जाने के कारण उसे वहीं छोड़कर चला जाता है। जब रात्रि बीत जाती है तो गुणपाल के इस नृशंस कार्य की सूचना सारे संसार को देने के लिए ही मानों मुर्ग शब्द करने लगते हैं। रात्रि की समाप्ति पर नक्षत्र विलीन हो गए हैं; कमलिनी विकसित हो गई है; मनुष्य लोग निरपराध छोटे-छोटे बालकों को मारने के व्यापार में प्रवृत्त है, इसीलिए भगवान् सूर्य मानों

---

१. वीरोदय, ९।१८-४५

क्रोध से लाल होकर सहसा प्रकट हो गये हैं। मनुष्यों द्वारा किये जाते हुए इस अधम कार्य को देख पाने में असमर्थ होकर ही मानों कुमुद्वती ने अपने नेत्र बन्द कर लिये हैं। जिस प्रकार कांग्रेस का उदय होने पर भारतवर्ष से अंग्रेजी राज्य का अवसान हो गया, उसी प्रकार सूर्य के उदय होने पर पृथ्वी से अन्धकार भी विलीन हो गया है। प्रातःकालीन पक्षिगणों के कलरव के सम्बन्ध में कवि की यह सुन्दर उद्भावना द्रष्टव्य है :—

"तेजोभर्तुस्तमोहर्तुः प्रभावमभिकांक्षिणः।
विरुदावलीमप्यूचुश्चारणा इव पक्षिणः॥"
(दयोदय, ३।८)

अर्थात् जिस प्रकार शत्रुओं का नाश करने वाले राजा की स्तुति चारण इत्यादि गाते हैं, उसी प्रकार अन्धकार का विनाश करने वाले सूर्य रूप राजा की ये पक्षिगण स्तुति करने लगे।

पुरुष लोग अपनी स्त्रियों के कोमल भुजबन्धन से निकलकर यथेच्छ रूप से इधर-उधर वैसे ही जाने लगे, जैसे कमलनाल से निकलकर भ्रमर इधर-उधर घूमने लगते हैं।[1]

सुदर्शनोदय में कवि ने प्रभात-वर्णन जिनेन्द्रदेव की प्रातःकालीन उपासना के समय गाए जाते हुए भजनों के माध्यम से किया है :—

अरे! देखो यह प्रभातवेला उपस्थित हो गई है, जन्ममरणरूप सांसारिक कष्ट को दूर करने वाले जिनेन्द्रदेव रूपी भास्कर के उदय से पापपूर्ण रात्रि, शुभ-चेष्टावली इस भारतभूमि से न जाने किधर को चली गई है। शुभप्रकाश वाले चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर आकाश में तारे नहीं दिखाई दे रहे हैं। प्रभात-समय में आकाश में पक्षिगण इधर-उधर घूम रहे है। ब्राह्मण लोग स्नानादिक दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर देवपूजन के लिए कमलों को तोड़ रहे है। इस प्रभातकाल में गुलाबादि पुष्पों के ऊपर मंडराते हुए भ्रमरों की मलिन कान्ति दृष्टिगोचर हो रही है। अतः इस वेला में, भूमण्डल में प्रजा की शान्ति के लिए भगवान् जिनदेव के चरणों की वन्दना करनी चाहिए।[2]

जयोदय में श्रीज्ञानसागर ने जब जयकुमार सुलोचना के साथ गङ्गा नदी के तट पर ठहरते हैं, वहाँ के,—प्रभात का बड़े विस्तार के साथ, सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन किया है। आपके सामने स्थालीपुलाकन्याय से उस वर्णन से सम्बन्धित कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

---

१. दयोदय, ३ श्लोक ७ के बाद के गद्यभाग से श्लोक १० के बाद के गद्यभाग तक।
२. सुदर्शनोदय, ५। प्रथम गीत।

(क) 'यात्येकतोऽपि तु कुतोपि विरज्य राज-
न्यात्माधिपे परदिशां प्रतियाति राजन् ।
सत्पुष्पतल्पमसकौ रजनी दलित्वा
रोषारुणा विकृतवाग्भरतश्छलित्वा ।।
(जयोदय, १८।३२)

प्रभातकाल में एक ओर तो रागरहित चन्द्रमा प्रस्थान कर रहा है, और दूसरी ओर सूर्य भी पूर्वदिशा में पहुँच रहा है। इस समय रात्रि वंचिता होने के कारण पुष्पशय्या को बिदलित कर रही है और क्रोध से लाल हो रही है।

(ख) 'निस्नेहजीवनतयापि तु दीपकस्य
संशोच्यतामुपगतास्मि दशा प्रशस्य ।
संघूर्ण्यमानशिरसः पलितप्रभस्य
यद्वन्मनुष्यवपुषो जरसान्वितस्य ।।'
(जयोदय, १८।३७)

प्रातःकाल के समय, तेल से रहित होने से हिलती हुई शिखा वाला, क्षणिक कान्ति वाला, सुन्दर दीपक शोचनीय-दशा को प्राप्त हो गया है, जैसे प्रेम से रहित, जीवन के थोड़ा अवशिष्ट रहने से, हिलते हुए शिर वाला, श्वेत बालों वाला और वृद्धावस्था से पीड़ित मनुष्य शोक का विषय हो जाता है।

(ग) 'नैर्मल्यमेति किल धौतमिवाम्बरन्तु
स्नाता इवात्र सकला हरितो भवन्तु ।
प्राग्भूभृतास्तिलकवद्रविराबिभाति
चन्द्रस्तु चोरवदुदास इतः प्रयाति ।।'
(जयोदय, १८।६३)

इस समय धुले वस्त्र के समान आकाश स्वच्छ हो गया है। दिशाएं ऐसी लग रही हैं, मानों उन्होंने स्नान किया हो। पूर्वदिशारूपी राजा के तिलक के समान सूर्य सुशोभित है, और चन्द्रमा चोर के समान उदास होकर आकाश से प्रस्थान कर रहा है।

दिवस-वर्णन—

दिवस-वर्णन केवल वीरोदय में मिलता है, वह भी अत्यन्त संक्षिप्त और केवल दो स्थलों पर। ग्रीष्म-वर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने दिनों की दीर्घता पर उत्प्रेक्षा की है :—

"प्रयात्यरातिश्च रविर्हिमस्य दरीषु विश्रम्य हिमालयस्य ।
नो चेत्क्षणक्षीणविचारवन्ति दिनानि दीर्घाणि कुतो भवन्ति ।।"
(वीरोदय, १२।२०)

प्रतीत होता है कि ग्रीष्म-ऋतु में हिम का शत्रु होकर भी सूर्य हिमालय की गुफाओं में विश्राम करके आगे बढ़ता है, यदि ऐसा नहीं है तो ये दिन बड़े क्यों हो रहे हैं ?

इसी प्रकार शीतकाल में दिनों के छोटे होने के सम्बन्ध में भी कवि की उद्भावना है कि :—

"श्यामास्ति शीताकुलितेति मत्वा प्रीत्याम्बरं वासर एष दत्वा ।
किलाधिकं संकुचितः स्वयन्तु तस्यै पुनस्तिष्ठति कीर्त्तितन्तु ।।"

(वीरोदय-९।२९)

ऐसा लगता है मानों इस शीतकाल में—यह रात्रि शीत से व्याकुल है, ऐसा समझकर दिवस प्रेमपूर्वक उसे अधिक समय दे देता है; और स्वयं संकुचित होकर बैठ जाता है ।

सन्ध्या-वर्णन—

श्रीज्ञानसागर ने अपनी दयोदय एवं जयोदय नामक दो कृतियों में दो स्थलों पर सन्ध्या-सुन्दरी का वर्णन किया है । दयोदय-चम्पू में सन्ध्या का वर्णन कवि ने वहाँ पर किया है जहाँ घण्टा नामक धीवरी अपने पति मृगसेन की प्रतीक्षा कर रही है :—

सन्ध्या-समय हो रहा है; भगवान् सूर्य सम्पूर्ण दिन बिना रुके घूमने के कारण थक गए हैं, इसलिए अस्ताचल के उच्चशृङ्ग का सहारा लेकर विश्राम करना चाहते हैं । बहुत देर के बाद दिवस की समाप्ति पर समीप आते हुए सूर्य को स्वीकार करने के लिए मानों अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करती हुई, खिले हुए अरविन्दों के समूह से निकले हुए रङ्ग से रङ्गी हुई साड़ी को धारण करती हुई यह पश्चिम दिशा अपने घोसलों को खोजने में तत्पर पक्षियों के द्वारा किए जाते हुए कलरव के बहाने सूर्य के स्वागत में गीत गाती हुई सी सुशोभित हो रही है ।

इस काल में उल्लू पक्षी अपने मन में चोर की तरह प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है । चकवी चकवे से वियुक्त हो रही है । कमलिनी अपने अन्दर भ्रमर को बन्द करके कामी पुरुष को अपने आश्रय में शरण देने वाली वेश्या के समान आचरण कर रही है । मूर्ख प्राणी के मन को जिस प्रकार पाप घेर लेता है, उसी प्रकार अन्धकार सारे संसार पर आक्रमण कर रहा है । गायें वन से लौटकर पशुशाला में आ चुकी हैं ।[1]

जयोदय नामक महाकाव्य में गङ्गा-नदी के तट पर वन-विहार के प्रसङ्ग में कवि ने सन्ध्या का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है, जिसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है :—

---

१ दयोदयचम्पू, २ श्लोक ६ और ७ एवं उनके पूर्व एवं बाद के गद्यभाग ।

प्रिय से मिलन की उत्सुक, स्त्रियों के कटाक्षरूपी बाणों से पीटा गया यह लाल सूर्य मानों कमलों के समीप पहुंच गया है। महान् लोग सुख और दुःख में एक सा भाव धारण करते हैं, इसी प्रकार सूर्य भी उदय होते समय और अस्त होते समय रक्तवर्ण वाला ही होता है। सूर्य के अस्त होने पर उसके साथ-साथ दिवस भी अवसान को प्राप्त हो रहा है, जो निर्मल स्वभाव वाले लोग होते हैं, वे ही कृतज्ञता को धारण करते हैं। इस समय पश्चिम दिशा की कान्ति मूंगे की शोभा को हरण करने वाली है। भ्रमर कमलों के अन्दर ही बन्द हो गये हैं। सूर्य अस्ताचल को जा रहा है, चन्द्रमा का उदय हो रहा है, इन दोनों को देखकर ऐसा लगता है, मानों कामदेव अपने दोनों नेत्रों को लाल करके, पथिक जनों पर रोष प्रकट कर रहा है। × × × दिन की समाप्ति पर सूर्य का अभाव व्याकुल हो गया है और चन्द्रमा भी नहीं दिखाई दे रहा है, इसलिए मनुष्यों के नेत्र हो रहे हैं। पक्षिगण अपने-अपने घोसलों का आश्रय ले रहे हैं।

रक्तवर्ण सूर्य को देखकर ऐसा लगता है, मानों दिनभर मदिरा का पान करने से उसका शरीर लाल हो गया है, और किसी मद्यप की भाँति उन्मत्त होकर वह अब गिरना ही चाहता है। × × × इस समय सूर्य पश्चिमी समुद्र में जा रहा है, उन्मत्त भ्रमर कमलों के उदरों में जा रहे हैं। पक्षी अपने घोसलों में जा रहे है, और कामदेव धीरे चलने वाली स्त्रियों की ओर जा रहा है।[1]

रात्रि-वर्णन—

कविवर ज्ञानसागर की रचनाओं में रात्रिवर्णन दो बार दयोदयचम्पू में, एक बार सुदर्शनोदय में और दो बार जयोदय में, इस प्रकार से पांच बार किया गया है। दयोदय-चम्पू में रात्रि-वर्णन से सम्बन्धित सर्वप्रथम वह स्थल आपके समक्ष प्रस्तुत है जब घण्टा धीवरी ने अपने पति मृगसेन को क्रोध में आकर घर से बाहर निकाल दिया था :—

जिस प्रकार दुर्व्यसन करने वाले लोगों के मन में अन्धकार रहता है, उसी प्रकार यह रात्रि भी अन्धकार से परिपूर्ण है। चार्वाक-दर्शन के पंचमहाभूतों के समान रात्रि में भूत-पिशाच क्रियाशील हैं। जिस प्रकार घने जंगल में जन-संचार नहीं होता उसी प्रकार रात्रि में भी जन-संचार रुक गया है। सांख्य-दर्शन में मान्य सांख्याचार्य, उलूक तनय की ध्वनि के समान, उल्लू की ध्वनि सुनाई दे रही है। बौद्धमतावलम्बियों की प्रमाणवार्ता के समान, रात्रि में भी करणीय और अकरणीय का विचार नहीं हो पाता। विनियोग-प्रथा के समान डाकुओं को उत्साहित करने वाली रात्रि का रूप भयंकर पिशाचिनी के समान है। जिस प्रकार पिशाचिनी अपने गले में हड्डियों की माला को धारण करती है, उसी प्रकार यह रात्रि तारों को

---

१. जयोदय, १४।१-२४

धारण कर रही है। पिशाचिनी के हाथ में खप्पर होता है, रात्रि में आकाश में चन्द्रमा है। भूखी पिशाचिनी जैसे भिक्षा माँगने जाती है, उसी प्रकार यह रात्रि सारे संसार में व्याप्त हो गई है।[1]

रात्रि-वर्णन का दूसरा प्रसङ्ग तब मिलता है, जब गुणपाल की आज्ञा से चाण्डाल सोमदत्त को मारने का आश्वासन देता है। पर इस स्थल पर कवि ने रात्रि का उल्लेख मात्र ही किया है।[2]

सुदर्शनोदय में रात्रि-वर्णन वहाँ मिलता है, जहाँ अभयमती रानी की पण्डितादासी रानी की आज्ञा से सुदर्शन को श्मशान में से ले आने के लिए जाती है—

कलिकालरूपिणी, अन्धकारप्रसारिणी रात्रि का आगमन हुआ, जिसमें ज्ञानी महर्षि रूपी सूर्य का अस्तित्व समाप्त हो गया। कमल मुरझा गए हैं और उन पर भौंरे भी नहीं मंडरा रहे हैं। पक्षिगण संचरण-विहरण बन्द करके वृक्षों में निष्क्रिय होकर बैठे हैं। चोरी, डकैती, भय इत्यादि में वृद्धि हो रही है। अन्धकार के कारण पथिक को मार्ग दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। अन्धकार के विनाशक चन्द्रमा का गगन-मण्डल में प्रादुर्भाव हो गया है। कृष्णपक्ष की ऐसी, कलियुग के समान भयंकर अन्धकार से परिपूर्ण उस रात्रि में वह पण्डिता दासी श्मशान भूमि में गई।[3]

जयोदय में जिस समय जयकुमार सुलोचना के साथ गङ्गा-नदी के तट पर रुकते हैं, उस समय से सम्बन्धित रात्रि का वर्णन कवि ने अत्यधिक विस्तार से किया है। कवि के इस रात्रि-वर्णन के कुछ मनोहारी उद्धरण प्रस्तुत हैं :—

(अ) 'मित्रं समुद्रस्य च पूर्वशैलशृङ्गे तु सोमः कलशायतेऽलम्।
सिंहीसुतस्याप्यरदैर्व्रणान्तु सुधांशुबिम्बस्य पदानि सन्तु॥'

(जयोदय, १५।१५)

(अर्थात् समुद्र का मित्र चन्द्रमा, उदयाचल की चोटी के ऊपर स्थित कलश के समान लग रहा है। उस चन्द्रमा का बिम्ब ऐसा लगता है, मानों राहु के दांतों का घाव हो।)

(ब) "रामोऽपि राजा हृतवानिदानीं तारावराजीवनकृद्विधानी।
निशाचरं सन्तमसं विशालैः सलक्ष्मणोऽसौ करवालजालैः॥'

(जयोदय, १५।७३)

(इस समय तारा के पति बालि के जीवन का विधान करने वाले, लक्ष्मण सहित राम रूपी, तारागणों का विधान करने वाले, कलंक से सुशोभित चन्द्रमा ने,

---

१. दयोदय, २ श्लोक ३१ से पहले का गद्यभाग एवं श्लोक ३१
२. दयोदय, ३ श्लोक ७ के बाद दूसरा गद्यभाग।
३. सुदर्शनोदय, ७ गीत सं० ३

विशाल तलवार एवं बाणों के समूह रूपी किरणों के विशाल समूह से राक्षस रूप अन्धकार को नष्ट कर दिया।)

(स) "तमोमयं केशचयं निहत्य मरीचिभिश्चांगुलिभिस्तु सम्यक्।
विमुद्रिताम्भोरुहनेत्रविन्दुमुखं रजन्याः परिचुम्बतीन्दुः॥'
(जयोदय, १५।७८)

(अर्थात् अपनी किरणों रूपी अंगुलियों से, अन्धकार रूप केशसमूह को पकड़कर, चन्द्रमा बन्द कमलों रूपी नेत्रों से निकले हुए जलविन्दु वाली रात्रि के मुख का अच्छी प्रकार से चुम्बन कर रहा है।)

(द) 'केचिच्छशं केचिदितः कलंकं वदन्तु इन्दोरनिमित्तमङ्कम्।
पिपीलिकानान्तु सुधाकशिम्बं किलावली चुम्बति चन्द्रबिम्बम्॥'
(जयोदय, १५।८२)

(अर्थात् कुछ लोग विना किसी कारण चन्द्रमा के मध्य के धब्बे को खरगोश और कुछ लोग कलङ्क कहें, किन्तु मीठी फली जैसे सुधा (माधुर्य) के उत्पत्ति स्थान चन्द्रमा को चीटियाँ चूम (चाट) रही हैं।)

जयोदय में एक अन्य स्थल पर भी रात्रि-वर्णन का उल्लेख मिलता है।[1]

कवि-कृत, प्रकृति की इन चारों दिशाओं का वर्णन स्वभावोक्ति से परिपूर्ण है। कवि ने प्रभात-वर्णन, दिवस-वर्णन, सन्ध्या वर्णन और रात्रि-वर्णन—सभी में श्लिष्टोपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि मनोरम अलंकारों का प्रयोग किया है। उसका प्रभात-वर्णन न केवल प्राकृतिक सुषमा का ही उन्मीलन करता है, बल्कि भारतवर्ष की दशा का भी बोध करा देता है, शुभकार्यों की ओर भी प्रेरित करता है। इसी प्रकार कवि का रात्रि-वर्णन यदि कहीं भयोत्पादक है, तो दूसरी जगह वह रमणीक भी है। क्योंकि ज्योत्स्ना से समलंकृत रात्रि कितनी आह्लादक हो जाती है, इसका भी कवि ने अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हमारे आलोच्य महाकवि ज्ञानसागर ने प्रकृति-वैभव का चित्र खींचने में अद्भुत कुशलता का परिचय दिया है। प्रायः प्रकृति के प्रत्येक भाग का वर्णन उन्होंने अपनी कृतियों में कर दिया है, जो उनके वास्तविक प्रकृति-प्रेम का परिचायक है।

प्राकृतिक-पदार्थों के बाद आते हैं—वैकृतिक पदार्थ। जिन प्राकृतिक-पदार्थों को मनुष्य बदल देता है, अथवा जिन पदार्थों के निर्माण में मनुष्य का सहयोग होता है, उन्हें वैकृतिक-पदार्थ कहा जाता है। उदाहरण-स्वरूप, बसाया गया नगर, बनाया गया उपवन, मन्दिर आदि-आदि।

प्रत्येक गद्य-कवि या पद्यकवि अपने काव्य में एक कथानक को लेकर चलता है। वह कथा किस समय की है, कैसे समय की है? यह तो प्रकृति के अधीन है,

---

१. जयोदय, १७।४, ७ आदि।

इसलिए रात्रि, ऋतु आदि का वर्णन प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत आता है। अब दूसरा प्रश्न है कि वह विशिष्ट कथा, जिसे कोई कवि अपने काव्य का विषय बनाता है, कैसे स्थान और किस स्थान में घटित होती है ? इसी के उत्तर में प्रस्तुत है वस्तु-वर्णन—मनुष्य की हस्तकला के कौशल का परिचय।

किसी काव्य को हृद्य और स्वाभाविक बनाने के लिए प्रकृति-वर्णन जितना आवश्यक तत्त्व है, उतना ही आवश्यक तत्त्व वस्तु-वर्णन भी है। वस्तु-वर्णन से ही पाठक को नायक इत्यादि पात्रों के जन्मस्थान, रहन-सहन सामाजिक-स्थिति, आर्थिक-स्थिति आदि का ज्ञान होता है। साथ ही पाठक यह भी जान लेता है कि कवि का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक ज्ञान कैसा है और उन स्थलों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषताओं से परिचित कराने में कवि कुशल है अथवा नहीं ?

वस्तु-वर्णन, संस्कृत-साहित्य हो या अन्य कोई साहित्य हो—काव्य का एक परम्परागत तत्त्व है। उदाहरणस्वरूप—नैषधकार श्रीहर्ष, नलचम्पूकार श्रीत्रिविक्रमभट्ट, कादम्बरीकार बाणभट्ट, तिलकमञ्जरीकार धनपाल इत्यादि ने नगरों और मन्दिरों का इतना सुन्दर वर्णन किया है कि पाठक उन-उन विशिष्ट-स्थलों के सौन्दर्य पर मोहित होकर, मुख्य कथा-प्रसङ्ग को भूलकर कवि की सूझबूझ पर वाह-वाह करने लगता है। यद्यपि आज के साहित्य में वस्तु-वर्णन का वह महत्त्व नहीं रह गया है, जो प्राचीन समय में था, फिर भी संस्कृत-साहित्यकार थोड़ा बहुत वस्तु-वर्णन अपने काव्यों में करता ही है।

हमारे आलोच्य महाकवि ज्ञानसागर ने भी प्राचीन कवियों द्वारा चलाई हुई वस्तु-वर्णन की परम्परा को अपने काव्यों में अपनाया है। उन्होंने अपने काव्यों में कथा-प्रसङ्ग से सम्बन्धित स्थलों का वर्णन करने में अपनी कुशलता का परिचय दिया है। हम किसी महाकवि से उनकी तुलना करने में सङ्कोच नहीं करेंगे। श्री ज्ञानसागर देशकाल से उत्पन्न विशिष्ट वातावरण के प्रति आकृष्ट पाठक की मनोवृत्ति को भी अच्छी तरह जानते हैं। पाठकों की इसी मनोवृत्ति का आदर करते हुये उन्होंने अपने काव्यों में नगर, मन्दिर, मण्डप, यात्रा और युद्ध का अतीव सजीव चित्र खींचा है।

यदि उनका नगर-वर्णन हमें विभिन्न प्रकार के साधनों से परिपूर्ण वैभवशाली बड़े-बड़े नगरों की ओर आकृष्ट करता है तो उनका ग्रामवर्णन भी ग्रामवासियों के सरलता से परिपूर्ण रहन-सहन का परिचय कराता है। उनका मन्दिर और मण्डप-वर्णन पाठक को उनकी वास्तुकला-मर्मज्ञता से परिचित कराता है। इसी प्रकार उनके द्वारा किया गया यात्रा और युद्ध का वर्णन भी उनकी सूक्ष्म-दृष्टि का परिचायक है।

कविकृत-वर्णन के अनुसार ही अब आपके सामने देश, नगर इत्यादि का वर्णन प्रस्तुत किया जाएगा।

देश-वर्णन—

महाकवि की रचनाओं में चार स्थलों में देश-वर्णन विस्तार से है। सर्वप्रथम भारतवर्ष का वर्णन प्रस्तुत है—

भारत-वर्णन—

जम्बूद्वीप में दक्षिण-दिशा की ओर समृद्धिशाली भारतवर्ष की स्थिति है। जिस प्रकार एक अच्छा खेत वर्षा के जल से सींचे जाने पर अनेक प्रकार के अनाज को उत्पन्न करता है, वैसे ही यह भारतवर्ष श्रेष्ठ तीर्थङ्कर देवों के आगमन रूप जल से सिंचित होकर स्वर्ग और मोक्ष नामक पुण्यविशिष्ट धान्य को उत्पन्न करने वाला है। भारतवर्ष के उत्तरपूर्व में पर्वतराज हिमालय है और पृष्ठभाग में समुद्र की स्थिति है। अनेक तीर्थङ्करों ने भारतभूमि में जन्म लिया है। इसमें गङ्गा और सिन्धु जैसी नदियाँ हैं। मध्य में विजयार्ध पर्वत स्थित है। इसमें आर्यावर्त आदि छः खण्ड हैं।[1]

विदेह-देश वर्णन—

भारतवर्ष के आर्यखण्ड में अत्यन्त सुन्दर विदेह नाम वाला देश है, जो स्वर्गोपम है। विदेह देश के नगर और ग्रामों में गगनचुम्बी स्वर्गिक वैभव से युक्त प्रासाद हैं। विदेह देश के नगरों में कमलों से सुशोभित और जल से परिपूर्ण सरोवर हैं। स्वर्ग में विद्यमान कल्पवृक्षों के समान, इस देश में भी लोगों को उनके अभीष्ट फल देने वाले वृक्ष हैं। विदेह-देश की सुसज्जित-ग्राम-सम्पदा का वर्णन कवि के ही शब्दों में देखिये—

"अनल्पपीताम्बरधामरम्या: पवित्रपद्माप्सरसोऽप्यदम्या:।
अनेककल्पद्रुमसन्निधाना ग्रामा लसन्ति त्रिदिवोपमाना:॥"

(वीरोदय, २।१०)

उस विदेह देश में ग्राम और नगरों के बाहर अपनी शिखाओं से आकाश को व्याप्त करने वाले नवीन धान्य के कूट ऐसे शोभित होते हैं जैसे पूर्व से पश्चिम-दिशा को जाने वाले सूर्य के क्रीड़ा पर्वत हों। उस देश की पृथ्वी भ्रमरों से गुञ्जायमान गुलाब के फूलों से सुशोभित होकर उस सुन्दर नेत्रों वाली स्त्री के समान लग रही है, जो अपने सौभाग्य को अभिव्यक्त करती है। अनाज के खेतों की रक्षा करने वाली बालिकाओं के द्वारा ऐसे गीत गाये जाते हैं कि उन गीतों को सुनकर वहाँ धान्य चरने के लिये आये हुए मृग इस प्रकार निश्चल हो जाते हैं कि पथिक उन्हें चित्रलिखित समझ लेता है। जिस प्रकार परोपकारी पुरुष विनय को धारण करते हैं; और समीप में आये हुये लोगों का हित करते हैं; साथ ही सन्मार्ग की दिशा भी देते हैं; उसी प्रकार विदेह-देश के वृक्षों में पक्षियों का निवास है; फलों के भार से वे वृक्ष झुक गये हैं। अपने हरे-भरे पत्तों की सम्पदा से लोगों

१. वीरोदय, २।५-८

को छाया देकर उनका हित-सम्पादन करते हुये सुशोभित हो रहे हैं। उस देश की नदियाँ स्वच्छ जल से परिपूर्ण हैं। उनमें स्थान-स्थान पर पृथ्वी के नेत्रों के समान नीलकमल शोभायमान हैं। × × × × उस देश के नगरों के बाजारों में, दुकानों के बाहर, रत्नों के बड़े-बड़े ढेर बिकने के लिए लगे रहते हैं। ऐसा लगता है, मानों वे आपत्ति की हँसी उड़ाने वाले लक्ष्मी के क्रीड़ा पर्वत हों। उस देश की गायें अमृतवर्षी चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान दूध देने वाली, कीर्ति के समान निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करने वाली पुण्यों की पंक्ति के समान ही अपने नैसर्गिक-सौन्दर्य के कारण दर्शनीय हैं।[1]

मालव-देश वर्णन—

आर्यावर्त खण्ड में पुरुषार्थ-चतुष्टय से सम्पन्न मालव नाम का सुविख्यात देश है जो कि पृथ्वी पर अलङ्कार के समान सुस्थित है। यहाँ षड् ऋतुएँ यथा समय उपस्थित होती हैं। यह देश स्वर्गोपम है। इसमें कल्पवृक्षों के समान अनेक वृक्ष हैं। स्वर्ग मनोहर अप्सराओं से युक्त है; और यह देश स्वच्छ-जल वाले सरोवरों से युक्त है।

इस देश के ग्रामों में भेड़ों और बकरियों के झुण्ड दिखाई पड़ते हैं। उनमें गो-सम्पदा अत्यधिक है। वे उपवन और धान्य से युक्त हैं। मुख्यतया इस देश के ग्रामों में कृषक-वर्ग ही निवास करता है।[1]

अङ्ग-देश वर्णन—

जम्बूद्वीप में पृथ्वी का ललाटस्वरूप भरत नामका क्षेत्र है। इस क्षेत्र में आर्यावर्त नाम का खण्ड है, जिसमें सिन्धु और गङ्गा नाम की नदियाँ हैं। इसी भरत क्षेत्र में बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसा प्राप्त अत्यन्त सुन्दर अङ्ग नाम का देश है। उस देश में गन्ने की उत्पत्ति अधिक थी, इसलिए वहाँ के निवासियों को गुड़, खाण्ड, शक्कर इत्यादि मधुर पदार्थ आसानी से प्राप्त हो जाते थे। उस देश में लम्बी-लम्बी शाखाओं वाले, पक्षियों के मधुर कलरव से युक्त फलदार वृक्ष थे, ऐसा लगता था, मानों अपनी लम्बी-लम्बी शाखा रूप भुजाओं के द्वारा, पक्षियों के मधुर-कलरव के बहाने से फलों को प्रदान करने के लिए पथिक जनों को बार-बार बुला कर कल्पवृक्षों को पराजित करते हैं। अङ्ग देश के इन सुन्दर वृक्षों का वर्णन कवि की ही शब्दावली में देखिये—

"समुच्छलच्छाखतयाऽथ वीनां कलध्वनीनां भृशमध्वनीनाम्।
फलप्रदानाय समाह्वयुतः श्रीपादपाः कल्पतरुं जयन्तः॥"

(सुदर्शनोदय, १।१७)

---

१. दयोदय चम्पू, १। श्लोक १० के पूर्व के गद्यभाग।

उस देश की सदा जल से भरी नदियाँ समुद्र की ओर जा रही थीं। वहाँ स्वच्छ जल से भरे हुये अनेक सरोवर थे। आम, जामुन, नारङ्गी इत्यादि फल वृक्षों से उपलब्ध हो जाते थे। अतएव उदार हृदय धनिकों को सदाव्रतशाला और प्याऊ इत्यादि का प्रबन्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

उस देश के ग्राम, जल-सम्पदा, वनस्पति-सम्पदा, शस्य-सम्पदा से, स्वर्ग के समान वैभव से परिपूर्ण थे। वहाँ के निवासियों का जीवन-स्तर सरल था। कृषि और पशुपालन उनकी आजीविका के साधन थे। उस देश में दुर्भिक्ष इत्यादि की बाधायें उपस्थित नहीं होती थीं। सभी लोग अच्छी नीति का आचरण करते थे। सभी लोग कान्तियुक्त और भयरहित थे। सभी अपने धन का यथासमय दान करते रहते थे। सत्सङ्ग में सर्वाग्रणी थे। इस प्रकार वह अङ्गदेश सभी सुख के साधनों से सम्पन्न था।[1]

इन चार देशों के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त कवि ने उष्ट्रदेश,[2] कलिङ्ग-देश,[3] मैसूरदेश,[4] पल्लवदेश,[5] निर्गुन्धदेश,[6] कर्णाटकदेश,[7] मङ्गलावतीदेश,[8] पुष्कलदेश,[9] इत्यादि देशों का भी उल्लेख किया है।

नगर वर्णन—

महाकवि ज्ञानसागर की रचनाओं में हमें कुण्डनपुर, चम्पापुरी, उज्जयिनी, चक्रपुर, स्तबकगुच्छ, हस्तिनापुर और काशी का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम वीरोदय के चरितनायक महावीर की जन्मभूमि कुण्डनपुर का वर्णन प्रस्तुत है—

कुण्डनपुर—

कवि की रचनाओं में हमें कुण्डनपुर का चित्र दो बार देखने को मिलता है। प्रथम चित्र में कुण्डनपुर के मनोरम वैभव की झाँकी इस प्रकार है—

पृथ्वी के ललाट-स्वरूप विदेह-देश में भगवान् महावीर की जन्मभूमि कुण्डनपुर है। कुण्डनपुर स्वर्गतुल्य है। स्वर्ग के ही समान वहाँ किसी प्रकार का

---

१. सुदर्शनोदय, १।१३-१४
२. वीरोदय, १५।२९
३. वही, १५।३२
४. वही, १५।३४
५. वही, १५।३५
६. वही, १५।३५
७. वही, २२।३
८. वही, ११।२६
९. वही, ११।३५

कष्ट नहीं होता। वहाँ के मनुष्य दिव्य-लक्षणों से युक्त हैं। स्त्रियाँ देवाङ्गनाओं के समान सुन्दर चेष्टाओं वाली हैं। राजा अपने तेज से सूर्य और इन्द्र की बराबरी करता है। कुलीन लोगों के निवास से युक्त, उच्चकुलीन कन्याओं से युक्त, उत्तम कोटि के विशाल भवनों वाला यह नगर नागपुरी के समान है। उस नगर के चारों ओर शेषनाग के समान एक विशाल परकोटा है। परकोटे के बाहर शेषनाग के द्वारा छोड़ी गई केंचुली के बहाने से ही मानों समुद्र के समान गहरी खाई है। उस नगर के बाजार अनुपम सम्पदा वाले, बड़ी-बड़ी सड़कों वाले, विक्रय के योग्य पदार्थों और बहुमूल्य वस्त्रों वाले हैं। रात्रि में परकोटे के शिखरों पर अविचल रूप से चमकते हुए नक्षत्रगण लोगों के हृदय में दीपावली का भ्रम उत्पन्न करके उन्हें आनन्दित करते हैं। उस नगर का प्रतिबिम्ब खाई के जल में पड़ रहा है, ऐसा लगता है मानों, वह नगर अपने सौन्दर्य की परछाई के बहाने नागलोक को जीतना चाहता है। उस नगर के परकोटे में नीलमणियाँ सुशोभित हैं। खाई के जल में गरजते हुये मेघों का प्रतिबिम्ब उन्मत्त हाथियों की शङ्का उत्पन्न करता है। वहाँ की खाई में विकसित कमलों के सम्बन्ध में कवि की उद्भावना देखिये—

"तत्रत्यनारीजनपूतपादैस्तुला रतेर्मूच्छिनलब्धप्रसादैः।
लुठन्ति तापादिव वारि यस्याः पद्मानि यस्मात्कठिना समस्या॥"

(वीरोदय, २।३१)

अर्थात् वहाँ की स्त्रियाँ रतिदेवी से भी अधिक सौन्दर्य-सौभाग्य को धारण करती हैं, उनके सुन्दर एवं पवित्र चरणों से तुलना न कर पाने के कारण ही मानों सन्तप्त कमल खाई के जल में लोट रहे हैं। चूने से लीपे हुये प्रासादों वाले इस नगर का परकोटा अपने शिखरों के अग्रभाग में स्थित रत्नों से निकलती हुई प्रभापंक्ति को धारण करता हुआ स्वर्ग के भी प्रासादों की हँसी उड़ा रहा है। उस नगर में सुवर्ण-कलशों से युक्त शिखर वाले अनेक जिनालय हैं जिनमें जिनमुद्रा से अंकित ध्वजायें फहरा रही हैं।

उस नगर के मनुष्य दैन्यभाव से रहित एवं गाम्भीर्य को धारण करने वाले हैं। वहाँ की स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर और निर्मल चरित्र वाली हैं। वहाँ के लोगों का दाम्पत्य-जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है।

उस समय कुण्डनपुर के निवासी धर्मसम्मत भोग में प्रवृत्त होते थे। उनका धर्म स्थायी-मित्रता को उत्पन्न करने वाला होता था। वहाँ के लोगों में निन्दा, मोह, छिद्रान्वेषण, पारस्परिक विरोध, रोग, दारिद्र्य, पाप इत्यादि दोषों का अभाव था। उनमें दैन्याभाव, स्नेह इत्यादि श्रेष्ठ गुण थे। उस नगर के सौन्दर्य को देखकर देवताओं की आँखें खुली की खुली ही रह गईं। प्रासादों के शिखरों के अग्रभाग पर बैठी हुई उस नगरी की स्त्रियों के निष्कलङ्क मुखों को देखकर कलंकी

चन्द्रमा मानों लज्जा का अनुभव करता है। उस नगर में कविश्रेष्ठों की श्रेष्ठ वाणी के समान अपनी चेष्टाओं से लोगों को लुभाने वाली वाराङ्गनाएं थीं। भवनों में जड़ी हुई नीलमणियों की कान्ति से उत्पन्न रात्रि की कल्पना करने वाली बेचारी चकवी दिवस में भी चकवे के वियोग में सन्ताप का अनुभव करती है। उस नगर के भवनों में लगी हुई चन्द्रकान्त मणियां चन्द्रोदय होने से जब द्रवित होती हैं, तो ऐसा लगता है मानों वहां की स्त्रियों के मुख की शोभा को चुराने वाला चन्द्रमा प्रासाद में जड़े हुये रत्नों वाली दीवारों पर पड़ते हुये प्रतिबिम्ब के बहाने से मानों कारागार में बन्द होकर चन्द्रकान्तमणियों के द्रव के बहाने से रोता है। रात्रि में यह नगर, नगर-सम्राट् का रूप धारण कर लेता है। चन्द्रमा इसके मुकुट का रूप धारण करता है; और तारागणों के बहाने उस नगर-रूप राजा के ऊपर पुष्पवृष्टि होती है। मध्याह्न समय में उस नगर के गगनचुम्बी परकोटे के ऊपर तपता हुआ सूर्य, उस परकोटे के सुवर्ण-कलश की कान्ति को धारण करता है।[1]

जिस समय राजा सिद्धार्थ भगवान् के जन्माभिषेक का आयोजन करते हैं, उस समय में कुण्डनपुर की शोभा कैसी थी? इसका वर्णन भी कवि ने किया है—

उस समय अमृत, चित्राङ्गादि देवाङ्गनाओं से और देवों से युक्त स्वर्ग के ही समान, चूने से पुतने के कारण उज्ज्वल, नाना प्रकार के चित्रों से अलंकृत एक पंक्ति में ही बने हुये प्रासादों से युक्त वह नगर सुशोभित हुआ। उस नगर के उन्नत प्रासाद, श्रेष्ठ स्वाभिमानी राजाओं की शोभा को धारण कर रहे थे।[2]

चम्पापुरी—

अङ्गदेश में चम्पा नाम की नगरी थी। उस नगरी में श्रेष्ठ लोग निवास करते थे। उसके चारों ओर परकोटा था; और उसके चारों ओर अत्यन्त गहरी खाई थी। उस नगर के लोग स्वर्ग-सम्पत्ति के समान वैभव का उपभोग करते थे। वहां की स्त्रियों का सौन्दर्य एवं स्वर दिव्याङ्गनाओं के समान था। चूने से पुते हुये उस नगरी के भवन स्वर्गिक भवनों के समान थे। उस नगरी में प्रायः दिव्य विभूतियों का जन्म होता था। मुक्ता, चन्द्रकान्तमणि इत्यादि रत्नों वाले रत्नाकर की समता करने वाली उस नगरी में पुरुष रोग से मुक्त, स्त्रियां सब कलाओं में निपुण और राजा शत्रुओं पर वज्र-प्रहार करने वाला था। उस नगरी में शत्रुंजय नामक राजा राज्य करता था। लोगों के कार्य उत्तम-कोटि के होते थे।+ + + उपभोग सामग्री के प्राचुर्य से वह नगरी स्वर्ग और पाताल का तिरस्कार करने

---

१. वीरोदय, २।२१-५०
२. वही, ८।३-४

वाली थी। उस नगरी के जिनमन्दिर विशाल एवं मेघसमूह को चूमने वाले थे। कवि को वह नगरी विश्वलोचन कोष जैसी लगती है—

"वणिक्पथः श्रीधरसन्निवेशः स विश्वतो लोचननाम देशः।
यस्मिञ्जनः संस्क्रियतां च तूर्णं योऽभूदनेकार्थतया प्रपूर्णः॥"

(सुदर्शनोदय, १।३२)

अर्थात् संस्कृत भाषा का समुचित ज्ञान देने वाले, अनेकार्थ शब्दों वाले, अनेक अध्याय वाले, श्रीधर आचार्य रचित विश्वलोचन कोष के समान उस नगरी का बाजार, नगरी के वैभव को सूचित कर रहा था। लोग उस नगरी के बाजार की शोभा को एकटक देख रहे थे। वहाँ क्रेता की प्रत्येक इच्छित वस्तु सुलभ थी। वह बाजार कई भागों में विभक्त था।

उस नगरी के लोग मांसभक्षण, मद्यपान, निन्दा, परस्पर-विरोध, कुटिलता, छिद्रान्वेषण, कठोरता, वञ्चकता इत्यादि दोषों से दूर थे। इस पुण्यशालिनी नगरी में बारहवें तीर्थङ्कर श्रीवासुपूज्य स्वामी ने शिवपद प्राप्त किया था। इसलिए इसका महत्त्व और भी अधिक हो गया था। इस नगरी की अतुलित उद्यान एवं भवनसम्पदा के कारण लोग अनायास ही इसकी ओर आकृष्ट हो जाते थे।[1]

उज्जयिनी वर्णन—

मालव देश में स्थित उज्जयिनी नगरी का अल्प, किन्तु प्रभावोत्पादक वर्णन कवि के ही शब्दों में देखिये—

"समस्त्युज्जयिनी नाम नगरीह गरीयसी।
यातीव स्वः पुरीं जेतुं स्वसौधैर्गगनंकषैः॥
नरा यत्र सुमनसः स्त्रियः सर्वास्तिलोत्तमाः।
राजा स्वयं पुनासीर प्रतापी खलु कथ्यते॥"

(दयोदय चम्पू, १।१०-११)

अर्थात् मालव देश में उज्जयिनी नाम की विशाल नगरी है, जिसके गगन-चुम्बी प्रासादों को देखकर ऐसा लगता है कि मानों वह नगरी स्वर्ग को जीतने जा रही हो। स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के समान जहाँ के मनुष्य अच्छे मन वाले हैं। स्वर्ग में विद्यमान तिलोत्तमादि अप्सराओं के ही समान जहाँ की स्त्रियां उत्तम तिल से युक्त हैं। स्वर्ग में राज्य करने वाले इन्द्र और सूर्य इत्यादि के समान ही जहाँ के राजा अत्यधिक प्रतापी हैं।

स्तबकगुच्छ वर्णन—

महाकच्छ नाम का राजा अपनी पुत्री प्रियंवदा के विवाह के लिए प्रयत्नशील होता हुआ स्तबकगुच्छ नगर को देखकर उसके सौन्दर्य से अत्यधिक प्रभावित

---

१. सुदर्शनोदय, १।२४-३७

होता है। स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर स्तबकगुच्छ नगर की स्थिति समुद्र के किनारे थी, उस नगर में एक हजार तोरणद्वार थे; और बीस लाख योद्धा हर समय सन्नद्ध रहते थे, जिससे कोई भी अनपेक्षित व्यक्ति वहाँ प्रवेश नहीं पा सकता था।[1]

चक्रपुर वर्णन—

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र में स्वर्ग को तिरस्कृत करने वाले सुन्दर चक्रपुर की अवस्थिति है। उस नगर का प्रत्येक निवासी अपनी उदारता से देवतुल्य, बुद्धियुक्त होने से प्रत्येक स्त्री दिव्याङ्गनातुल्य, राजा प्रजावत्सल और इन्द्रतुल्य है। वहाँ के लोग धर्मसम्मत भोग करते हैं। धर्म के सफल प्रयोग, गुणों की संगति से होते हैं। वहाँ शिष्टाचार जानने वाली स्त्रियाँ निवास करती हैं। सन्तति आज्ञाकारिणी होती है। वहाँ कोई भी मद्यप, मांसभक्षी और ठग नहीं है। भिक्षावृत्ति, राजकीय-कर्मचारियों द्वारा शोषण, वियोगजन्य दुःख, निष्फल प्रयत्न इत्यादि का उस नगर में अभाव है। वहाँ के स्त्री पुरुषों को रोग-शोक का अनुभव नहीं होता। भोग-विलास में रत होने पर भी, वहाँ पर किसी का आचरण निन्दनीय नहीं है। वहाँ के लोग आलस्य से रहित हैं; और अपनी आजीविका के लिए कुछ न कुछ कार्य अवश्य करते हैं।[2]

हस्तिनापुरवर्णन—

हस्तिनापुर जयोदय के चरित नायक जयकुमार की राजधानी है। जिस समय जयकुमार सुलोचना के साथ हस्तिनापुर में पहुँचते हैं, उस समय वह गले में लटकती हुई माला वाले हाथियों से युक्त उस नगरी को विरह के कारण खुले बालों वाली स्त्री के समान देखते हैं। वायु के वेग से हिलती हुई पताकाओं वाली वह नगरी, प्रथम बार देखे गये के समान जयकुमार का स्वागत कर रही थी। वह नगरी अनेक रक्षकों से युक्त थी। वहाँ के घोड़े धूलि से धूसरित और पसीने से युक्त थे। पवन के वेग से उड़ी हुई धूलि से धूसरित हो जाने की शङ्का से सारथी अपने श्रेष्ठ रथ के चँदोवे को मार्ग में ही साफ कर रहा था। × × × स्त्रियाँ अपने हृदय में जलती हुई कामाग्नि को, आँचल से हवा करती हुई बढ़ा रही थीं। + + + जैसे ही राजा ने अपनी सेनासहित नगर में प्रवेश किया, वैसे ही लोग अपने अपने स्थानों से आकर राजा को प्रणाम करने लगे। दोनों ओर से एकत्र होते हुए नगर वासियों का समूह, चलती हुई सेना का अनुकरण कर रहा था। वणिग्जन बाजार में रखे हुये मणियों के ढेर को उपहार के रूप में दे रहे थे। जयकुमार की वधू सुलोचना के मुख-चन्द्र को देखने के लिए उत्सुक पुरवासिनी सुन्दर स्त्रियों से वह नगरी चन्द्रशाला के समान लग रही थी। सुलोचना

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।१९-२०

२. वही, ६।१-८

के सुन्दर स्वरूप को देखकर स्त्रियाँ उसी प्रकार हर्षित हो गईं, जैसे चन्द्रमा को देखकर समुद्र में ज्वार-भाटा आता है। स्त्रियाँ गीत गा रही थीं, तुरही बज रही थी। सम्पूर्ण नगर राजा के आङ्गन जैसा हर्ष से युक्त हो गया। समुद्र में उठती-बैठती लहरों के समान राज-द्वार में से लोगों की भीड़ आ-जा रही थी। + + +।[1]

काशीवर्णन—

अच्छे मनुष्यों से युक्त काशी नाम की सुन्दर नगरी में श्रीधर नाम का राजा राज्य करता था।[2] सुलोचना के विवाह के समय उस नगरी में एक सुन्दर मण्डप बनाया गया। उसके शिखर भाग में वायु द्वारा हिलती हुई पताकायें लोगों को बुला रही थीं। उस नगर में दर्पण के समान स्वच्छ, मुक्ताओं से युक्त, नवीन वृक्षों के कारण बगीचे के समान, खिले हुये कमलों से युक्त, राजहंसों से सेव्य एक सुन्दर सरोवर था। वह नगरी देवागमन के कारण अच्छी दृष्टि वालों के द्वारा सेव्य थी। किसी भी प्रकार के कलङ्क से रहित विद्या के आनन्द से परिपूर्ण थी। अच्छे-अच्छे घरों वाली वह काशी नगरी ऐसी थी, जैसे अमृत से पृथ्वी युक्त हो गई हो। स्वर्ग में विद्यमान अमृत के समान, नदियों के पवित्र जल से युक्त, स्वर्ग में विद्यमान चित्रा इत्यादि देवाङ्गनाओं के समान चित्रादि से अलंकृत, अमृत के इच्छुक देवों के द्वारा, स्वर्ग के समान यह नगरी पूज्य थी। अनेक रङ्गों और चित्रों वाली वहाँ की दीवारें, वेश्याओं के समान लोगों के मन को प्रसन्न करने वाली थीं। वहाँ के घर उन्मत्त हाथियों से सुशोभित और बड़े-बड़े दरवाजों वाले थे। बड़े-बड़े वस्त्र वाली, बादलों को छूने वाली, वहाँ की ध्वजा की पंक्ति हवा के समान देहधारियों के श्रम का हरण करने वाली थी। उस नगर की गलियाँ बिखरे हुये पुष्पों से युक्त और सुगन्धित जल से सिंचित थीं, ऐसा लगता था मानों वे हर्ष और उन्नति से, स्वेद से युक्त और रोमांचों से सुशोभित स्त्रियाँ हों। वह काशी नगरी अत्यन्त दर्शनीय और कल्याणकारिणी थी।[3] जयकुमार और सुलोचना के विवाह के समय वह नगरी विद्वानों से युक्त और श्वेत वस्त्रों से अलंकृत थी। मणिजटित तोरण द्वारों से युक्त यह नगरी इन्द्रपुरी को जीतने के लिए प्रयत्नशील थी। + + +।[4]

---

१. जयोदय, २१।६५-८६
२. वही, ३।३०
३. वही, ३।७२-८५
४. वही, १०।६-१५

इसके अतिरिक्त कवि की कृतियों में अयोध्या,[1] कौशाम्बिका,[2] अलकापुरी,[3] सिंहपुर,[4] धरणीतिलक,[5] श्रीपद्मखण्ड,[6] पोदनपुर,[7] भास्करपुर,[8] मथुरा,[9] कनकपुर,[10] पुण्डरीकिणी,[11] छत्रपुरी,[12] मिथिला,[13] कोशलपुरी,[14] राजगृह,[15] पावानगर[16] इत्यादि नगरों का भी उल्लेख मिलता है।

कवि ने अपने काव्यों में जम्बूद्वीप, भारतवर्ष, मालवदेश, इत्यादि भौगोलिक स्थानों का संक्षिप्त चित्रण किया है। फिर भी ऐसे स्थलों पर कवि अपने इन वर्णनों को अलङ्कारों से सजाना नहीं भूले हैं। भारतवर्ष का वर्णन, उसकी धार्मिक-संस्कृति का भी ज्ञान करा देता है। कवि ने विदेह और अङ्गदेश का विस्तृत वर्णन किया है। कवि के विदेह वर्णन से यह ज्ञात हो जाता है कि विदेह-देश, जल-सम्पदा, वनस्पति-सम्पदा, रत्नसम्पदा, शस्य-सम्पदा एवं सौन्दर्य-सम्पदा से सम्पन्न था। वहाँ के प्रासादों का वर्णन तत्कालीन वास्तुकला के प्रकर्ष को प्रकट करने में समर्थ है। श्लिष्टोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि से सुसज्जित विदेह-देश का वर्णन एक समृद्ध देश की झाँकी हमारे नेत्रों के सामने प्रस्तुत कर देता है। अङ्गदेश वर्णन, धनी-देशों में उपलब्ध सुख-सामग्री की झाँकी उपस्थित कर देता है।

इसी प्रकार कवि ने छोटे-बड़े नगरों का वर्णन चाहे अल्पकाय हो, या दीर्घकाय—अत्यन्त प्रभावोत्पादक किया है। कुण्डनपुर और चम्पापुरी का वर्णन, आज के चकाचौंध उत्पन्न करने वाले दिल्ली और बम्बई जैसे नगरों की ओर पाठक

---

१. जयोदय, २०।२-५
२. दयोदयचम्पू, ६। श्लोक ५ के पूर्व का गद्यभाग।
३. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।१०
४. वही, ३।१८
५. वही, ५।१७
६. वही, १।२९
७. वही, ४।२७
८. वही, ५।२२
९. वीरोदय, ११।१५
१०. वही, ११।२६
११. वही, ११।३२
१२. वही, ११।३५
१३. वही, १४।९
१४. वही, १४।१०
१५. वही, १४।१२
१६. वही, २१।२१

को अनायास ही आकृष्ट कर लेता है। काशी नगरी वैसे ही भारत की धार्मिक-दृष्टि से और विद्या की दृष्टि से महत्वशालिनी नगरी है, फिर कवि ने उस नगरी का विवाह के समय का जो चित्र उपस्थित किया है, वह भी अत्यन्त मनोरम ही है।

ग्राम-वर्णन—

किसी भी देश के ग्राम ही उस देश की वास्तविक समृद्धि के द्योतक होते हैं। नगरों की चमक-दमक हमें वास्तविकता से दूर कर देती है। इसके विपरीत ग्रामों का उन्मुक्त जीवन हमें प्रकृति के सामीप्य में ले जाता है। श्रीज्ञानसागर ने तत्तद् देशों से सम्बन्धित ग्रामों का भी वर्णन किया है। सर्वप्रथम मालव देश के ग्रामों का वर्णन प्रस्तुत है :—

मालव देश के ग्रामों में भेड़-बकरी, गाय-भैंस इत्यादि पशु अधिक संख्या में मिलते हैं। वहाँ स्थान-स्थान पर उद्यान हैं। उन गाँवों के खेत शस्य-सम्पदा से परिपूर्ण हैं। उन गाँवों में मुख्य रूप से ब्राह्मण और क्षत्रिय ही रहते हैं।[1]

अब देखिए अङ्ग-देश के ग्रामों का वर्णन :—

अङ्ग देश के ग्राम अपनी शोभा से स्वर्ग की बराबरी करते हैं। जिस प्रकार स्वर्ग में मनोरम अप्सराएं निवास करती हैं, उसी प्रकार इन ग्रामों में निर्मल जल से भरे हुए सरोवर हैं। स्वर्ग के कल्पवृक्षों के समान ही इन गाँवों में भी नाना जाति के वृक्ष हैं। जिस प्रकार स्वर्गिक सम्पदा की सब लोग प्रशंसा करते हैं, उसी प्रकार इन गाँवों में भी प्रशंसनीय शस्य-सम्पदा है। यहाँ के निवासियों का जीवन स्तर साधारण है। उनकी आजीविका का प्रमुख साधन कृषि और पशुपालन है। यहाँ के निवासी बछड़े से अत्यधिक प्रेम करते हैं, क्योंकि वे ही उनकी कृषि के मूलाधार हैं। यहाँ के ग्वाले अत्यधिक परोपकारी हैं। उनके पास पशुधन की प्रचुर मात्रा है। अतः देश में दूध-दही उचित मात्रा में सुलभ है।[2]

महाकवि ज्ञानसागर कृत यह ग्राम-वर्णन यद्यपि अत्यल्प है, और मूलकथा से विशेष सम्बन्ध भी नहीं रखता, फिर भी श्लेष और उपमा का अवलम्ब लेकर कवि ने भारतवर्ष के ग्रामों की जो थोड़ी सी झलक दिखाई है, वह हृदयस्पर्शी है।

मन्दिर-वर्णन—

श्री ज्ञानसागर की कृतियों में मन्दिर-वर्णन तीन स्थलों पर मिलता है। उन्होंने वीरोदय में कुण्डनपुर के मन्दिरों का जो सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है, वह इस प्रकार है :—

---

१. वयोदयचम्पू, १ श्लोक १० के पूर्व का गद्य भाग।

२. सुदर्शनोदय, १।२०-२२

कुण्डनपुर के जिन-मन्दिरों में निरन्तर घण्टे, भेरी इत्यादि का नाद होता रहता है उनमें उत्तम धूप के जलने से प्रचुर-मात्रा में बादलों का रूप धारण करने वाला धूम्र-पटल उत्पन्न होता है। अतः मन्दिरों के शिखिरों के अग्रभाग में स्थित सुवर्ण-कलशों की कांति ऐसी लगती थी, मानो धूम्रसमूह रूप बादलों के मध्य में बिजली चमक रही हो। रात्रि में चन्द्रमा की किरणें जब उन मन्दिरों के द्वारों के ऊपरी भाग पर पड़ती हैं, तब ऐसा लगता है मानों उन द्वारों के शिखरों पर जटिल चन्द्रकान्त मणियों के बहते हुए जल का पिपासु चन्द्रमा का मृग वहाँ आता है, किन्तु द्वारों में चित्रित मृगाधिपों के भय से वापिस लौट जाता है। उन मन्दिरों की ध्वजाओं में जिनमुद्रा अङ्कित है। वायु के वेग से वे सभी ध्वजाएं फहराती रहती हैं। उन ध्वजाओं में बजती हुई घण्टियाँ मानों पुण्यार्जन के लिए जन-समुदाय को सम्बोधित कर रही हैं।[1] मन्दिर-सौन्दर्य-वर्णन में कवि की एक उद्भावना उसी की शब्दावली में प्रस्तुत है :—

"जिनालयस्फटिकसौधदेशे तारावतारच्छलतोऽप्यशेषे।
सुपर्वभिः पुष्पगणस्य तत्रोचितोपहारा इव भान्ति रात्रौ॥"
(वीरोदय, २।३६)

(अर्थात् स्फटिक-मणि-निर्मित, श्वेत-वर्ण-वाली उन जिन-मन्दिरों की छतों पर जब रात्रि में नक्षत्र प्रतिबिम्बित होते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, मानों देवगणों ने पुष्पवृष्टि रूप समुचित उपहार दिए हों।)

अब चम्पापुरी के मन्दिरों का अत्यल्प, किन्तु स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत है—

चम्पापुरी के जिन-मन्दिर, पर्वतों के समान ही उंचे एवं विशाल थे। मृगाधिपों से अधिवासित पर्वतों के समान उस नगर के मन्दिरों के शिखरों पर चारों ओर सिंहों की मूर्तियां बनी हुई थीं। अभ्रपटलचुम्बी पर्वत के समान, वे मन्दिर भी अपनी ऊंचाई से मेघसमूह का स्पर्श करते थे। इस प्रकार वे ऊंचे जिनालय पृथ्वी और आकाश को नापने वाले मानदण्ड से प्रतीत होते थे।[2]

जब जयोदय के नायक-नायिका जयकुमार और सुलोचना तीर्थयात्रा के लिए निकले, तब उन्होंने हिमालय पर्वत पर एक उत्तम देवालय देखा। उस मन्दिर में भगवान् की प्रभावशालिनी मूर्ति थी। वह मन्दिर भक्तों की मनोवांछा को पूरा करने वाला था। वह मन्दिर अत्यधिक प्रभाव से उसी प्रकार युक्त था, जिस प्रकार सूर्य की कान्ति से सुमेरु पर्वत। ऐसे उस महिमाशाली मन्दिर में नीतिज्ञ जय प्रविष्ट हुए।[3]

---

१. वीरोदय, २।३३-३५
२. सुदर्शनोदय, १।३१
३. जयोदय, २४।५८-६०

इसके अतिरिक्त कविवर की रचनाओं में नागमन्दिर[1], सिद्धकूट-जिन-मन्दिर[2], पार्श्वनाथमन्दिर[3] एवं सुमेरु पर्वत के १६ जिनमन्दिरों[4] का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख है।

समवशरण मण्डप—

जिस सभामण्डप में जिनेन्द्रदेव वीरभगवान् ने जनता को सन्देश दिया, उसका कवि ने बड़ा ही सजीव वर्णन किया है :—

उस समवशरण मण्डप का निर्माण इन्द्र की आज्ञा से धनाधिप कुबेर ने किया था। गोलाकार वह सभामण्डप मध्य में एक योजन विस्तृत और ढाई कोश ऊँचा था। उस मण्डप में, चारों ओर खाई से घिरा हुआ धूलिशाल नामक परकोटा था। फिर उस मण्डप में तीन मेखलाओं और चार बावड़ियों से युक्त चार मान-स्तम्भ थे। मानस्तम्भों और खाई के समीप में मालती इत्यादि पुष्पों से परिपूर्ण एक पुष्पवाटिका थी। इसके बाद पञ्चरत्ननिर्मित एक अद्भुत परकोटा था। इस परकोटे के बाद, दूसरा परकोटा रजत-निर्मित था। इन परकोटों के पश्चात् हंस-चक्रवाक इत्यादि से चिह्नित १०८ की संख्या में फहराती हुई ध्वजाओं की पंक्ति थी। इसके पश्चात् पुष्पवीथि में मानुषोत्तर पर्वत विद्यमान था। रजत-निर्मित परकोटे में अष्ट-मङ्गल-द्रव्य थे। यह चार गोपुरद्वारों से प्रकाशमान था। इसके पश्चात् विद्यमान नाट्यशालाओं में दिव्याङ्गनायें भगवान् के यश की घोषणा करती हुई नृत्य कर रही थीं। इसके बाद सप्तकर्म, आम्र, अशोक और चम्पक जाति के वृक्षों से युक्त चारों दिशाओं में चार वन थे। इसी कोट के प्रत्येक द्वार पर उपस्थित देवगण भगवान् की सेवा कर रहे थे। उसके पश्चात् कल्पवृक्षों से सुशोभित वन था। यहीं पर चारों दिशाओं में सिद्धार्थ नाम के वृक्ष थे। तीसरा परकोटा स्फटिक-मणि-निर्मित था। इस परकोटे के आगे जिनेन्द्रदेव के चारों ओर बारह कोष्ठ थे, जिनमें विद्यमान देव इत्यादि भगवान् का उपदेश सुनते थे। इसी समवशरण मण्डप के मध्य में स्थित गन्धकुटी में सिंहासन के ऊपर वीर भगवान् शोभायमान थे। भगवान् के पीछे एक अशोकवृक्ष था। उस समय उस मण्डप में आकाश से पुष्प-वृष्टि हो रही थी। वीर भगवान् के दोनों ओर यक्ष चँवर डुला रहे थे। उस सभा-मण्डप में वीर भगवान् के मुख की कान्ति करोड़ों सूर्यों को तिरस्कृत कर रही थी। भगवान् के ऊपर जन्म-जरा-मृत्यु इत्यादि विपत्तियों से बचाने वाले तीन छत्र

---

१. दयोदयचम्पू, ५ श्लोक ६ के बाद का गद्यभाग।
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ५।२७
३. दयोदयचम्पू, १ श्लोक २२ के पूर्व का गद्यभाग।
४. (क) वीरोदय, ७।२०
   (ख) जयोदय, २४।८

विद्यमान थे। उस मण्डप में देवगणों की गम्भीर एवं आनन्दोत्पादक ध्वनियाँ सुनाई दे रही थीं। ऐसे उस सुन्दर मण्डप में वीरभगवान् के मुख से कल्याणकारिणी वाणी निःसृत हो रही थी।[1]

यात्रा-वर्णन—

श्रीज्ञानसागर की रचनाओं में तीन स्थलों पर यात्रा का वर्णन मिलता है, एक बार वीरोदय में और दो बार जयोदय में। सर्वप्रथम वीरोदय से भगवान् वीर के जन्माभिषेक के अवसर पर देवगणों की कुण्डनपुर की यात्रा का वर्णन प्रस्तुत है :—

भगवान् के जन्म का शुभ समाचार सुनकर देवराट् इन्द्र ने प्रयाण की सूचना देने वाली डुगडुगी पिटवाई, और सभी को एकत्र करके वह कुण्डनपुर की ओर चल पड़े। उन देवगणों के हाथों में पुष्पों के पात्र थे। मार्ग में उन्होंने आकाशगङ्गा के दर्शन किए। अनेक प्रकार की चेष्टाओं को करते हुए और प्राकृतिक दृश्यों से आनन्दित होते हुए देवगण कुण्डनपुर पहुँचे। उन्होंने वीरप्रभु की जन्मभूमि की तीन बार प्रदक्षिणा की।[2]

जयोदय में यात्रा-वर्णन का प्रथम प्रसङ्ग वहाँ पर आता है, जहाँ चरित-नायक जयकुमार की सेना अर्ककीर्ति से युद्ध करने के लिए चल पड़ती है :—

जयकुमार की सेना में भुजबल पर अभिमान करने वाले, ओजस्वी राजा एकत्र हुए। वे सभी वीररस से सुशोभित हो रहे थे। वे सभी क्रोध की लालिमा से युक्त थे। राजा की इस सेना के नगाड़े की ध्वनि जब आकाश में पहुँची, तब पर्वत भी काँप उठे। चञ्चल सुन्दर घोड़ों से युक्त, शुभ्र वस्त्र वाली ध्वजाओं से युक्त, उन्मत्त हाथियों के मद से युक्त जयकुमार की सेना, लहरों एवं फेन से युक्त नदी के समान चल पड़ी। उस समय शत्रुओं की स्त्रियों के स्तन कज्जल से युक्त आँसुओं के जल को धारण कर रहे थे। जब दिशाओं के समूह धूल से धूसरित हो गए, तब उसकी सेना के आगमन को शत्रुओं ने जान लिया। राजा जयकुमार की सेना से उठाई गई धूलि पङ्क समूह के रूप में स्वर्ण दीपकों पर, कलङ्क रूप से चन्द्रमा पर पड़ती हुई × × × सेना के मद को गा रही थी। × × × जयकुमार की सेना के घोड़ों के खुरों की चोट से मूर्च्छित होती हुई पृथ्वी के ऊपर मानों सेना में विद्यमान ध्वजाओं के वस्त्रों से हवा की जा रही थी। × × ×।[3]

---

१. वीरोदय, १३।१-२४
२. वही, ७।६-१२
३. जयोदय, ७।९५-११२

जयोदय में यात्रा-वर्णन का दूसरा स्थल वहाँ है,[२] जहाँ जयकुमार विवाह के पश्चात् अपने नगर में आते हैं :—

अनेक घोड़ों, हाथियों और रथों से युक्त होकर जयकुमार, भरत चक्रवर्ती की आज्ञा से अपने नगर की ओर चल पड़ते हैं। उनके साथ चलने वाले सभी लोग अपनी नगरी में पहुँचने के लिए अत्यन्त व्याकुल हैं, अब नगर समीप हो रहा है, ऐसा अनुभव करके जयकुमार अपनी गर्दन को हिलाकर प्रसन्नता धारण करके चलते हैं। उनका रथ इस समय उनके मनोरथ के समान तीव्रगामी था। उसके साथ रथ में उनकी प्रिया सुलोचना भी थी। उनकी सेना में आकाश की धूलि से धूसरित करने वाले अनेक उत्तम घोड़े थे। उन घोड़ों की गति वायु के समान मार्ग का उल्लङ्घन कर रही थी। पैदल चलने वालों के समूह पृथ्वी पर सुशोभित हो रहे थे। × × × चन्द्रमा की कान्ति के समान निर्मल वायु मार्ग में चलती हुई मयूरों की पंक्ति के बहाने से उस राजा की कीर्ति को सुशोभित कर रही थी। हाथियों की पंक्ति मद जल बहा रही थी। सारी पृथ्वी धूलि से धूसरित हो रही थी। × × × उपकारी राजा के आ जाने पर वृक्षों ने मानों फल और पत्ते धारण कर लिए थे। उन वृक्षों को देखकर राजा को सुख प्राप्त हो रहा था। × × × मार्ग में स्त्रियाँ राजा के ऊपर कटावा फेंक रही थीं। उस समय वह मार्ग वायु के झकोरों से और कोहरे से युक्त था। आम्रवृक्ष से युक्त वह मार्ग सुरतक्रीड़ा के आश्रम के समान लग रहा था। उस मार्ग में कुशापाश थी। और एक सुन्दर तथा श्रेष्ठ सरोवर भी था। वह सरोवर किनारे के वृक्षों तथा सुन्दर जल से युक्त था, अतः कल्पवृक्ष और अप्सराओं से युक्त स्वर्ग के समान था। उस मार्ग में मन को अच्छा लगने वाला एक वन भी था जो मार्गजनित श्रम को दूर कर रहा था। अञ्जनवृक्षों से युक्त वन की पृथ्वी, कुलवधू के समान सुशोभित थी। वहाँ के मयूर सुलोचना के केशपाशों से समता करने वाले थे। शस्य-सम्पदा से युक्त पृथ्वी राजा को प्रसन्न कर रही थी। गजमुक्ताओं को वहाँ के भीलों का सरदार राजा की प्रसन्नता के लिए लेकर आया। बस्ती के लोग आश्चर्य से राजा को देख रहे थे। अनाज की खेती करने वाले उन कृषकों की उदारता को देखकर राजा को सङ्कोच का अनुभव हो रहा था। राजा ने वहाँ की गोपबालाओं के मुख में, समुद्र-मंथन से उत्पन्न चन्द्रमा की कान्ति के दर्शन किए। जब वे सब बस्ती के निवासी दूध, दही इत्यादि लेकर राजा के पास आए, तब कुशल वार्ता पूँछकर राजा ने उन्हें विदा कर दिया। इस प्रकार मार्ग में यात्रा करते हुए राजा अपने नगर पहुँचे।[१]

---

१. जयोदय, २१।९:६४

युद्ध-वर्णन—

अपने नायक को शूरवीर सिद्ध करने के लिए कवि अपने काव्य में युद्ध-वर्णन करता है। नायक की विजय और खलनायक की पराजय, यह नायकप्रधान काव्यों की मुख्य विशेषता है, इस विशेषता को अपनाने के लिए कवि अपने काव्य में स्थान स्थान पर वीररस और रौद्ररस की निष्पत्ति करता है।

कविवर ज्ञानसागर की कृतियाँ प्रायः शान्तरस प्रधान हैं, फिर भी जयकुमार और सुलोचना के विवाह में बाधा के रूप में कवि ने, जयकुमार और अर्ककीर्ति के युद्ध को प्रस्तुत किया है, जो संक्षेप में इस प्रकार है :—

अर्ककीर्ति और जयकुमार की सेनाएं गर्जना करती हुई परस्पर गुंथ गई। सेनापति की आज्ञा को सुनकर नगाड़े बजा दिए गए। सैनिक अपनी भुजाएं फटकारने लगे और क्रोधपूर्वक इधर-उधर चलने लगे। जयकुमार की सेना में जयकुमार का जयघोष गूंजने लगा। आकाश सैनिकों के कठोर और भयङ्कर स्वरों से त्रस्त हो गया। भयङ्कर शस्त्रों को धारण करने के कारण, भय उत्पन्न करने वाली राजा की सेना के द्वारा उठाई गई धूलि से सूर्य भी ढँक गया। युद्ध में, हाथ में धारण की गई तलवारों की चमकती हुई पंक्ति को, धूलि से धूसरित आकाश में चमकती हुई बिजली समझकर मोर नाचने लगे। वीर एक दूसरे पर वेग-पूर्वक आक्रमण कर रहे थे। हाथी में चढ़ा हुआ सैनिक हाथी वाले सैनिक के साथ, पैदल-पैदल के साथ, रथारोही-रथारोही के साथ और अश्वारोही-अश्वारोही के साथ युद्ध कर रहा था। सैनिकों के शस्त्र परस्पर टकरा रहे थे। × + + एक में खड्ग से युद्ध करने की शक्ति थी, दूसरे त्रिशूलधारी और गदाधारी थे। हाथियों के गण्ड-स्थल मदजल बहा रहे थे। किसी पैदल सैनिक की जंघा पर आक्रमण करके हाथी के द्वारा उसको वैसे ही विदीर्ण कर दिया गया था जैसे कि एक मत्त हाथी द्वारा लकड़ी तोड़ दी जाती है। एक हाथी दूसरे हाथी पर आक्रमण करता हुआ, पर्वत की चोटी पर आश्लिष्ट-मेघ की शोभा को धारण कर रहा था। सैनिकों द्वारा फेंके गए बाणों को भ्रमरों के आक्रमण के समान समझकर रोमाञ्चित शरीर वाला हाथी धन्य है। तड़पते हुए कबन्धों की उन घटाओं से वह सेना साक्षात् शनैश्चर हो रही थी। हाथियों के गरजने से, घोड़ों के हिनहिनाने से, रथों की घरघराहट से और नगाड़ों की गड़गड़ाहट से सेनाएं मुखरित हो रही थीं। एक साहसी सैनिक ने एक सैनिक को जब पृथ्वी पर गिराया तो उसने भी उठकर दोनों पैरों के प्रहार से उसे दूर फेंक दिया। कोई सैनिक मूर्च्छा को प्राप्त हो रहा था। कोई गर्जना कर रहा था। वायु से हिलती हुई पताकाएं आकाश में व्याप्त हो गई थी। सैनिक सामने जाते हुए सैनिक का सिर छेद रहे थे। बाणों की पंक्ति सेनानायकों के हृदय में प्रविष्ट हो कर उन्हें मोक्ष प्राप्त कर रही थी। वह योद्धाओं के वक्षस्थलों में वेश्या के समान प्रविष्ट हो रही थी। योधाओं के इधर-उधर लटकते हुए शिरों को देखकर ऐसा लगता था. मानों चन्दमा के

विपरीत होने पर यह पृथ्वी अनेक राहुओं से युक्त हो गई हो। हाथियों के मस्तक से निकलती हुई गजमुक्ताओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों शत्रु की लक्ष्मी इस समय आंसू बहा रही हो। चमकती हुई चञ्चल तलवार वीर के हृदय को उत्साहित करती हुई सौभाग्य-समूह को प्रकट कर रही थी। रणभूमि इस समय ब्रह्मा की शिल्पशाला सी लग रही थी। रणभूमि में दण्ड के नष्ट हो जाने पर श्वेत छत्र गिर रहे थे। शवों का मांस खाने के इच्छुक पक्षी वहाँ पर मंडरा रहे थे। मृत पुरुष की स्त्रियों के नेत्रों से बहता हुआ अश्रुप्रवाह और हाथियों के गण्डस्थल से बहता हुआ मदजल यमुना के स्वरूप को धारण कर रहा था। युद्ध-स्थल रणशोभा का क्रीडा सरोवर हो रहा था, जिसमें सैनिकों के केशों से युक्त शिर, शैवाल से युक्त कमलों के समान बिखर रहे थे। स्त्रियों के मस्तक से बहते हुए कुंकुम-जल से युद्धभूमि भर गई थी। जयकुमार ने युद्ध के लिए धनुष धारण किया। युद्ध को देखकर विद्वानों के हृदय कांप रहे थे, मुकुट-समूह में से मणियाँ गिर रही थीं। जयकुमार ने अपनी वीरता के कारण शत्रुओं को तिनके के समान बना दिया। × × × जयकुमार के हाथ की तलवार सर्प से भी भयंकर थी। वह मनुष्यों के अंक को सजा रही थी। परस्पर तलवारों के प्रहारों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। रक्त से सिंचित युद्धभूमि में टूटते हुए, हाथियों के दांत विजेता के कीर्तिवृक्ष के समान लग रहे थे। शत्रु उस समय निर्बल हो रहा था; और जयकुमार हर्षित होकर शोभा को प्राप्त कर रहे थे। अपनी सेना को विनष्ट होता हुआ देखकर अर्ककीर्ति दैन्य को प्राप्त कर रहा था। × + × पताका रूपी बगुले, हाथी रूपी बादल, बाण रूपी मोर, तलवार रूपी बिजली, ढोल की ध्वनि रूपी, बादल की गड़गड़ाहट वाला वह युद्ध वर्षा का रूप धारण कर रहा था। जयकुमार ने अपने गज को अर्ककीर्ति की ओर प्रेरित किया। सोने की रेखा से चिह्नित बाण को जयकुमार के छोड़ने पर शत्रुसमूह अपने प्राण छोड़ रहा था। इसके पश्चात् जयकुमार ने अरिंजय नाम के रथ को ग्रहण किया। अन्धकार को नष्ट करने वाले दीपक के समान जयकुमार ने शत्रु को समाप्त किया। इसके पश्चात् जयकुमार और अर्ककीर्ति सिंहपुत्रों के समान लड़ने लगे। जयकुमार के बाण चलाने पर देवगण जय-जयकार कर रहे थे। अपनी पराजय से अर्ककीर्ति चिन्तित हो रहा था; और जयकुमार विजय से युक्त हो गए थे।[1]

कविकृत मन्दिर-वर्णन और समवशरण मण्डप वर्णन हमें तत्कालीन वास्तु-कला का ज्ञान कराते हैं। यात्रा-वर्णन से यह ज्ञात हो जाता है कि हमारे आलोच्य महाकवि यात्री-हृदय के पारखी थे। मार्ग में यात्री दृश्यों को किस प्रकार आश्चर्य और प्रसन्नता से निहारता है, मार्ग में रहने वाले लोग किस प्रकार एकटक नजरों

१. जयोदय, ८।१-८४

नजरों से किसी धनी यात्री को देखते हैं, इस सबका वर्णन कवि ने करने का प्रयत्न किया है। सबसे सजीव वर्णन तो कवि ने युद्ध का किया है। जयकुमार और अर्ककीर्त्ति का युद्ध महाकाव्य में वीररस की निष्पत्ति करने में पूर्ण सफल है।

(घ) विविध-वर्णन

प्राकृतिक और वैकृतिक पदार्थों के वर्णन के अतिरिक्त कवि ने अन्य विविध वर्णन भी प्रस्तुत किए हैं, जो कवि के विस्तृत ज्ञान के परिचायक हैं। कवि ने भारत के कुछ त्योहारों में होने वाले कार्यों का भी उल्लेख अपने काव्यों में किया है, यथा—वर्षा-ऋतु के प्रसंग में स्त्रियों का झूला झूलना।[2] इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतु वर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने पतङ्ग-क्रीड़ा का उल्लेख किया है। पतङ्ग-उड़ाती हुई एक निःसंतान स्त्री का चित्र देखिए :—

"पतङ्गतन्त्रायितचित्तवृत्तिस्तदीयचक्रभ्रमिसम्प्रवृत्तिः।
श्यामापि नामात्मजलालनस्य समेति सौख्यं सुगुणादरस्य ॥"

अर्थात् जब कोई स्त्री पतङ्ग उड़ाते समय डोरी की चर्खी को घुमाती है, तो उसे पुत्र खिलाने जैसा आनन्द प्राप्त होता है।

जयकुमार की राजसभा का ही वर्णन कवि ने बड़ा मार्मिक किया है। जिस प्रकार शरद् ऋतु राजहंसों से शोभित होती है, उसी प्रकार जयकुमार की सभा विद्वानों से सुशोभित थी। पत्तों, पुष्पों, फलों से युक्त लतावल्लरी के समान वह सभा अच्छी वाणी बोलने वाले, अच्छे अन्तःकरण वाले विद्वानों से युक्त थी। वह सभा जैन वाणी के समान पवित्र नदी के समान मलिनता को नष्ट करने वाली थी।[1]

जयकुमार के विवाह के समय में बारात का स्वागत किस प्रकार किया गया, इसका भी वर्णन कवि ने बड़ा रोचक किया है। एक उद्धरण देखिए, जो स्वभावोक्ति से परिपूर्ण है :—

"किं पश्यस्यपि संरिरेरपि न किं नो रोचकं व्यंजनं,
तन्वीदं लवणाधिकं खलु तृषाकारीति नो रंजनम्।
तस्मात्सम्प्रति सर्वतो मुखमहं याचे पिपासाकुलः,
सात्राभूत्स्मितवारिभुक् पुनरितः स्वेदेन स व्याकुलः॥"
(जयोदय, १२।१४०)

सुलोचना को विदा कराकर जयकुमार गङ्गा-नदी के तट पर पहुँचते हैं, उनके सैनिक वहीं पर पड़ाव डाल लेते हैं, और रात्रि में पानगोष्ठी का आयोजन

---

१. वीरोदय, ४।२१-२२
२. जयोदय, ३।८-१०

करते हैं। कवि ने इस गोष्ठी का अत्यधिक स्वाभाविक वर्णन किया है, उसका संक्षिप्तीकृत रूप प्रस्तुत है :—

रात्रि में स्त्री-पुरुषों ने मधुर वार्तालाप सहित मद्यपान किया। उन्मत्त होकर सभी स्त्री-पुरुष काम-चेष्टायें करने लगे। मदिरा पीने के कारण उन्मत्त पति सपत्नियों का नाम लेने लगे; इस समस्या को दूर करने के लिए पत्नियाँ अपने पतियों को और भी मदिरा पिलाने लगीं। मद्य पीकर पुरुष अपनी स्त्रियों के मुखकमल को निरन्तर निहारने लगे। मद्य पीकर पुरुष खाली पात्रों को इधर-उधर छोड़ने लगे। मद्य का पात्र छोड़ने वाली स्त्रियों के अधरों का उनके चतुर पति पान करने लगे। मद्य के कारण स्त्री-पुरुषों के नेत्र कोकनद की शोभा धारण करने लगे। उन्मत्त पुरुष अपनी स्त्रियों से यथार्थ वचन कहने लगे। × × × मदिरा के वश में होकर स्खलित वाणी में और अधिक मदिरा की याचना करने लगे। सभी स्त्री-पुरुष हास-परिहास में संलग्न होने लगे। एक स्त्री दूसरी स्त्री को नेत्र खोलकर उसके प्रिय का दर्शन करने का उपदेश देने लगी। कोई स्त्री अपनी सखी के रोष को दूर करने का प्रयत्न करने लगी। पति अपनी स्त्रियों से प्रणय-निवेदन करने लगे। विरहिणी स्त्रियाँ पीड़ा का अनुभव करने लगी। स्त्रियाँ पुनः पुनः मान का अभिनय करने लगीं। + + × इस प्रकार मद्यपान करके स्त्री-पुरुषों ने परमसुख एवं लालसा का अनुभव किया।[1]

(ङ) सारांश

महाकवि ज्ञानसागर की रचनाओं में आए हुए पदार्थों के वर्णन के परिशीलन से उनकी वर्णन-कला-कुशलता का ज्ञान पाठकों को भी हो जाएगा। कवि ने प्रायः दृष्टिगोचर होने वाले सभी पदार्थों का वर्णन अपने काव्यों में किया है। उनके काव्यों में इन वर्णनों को दोहराया भी नहीं गया है। अतः एक ही स्थान पर होने के कारण उनका आनन्द लेने में पाठक ऊबता नहीं, यदि कहीं इन वर्णनों को एक से अधिक बार किया भी गया है, तो आवश्यकतानुसार।

श्री ज्ञानसागर का प्रकृति-वर्णन प्रायः प्रतीकात्मक है। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति-वर्णन स्वयं को सुकुमार कवि सिद्ध करने के लिए नहीं किया है, अपितु प्रसङ्गवश किया है। जैसे उनका पर्वत-वर्णन पाठक को कहीं न कहीं ले ही जाता है—जिनदर्शन के लिए या, मुनिदर्शन के लिए। इसी प्रकार उनका समुद्र-वर्णन वीर भगवान् की ही महिमा का उद्घोष करता है।

कवि ने अपने काव्यों में ऋतु-वर्णन (छह-ऋतुओं का) एक एक बार किया है। सम्भवतः कवि ने ऋतु-वर्णन पुनः इसलिए नहीं किया क्योंकि प्रत्येक विशिष्टता का वर्णन वह अपने ऋतु-वर्णन में उसी ही स्थल पर कर गए हैं। उनका शरद्-वर्णन और वसन्त-वर्णन वास्तव में पाठक को लुभाने वाला है।

---

१. जयोदय, १६वाँ सर्ग,

प्रकृति का प्रतीकात्मक वर्णन करते हुए भी कवि ने प्रकृति-वर्णन में पाठक को अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय कराया है। इसीलिए अटल हिमालय, पावनसलिला गङ्गा, ऋषियों से सेव्य वन, गहन-समुद्र, अप्सराओं के समान सुन्दर सरोवर, ऋतुराज, वसन्त, शुभ्राकाशशरद्, भयङ्कर शीत, मन को उल्लसित करने वाली वर्षा, तमोनाशक प्रभात, पिशाचिनी के समान भयङ्कर रात्रि और सन्ध्या-सुन्दरी—इन सभी प्राकृतिक पदार्थों के वर्णन में कवि की सूक्ष्मदर्शनशक्ति स्पष्ट झलकती है, और पाठक को अनायास ही आकृष्ट करती है।

इसी प्रकार वैकृतिक-पदार्थ-वर्णन में भी कवि कम निपुण नहीं है। उन्होंने अपने काव्य के कथाप्रसङ्गों से सम्बन्धित सभी वस्तुओं का वर्णन किया है। वह ग्राम-जीवन और नगर-जीवन अन्तर को भी अच्छी प्रकार समझते हैं, इसीलिए वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए उन्होंने नागरिक-जीवन को भोग-विलास से युक्त बताया है, और ग्रामीण जीवन में सारल्य की प्रधानता बताई है। नगरों में रत्नसम्पदा है, तो ग्रामों में शस्य-सम्पदा। कवि ने महावीर के कैवल्य ज्ञान से युक्त होने के सम्बन्ध में समवशरण मण्डप का वर्णन किया है। स्थान-स्थान पर जिनायतन और जैन-मन्दिरों का भी वर्णन है। कवि का भौगोलिक-स्थान-वर्णन, हमें तत्कालीन वास्तुकला का ज्ञान कराता है। कवि की सभी रचनाएं धार्मिकता से युक्त हैं, इसलिए उन्होंने जो मन्दिर वर्णन किया है वह अल्प है। कवि ने देवताओं की कुण्डनपुर की यात्रा, जयकुमार की सेना की युद्धयात्रा और जयकुमार की रथयात्रा का भी अच्छा वर्णन किया है। यात्रा में कोई भी व्यक्ति किस प्रकार अपना मनोरञ्जन कर सकता है—यह कवि के इन यात्रा-वर्णनों से ज्ञात हो जाता है।

युद्ध का वर्णन कवि ने केवल एक स्थल पर किया है। इसका कारण यह है कि कवि की सभी कृतियों में भक्तिभाव और शान्तरस की ही प्रधानता है। अतः युद्ध-वर्णन से निष्पन्न वीर रस अङ्ग रस के ही रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इतना होते हुए भी कवि अपने एकस्थलीय युद्धवर्णन से पाठकों के हृदय को उल्लसित करने में और कंपाने में पूर्ण समर्थ है। उनके युद्ध-वर्णन में लुढ़कते हुए शिर और कबन्ध, चमकती हुई असिलता, टकराते हुए अस्त्र युद्ध की सजीव झाँकी हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं।

कवि के काव्यों में वर्णित दोला-क्रीड़ा, पतङ्ग-क्रीड़ा, सुरतविहार, पान-गोष्ठी, बरात-स्वागत इत्यादि भी उनकी सूझ-बूझ के परिचायक हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने अपने काव्यों के कथानकों के वातावरण में उपलब्ध सभी पदार्थों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। अतः हम उन्हें वर्णन-कौशल की दृष्टि से भी एक सफल महाकवि मान सकते हैं।

सप्तम अध्याय

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत-ग्रन्थों में भावपक्ष

काव्य के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष और कलापक्ष। उपर्युक्त दोनों पक्षों में भावपक्ष अधिक महत्वपूर्ण होता है। कवि द्वारा काव्य में प्रयुक्त मर्मस्पर्शी-काव्य-उपादानों का नाम ही भावपक्ष है। यह काव्य का प्राणतत्व है। समाज में सहृदयता से रहित व्यक्ति को हृदयहीन अथवा पाषाण-हृदय कहा जाता है। इसी प्रकार काव्य में भावपक्ष की उपेक्षा करने वाले को कठिन-काव्य का प्रेत कहा जाता है। भावपक्षरहित काव्य सौरभहीन पुष्प के समान किसी को अच्छा नहीं लगता, बल्कि फल के साररहित छिलके के समान अग्राह्य लगता है। काव्य को सहृदयहृदयग्राह्य बनाने के लिए आवश्यक है कि उसमें भावपक्ष और कलापक्ष का सन्तुलन हो। आकाश में जो स्थान सूर्य का है, काव्य में वही स्थान भावपक्ष का है। भावपक्ष ही काव्य को वास्तविक काव्य की संज्ञा प्रदान करता है। भावपक्ष ही हमारे समक्ष कवि के हृदय में स्थित भावनाओं का प्रस्तुतीकरण करता है। यही वह तत्व है; जिसके द्वारा हम कवि और अपने मध्य एक तादात्म्य की अनुभूति करते हैं। भाव-पक्ष ही काव्य का वास्तविक भाव (मूल्य) है। काव्य में इस तत्त्व की विद्यमानता जितनी ज्यादा होती है—काव्यप्रेमी पाठक उतना ही आनन्द-सरोवर में डूब जाता है, यहाँ तक कि अपने-आपको भूल जाता है। फिर काव्य के प्रयोजनों में दो प्रमुख प्रयोजन—सद्यः परनिर्वृति एवं कान्तासम्मत उपदेश भी हैं।[1]

देखा जाता है कि पुरुष पर अपने गुरुजनों की अपेक्षा अपनी पत्नी की बातों का ज्यादा प्रभाव पड़ता है। वह अपनी सरस चेष्टाओं से उसे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान कराने में अधिक प्रभावशालिनी होती है। इसी प्रकार व्यक्ति नीतिशास्त्रों के माध्यम से पूर्ण उपदेश ग्रहण नहीं कर पाता। हाँ, यदि उसे काव्य के माध्यम से उपदेश दिया जाए, तो वह मनोरञ्जन के बहाने सहज ही में उसे धारण कर लेता है। काव्य के ये दोनों प्रयोजन उसमें विद्यमान भावपक्ष से ही सिद्ध हो सकते हैं।

---

१. मम्मट, काव्यप्रकाश, १।२

कलापक्ष-प्रधान काव्य पुरुष को बौद्धिक व्यायाम में उलझा देता है। किन्तु भाव-पक्षप्रधान काव्य पुरुष को क्लान्ति हरने में समर्थ होता है। भावपक्ष के ही कारण कवि का काव्य, कविता-कामिनी का मनोहर रूप धारण कर लेता है। आभूषणों से सुसज्जित होने पर भी कान्ता अपने हाव-भाव से ही किसी को आकृष्ट करने में समर्थ होती है। इसी प्रकार शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों से गुंथी रहने पर भी कविता-कामिनी, जब भावपक्ष से संयुक्त होती है तभी, सहृदय को प्रभावित कर पाती है।

उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट हो जाता है कि भावपक्ष काव्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। अतः काव्य को हृदयग्राह्य बनाने के लिए आवश्यक है कि इस तत्त्व की कवि द्वारा उपेक्षा न की जाय। इस तत्त्व की उपेक्षा होते ही कवि और उसके काव्य का साहित्य-समाज में गौण-स्थान हो जाता है।

(ख) भावपक्ष के भेद

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने भावपक्ष के क्रमशः आठ भेद बताए हैं—रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता।[1] कवि इन्हीं तत्त्वों के द्वारा पाठक के हृदय को छूने में समर्थ होता है। भावपक्ष के इन तत्त्वों में सर्वश्रेष्ठ स्थान रस का है। अतएव अब सर्वप्रथम रस-स्वरूप प्रस्तुत है।

(ग) रस-स्वरूप

हमारे मन में अनेक सुषुप्त भावनाएं विद्यमान रहती हैं। किन्हीं विशेष कारणों और परिस्थितियों के उपस्थित होने पर सुषुप्तावस्था को छोड़कर ये जाग्रदवस्था में आ जाती हैं। हमारी चेष्टायें इन भावनाओं को प्रकट करती हैं; और कुछ ऐसे सहायक तत्त्व होते हैं, जो इन भावनाओं को पुष्ट करते हैं। इस प्रकार हृदय में विद्यमान सुषुप्त भावना ही क्रमशः जाग्रत, प्रकट और पुष्ट होकर रस का रूप धारण कर लेती है। जिस प्रकार चावल से भात बनता है; उसी प्रकार भावना से ही रससिद्ध होता है, चावल को भात में बदलने के लिए पात्र, अग्नि, जल और पाचनविधि का ज्ञान अपेक्षित है; इसी प्रकार भावना को रस रूप में परिणत करने के लिए—कारण, विशिष्ट-वातावरण, चेष्टायें और सहायक कारण अपेक्षित हैं। काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो भावना हुई हृदय में स्थित स्थायी भाव। कारण और परिस्थितियों का काव्यशास्त्रीय नाम क्रमशः आलम्बन-विभाव और उद्दीपन-विभाव है। चेष्टाओं को अनुभव कहा जाता है।

---

१. (क) मम्मट, काव्यप्रकाश, ४।२६
(ख) विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण, ३।२५६ का उत्तरार्ध। २६० का पूर्वार्द्ध।

सहायक कारणों को व्यभिचारिभाव कहा जाता है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने रस-स्वरूप का कथन करने वाली निम्नलिखित शब्दावली प्रयुक्त की है :—

"कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥"[1]

अतएव रस को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—

कारण रूप विभाव (आलम्बन और उद्दीपन से जाग्रत्), कार्य रूप अनुभाव (कायिक वाचिक चेष्टाओं से प्रकट), और सहकारी रूप व्यभिचारिभावों (निर्वेद इत्यादि से) से व्यक्त-आश्रय में स्थित स्थायी भाव को रस कहते हैं।

उदाहरणस्वरूप-दुष्यन्त (आश्रय) में स्थित रति नामक स्थायीभाव, शकुन्तला और मनोहर तपोवन (आलम्बन और उद्दीपन विभाव) को देखकर जाग उठता है। उसका यह भाव शकुन्तला का सौन्दर्य-वर्णन, भ्रमर-बाधा से उसको बचाना इत्यादि चेष्टाओं (अनुभावों) से प्रकट हो जाता है। पता नहीं, यह किस कुल की कन्या है? इसका विवाह मुझसे हो सकता है या नहीं? इत्यादि शङ्कादि (व्यभिचारिभावों) से पुष्ट हो जाता है, और शृङ्गार रस का रूप धारण कर लेता है :

स्पष्ट है कि सुषुप्त स्थायीभाव को रस नहीं कहा जा सकता। विभावादि द्वारा रस-रूप में परिणत स्थायीभाव ही आनन्दानुभूति करा पाता है। इसीलिए रस को सब आनन्द कहते हैं, और स्थायीभाव को मूलप्रवृत्ति। पर वही स्थायीभाव आस्वाद्य होने पर 'रस' की संज्ञा प्राप्त कर लेता है।

(घ) रस-संख्या-निर्णय

भारतीय काव्यशास्त्रियों के मत में ९ प्रकार के स्थायी-भाव हैं, और इन्हीं स्थायी भावों के अनुसार ९ रस भी हैं :—

	स्थायी भाव	रस
१.	रति	शृङ्गार
२.	हास	हास्य
३.	शोक	करुण
४.	क्रोध	रौद्र
५.	उत्साह	वीर
६.	भय	भयानक

---

१. काव्यप्रकाश, ४।२७-२८

७.	जुगुप्सा	बीभत्स
८.	विस्मय	अद्‌भुत
९.	निर्वेद	शान्त[1]

इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने वत्सल रस[2] और भक्तिरस[3] की भी परिकल्पना की है। जहाँ तक आनन्दानुभूति का प्रश्न है; वहाँ इन दोनों रसों की परिकल्पना उचित ही है। हम वत्सल को तो रस कह सकते हैं, किन्तु भक्ति को नहीं। रसों का यह वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है। व्यक्ति के मन में रहने वाली पुत्रेषणा' नामक मूलप्रवृत्ति की उपेक्षा हम नहीं कर सकते। पुत्र के प्रति 'स्नेह' नामक स्थायी-भाव इसी मूलप्रवृत्ति से सम्बद्ध है। फिर पुत्र के प्रति स्नेह, 'स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम' से बिल्कुल भिन्न है। स्त्री पुरुष का प्रेम समवयस्कता के आधार पर होता है। अतः हमें वत्सल रस अलग रस मान लेना चाहिए।

अब जहाँ तक भक्ति को रस की प्रतिष्ठा प्राप्त कराने का प्रश्न है—उसका उत्तर है कि भक्ति या आदर नामक मूलप्रवृत्ति का किसी भी मनोवैज्ञानिक ने उल्लेख नहीं किया। अतः भक्ति को हम हृदय में स्थित स्थायी-भाव नहीं मान सकते। माता-पिता, गुरु और ईश्वर के प्रति श्रद्धायुक्त स्नेह को ही भक्ति कहा जाता है। हमारे मन में भक्ति का प्रादुर्भाव सामाजिक परिस्थितियों; पूज्य-जनों का समाज में विशिष्ट स्थान, लोक-परम्परा इत्यादि के अनुसार होता है। स्पष्ट है कि पुत्र-पुत्री के प्रति प्रेम में भी श्रद्धा का सम्मिश्रण नहीं होता, और रमणीरमण-विषयक प्रेम में बराबरी का दावा होता है, इसलिए उसमें श्रद्धा की वह मात्रा नहीं होती, जो गुरु, माता-पिता और ईश्वर के प्रति प्रेम में मिली रहती है। 'शृङ्गार रस' में रति नामक स्थायी भाव और 'वत्सल-रस' में बालक के प्रति वात्सल्य

---

१. (क) भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, ६।१६, १८ तथा ३५०-३५३ पृ० का गद्यभाग।
(ख) मम्मट, काव्यप्रकाश, ४।२९, ३० और ३५ का पूर्वार्द्ध।
(ग) पं० जगन्नाथ, रसगङ्गाधर, प्रथम आनन, पृ० १३१-१३६

२. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ३।२५१-२५४ का पूर्वार्ध।

३. 'ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः॥ १९
नेति भक्तिः सुखाम्भोधेः परमाणुतुलामपि।
—रूप गोस्वामी, भक्तिरसामृतसिन्धुः। पूर्वविभागे प्रथमा सामान्य भक्तिलहरी

नामक स्थायीभाव ही बलशाली होते हैं, जबकि 'पूज्य-जनों के प्रति प्रेम' में मात्र स्नेह से काम नहीं चलता, उसमें स्नेह और श्रद्धा की मात्रा लगभग समान ही होती है। अतः स्नेह और श्रद्धा के सम्मिश्रण रूप भक्ति को 'भक्तिरस' का स्थायीभाव नहीं माना जा सकता है। अतः मनोवैज्ञानिक आधार को ध्यान में रखते हुए हम रसों की संख्या दस से अधिक नहीं मान सकते।

(ङ) कवि श्री ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में अङ्गीरस—

ज्ञानसागर जी के काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि वह उपर्युक्त रसों में से एक रस को ही प्रधान रस के रूप में प्रस्तुत करते हैं, अन्य रसों को वह उस प्रधान-रस के सहायक के रूप में ही उपस्थित करते हैं। किसी राज्य के संचालन में जो स्थिति सम्राट् और सामन्तों की होती है, काव्यों में वही स्थिति प्रधान रस और सहायक रसों की होती है। प्रधान रस को ही अङ्गीरस कहा जाता है, अन्य सहायक रसों का नाम काव्यशास्त्र में अङ्ग रस है। उत्तम कवि यह प्रयास करते हैं कि उनके काव्य को पढ़कर पाठक एक रस का अच्छी प्रकार आनन्द उठा सकें, इसलिए वह अङ्गरसों को इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि उनसे मिलने वाला आनन्द, अङ्गीरस से मिलने वाले आनन्द को कम न करे।

जब हम अपने आलोच्य कवि श्रीज्ञानसागर के पाँचों काव्यों—जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र और दयोदयचम्पू का परिशीलन करते हैं तो ज्ञात होता है कि कवि ने इन पाँचों काव्यों में 'शान्तरस' का ही अङ्गीरस के रूप में वर्णन किया है।

शान्तरस का स्वरूप—

भारतीय काव्यशास्त्रियों की शान्तरस के विषय में अवधारणा है कि सत्त्वगुणसम्पन्न पुरुष के हृदय में स्थित शम नामक स्थायी भाव ही आस्वादन योग्य होकर शान्त-रस की पदवी पाता है। इसका रङ्ग कुन्दपुष्प के समान श्वेत है, अथवा चन्द्रमा के समान है, जो सात्त्विकता का द्योतक है। पुरुषों को मोक्ष रूप पुरुषार्थ की प्राप्ति कराने वाले श्रीभगवान् नारायण ही रस के देवता हैं। संसार की निःसारता, दुःखमयता और तत्त्वज्ञानादि इसके आलम्बन-विभाव हैं। महर्षियों के आश्रम, भगवान् के क्रीड़ाक्षेत्र, तीर्थस्थान, तपोवन, सत्सङ्ग आदि इसके उद्दीपन-विभाव हैं। यम-नियम, यतिवेष का धारण करना, रोमाञ्च इत्यादि इसके अनुभाव हैं। निर्वेद, स्मृति, धृति, स्तम्भ, जीवदया, मति, हर्ष इत्यादि इसके व्यभिचारिभाव हैं। इस रस का प्रादुर्भाव होने पर व्यक्ति में ईर्ष्या, द्वेष, ममत्व इत्यादि भावों का सर्वथा अभाव हो जाता है। वह सुख-दुःख से रहित एक विलक्षण ही आनन्द की प्राप्ति करता है। इसके अतिरिक्त शृङ्गारादि सांसारिक-रस हैं, उनमें हमें धर्म, अर्थ, काम—इन-तीन पुरुषार्थों की झलक देखने को मिलती है, किन्तु अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराने वाले शान्त-रस में हम सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ मोक्ष की झलक

देखते हैं। शृङ्गार को यदि 'रसराज' की पदवी दी गई है, तो इसे 'रसाधिराज' मानना चाहिए क्योंकि इसके प्रादुर्भाव के समय अन्य सभी रसों की सत्ता इसी में विलीन हो जाती है।[1]

(क) जयोदय में वर्णित शान्त रस—

जयोदय महाकाव्य का आद्योपान्त अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस महाकाव्य का अन्तिम भाग शान्त रस से सराबोर है। कवि ने २५ से २८ सर्ग तक शान्त रस के अतिरिक्त किसी अन्य रस का प्रवेश भी नहीं होने दिया है। अन्य स्थलों पर भी ऐसा लगता है कि शृङ्गारादि रस सब शान्त-रस की चाकरी कर रहे हों; और उनके माध्यम से सहृदय पाठक शान्तरस तक पहुँचा हो तथा उसकी शान्तरस से गुप्तमंत्रणा चल रही हो।

काव्य के नायक जयकुमार इस रस के आश्रय हैं। संसार की निःसारता, परिवर्तनशीलता आदि आलम्बनविभाव हैं। आदि तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव का उपदेश उद्दीपनविभाव है। वनगमन, रोमाञ्च, यतिवेश धारण करना, दैगम्बरी दीक्षा लेना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, स्मृति, दैन्य, मति, तर्क इत्यादि व्यभिचारि-भाव हैं।

शान्त रस का बीज काव्य का वह स्थल है, जहाँ जयकुमार और सुलोचना को अपने पूर्वजन्मों का स्मरण हो जाता है। यह बीज उस समय अंकुर का रूप धारण कर लेता है, जब तीर्थयात्रा के अवसर पर रविप्रभदेव जयकुमार के सदा-चरण की परीक्षा लेता है। इसके बाद तो जयकुमार के हृदय में विद्यमान 'शम' नामक शान्तरस का स्थायीभाव पूर्णरूपेण जाग उठता है। जयकुमार अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर देते हैं, और तत्पश्चात् वन की ओर चल देते हैं। वह भगवान् ऋषभदेव की शरण में जाते हैं। भगवान् उन्हें उपदेश देते हैं। फलस्वरूप वह सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों को छोड़कर दिगम्बर मुनि बन जाते हैं। कठोर तपस्या के पश्चात् सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ पर शान्तरस वाचामगोचर दशा प्राप्त कर लेता है।

शान्तरस की अभिव्यञ्जना कराने वाले कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं:—

(क) विरक्त जयकुमार के मनोभावों का वर्णन देखिए :—

"बहुसुमस्यवरोधिविधेः क्षयप्रशमतः शमतः स्विदयं जनः।
झगिति निर्विविदेऽथ भवच्छिदे क्वचिदचित्तरुचिर्निजसम्विदे ॥"

---

१. (क) भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र, ६।८३वीं कारिका के बाद का गद्यभाग और ८४-८७

(ख) विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, ३।२८५ का० उ०—२४९ के पूर्वार्द्ध तक।

अनुभवानिलजालसमीरिते हृदयसारगभीरसरस्वति ।
जनिमवापमवापदुदीरिणः स्फुटविचार तरङ्गततिः सती ॥
क्षणरुचिः कमला प्रतिदिङ्मुखं सुरधनुश्चलमैन्द्रियकं सुखम् ।
विभव एष सुषुप्तिविकल्पवद्वहह दृश्यमदोऽखिलमध्रुवम् ॥
युवतयो मृगमञ्जुललोचनाः कुतरवा द्विरदा मदरोचनाः ।
लहरिवत्तरलास्तुरगाश्चमू समुदये किमु दक्षपनेऽप्यमूः ॥[1]

(ख) ऋषभदेव से धर्मस्वरूप सुनकर जयकुमार तपस्वी हो जाते हैं, और अपने वस्त्र इत्यादि परिग्रह का परित्याग कर देते हैं। पुनः निवृत्ति के मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं :—

"सदाचारविहीनोऽपि सदाचारपरायणः ।
स राजापि तपस्वी सन् समक्षोऽप्यक्षरोधकः ॥
हैरयैवैरयाव्याप्तं भोगिनामधिनायकः ।
अहीनः सर्ववत्तावत्कञ्चुकं परिमुक्तवान् ॥
पंचमुष्टिस्फुरद्दृष्टि प्रवृत्तोऽखिलसंयमे ।
उच्चखान महाभागो वृजिनान्वृजिनोपमान् ॥
कृताभिसन्धिरभ्यंगनीरागमहितोदयः ।
मुक्ताहारतया रेजे मुक्तिकान्ताकरग्रहे ॥
प्रायश्चित्तं चकारैष विनयेन समन्वितम् ।
स्वाध्यायसहितं धीरः परिणामानुयोगवान् ॥
मारवाराभ्यतीतस्सन्नथो नोदलतां श्रितः ।
मारवाराभ्यतीतस्सन्नथो नोदलतां श्रितः ।
निवृत्तिपथनिष्ठोऽतिवृत्तिसंस्थानवानभूत् ।"[2]

(ग) तपस्या को अङ्गीकार कर लेने पर जयकुमार में क्षमाशीलता, मृदुता, सरलता, पवित्रता, निर्भीकता, तेजस्विता, त्याग, वैराग्य, तत्त्वज्ञान के प्रति रुचि इत्यादि गुण वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं :—

"क्षमाशीलोऽपि सन् कोपकरणैकपरायणः ।
बभूव मार्दवोपेतोऽप्यतीव दृढधारणः ॥
अप्यार्जवश्रिया नित्यं समुत्सवक्रमङ्गतः ।
वचनक्रियोऽप्यासीत्तदा शौचपरायणः ॥
स्वामतां नान्वगाच्चित्ते सत्यानुगतवृत्तिमान् ।
यमादभीत एवासीत्संयमप्रभयान्वितः ॥

---

१. जयोदय, २५।१-४
२ वही, २८।५-१०

असन्तप्तान्तरङ्गोऽपि तपसि प्रणिधिं व्रतः।
न त्यागमहितोऽप्यासीत्यक्ताशेषपरिग्रहः॥
संगीतगुणसंस्थोऽपि सन्निकिंचनरागवान्।
वर्णनातीतमाहात्म्यो वर्णितोचितसंस्थितिः॥
श्रीयुक्तदशधर्मोऽपि नवनीताधिकारवान्।
तत्त्वस्थितिप्रकाशाय स्वात्मनैकायितोऽभ्यभूत्॥[२]

(ख) वीरोदय में वर्णित शान्तरस

वीरोदय महाकाव्य तो आद्योपान्त शान्तरस प्रधान महाकाव्य है। इस काव्य के नायक भगवान् महावीर के हृदय में स्थित शम नामक स्थायीभाव विशिष्ट वातावरण में प्रबुद्ध होकर शान्त रस का रूप धारण कर लेता है। क्षणभङ्गुर संसार इस रस का आलम्बन-विभाव है; और लोगों की स्वार्थपरता, धर्मान्धता इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। त्याग की इच्छा, तपश्चरण की ओर उन्मुख होना इत्यादि अनुभाव हैं। निर्वेद, स्मृति, इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं। वीरोदय महाकाव्य के शान्तरस के कुछ उद्धरण आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं :—

(क) भगवान् महावीर विवाह का विरोध करते हुए अपने पिता को समझाते हैं :—

"पुरापि श्रूयते पुत्री ब्राह्मी वा सुन्दरी पुरोः।
अनूचानत्वमापन्ना स्त्रीषु शस्यतमा मता॥
उपान्त्योऽपि जिनो बालब्रह्मचारी जगन्मतः।
पाण्डवानां यथा भीष्मपितामह इति श्रुतः॥
अन्येऽपि बहवो जाताः कुमारश्रमणा नराः।
सर्वेष्वपि जयेष्वग्रगतः कामजयो यतः॥
+ + +
राज्यमेतदनर्थाय कौरवाणामभूदहो।
तथा भरतबाहोश्चक्त्योः प्रपंचाय महात्मनोः॥
राज्यं भुवि स्थिरं क्वासीत्प्रजायाः मनसीत्यतः।
शाश्वतं राज्यमन्वेतुं प्रयते पूर्णरूपतः॥"[१]

उपर्युक्त श्लोकों में जगत् की निस्सारता रूप आलम्बन का वर्णन हुआ है, भीष्म-पितामह, कौरव भरत-बाहुबली के वृत्तान्त उद्दीपन विभाव हैं। मति रूप व्यभिचारिभाव है। यहाँ शान्तरस की स्पष्ट अभिव्यञ्जना है।

---

१. जयोदय, २८।३५-४०

२. वीरोदय, ८।३६-४५

(ख) वीरोदय में शान्तरस का दूसरा उदाहरण वहाँ देखने को मिलता है जब भगवान् महावीर विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करके, संसार की दीन-दशा का अवलोकन करते हैं :—

"स्वीयां पिपासां शमयेत परासृजा क्षुधां परप्राणविपत्तिभिः प्रजा।
स्वचक्षुषा स्वार्थपरायणां स्थितिं निभालयामो जगतीदृशीमिति ॥
अजेन माता परितुष्यतीति तन्निगद्यते धूर्तजनैः कदर्थितम्।
पिबेन्नु मातापि सुतस्य शोणितमहो निशायामपि अर्यमोदितः।
जाया-सुतार्थं भुवि विस्फुरन्मनाः कुर्याद्वधं जायाः सुतसंहृतिं च।
किमुच्यतामीदृशि एवमार्यता स्ववाञ्छितार्थं स्विदनर्थकार्यता ॥
+ + +
स्वरोटिकां मोटयितुं हि शिक्षते जनोऽखिलः सम्बलयेऽधुनाक्षितेः।
न कश्चनाप्यन्यविचारतन्मना मृलोकमेषा ग्रसते हि पूतना ॥
+ + +
अहो पशूनां ध्रियते यतो बलिः श्मशानतामञ्चति देवतास्थली।
यमस्थली वातुलरक्तरञ्जिता बिभाति यस्यां सततं हि देहली ॥
एकः सुरापानरतस्तथा वत पलङ्कषत्वात्कवरस्थलीकृतम् ॥
केनोदरं कोऽपि परस्य योषितं स्वस्वात्करोतीतरकोणनिष्ठितः ॥
कुतोऽपहारो द्रविणस्य दृश्यते तथोपहारः स्ववचः प्रपश्यते।
परं कलत्रं ह्रियते ऽन्यतो हटाद्विकीर्यते स्वोदरपूर्तये सटा ॥"[1]

(आज लोग दूसरे के रक्त एवं मांस से अपनी पिपासा एवं क्षुधा को शान्त करना चाहते हैं। संसार में यही स्वार्थपरायणता दृष्टिगोचर हो रही है। धूर्त लोगों का कहना है कि बकरे की बलि से जगदम्बा प्रसन्न होती है। यदि माता अपने ही पुत्रों का खून पीने लगे तो यह वैसा ही होगा जैसे रात्रि में सूर्य का उदय होना। स्वार्थी मनुष्य अपनी स्त्री से पुत्र के लोभ में बकरी के पुत्र का हनन कर रहा है। × × × इस संसार में जिसे देखो वही अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगा हुआ है। × × × मन्दिरों से सुशोभित पवित्र भूमि पशुओं की बलि धारण करती हुई श्मशान की ही श्रेणी में पहुँच रही है। उन मन्दिरों की देहली रक्त से रंजित होकर यमलोक जैसी ही लग रही है। लोग मद्य-मांस-परस्त्री-सेवन, चोरी, बेईमानी और दुराचार में संलग्न हो रहे हैं।)

उपर्युक्त श्लोकों में संसार का वैचित्र्य आलम्बन-विभाव है। लोगों की स्वार्थपरायणता, अज्ञान, समाज में व्यभिचार की वृद्धि इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं।

---

१. वीरोदय, ६।१-१५

संसार की दशा को देखकर दुःखी होना अनुभाव है। निर्वेद, जीवदया आदि व्यभिचारिभाव हैं।

(ग) वीरोदय में शान्तरस का तीसरा और महत्त्वपूर्ण स्थल वह है, जहाँ भगवान् महावीर के हृदय में स्थित 'शम' नामक स्थायी भाव पूर्णरूपेण जाग उठता है :—

"श्रीमतो वर्धमानस्य चित्ते चिन्तनमित्यभूत्।
हिमाक्रान्ततया दृष्ट्वा म्लानमम्भोरुहव्रजम्॥
भुवने लब्धजनुषः कमलस्येव मादृशः।
क्षणादेव विपत्तिः स्यात्सम्पत्तिमधिगच्छतः॥
+ + +
किमन्यैरहमप्यस्मि वञ्चितो मायया ऽनया।
धीवरोऽप्यम्बुपूरान्तःपाती यदिव झंझया॥
+ + +
अस्मिन्नहन्तयाऽमुष्य पोषकं शोषकं पुनः।
वांछामि संहरान्मेतदेवानर्थस्य कारणम्॥
+ + +
वस्त्रेण वेष्टितः कस्माद् ब्रह्मचारी च सन्नहम्।
दम्भो यन्न भवेदिंक भो ब्रह्मवर्त्मनिबाधकः॥
+ × +
विहाय मनसा वाचा कर्मणा सदनाश्रयम्।
उपैम्यहमपि प्रीत्या सदाऽऽनन्दनकं वनम्॥
+ + +
विजनं स विरक्तात्मा गत्वाऽप्यविजनाकुलम्।
निष्कपटत्वमुद्धर्तुं पटानुज्झितवानपि॥
उच्चखान कचौघं स कल्मषोपममात्मनः।
मौनमालम्बवानन्तरन्वेष्टुं दस्युसंग्रहम्॥[1]

(शीत के आक्रमण से मलिन कान्ति वाले कमलों के समूह को देखकर भगवान् वर्धमान विचार करने लगते हैं कि संसार में किसी के भी ऊपर आने वाली विपत्ति का कोई निश्चित समय नहीं है। × × × जैसे जल के प्रवाह के बीच झंझावत से आंदोलित होकर मल्लाह डूब जाता है, वैसे ही बुद्धि से युक्त होकर भी मैं इस संसार की माया से ठगा जा रहा हूँ। × × × अहङ्कार, राग और

१. वीरोदय, १०।१-२६

क्लेश को मैं समाप्त करना चाहता हूं। ये मेरे अनर्थ का कारण बन गए हैं। × × × यह तो मेरा दम्भ ही है जो ब्रह्मचारी होकर मैं वस्त्र धारण कर रहा हूं। × × × अब मैं मन, वाणी और कर्म से भवनावेष्टित नगर को छोड़कर सज्जनों को आनन्द देने वाले वन को प्रेमपूर्वक जाता हूं। × × × इस प्रकार से विरक्त मन वाले भगवान् ने भेड़ इत्यादि पशुओं से भरे हुए जन-रहित वन में जाकर दैगम्बरी दीक्षा ले ली। अपने केशों को उखाड़ दिया और मौन धारण कर लिया।)

इन श्लोकों के अनुशीलन से ज्ञात हो जाता है कि यहां संसार की परिवर्तन-शीलता आलम्बनविभाव है। निर्वेद, मति आदि व्यभिचारिभाव हैं। नगर और वन में समबुद्धि रखना, वनगमन, वस्त्रपरित्याग, केशों को उखाड़ना इत्यादि अनुभाव हैं यहां शान्तरस का आस्वादन करने में सहृदय पाठक को कोई बाधा नहीं दीखती।

(ग) सुदर्शनोदय में वर्णित शान्त रस—

इस काव्य का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि इसका अन्तिम भाग तो शान्त रस से युक्त है ही, साथ ही बीच-बीच में भी शान्त-रस की झांकी देखने को मिल जाती है। प्रारम्भ से अन्त तक शान्त-रस को अन्य रसों से संघर्ष करना पड़ा है, और इस संघर्ष में विजय शान्त रस की ही हुई है।

शान्तरस का बीज काव्य का वह स्थल है, जहां पर सेठ वृषभदास दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। कपिला की दुष्प्रवृत्ति पर विजय के समय वह बीज अंकुरित होने लगता है। रानी अभयमती के ऊपर विजय के समय यह अंकुर पौधे का रूप ले लेता है। मनोरमा की प्रेरणा रूपी जल से यह पौधा सिंचित हो जाता है। देवदत्ता और पण्डितादासी को प्रबुद्ध करने के पश्चात् यह पौधा एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। इस समय शान्त-रस निर्बाध रूप से आस्वाद्य हो जाता है।

सुदर्शनोदय के परिशीलन से ज्ञात होता है कि इस काव्य में चार स्थलों पर शान्त-रस का वर्णन किया गया है। एक स्थल पर सेठ वृषभदास शान्तरस के आश्रय हैं, और अन्य स्थलों पर सुदर्शन इस रस का आश्रय है। मुनियों का उपदेश, उनका दर्शन, संसार में दुराचरण इत्यादि इस रस के उद्दीपन हैं। संसार की परिवर्तनशीलता आलम्बन-विभाव है। वनगमन, यतिवेशधारण करना इत्यादि अनुभाव हैं। निर्वेद, मति इत्यादि व्यभिचारिभाव है। सुदर्शनोदय में वर्णित शान्त रस के ३ उदाहरण प्रस्तुत हैं:—

---

१. सुदर्शनोदय, ४।३-१४,

(क) शान्तरस का आस्वादन सर्वप्रथम सहृदय पाठक वहाँ पर करता है, जहाँ सेठ वृषभदास मुनि से धर्मोपदेश सुनकर दिगम्बर-दीक्षा लेकर मुनि बन जाते हैं और समस्त बाह्य आडम्बरों का परित्याग कर देते हैं :—

।'वागेव कौमुदी साधु-सुधांशोरमृतस्रवा ।
तया वृषभदासस्याभून्मोहतिमिरक्षतिः ॥
तमाश्रितं मेघहरं श्रितस्तदाश्रिपोऽपि दासो वृषभस्य सम्पदाम् ।
मयूरवन्मौनपदाय भन्वतां जगाम दृष्ट्वा जगतोऽप्यकन्दताम् ॥[1]

(ख) शान्त रस की अभिव्यञ्जना कराने वाला दूसरा स्थल वह है, जहाँ रानी के दुर्व्यवहार के पश्चात् अपनी तेजस्विता और शक्ति के कारण सुदर्शन राजा धात्रीवाहन के शिकंजे से भी छूट जाता है, राजा के समक्ष विरक्ति से परिपूर्ण वचन कहता है, और उदासीन होकर निवृत्ति पथ पर चलने की इच्छा करता है। अपनी मनोवांछा वह अपनी पत्नी मनोरमा के सम्मुख व्यक्त करता है। मनोरमा से प्रेरणा पाकर जिनमन्दिर जाता है, वहाँ विमलवाहन नामक मुनिराज के दर्शनों और वचनों से प्रभावित होकर दिगम्बर मुनि बन जाता है। इस बात में साध्वी मनोरमा भी पीछे नहीं रहती, वह भी बाह्य-आडम्बर त्याग कर आर्यिका व्रत को धारण कर लेती है :—

"माया महतीयं मोहिनी भवभाजोऽहो माया ॥
भवति प्रकृतिः समीक्षणीया यद्वशगस्य सदाया ।
निष्फललतेव विचाररहिता स्वल्पपल्लवच्छाया ॥
दुरितसमारम्भप्राया ॥ माया महतीयं ॥

— — —

समाशास्य यतीशानं न चाशाऽस्य यतः क्वचित् ।
पुनः स चेलालङ्कारं निश्चेलाचारमभ्यगात् ॥
छायेव तं साऽप्यनुवर्तमाना तथैव सम्पादितसम्विधाना ।
तस्यैव साधोर्वचसः प्रमाणाज्जनी जनुः सार्थमिति ब्रुवाणा ॥
शुक्लैकवस्त्रं प्रतिपद्यमाना परं समस्तोपधिमुज्झहाना ।
मनोरमाऽभूदधुनेयमार्या न नग्नभावोऽयमवाचि नार्याः ॥"

(सांसारिक प्राणी को यह विमोहित करने वाली माया बहुत बड़ी सम्पत्ति के समान लगती है। जो व्यक्ति इस माया के वश में हो जाते हैं, उनका व्यवहार शोचनीय हो जाता है। फलों से रहित, पक्षियों के संचार से रहित और थोड़े पत्तों के कारण थोड़ी सी छाया वाली लता के समान माया के वशीभूत व्यक्ति की चेष्टाएं निष्फल, विचार रहित, थोड़े से पुष्पों का सम्पादन करने वाली और पाप से पूर्ण होती हैं। × × × क्योंकि इस सुदर्शन के मन में सांसारिक वस्तुओं के

प्रति जरा भी ममता नहीं रह गई थी। अतः उसने इस पृथ्वी के अलङ्कारस्वरूप मुनीश्वर के पास जाकर दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली। मनोरमा ने भी छाया के समान उसका अनुकरण किया, और सुदर्शन के समान ही समस्त विधानों का सम्पादन किया। उन्हीं मुनिराज के वचनों को प्रमाण मानकर उसने अपने नारी जन्म को सार्थक किया। समस्त परिग्रह को छोड़कर उसने केवल एक श्वेत वस्त्र धारण करते हुए आर्यिका व्रत को धारण किया क्योंकि स्त्रियों के दिगम्बरत्व का निषेध है।

यहाँ पर संसार की निःसारता आलम्बन-विभाव है। राजा-रानी का व्यवहार, मनोरमा की प्रेरणा, विमलवाहन मुनि के दर्शन और उनके उपदेश उद्दीपन विभाव हैं। सांसारिकता के त्याग का निश्चय, यतिवेश धारण करना, दिगम्बर बन जाना, श्वेतवस्त्र धारण करना, आर्यिका व्रत धारण करना इत्यादि अनुभाव हैं। निर्वेद, मति, धृति इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(ग) शान्तरस की अभिव्यञ्जना कराने वाला स्थल वह है जहाँ रानी अभयमती जो कि व्यन्तरी बन चुकी है—सुदर्शन से बदला लेने आती है। व्यन्तरी के दुर्व्यवहार का सुदर्शन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सुदर्शन का देह सम्बन्धी ममत्व पूर्णरूपेण समाप्त हो जाता है और कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हो जाती है :—

"आत्मन्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं चिन्तयतोऽस्य धीमतः।
न जातुचिदभूल्लक्ष्यस्तत्कृतोपद्रवे पुनः॥
त्यक्त्वा देहगतस्नेहमात्मन्येकान्ततो रतः।
बभूवास्य ततो नाशमगू रागादयः क्रमात्॥
निःशेषतो मले नष्टे नैर्मल्यमधिगच्छति।
आदर्श इव तस्यात्मन्यखिलं बिम्बितं जगत्॥
नदीपो गुणरत्नानां जगतामेकदीपकः।
स्तुतान्जनतयाऽधीतः स निरञ्जनतामयात्॥"[1]

(आत्मा में ही अपनी आत्मा द्वारा परमात्मतत्त्व का चिन्तन करते हुए बुद्धिमान सुदर्शन का ध्यान व्यन्तरी के उपद्रवों पर जरा भी नहीं गया। शरीर सम्बन्धी स्नेह को छोड़कर अन्त में वह आत्मा में ही लीन हो गए। उनके रागादि क्रमशः नष्ट हो गए। जिस प्रकार मलिनता के नष्ट हो जाने पर दर्पण में स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, उसी प्रकार उनकी कर्मरूपी मल से रहित आत्मा में वह जगत् प्रतिबिम्बित हो रहा था। गुणरूप रत्नों के सागर तीनों जगत् के एकमात्र प्रकाशक, सर्वज्ञ वह सुदर्शन केवल ज्ञानी हो गए।)

---

१. सुदर्शनोदय, ९।८३-८६

यहाँ पर तत्त्वज्ञान आलम्बन-विभाव है। सम्पूर्ण ममत्व की समाप्ति, अन्तःकरण का निर्मल हो जाना अनुभाव हैं।

(घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में वर्णित शान्तरस—

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र का आद्योपान्त परिशीलन करने से पता चलता है कि इसमें शान्तरस का ही एकच्छत्र साम्राज्य है। चौथे सर्ग से नवें सर्ग तक हमें शान्तरस की ही छटा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। मुख्य रूप से शान्तरस का प्रारम्भ वहाँ से होता है, जहाँ पर राजा अपराजित सर्वपरिग्रह का त्याग करके दिगम्बर हो जाते हैं। राजा चक्रायुध के सर्वपरिग्रह त्याग करने पर इस रस का पूर्ण परिपाक हो जाता है।

इस काव्य में सात स्थानों पर शान्तरस की अनुभूति होती है। इनमें से एक स्थल वह है जहाँ रानी रामदत्ता आर्यिका व्रत धारण कर लेती है। एक स्थल पर भद्रमित्र, एक स्थल पर सिंहचन्द्र, एक स्थल पर राजा अपराजित और तीन स्थलों पर राजा चक्रायुध इस रस के आश्रय हैं। जन्म-मरण का चक्र आदि आलम्बन विभाव हैं। प्रियजन का नाश, मुनियों का सदुपदेश, विश्वसनीयों द्वारा प्रतिकूल आचरण, पूज्य जनों का यतिवेश धारण करना आदि उद्दीपन विभाव हैं। आर्यिका व्रत धारण करना, सम्पत्ति का दान कर देना, राज्य छोड़कर वन जाना, दिगम्बर-वेश धारण करना, रागादि से रहित होना आदि अनुभाव हैं। शान्तरस के ३ महत्वपूर्ण स्थल इस प्रकार हैं :—

(क) इस काव्य में शान्तरस की सुन्दर अभिव्यञ्जना उस स्थल पर हुई है, जहाँ राजा अपराजित मुनि के उपदेश सर्वपरिग्रह का परित्याग कर देते हैं :—

"कदाचिदुद्यानमलंबभूव तपस्विना श्रीपिहिताश्रवेण।
ऋतूत्तमेनेव धरातलेऽस्य वसन्तनाम्ना सुमनोहरेण॥
× × ×
रवेरिवास्तैककवेरुदारः भूतेऽनुभूते स मुदोऽधिकारः।
उद्यानपालककुकुटेनाऽपराजितः कोक इवागमेन॥
समेत्य पश्चादभिवन्द्य पादौ जगाम्बुधौ नाव्यमूदनादौ।
परिश्रवः स्वस्य यथाक्रमं तं श्रुत्वाऽथो निर्विविदे विवेदन्तः॥
ततोऽत्र भोगाच्च भवादुदासीभवन्महात्मा सुकृतैकराशिः।
विहाय देहादखिलं यदन्यद् दधौ यथाजातपदं स धन्यः॥[1]

(काव्य के नायक चक्रायुध के उद्यान में पिहिताश्रव नामक एक प्रभावशाली मुनि का आगमन हुआ। उद्यान के माली के मुंह से मुनि का आगमन सुनकर चक्रायुध के पिता प्रसन्न होकर मुनि के पास पहुँचे। जब राजा अपराजित ने अपने

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।३१-३६

जीवन-मरण के विषय में मुनि से सुना, तो उनका हृदय विरक्ति से भर उठा। उन्होंने सभी सांसारिक पदार्थों का परित्याग कर दिया, और दिगम्बर मुनि बन गए।)

यहाँ जन्म-मरण का चक्र आलम्बन विभाव है। मुनि के दर्शन और उनके वचन उद्दीपन-विभाव। सर्वपरिग्रह त्याग कर मुनिवेश धारण करना अनुभाव है। हर्ष, निर्वेद, मति इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(ख) काव्य का नायक चक्रायुध एक दिन दर्पण में मुख देखते समय अपने शिर पर एक सफेद बाल देख लेता है। फलस्वरूप वह संसार और इस सांसारिक जीवन की निःसारता के विषय में सोचने लगता है और अपना राज्य अपने पुत्र को देकर वन प्रस्थान करता है :—

"रुचिकरे मुकुरे मुखमुद्धरन्नथ कदापि स चक्रपुरेश्वरः।
कमपि केशमुदीक्ष्य तदासितं समवदद्यमदूतमिवोदितम्॥
ननु जरा पृतना यमभूपतेर्मम समीपमुपञ्चितुमीहते।
बहुगदाधिकृतेह तदग्रतः शुचिनिशानमुदेति अदो बत॥
तरुणिमोपवनं सुमनोहरं दहति यच्छमनाग्निरतः परम।
भवति भस्मकलेव किलासकौ पलितनामतया समुदासकौ।

— — —

परमभावसमञ्चितसम्पदा परमभाववशं कलयन् हृदा।
पथु जेऽत्यसृजन्निजवैभवं प्रतिविधातुमुदीय सवैभवम्॥
वणिगिवार्जयितुं स नवं धनं गज इव प्रभवैश्च न बन्धनः।
सदनतः प्रचचाल वनं प्रति भवितुमत्र तु पूर्णतया यतिः॥"[1]

उपर्युक्त स्थल पर संसार की परिवर्तनशीलता आलम्बन-विभाव है। शिर पर श्वेत केश दिखाई देना उद्दीपन विभाव है। राज्य छोड़कर वन को चल देना अनुभाव है। निर्वेद मति इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(ग) वन जाने के पश्चात् चक्रायुध ने अपराजित मुनि के दर्शन किए। उनके वचनों को सुनकर उसने समस्त बाह्य वस्तुओं का परित्याग कर दिया। उसका अन्तःकरण भी धीरे-धीरे निर्मल हो गया। शरीर से विरक्त उसने संयम की शुद्धि के लिए मयूरपिच्छी को और शौच के लिए कमण्डलु को निर्विकार भाव से ग्रहण कर लिया। त्याग और वैराग्य से उसने सभी कर्मों को अपने से दूर कर दिया। अन्त में उसे कैवल्य की प्राप्ति हो गई।

"इति गुरोरिव गारुडिनोऽप्यहिवंचनमभ्युपगम्य नृपो बहिः।
झगितिकंचुकमुज्झयमपाकरोद्गरमिवान्तरमप्यधुना स हि॥

---

1. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ७।१-२३

यथाजातपदं लेभे परित्यज्याखिलं बहिः ।
शरीराच्च विरक्तः सन्नन्तरात्मतया स हि ॥
पिच्छां संयमशुद्ध्यर्थं शौचार्थं च कमण्डलुम् ।
निर्विण्णान्तस्तया दध्रे नान्यत्किञ्चिन्महाशयः ॥
पटेन परिहीणोऽपि बहुनिष्कपटोऽभवत् ।
अभूषणत्वमव्याप्तो भुवो भूषणतां गतः ॥

— — —

नवामनुद्भवां चक्रे पुरापूतिन्तु शोधयन् ।
शस्त्रवैद्य इवातोऽभूत्सद्य एवावृतेः क्षयः ॥
चक्रीव चक्रेण सुदर्शनेन य आत्मशत्रूञ्जितवान् शुभेन ।
चक्रायुधः केवलिराट् स तेन पायादपायाद् धरणीतले नः ॥[1]

यहां पर वस्तुतत्त्व का ज्ञान आलम्बन-विभाव है । गुरु के वचन उद्दीपन-विभाव हैं । सम्पूर्ण परिग्रह का परित्याग अनुभाव है । निर्वेद, मति, जीवदया इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं ।

(ङ) दयोदय-चम्पू में वर्णित शान्तरस—

इस काव्य का अन्तिम भाग शान्तरस से युक्त है । समस्त रसों की परिणति शान्त रस में उसी प्रकार हुई है जिस प्रकार समस्त नदियों की परिणति समुद्र में होती है । अतः शान्त रस के उदाहरण के रूप में काव्य का यही अन्तिम भाग प्रस्तुत है :—

अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण सोमदत्त ने सेठ की पुत्री विषा, राजकुमारी गुणमाला और आधा राज्य प्राप्त कर लिया । एक दिन राजकार्य के पश्चात् जब वह घर आया तो उसने और विषा ने एक मुनिराज को देखा । दोनों ने उनको यथोचित सम्मान दिया । मुनि के विरक्तिपूर्ण वचनों से प्रभावित होकर, सोमदत्त ने सांसारिक मोहमाया का परित्याग कर दिया । समस्त बाह्यवस्तुओं का परित्याग करके वह दिगम्बर मुनि बन गया । विषा ने भी पति का अनुकरण किया । उसने और वसन्तसेना वैश्या ने भी विरक्त होकर आर्यिका-व्रत धारण कर लिया :—

"यावच्च समाजगाम राजकार्यं कृत्वा तावदेव सुकेतु—
नामामुनिश्चर्यापर्यायपरिणतो दृग्पथमगात् ।.....यतिः
अवसरमुपेत्य वचोगुप्तिमतीत्य भाषासमितिमवलम्बितवान्—
"अहो संसारकान्तारे चतुष्पथसमन्विते ।
मार्गत्रयन्तु संरुद्धमतीव दुरतिक्रमैः ॥

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ८।५०, ६।१-३०

नृभवो नाम पन्थैकोऽस्त्यभीष्टस्थानदायकः ।
तस्मिंश्चेन्द्रियसंज्ञानां लुण्टकानामुपक्रमः ॥"

(यह संसार एक भयानक जङ्गल के समान है, इसमें प्रवेश करने के लिए चार मार्ग हैं। इनमें से तीन मार्ग तो अनेक उपद्रवों से अवरुद्ध हैं। मनुष्य जन्म नामक जो चौथा मार्ग है, वह अभीष्ट स्थान पर पहुँचा सकता है; किन्तु उसमें भी चोरों के समान इन्द्रियविषयों का उपद्रव होता ही रहता है।)

— — —

इति साधुमुखांशोर्वचनामृतं पीत्वा स्वास्थ्यमुपलभमानो विषोप-
योगसञ्जातमोहतो रहितः सन्नखिलानुपाधिप्रकारानतीत्य
यथाजातरूपतामनुजग्राह सोमदत्तः ।
सोमदत्तर्षेरनुभावमतीत्य तपोधनप्रसङ्गेण
विकासमाश्रितवती कमलिनीव तपसि चित्तं चकार । .....
विषा—वसन्तसेने एकमेव शाटकमात्रविशेषमार्यावृतमङ्गीचक्रतुः ।"[1]

यहाँ पर सोमदत्त, विषा और वसन्तसेना शान्तरस के आश्रय हैं। वस्तुतत्त्व का ज्ञान आलम्बनविभाव है। ऋषिराज के वचन, उनकी वेशभूषा उद्दीपन विभाव हैं। सांसारिक पदार्थों को छोड़कर मुनि बनना अनुभाव है। निर्वेद, हर्ष और मति इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(च) श्री ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में अङ्गरस

कविवर श्रीज्ञानसागर ने अपने काव्यों में शान्तरस के अङ्गरसों के रूप में अन्य रसों का भी वर्णन किया है। अब आप उनके काव्यों में वर्णित होने वाले रसों का अवलोकन कीजिए :—

जयोदय महाकाव्य में वर्णित अङ्गरस—

जयोदय में शान्त की पुष्टि हेतु जिन अन्य रसों का वर्णन है, वे इस प्रकार हैं :—शृङ्गार, वीर, रौद्र, हास्य, बीभत्स और वत्सल रस। अब क्रमशः सोदाहरण ये रस प्रस्तुत हैं :—

शृङ्गार रस—

जयोदय महाकाव्य में इस रस की अभिव्यक्ति ६ स्थलों पर है। प्रायः कवि ने संयोग शृङ्गार की ही अभिव्यक्ति कराई है।

काव्य के नायक जयकुमार और नायिका सुलोचना इस रस के परस्पर आलम्बन और आश्रय हैं। स्वयंवर-मण्डप, जयकुमार और सुलोचना का अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक गुणों से सम्पन्न होना, एकान्त, चन्द्रोदय इत्यादि उद्दीपन

१. जयोदयचम्पू, ७ श्लोक १७ के बाद से श्लोक ३८ के पूर्व तक।

विभाव हैं। स्तम्भित होना, रोमाञ्चित होना आदि अनुभाव हैं। लज्जा, हर्ष, आवेग इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं। अब इसके कुछ उद्धरण भी प्रस्तुत हैं :—

(क) स्वयंवर-मण्डप में स्थित काव्य की नायिका सुलोचना के हृदय में स्थित रतिभाव कैसे शृङ्गार-रस का रूप धारण कर लेता है, कवि के शब्दों में देखिए :—

"हृदगतमस्या दयितं न तु प्रयातुं शशाक तत्राक्षि ।
सम्यक् कृतस्तदानीं तयाक्षिणा लज्जेति जनसाक्षी ।।
भूयो विरराम करः प्रियोन्मुखस्सन् स्रगन्वितस्तस्याः ।
प्रत्याययौ ह्यगन्तोऽप्यर्धपथाच्चपलतालस्यात् ।।
अभ्यर्च्यो भवति पुमानित्येव विशेषदर्शिनीमनु मान्।
स्वीकृतवती स्थलेऽत्राप्युत्पलविजिगीषु मृदुनेत्रा ।।
मोदकमिति तु जयमुखं सख्यास्यं सूपकल्पितं तादक् ।
रसितवती सामि पुनः क्षुधिते वसुलोचना यादक् ।।
इत्यत्र कुमुद्वत्याः करं इन्दीवरसुमालतया स्फीतः ।
ननु संध्ययेव सख्या जयस्य मुखचन्द्रमनुनीतः ।।
तस्योरसि कम्प्रकरा मालां बाला लिलेख नतवदना ।
आत्माङ्गीकरणाक्षरमालामिव निश्चलामधुना ।।
सम्पुलकितांगयष्टेरुद्गीर्वाणीव रेजिरे तानि ।
रोमाणि बालभावाद् वरश्रियं द्रष्टुमुत्कानि ।।"[1]

स्वयंवर-मण्डप में जयकुमार को देखकर सुलोचना अपनी दृष्टि को लौटा पाने में समर्थ नहीं होती। वह जी भरकर जयकुमार को देखती है। प्रिय की ओर उन्मुख जयमाला से सुसज्जित उसका हाथ रुक जाता है। धीरे-धीरे वह अपना हाथ जयकुमार की ओर बढ़ाती है, लज्जा के भार से झुककर माला को जयकुमार के वक्ष पर डाल देती है। उसका शरीर रोमाञ्चित हो जाता है।

(ख) जयोदय महाकाव्य में शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना कराने वाला दूसरा स्थल वह है, जहाँ पर जयकुमार और सुलोचना को विवाह-मण्डप में बिठाया जाता है :—

"अभवदपि परस्परप्रसादः पुनरुभयोरिह तोषपोषवादः ।
उषसि दिगनुरागिणीति पूर्वा रविरपि हृष्टवपुर्विदो विदुर्वा ।।
नन्दीश्वरं सम्प्रति देवतेव पिकाङ्गना चूतकसूतमेव ।
वस्वौकसारार्कमिवात्र साक्षीकृत्याशु सन्तं मुमुदे मृगाक्षी ।।

---

1. जयोदय, ६।१२०-१२६

अध्यात्मविद्यामिव भव्यवृन्दः सरोजराजिं मधुरां मिलिन्दः।
प्रीत्या परो सोऽपि तकां सुगौरगात्रीं यथा चन्द्रकलां चकोरः॥"[1]

जयकुमार और सुलोचना एक दूसरे को देखकर परम सन्तुष्ट हैं। सुलोचना जयकुमार को देखकर वैसे ही सन्तुष्ट हुई, जैसे शिवजी को देखकर पार्वती, आम के बौर (आम्रपुष्प) को देखकर कोयल और सूर्य को देखकर कमलिनी प्रसन्न होती है। जैसे सज्जन आत्मविद्या को, भ्रमर सुन्दर कमलों की पंक्ति को और चकोर पक्षी चन्द्रकला को देखते हैं, उसी प्रकार जयकुमार ने भी प्रेमपूर्वक गौरवर्ण वाली सुलोचना को देखा।

यहाँ पर जयकुमार और सुलोचना शृङ्गार-रस के आलम्बन और आश्रय हैं, विवाह-मण्डप, दोनों का सौन्दर्य एवं गुण और एकान्त उद्दीपन विभाव है। कटाक्ष इत्यादि अनुभाव हैं, हर्ष, उत्कण्ठा इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

जयोदय महाकाव्य में शृङ्गार रस के अन्य भी उदाहरण देखने को मिलते हैं। किन्तु विस्तारभय से इसके वे सभी उदाहरण नहीं दिए जा रहे हैं।

शृङ्गार शान्त का अङ्ग—

जयोदय महाकाव्य में वर्णित शृङ्गार रस सामन्त की भाँति शान्त रस रूप सम्राट् का सहायक सिद्ध होता है। जिस प्रकार नदी अपना क्षेत्र समाप्त होने पर समुद्र में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार शृङ्गार-रस भी अपना कार्यक्षेत्र पार करके शान्त रस में ही अन्तर्भूत हो जाता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि अप्रधान एवं सहायक रसों को साहित्यशास्त्र में अङ्गरस कहा जाता है। अतः इस काव्य में शृङ्गार रस भी शान्तरस का अङ्ग है।

वीररस—

जयोदय महाकाव्य में वीररस की अभिव्यक्ति दो स्थलों पर होती है। दोनों ही स्थलों पर वीररस का आश्रय युद्धवीर जयकुमार है। इस रस का आलम्बन है—अर्ककीर्ति। अर्ककीर्ति की अनधिकार चेष्टा, उसका दम्भ, युद्ध के लिए हठ इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। युद्ध के लिए सेना सजाना इत्यादि अनुभाव हैं। धृति, मति, गर्व, तर्क रोमाञ्च इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

युद्धवीररस का प्रथम स्थल वहाँ है, जहाँ पर अर्ककीर्ति युद्ध करने की ठान लेता है, और उसका क्रोध किसी प्रकार कम नहीं होता। ऐसे समय में जयकुमार अकम्पन को धैर्य बंधाकर युद्ध करने के लिए तत्पर हो जाते हैं, उनकी देखा-देखी राजा अकम्पन भी अपने एक हजार पुत्रों के साथ युद्ध हेतु उत्साहसम्पन्न होकर

---

१. जयोदय, १०।११८-१२०

चल देते हैं। अन्य राजा भी जयकुमार की मदद के लिए आ जाते हैं। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर जयकुमार की सेना युद्ध के लिए प्रस्थान करती है :—

(क) सोमसूनुरुचितां धनुर्लतां यः पुनः प्रवर इष्यते सताम्।
श्रीकरे च करबाणभूषितां शुद्धवंशजनितां गुणान्विताम्॥

— — —

तत्र हेमसहिताङ्गदादिभिः स्वैः सहस्रतनयैः सुराडभीः।
निर्जगाम सुतरामकम्पनस्तत्सहायमरिवर्गकम्पनः॥
श्रीधरार्यमसुहृत्सुकेतुका देवकीर्तिजयवर्मकावकात्।
दूरगानयरयोत्थसम्मदास्सद्बलेन जयमन्वयुस्तदा॥

— — —

स्वीयबाहुबलगर्विता भुजास्फोटनेन परिनर्तितस्रजाः।
सम्बभूवुरधिपाः सदोजसः बद्धसन्नहनकाः किलैकशः॥

— — —

निर्गमेऽस्य पटहस्य निःस्वनः व्यानशे नभसि सत्वरं घनः।
येन भूभृदुभयस्य भीमयः कम्पमाप खलु सत्त्वसंचयः॥
सत्तरङ्गमतुरङ्गमञ्जुला निर्मलध्वजनिकेनवंचुलाः।
मत्तवारणमदप्रवाहिनी निर्ययौ जयनृपस्य वाहिनी॥"[1]

(ख) वीररस का दूसरा स्थल वहाँ है, जहाँ जयकुमार और अर्ककीर्ति का परस्पर युद्ध होता है :—

"चमूसमूहावथ मूर्तिमन्तौ परापराब्धी हि पुरः स्फुरन्तौ।
निलेतुमेकत्र समीहमानौ संजग्मतुर्गर्जनया प्रधानौ॥
साध्ये किलालस्यकलां निहन्तुं निशम्य सेनापतिशासनन्तु।
प्रताडयत्तत्पटहं विपश्चित्कृतागसश्चित्तमिवाशु कश्चित्॥

— — —

सवेगमाक्रान्ततमाश्च वीरैर्निषेधिकामाहुरिवाथ धीरैः।
भेरीप्रतिध्वानविधानजन्यां रजस्वलाः सम्प्रति दक्षकन्याः॥
समुद्ययौ सगजगं गजस्थः पत्तिः पदातिं रथिनं रथस्थः।
अश्वस्थितोऽश्वाधिगतं समिद्धं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्।

— — —

मतङ्गजानां गुरुगर्जितेन जातं प्रहृष्यद्धयहेषितेन।
अथो रथानामपि चीत्कृतेन छन्नः प्रणादः पटहस्य केन॥

---

१. जयोदय; ७।८५-१००

वीरश्रियं तावदितो वरीतुं भर्तुर्व्यपायादथवा तरीतुम् ।
भटाग्रणी प्रागपि चन्द्रहासयष्टिं गलालङ्कृतिमाप्तवान् सः ॥
निपातयामास भटं धरायामेकः पुनः साहसितामथायात् ।
स तं गृहीत्वा पदयोश्च जोषं प्रोक्षिप्तवान्वायुपथे सरोषम् ॥

— — —

जयेच्छुरादूषितवान्विपक्षं पक्षं प्रमाणैः प्रवणैः सदक्षः ।
हेतावुपात्तप्रतिपत्तिरत्र शस्त्रैश्च शास्त्रैरपि सोमपुत्रः ॥
यदाशुगस्थानमितः स धीरः प्राणप्रणेता जयदेववीरः ।
अरातिवर्गस्तृणतां बभार तदाथ काष्ठाधिगतप्रकारः ॥

— — —

उरीचकाराध्वकलङ्कलोऽपि अरिंजयं नाम रथं जयोऽपि ।
खरोऽध्वना गच्छति येन सूर्यस्तेनैव सोमोऽपि सुधौघधुर्यः ॥

— — —

रथसादथसारसाक्षिरन्धपतिना सम्प्रति नागुपाशबद्धः ।
शुशुभेऽप्यशुभेन चक्रितुक्तत्तमसासन्तमसारिरेव भुक्तः ॥

— — —

अर्कस्तुदर्कचिच्चिन्तो जयश्च विजयान्वितः ।
जनोऽभिजनसम्प्राप्तो वर्द्धमानाभिधानतः ॥"[1]

प्रस्तुत पद्य पंक्तियों में जयकुमार के हृदय में विद्यमान उत्साह नामक स्थायिभाव, युद्धभूमि, अर्ककीर्ति की युद्धविषयक चेष्टाओं से उद्दीप्त होकर युद्ध के विभिन्न रीतिरूप अनुभाव से प्रकट होकर, धृति, मति, गर्व इत्यादि व्यभिचारिभावों से परिपुष्ट होकर वीररस की सुन्दर अभिव्यञ्जना करा रहा है।

वीर शान्त का अंग—

वीररस भी जयोदय काव्य में शान्त रस की अपेक्षा अप्रधान है। शान्त रस के समक्ष इसकी वह स्थिति है जो समुद्र के समक्ष एक सरोवर की होती है। अतः यह रस शान्त का अङ्ग रस है।

रौद्र रस—

जयोदय महाकाव्य में रौद्र-रस की अभिव्यंजना एक स्थल पर हुई है। काव्य का प्रतिनायक अर्ककीर्ति इस रस का आश्रय है। जयकुमार इसके आलम्बन विभाव हैं। जयकुमार के गले में सुलोचना द्वारा जयमाला डालना, दुर्मर्षण के वचन, अनवद्यमति का समझाना इत्यादि उद्दीपन-विभाव हैं। नेत्रों का लाल हो जाना, अपनी वीरता की प्रशंसा करना, जयकुमार के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करना, आवेग,

१. जयोदय, ८।१-८५

मद, आक्षेप, क्रूरदृष्टि इत्यादि अनुभाव हैं। मोह, उग्रता, अमर्ष इत्यादि व्यभिचारि-भाव हैं—

सुलोचना ने स्वयंवर-मण्डप में बैठे हुए अन्य राजाओं को छोड़कर जयकुमार के गले में जयमाला डाल दी। अर्ककीर्ति के सेवक दुर्मर्षण को जयकुमार की प्रतिष्ठा सहन नहीं होती। वह अर्ककीर्ति को उनकी पद-प्रतिष्ठा का स्मरण कराता है। उसे भाँति-भाँति के वचन कहकर उत्तेजित करता है। जयकुमार और अकम्पन महाराज की निन्दा करता है। फलस्वरूप अर्ककीर्ति क्रुद्ध हो जाता है, और जयकुमार और अकम्पन से ठन ठान लेता है। वह जयकुमार और अकम्पन के विरुद्ध युद्ध की तैयारी कर लेता है। अनवद्यमति नाम के मंत्री के समझाने का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसकी इच्छा को जानकर राजा अकम्पन अपना दूत उसके पास भेजते हैं, लेकिन वह टस से मस नहीं होता :—

"कन्यां समाकलय्योग्रामेनां भरतनन्दनः।
रक्तनेत्रो जवादेव बभूव क्षीवतां गतः॥
दहनस्य प्रयोगेण तस्येत्थं दारुणेङ्गितः।
दग्धश्चक्रिसुतो व्यक्ता अङ्गारा हि ततो गिरः॥

— — —

राज्ञामाज्ञामवज्ञे वश्यं वश्योऽयं भो पुनः स्वयम्।
नाशं काशीप्रभोः कृत्वा कन्यां धन्यामिहानयेत्॥

— — —

नानुमेने मनागेव तत्थ्यमित्थं शुचेर्वचः।
क्रूरश्चक्रिसुतो यद्वत् पयः पित्तज्वरातुरः॥

— — —

साधारणधराधीशान् जित्वापि स जयः कृतः।
द्विपेन्द्रो नु मृगेन्द्रस्यमु लेन तुलनामियात्॥
नो सुलोचनया नोऽर्थो व्यर्थमेव न पौरुषम्।
द्वयर्थभावविरोधार्थं कर्मशर्मवतां मतः॥

— — —

यत्यतेऽथ सदपत्यतेजसा सार्पिता कमलमालिकाऽञ्जसा।
मूर्च्छितास्तु न जयाननेन्दुना तावतार्ककरतः किलामुना॥
साम्प्रतं सुखलताप्रयोजनात् पश्य यस्य तनुजा सुरोचना।
त्वादृशां वरदरङ्गतः प्रभु दूत रे वृषभ इत्यसावभूत्॥"[1]

---

१. जयोदय ७।१७-६५

रौद्र शान्त का अङ्ग—

जयोदय महाकाव्य में रौद्र रस एक गौण रस के रूप में विद्यमान है, अतः यह शान्त रस का अङ्ग है।

हास्य-रस—

जयोदय महाकाव्य में एक स्थल पर हास्य रस की भी झलक दिखाई पड़ती है, और वह स्थल है—जयकुमार के विवाह में आए हुए बरातियों का स्वागत। उदाहरण रूप में कुछ हास-परिहास प्रस्तुत हैं :—

"अथ कश्चन नाथनामवंशसमयस्यापि समीक्ष्यतेऽवतंसः।
परिहासवचोभिरेव धन्यान्निजदासीनिरभोजयत् सजन्यान् ॥

— — —

प्रयि चेतसि जेमनोतिचारः सकलव्यञ्जनमोदनाधिकारम्।
कुचिपात्रमिदं कयेत्थमुक्ताः सहसा जग्धि विधौ तु ते नियुक्ताः ॥
स्फटिकोचितभाजने जनेन फलिताया युवतेः समादरेण।
उरसि प्रणिधाय मोदकोक्तद्वितियं निर्दयमर्दितं करेण।

— — —

तव सन्मुखमस्म्यहं पिपासुः सुवतीत्थं गदितापि मुग्धिकासु ॥
कलशीं समुपाहरत् यावत्स्मितपुष्पैरियमर्चितापि तावत् ॥

— — —

मम मण्डकमेहि तावदालेऽस्ति कलाकन्दमपि प्रदेहि बाले।
वटकं घटकल्पसुस्तनीतः कटकं सकुटकुद्दधामि पीतः ॥
मसुरोचितमाह्वयामि बाले सरसं व्यञ्जनमत्र भुक्तिकाले।
मधुरं रसतात् पयोधराङ्कमधुना हारमिमं न किं कलाङ्कम् ॥
उपपीडनतोऽस्मि तन्वि भावादनुभूष्णुस्तवकाम्रकाम्रतां वा।
वत वीक्षत चूषणेन भानिन्निति सा प्राह च चूतदाशुभाङ्गी ॥
किं पश्यस्यपि संरसेरपि न किं नो रोचकं व्यञ्जनं
तन्वीदं लवणाधिकं खलु तृषाकारीति नो रञ्जनम्।
तस्मात्तम्प्रति सर्वतो मुखमहं याचे पिपासाकुलः
साधामूत्स्मितवारिमुक् पुनरितः स्वेदेन स व्याकुलः ॥[1]

यहाँ बारात में आए हुए बारातियों और कन्यापक्ष की महिलाओं के बीच भोजन के समय होने वाले हास-परिहास से कवि ने हास्य रस की अभिव्यञ्जना कराई है।

---

१. जयोदय, १२।१२२-१४०

हास्य शान्त का अङ्ग—

जयोदय महाकाव्य में वर्णित हास्य रस, इसमें वर्णित शृङ्गार रस का अङ्ग है, और शृङ्गार रस शान्त का। अतः हम हास्य को शान्त का अङ्ग रस उसी प्रकार मान सकते हैं जैसे शरीर का एक अङ्ग हाथ है, और उंगलियां हाथ का अङ्ग। इस प्रकार हास्यरस इस काव्य में वर्णित शृङ्गार को पुष्ट करता है, शृङ्गार शान्त का पोषक है, हास्य भी शृङ्गार के साथ ही शान्त का पोषक होने के कारण उसका अङ्ग है।

बीभत्स रस—

जयोदय महाकाव्य में बीभत्स रस की अभिव्यञ्जना कराने वाला केवल एक स्थल है, वह भी बहुत छोटा है। जयकुमार और अर्ककीर्ति के बीच में होने वाले युद्ध में, जहां गिद्ध शवों का मांस निकालकर खा रहे हैं, बीभत्स रस की अभिव्यञ्जना हो रही है :—

"चराश्च फूत्कारपराः शवानां प्राणा इवाभूः परितः प्रताना:।
पित्सन्सपक्षाः पिशिताशनायायान्तस्तदानीं समरोवराया्म ॥"[२]

वत्सल रस—

जयोदय महाकाव्य में वत्सल रस का वर्णन चार स्थलों पर मिलता है। इनमें से तीन स्थल प्रस्तुत हैं :—

(क) वत्सल रस की झलक हमें सर्वप्रथम वहां पर देखने को मिलती है, जहां जयकुमार विजयी होकर लौटते हैं। तब महाराज अकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना को वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से व्रत की पारणा करने का आदेश दिया :—

"ईशं संगरसंचिताघहतये सम्यक्समर्च्याचिरात्,
पुत्रीं प्रेक्षितवान् पुनर्मुदुदृशा काशीविशामीश्वरः।
आहारेण विना विनायकपदप्रान्तस्थितां भक्तितो
जल्पन्तीमपराजितं हृदि मुदा मन्त्रं मुधान्तार्वतः।
वीराणां वरदेव एव वरदे नेता विजेताऽभवत्
श्री अर्हच्चरणारविन्दकृपयाभीष्टेन भातं तव।
मौनं मुञ्च मनीषिमानिनि मुधा यामात्मनस्तन्मुच
तामित्थं समुदीर्य धाम गतवान् साकं तयाऽकम्पनः ॥"[१]

यहां पर सुलोचना वत्सल रस का आलम्बन है। सुलोचना के द्वारा किए गए व्रत, पूजा इत्यादि कार्य उद्दीपन-विभाव हैं। सस्नेह दृष्टिपात इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

---

१. जयोदय, ८।४०
२. वही, ८।८७-८८

(ख) वत्सल-रस का द्वितीय स्थल वह है, जहां सुलोचना की विदा हो रही है :

"न वदन्नपि काशिकापतिर्वचनेतुर्गुणिनो महामतिः ।
शिरसि स्फुटमञ्जताञ्जली हृदुपस्कुर्वन्मवनोदकैः पदौ ॥
नगरी च गरीयसो विनिर्गमभेरीविरवस्य वन्मतः ।
भवतो भवतो वियोगतः खलु दूनेव तदाशु चुक्षुभे ॥
एवं
तनये मन एतदातुरं नय निर्योगविसर्जने परम् ।
ललना मन एतदातुरं तव निर्योग विसर्जने परम् ।
ललना कलनाधिकम्पती व्यवहारो व्यवहार एव भोः ॥
अयि याहि च पूज्यपूजया स्वजनस्यानपि च प्रकाशय ।
जननीतिपरिभूताभूधिर्दुलाजाक्षतमुते इव वो वितान् ॥"[1]

यहां सुलोचना के माता पिता, वत्सल रस के आश्रय हैं। सुलोचना आलम्बन विभाव है। उसका पतिगृहगमन उद्दीपनविभाव है। सस्नेह दृष्टिपात, रोमाञ्च, आनन्दाश्रु, स्वरभङ्ग इत्यादि अनुभाव है। हर्ष, विषाद, आवेग, मोह इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(ग) जयोदय महाकाव्य में वत्सल-रस का तृतीय उदाहरण वह स्थल है, जहां पर जयकुमार सम्राट् भरत से मिलने जाते हैं :—

"कल्पवल्लिदलयोः श्रितं तयोः सङ्गजानकणोपलब्धयोः ।
पाणियुग्ममपि चक्रिणो जयतश्चिरोमुदुशिरोऽभ्युदानयत् ॥
उपलम्भितमित्यवोपकर्तुं हृदयेनाभ्युदयेन नाम भर्तुः ।
उदयदिवोदयभूभृतस्तटे तच्छविबिम्बं जयदेवचक्रमेतत् ॥
हस्तावलम्बनबलेन किलोपलभ्य प्रागालिलिङ्ग गलतः प्रणतं सतम्भः ।
सर्वस्वमूल्यमिति तुल्यतया निजस्य कुर्याच्छ्रुतं लघुमपीह जनः प्रशस्यः ॥
हृष्टितेऽवनियतावनुभावाद्वाग्धवायमननोऽत्र तदा वा ।
आमनोपकरणाख्यपदेशादुल्लसास सहसावनिरेवा ॥
तदासनं तत्र तदा समन्वाश्रितं श्रितस्कीर्तिजयस्य तन्वा ।
दृशापि संस्पर्शनसंस्पृशापि श्रीपादपीठं महनीयमापि ॥
हस्रभरीविनिवृत्येतरतः जयमुखकमले तिष्ठत्क्रमतः ।
रसितुमतिथिसत्करणफलस्वाक्षक्षिणी च नृपतेरविलम्बात् ॥
नयनतारक मेऽभ्युपकारक सुहृद् आव्रज वैरिनिवारक ।
स्वजनसज्जनयो. परिचारक चिरात् आव्रजसि क्व सयानकः ॥"[2]

---

१. जयोदय, १३।२-३, ६-१०
२. वही, २०।१३-१६

यहाँ पर सम्राट् भरत वत्सल रस के आश्रय हैं। जयकुमार आलम्बन हैं। उनकी शूरवीरता, न्यायप्रियता, प्रभावशाली व्यक्तित्व इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। जयकुमार का आलिङ्गन, प्रेमपूर्वक उन्हें देखना, रोमाञ्च इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष आवेग, गर्व इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

वीरोदय महाकाव्य में वर्णित अङ्गरस

वीरोदय महाकाव्य में केवल तीन अङ्ग रसों का वर्णन मिलता है—हास्य रस, अद्भुत रस और वत्सल रस। ये तीनों ही रस शान्त-रस की अपेक्षा अप्रधान हैं। वत्सल-रस की परिणति शान्त रस में हुई है। इसलिए तीनों ही शान्त रस के अङ्ग-रस के रूप में उपस्थित हुए हैं। तीनों रसों का उदाहरण वर्णन प्रस्तुत है :—

हास्य रस—

वीरोदय महाकाव्य में हास्य रस का केवल एक स्थल पर अत्यल्प वर्णन मिलता है। देवगण भगवान् महावीर के जन्माभिषेक हेतु उनकी जन्मभूमि कुण्डनपुर जा रहे थे, मार्ग में इन्द्रदेव के ऐरावत हाथी ने सूर्य को कमल समझकर अपनी सूँड से उठा लिया, पर उसकी अधिक उष्णता का अनुभव करके सूँड को हिलाकर उसे छोड़ भी दिया। उसकी इस चेष्टा से देवगण हँसने लगे :—

"अरविन्दधिया करेण पुनरैरावत उल्लसन्निव।
पुलहस्ततया जगुस्तजल्पनवज्ञास्मयहीं सुरव्रजम् ॥"[1]

यहाँ पर देवगण हास्य रस के आश्रय हैं। ऐरावत हाथी आलम्बन विभाव है। उसकी भ्रमपूर्ण चेष्टा उद्दीपनविभाव है।

अद्भुत रस—

वीरोदय महाकाव्य में अद्भुत रस का वर्णन तो तीनों स्थलों पर है, लेकिन तीनों ही स्थलों पर उसकी मात्रा अत्यल्प है। तीनों स्थल उदाहरण रूप में प्रस्तुत हैं :—

(क) भगवान् महावीर के गर्भावतरण के पश्चात् आकाश में सूर्य को पराभूत करने वाला एक ऐसा प्रकाशपुञ्ज दिखाई दिया, जिसे लोगों ने प्रयत्नभरी दृष्टि से देखा :—

"अथाभवद् व्योम्नि महाप्रकाशः सूर्यातिशायी सहसा तदा सः
किमेतदित्थं हृदि काकुभावः कुर्वन् जनानां प्रचलत्प्रभावः ॥"[2]

यहाँ पर अद्भुत रस का आश्रय है—कुण्डलपुर का जनसमूह। आकाश में दृष्टिगोचर होने वाला प्रकाश-पुञ्ज आलम्बनविभाव है। उसकी अनायास उपस्थिति

१. वीरोदय, ७।१०
२. वही, ५।१

उद्दीपन विभाव है। कुतूहलपूर्वक देखना अनुभाव है। वितर्क और आवेग व्यभिचारिभाव हैं।

(ख) अद्भुत रस की अभिव्यञ्जना कराने वाला एक स्थल वह है, जहाँ समवशरण मण्डप में भगवान् की दिव्यविभूति देखकर गौतम इन्द्रभूति के मन में तर्क-वितर्क होता है :—

"इत्येवमेतस्य सतीं विभूतिं स वेदवेदाङ्गविदिन्द्रभूतिः।
जनैर्निशम्यास्वनिते निजीये प्रपूरयामास विचारहूतिम्॥
वेदाम्बुधेः पारमिताय महयं न सम्भवोऽद्यावधि जातु येषाम्।
तदुज्झितस्याग्रपदं त एवं भावा भवेयुः स्मयसूतिरेषा॥
चचाल द्रष्टुं तदतिप्रसङ्गमित्येवमाश्चर्यपरान्तरङ्गः।
स प्राप देवस्य विमानभूमिं स्मयस्य चासीन्मतिमानभूमिः॥
रेभे पुनश्चिन्तयितुं स एष शब्देषु वेदस्य कुतः प्रवेशः।
ज्ञानात्मनश्चात्मगतो विशेषः संलभ्यतामात्मनि संस्तुते सः॥
मयाऽम्बुधेर्मध्यमतीत्य वीर एवाद्य यावत्कलितः समीरः।
कुतोऽस्तु मुक्ताफलभावरीतेरुतावकाशो मम सम्प्रतीतेः॥
मुहुस्त्वया सम्पठितः किलाऽऽत्मन् वेदेऽपि सर्वज्ञपरिस्त (?)वस्तु।
आरामभापर्यटतो बहिस्तः, किं सौमनस्याधिगतिः समस्तु॥"[1]

(इस प्रकार की भगवान् की दिव्यभूति के विषय में लोगों से सुनकर वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता इन्द्रभूति ब्राह्मण अपने मन में इस प्रकार सोचने लगा। वेदशास्त्र का ज्ञाता हुए भी मुझे आज तक इस प्रकार की दिव्यभूति नहीं मिली, इसके विपरीत वेदज्ञान से रहित वीर के सामने यह सम्पूर्ण विभूति विद्यमान है, यह आश्चर्यजनक बात है। अधिक सोच-विचार करने से क्या लाभ? यह सोचकर अत्यधिक आश्चर्यान्वित हृदय वाला इन्द्रभूति भगवान् के वैभव को देखने के लिए चल पड़ा। भगवान् के दिव्य समवशरण मण्डप को देखकर उसका अभिमान नष्ट हो गया और उसको अत्यधिक आश्चर्य हुआ। वह पुनः सोचने लगा—इन शब्दों में वेद का प्रवेश कैसे संभव है? ज्ञान की प्राप्ति तो आत्मा की विशेषता है और उसकी प्राप्ति आत्मा की स्तुति करके ही हो सकती है। मैंने समुद्र के बीच में जाकर भी उसके तीरवर्ती वायु का ही सेवन किया है। ज्ञानरूपी समुद्र में गोता लगाए बिना मेरी बुद्धि को मुक्ता रूपी जीवन की सफलता कैसे मिल सकती है। हे मन! तुमने बहुत बार वेद में भी सर्वज्ञ की स्तुति को पढ़ा। लेकिन तुम ज्ञान रूप उद्यान के बाहर ही घूमते रहे। उद्यान के बाहर घूमने से क्या उसके अन्दर विद्यमान पुष्पों की प्राप्ति संभव है? अतः तुमने अभी तक यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं किया।)

१. वीरोदय, १३।२५-३०

यहाँ पर गौतम इन्द्रभूति अद्भुत रस का आश्रय हैं। भगवान् महावीर आलम्बन-विभाव हैं। उनकी दिव्यभूति उद्दीपन-विभाव है। भगवान् की विभूति का कारण जानने की जिज्ञासा अनुभाव है। वितर्क, आवेग इत्यादि व्यभिचारि-भाव हैं।

वत्सल रस—

वीरोदय महाकाव्य में वत्सल रस का वर्णन दो स्थलों पर मिलता है। दोनों ही स्थल उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं :—

(क) वत्सल रस की अभिव्यञ्जना कवि द्वारा सर्वप्रथम वहाँ होती है, जहाँ शिवकारिणी रात्रि में देखे गए सोलह-स्वप्नों के विषय में राजा को बताती है। राजा सिद्धार्थ प्रसन्न होकर उसे बताता है कि ऐसे स्वप्न पुत्रोत्पत्ति के पूर्व देखे जाते हैं, अतः वह एक लोकविश्रुत पुत्र को जन्म देगी। स्वप्नों का अर्थ जानकर रानी शिवकारिणी भी अत्यधिक प्रसन्न होती है :—

"पृथ्वीनाथः पृथुनकथनां फुल्लपाथोजनेत्रो
वाणीं प्रोक्तां प्रथितसुपृथुप्रोथया तीर्थरूपाम्।
श्रुत्वा तथ्यामविकलगिरा हर्षणैमन्थराङ्ग
इत्थं तावत्प्रथयति तरां स्वाथ सन्मङ्गलार्थाम्॥
त्वं तावदीक्षितवती शयनेऽप्यनन्यां
स्वप्नावलिं त्वनुदरि प्रतिभासि धन्या।
भो भो प्रसन्नवदने फलितं तथा स्याः
कल्याणिनीह शृणु मञ्जुतमं ममाऽऽस्यात्॥
अकलङ्कालङ्कारा सुभगे देवागमार्थमनवद्यम्।
गमयन्ती सन्नयतः किलाऽऽप्तमीमांसिताख्या वा॥
लोकत्रयैकतिलको बालक उत्फुल्ललिननयनेऽद्य।
उदरे तवावतरितो हीङ्गितमिति सन्तनोतीदम्॥

× × ×

देवि! पुत्र इति भूत्रयाधिपो निश्चयेन तव तीर्थनायकः।
गर्भ इष्ट इह वै सतां क्वचिन्स्वप्नवृन्दमफलं न जायते॥
वाणीमित्थममोघमङ्गलमयीमाकर्ण्य सा स्वामिनो
वामोरुश्च महीपतेर्मतिमतो मिष्टामथ श्रीमुखात्।
अङ्कप्राप्तसुतेव कण्टकिततनूर्हर्षाश्रुसम्वाहिनी
जाता यत्सुतमात्र एव सुखदस्तीर्थेश्वरे किम्पुनः॥[1]

---

१. वीरोदय, ४।३७-६२

इस स्थल पर राजा सिद्धार्थ और प्रियकारिणी वत्सल रस के आश्रय हैं। उत्पत्स्यमान पुत्र आलम्बन विभाव है। सोलह स्वप्न उद्दीपन विभाव हैं। रोमाञ्चित होना, आनन्दाश्रु प्रवाहित करना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व, आवेग इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(ख) इस काव्य में वत्सल रस की अभिव्यञ्जना कराने वाला दूसरा स्थल वह है जहाँ बालक वर्धमान अपनी बालक्रीडाओं से सबको प्रसन्न करते हैं :—

"इङ्गितेन निजस्याथ वर्धयन्मोदवारिधिम्।
जगदाह्लादको बालचन्द्रमाः समवर्धत ॥
रराज मातुरुत्सङ्गे महोदारविचेष्टितः।
क्षीरसागरवेलाया इवाङ्के कौस्तुभो मणिः ॥
अगादपि पितुः पार्श्वं उदयाद्रेरिवांशुमान्।
सर्वस्य भूतलस्यायं चित्ताम्भोजं विकासयन् ॥
देवतानां कराग्रे तु गतोऽयं समभावयत्।
वल्लीनां पल्लवप्रान्ते विकासि कुसुमायितम् ॥
कदाचिच्चेद्भुवो भालमलञ्चक्रे तदा स्मितम्।
तदङ्घ्रिनखरश्मीनां व्याजेनाप्यातताम सा ॥
यदा समवयस्केषु बालोऽयं समवर्तत।
अस्य स्फूर्तिर्विभिन्नेव काचेषु मणिवत्तदा ॥
समानायुष्कदेवौघ-मध्येऽथो बालदेवराट्।
कालक्षेपं चकारासौ रममाणो निजेच्छया ॥
दण्डमापद्यते मोही गर्तमेत्य मुहुर्मुहुः।
महात्माऽनुबभूवेदं बाल्यक्रीडासु तत्परः ॥
परप्रयोगतो दृष्टेराच्छादनमुपेयुषः।
शिरस्यापात एवं स्याद्विघान्ध्यमिति गच्छतः ॥
नवालकप्रसिद्धस्य बालतामधिगच्छतः।
मुक्तामयतयाऽप्यासीत्कुबलत्वं न चास्य तु ॥"[1]

(तत्पश्चात् अपनी बालसुलभ नाना प्रकार की चेष्टाओं रूप क्रियाकलाप से जगत् को आह्लादित करने वाले वे बालचन्द्रमा रूपी भगवान् हर्षरूपी समुद्र की वृद्धि करते हुए स्वयं बढ़ने लगे। महान् उदार चेष्टाओं को करने वाले वह माता की गोद में इस प्रकार सुशोभित होते थे जैसे क्षीरसागर की वेला के मध्य भाग में कौस्तुभ मणि सुशोभित होती है। सभी भूतलवासियों के हृदय-कमल को विकसित

१. वीरोदय, ८।१-१६

करते हुए वह उदयाचल पर जाने वाले सूर्य के समान पिता के पास जाते थे। देवताओं के हाथों के अग्रभाग पर स्थित वह ऐसे सुशोभित होते थे, जैसे कि लताओं के पल्लवों के अन्त में विकसित पुष्प शोभा पाते हैं। पृथ्वी पर खेलते हुए वह भगवान् उसके मस्तक को इस प्रकार अलङ्कृत करते थे, मानों उनके चरणों के नखों की किरणों के बहाने से पृथ्वी अपनी मुस्कराहट फैला रही हो। जब बालक वर्धमान अपने साथ के बच्चों के साथ रहते थे तब इनकी कान्ति वैसी ही लगती थी जैसे काचों के मध्य में विद्यमान मणि की शोभा होती है। इस प्रकार समान आयु वाले देवकुमारों के बीच में अपनी इच्छा से नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हुए देवों के स्वामी बालक भगवान् समय व्यतीत करते थे। बालक्रीड़ाओं में तत्पर यह महात्मा वीर-भगवान् गिल्ली-डंडा खेलते समय ऐसा अनुभव करते थे कि दण्ड को प्राप्त गिल्ली के समान, मोही पुरुष बार बार संसार रूपी गड्ढे में गिरकर दुःख से दण्डित किये जाते हैं। आँख-मिचौनी का खेल खेलते समय भगवान् ऐसा अनुभव करते थे कि मोहकर्म से आच्छादित सम्यग्दृष्टि वाला जीव दिग्भ्रमित होकर शिर का आघात ही पाता है। भगवान् प्रतिदिन बढ़ने वाले केशों से युक्त थे। वह रोग-रहित थे और अतुल बलशाली थे।

यहाँ पर कवि ने बालक वर्धमान की सुन्दर-सुन्दर चेष्टाओं से वत्सलरस को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है।

सुदर्शनोदय महाकाव्य में वर्णित अङ्गरस

सुदर्शनोदय में शान्तरस के अतिरिक्त चार अङ्गरसों का वर्णन मिलता है—शृङ्गार रस, रौद्र रस, अद्भुत रस और वत्सल रस। इस काव्य में शृङ्गार, रौद्र, और अद्भुत ये तीन रस शान्त रस के पोषक हैं, और वत्सल रस अप्रधान है। अतः ये रस शान्त रस के अङ्ग हैं। अब चारों रसों का सोदाहरण वर्णन प्रस्तुत है :—

शृङ्गार रस—

काव्य में शृङ्गार-रस का वर्णन केवल एक स्थल पर है, और वह स्थल है, सुदर्शन और मनोरमा के विवाह के पूर्व का। सुदर्शन और सागरदत्त नामक वैश्य की पुत्री मनोरमा जिनमन्दिर में एक दूसरे को देखकर आसक्ति एवं अनुरक्ति का अनुभव करने लगते हैं :—

"अथ सागरदत्तसंज्ञिनः वणिगीशस्य सुतामताङ्गिनः।
समुदीक्ष्य मुदीरितोऽन्यदा धृत आसीत्तदपाङ्गसम्पदा॥
रतिराहित्यमवासीत् कामरूपे सुदर्शने।
ततो मनोरमाऽभ्यासील्लतेव तरुणोज्झिता॥

कुतः कारणतो जाता भवतामुन्मनस्कता ।
वयस्यैरिति पृष्टोऽपि तानाह स महामनाः ।।
यदद्य वाऽऽलापि जिनार्चनायामपूर्वरूपेण मयेत्यपायात् ।
मनोरमायाति ममाकुलत्वं तदेव गत्वा सुहृदाश्रयत्वम् ।।"[1]

(सागरदत्त नामक वणिकपति की सुन्दरी पुत्री को देखकर, उसके कटाक्ष-विक्षेप रूप सम्पदा से सुदर्शन उस पर मोहित हो गया। कामदेव के समान सुदर्शन में रति का अभाव खटकने लगा और मनोरमा भी वृक्ष से विमुक्त हुई लता के समान हो गई। आज तुम्हारी अन्यमनस्कता का क्या कारण है? मित्रों के ऐसा पूछने पर उस सुदर्शन ने श्लेष के माध्यम से कहा—आज भगवान् जिनदेव की पूजा के अवसर पर अपूर्व रूप से मैंने गाया इसलिए मेरा मन अत्यधिक क्लान्ति का अनुभव कर रहा है। (श्लोक का दूसरा अर्थ) आज जिनपूजा के अवसर पर जब से मेरे द्वारा सुन्दर बाला को देखा गया है, उसी समय से उसके अपूर्व रूप से मेरा मन व्याकुल हो रहा है।)

यहाँ पर सुदर्शन और मनोरमा शृङ्गार रस के परस्पर आश्रय और आलम्बन हैं। उनका रूप-सौन्दर्य उद्दीपन विभाव है। कटाक्ष इत्यादि अनुभाव हैं। आवेग, मद, जड़ता, उग्रता, अवहित्था, औत्सुक्य, चिन्ता आदि व्यभिचारि-भाव हैं।

रौद्र रस—

सुदर्शनोदय महाकाव्य में रौद्र रस के दो उदाहरण हैं :—

(क) रौद्र रस का प्रथम उदाहरण वह स्थल है, जहाँ रानी अभयमती के 'क्रियाचरित्र' को सुनकर बहुत से सेवक आ जाते हैं, और सुदर्शन के प्रति अपशब्द कहते हुए उन्हें राजा के पास ले जाते हैं। सुदर्शन के ऊपर क्रुद्ध होकर राजा उनका वध करने हेतु चाण्डाल के पास ले जाने की आज्ञा दे देता है :—

"राज्ञ्या इदं पूत्करणं निशम्य भटैरिहाऽऽगत्य धृतो द्रुतं यः ।
राज्ञोऽग्रतः प्रापित एवमेतैः किलाऽऽलपद्भिर्बहुशः समेतैः ।।
अहो धूर्तस्य धौर्त्यं निभालयताम् ।।
हस्ते जपमाला हृदि हाला स्वार्थंकृतोऽसौ वञ्चकता ।
अन्तो भोगभुगुपरि तु योगो वक्रवृत्तिर्न तिनो नियता ।।
दर्पवतः सर्पस्येवास्य तु वक्रगतिः सहसाऽवगता ।।
अघभू राष्ट्रकण्टकोऽयं खलु विपदे स्थितिरस्याभिमता ।।

---

१. सुदर्शनोदय, ३।३४-३७

राजा जगाद न हि दर्शनमस्य मे स्या-
देतादृशीह परिणामवतोऽस्ति लेश्या ।
चाण्डाल एव स इमं लभतामिदानीं
राज्ये ममेदृगपि धिग्दुरितैकखानी ॥"[1]

(रानी की इस करुण पुकार को सुनकर सेवक लोग दौड़कर आये और उन्होंने सुदर्शन को पकड़कर बहुत से अपशब्द कहते हुए राजा के समक्ष पहुँचा दिया। अरे ! इस धूर्त की धूर्तता देखो। यह हाथ में जपमाला और हृदय में विष धारण करता है। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए इसने इस वञ्चक वेश को धारण किया है। इसके मन में भोगों के उपभोग की इच्छा है, और ऊपर से बगुले के समान योगी व्रती का रूप धारण कर रहा है। दर्पयुक्त सर्प के समान इसकी कुटिल गति आज हमारी समझ में आ गई है। यह पापी राष्ट्र का काँटा है। इसकी विद्यमानता संसार की विपत्ति के लिए ही है। यह सुनकर राजा ने कहा— मुझे इसका दर्शन करने की इच्छा नहीं है। इस प्रकार के इस व्यक्ति के ऐसे खोटे विचार ? फौरन इसको चाण्डाल के समीप ले जाओ। मैं नहीं जानता था कि मेरे राज्य में ऐसे भी व्यक्ति रहते हैं ? इसको धिक्कार है।)

यहाँ राजा और राजसेवक रौद्र रस के आश्रय हैं। सुदर्शन आलम्बन-विभाव है। रानी की दुश्चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं। क्रूरदृष्टि, कटुवचन इत्यादि अनुभाव हैं। मोह, अमर्ष, गर्व इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(ख) रौद्र रस का दूसरा उदाहरण वह स्थल है, जहाँ चाण्डाल द्वारा किए गए तलवार के प्रहार सुदर्शन के गले में पड़कर हार का रूप धारण कर लेते हैं। अपने एक सेवक से यह समाचार सुनकर राजा स्वयं उसका वध करने को तैयार हो जाता है :—

"एवं समागत्य निवेदितोऽभूदेकेन भूपः सुतरां रुषोभूः ।
पाषण्डिनस्तस्य विलोकयामि तन्त्रायितत्वं विलयं नयामि ॥"[2]

यहाँ राजा आश्रय है। सुदर्शन आलम्बन है। उसका अद्भुत व्यक्तित्व उद्दीपन-विभाव है। उग्रता, आवेग इत्यादि अनुभाव हैं। अमर्ष और गर्व इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

अद्भुत रस —

सुदर्शनोदय में एक स्थल पर अद्भुत रस की झलक देखने को मिलती है। राजा की आज्ञा से चाण्डाल सुदर्शन को मारने के लिए उसके गले में तलवार का प्रहार करता है। किन्तु सुदर्शन के गले में ये प्रहार माला का रूप धारण कर लेते हैं, और उसे कोई कष्ट नहीं होता :—

---

१. सुदर्शनोदय, ७।३५-३६
२. वही, ८।७

कृतान् प्रहारान् समुदीक्ष्य हारायितप्रकारांस्तु विचारधारा ।
चाण्डालचेतस्युदिता किलेतः सविस्मये दर्शकसञ्चयेऽतः ॥
अहो ममासिः प्रतिपक्षनाशी किलाहिराशीविष आः किमासीत् ।
मृणालकल्पः सुतरामतल्प-तूलोक्ततल्पं प्रति कोऽत्र कल्पः ॥"[1]

यहाँ अद्भुत रस का आश्रय है—चाण्डाल और जनसमूह। आलम्बनविभाव है—सुदर्शन। उसके गले में तलवार के प्रहार का प्रभाव न होना उद्दीपन विभाव है। रोमाञ्च इत्यादि अनुभाव हैं। जड़ता, वितर्क, आवेग इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

वत्सल रस—

सुदर्शनोदय में वत्सल रस का वर्णन तीन स्थलों पर हुआ है :—

(क) वत्सल रस की अभिव्यक्ति कराने वाला प्रथम स्थल वह है जहाँ मुनिराज वृषभदास को बताते हैं कि वह एक श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति करेगा। मुनिराज के मुंह से यह बात सुनकर सेठ वृषभदास और उनकी पत्नी दोनों बहुत प्रसन्न होते हैं :—

"पयोमुचो गर्जनयेव नीलौ मयूरजातावि जम्पती तौ ।
उदञ्चदङ्गैरुदसम्प्रतीतौ पुनर्गिरा मोदमही पुनीतौ ॥"[2]

यहाँ पर सेठ और उसकी पत्नी वत्सल रस का आश्रय हैं। उत्पत्स्यमान पुत्र आलम्बन विभाव है। मुनि की वाणी वात्सल्य भाव को उद्दीप्त करने के कारण उद्दीपन विभाव है। रोमाञ्चित होना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, आवेग इत्यादि व्यभिचारिभाव है।

(ख) वत्सल रस की अभिव्यञ्जना कराने वाला दूसरा स्थल वह है जहाँ सुदर्शन के जन्म का समाचार सुनकर सेठ के हृदय का वात्सल्य भाव उमड़ने लगता है :—

"सुतजन्म निशम्य भृत्यतः मुमुदे जानुजसत्तमस्ततः ।
प्रतिपालितताम्रचूडवाग् रविणा कोकजनः प्रगे स वा ॥
प्रमदाश्रुभिराप्लुतोऽभितः जिनपञ्चाभिषिचे च भक्तितः ।
प्रभुभक्तिरुताङ्गिनां भवेत्फलदा कल्पलतेव यद्भवे ॥
× × ×
अवलोकयितुं तदा धनी निजमादर्श इवाङ्गजन्मनि ।
श्रितवानपि सूतिकास्थलं किमु बीजव्यभिचारि अङ्कुरः ॥
परिपातुमपारयंश्च सोऽङ्गजरूपामृतमद्भुतं दृशोः ।

---

१. सुदर्शनोदय, ८।५-६
२. वही, २।४१

स्तुतवानुत निर्निमेषतां द्रुतमेवायुतनेत्रिणा धृताम् ॥
सुरवर्त्मवदिन्दुमम्बुधेः शिशुमासाद्य कलत्रसन्निधेः ।
निचयैः स्मितसत्विषामयमभवद्धामवतां गुणाश्रयः ॥

× × ×

स्नपितः स जटालबालवान् विदधत्काञ्चनसच्छवि नवाम् ।
अपि नन्दनपादपस्तदेह सुपर्वाधिभुवोऽभवन्मुदे ॥[1]

(सेवक के मुख से पुत्र-जन्म के विषय में सुनकर वह वणिक्श्रेष्ठ उसी प्रकार अत्यधिक प्रसन्न हुआ, जिस प्रकार प्रातःकाल मुर्गे की बांग सुनकर सूर्य के उदय को जानकर चातक प्रसन्न होता है। हर्ष के आंसुओं से आप्लावित सेठ ने भक्ति-पूर्वक भगवान् जिनदेव का अभिषेक किया। इस संसार में प्रभु की भक्ति ही कल्पलता से समान प्राणियों को मनोवांछित फल देने वाली है। × × × तत्पश्चात् वह सेठ पुत्र को देखने के लिए प्रसूतिकक्ष में पहुँचा, तब उसने दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान अपने पुत्र में अपनी ही छवि को देखा। क्या अङ्कुर बीज से भिन्न प्रकार का होता है? अपने नेत्रों से अपने पुत्र के अपूर्व सौन्दर्य रूप अमृत का पान करते समय उस सेठ को तृप्ति नहीं हुई, तब वह सहस्रनेत्रधारक इन्द्र की निर्निमेष दृष्टि की प्रशंसा करने लगा। जैसे समुद्र से चन्द्रमा को प्राप्त कर नक्षत्रों का आधार-भूत आकाश उसकी ज्योत्स्ना से आलोकित हो जाता है, उसी प्रकार गृहस्थों के गुणों का आश्रय वह सेठ प्रिया से प्राप्त उस बालचन्द्र के समान पुत्र को पाकर सस्मित हो गया।)

उपर्युक्त श्लोकों में बालक के पिता वत्सल रस का आश्रय हैं। सुदर्शन आलम्बन विभाव है। सेवक की सूचना, पुत्र का रूप आदि उद्दीपन-विभाव हैं। रोमाञ्चित होना, आनन्दाश्रु प्रवाहित करना, वेग से मन्दिर एवं सूतिकागृह पहुँचना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, आवेग इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(ग) वत्सल रस की अभिव्यञ्जना कराने वाला तीसरा स्थल वह है, जहाँ बालक सुदर्शन अपनी बालक्रीड़ाओं से सभी को हर्षित करता है :—

"गुरुमाप्य स वै क्षमाधरं सुविशो मातुरथोदयन्नरम् ।
भुवि पूज्यतया रविर्यथा नृदृगम्भोजमुदेऽब्जजस्तथा ।,
जननीजननीयतामितः श्रवणाङ्के मृदुतालुताऽभितः ।
करपल्लवयोः प्रसूनता-समधारोह सता वपुष्मता ॥
तुगहो गुणसंग्रहोचिते मृदुपल्यङ्क इवार्हतोदिते ।
शुचिबोधवदायतेऽन्वितः शयनीयोऽसि किलेति शायितः ॥

× × ×

---

१. सुदर्शनोदय, २।४-१४

समवर्धत वर्धबन्नयं सितपक्षोचितचन्द्रवत्स्वयम् ।
निजबन्धुजनस्य सम्पदाम्बुनिधि स्वप्रतिपत्तितस्तदा ।।"[1]

जैसे सूर्य पूर्वदिशा रूप माता की गोद से उठकर उदयाचल रूप पिता के पास जाता है, तो सरोवरों के कमल विकसित हो जाते हैं और वह संसार में पूजा जाता है, वैसे ही वह बालक अच्छी चेष्टाओं वाली माता की गोद से उठकर क्षमा को धारण करने वाले पिता के पास जाता था, तब वह लोगों के नयन-कमलों को विकसित करता हुआ सभी के आदर भाव को प्राप्त करता था। माता के समान ही धायों के हाथों में खिलाया जाता हुआ कोमल और सुन्दर शरीर वाला वह बालक ऐसा लगता था, मानों लता के कोमल पल्लवों के बीच में खिला हुआ सुन्दर फूल हो। जिनदेव के वचनों के समान गुणों से युक्त सम्यग्ज्ञान के समान विशाल इस कोमल पलंग पर तुम्हें सोना चाहिए, ऐसा कहकर धायें उसको सुलाती थीं। × × ×इस प्रकार अपनी सुन्दर चेष्टाओं से अपने बन्धुजनों के आनन्दरूप समुद्र को बढ़ाता हुआ यह बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति स्वयं ही बढ़ने लगा।)

उपर्युक्त श्लोकों में माता-पिता और परिजन वत्सल रस के आश्रय हैं। सुदर्शन आलम्बन-विभाव है। सुदर्शन की बालक्रीड़ाएं उद्दीपन विभाव हैं। बालक के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना, उसे खिलाना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, आवेग इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में वर्णित अङ्गरस

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में शान्तरस के अतिरिक्त अन्य चार रसों का भी थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है। ये चार रस हैं :—वीर, करुण, रौद्र, और वत्सल। इस काव्य में वीररस काव्य के नायक के हृदय में निष्पन्न शान्त रस का अङ्ग है। करुण रस रामदत्ता के हृदय में निष्पन्न होने वाले शान्त रस का पोषक है। रौद्र रस अन्तःकथा से सम्बद्ध है, और वत्सल रस अप्रधान है। अतः ये चारों रस शान्त रस में अङ्गरस हैं। चारों रस सोदाहरण प्रस्तुत हैं :

वीर रस—

इस काव्य में वीर-रस का वर्णन एक स्थल पर मिलता है, पर वह है अत्यल्प। वीर रस का यह उदाहरण दानवीर का है :—

"अथासनाख्यानवने कृतस्थिति निषेव्य भद्रो वरधर्मकं यतिम् ।
तदीयवाचा मनसाभवत् शुचिः स दानधर्मे कृतवान् पुनारुचिम् ।।
निरीक्ष्य माताऽस्य च दानशालितां निषेधयामास दुरीहिताञ्चिता ।
तथापि यस्याभिरुचिर्यतो भवेन्निवार्यते किं खलु सा जवंजवे ।।"[2]

---

१. सुदर्शनोदय, ३।२०-२७
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।६-७

(तत्पश्चात् प्रासनाभिधान वन में स्थित वरधर्म नामक मुनि के दर्शन करके और उनकी वाणी से भद्रमित्र के मन में और अधिक पवित्रता आ गई। तब दान धर्म में उसने पहले से भी अधिक रुचि दिखाई। उनकी दानशीलता देखकर उसकी लोभी माता ने उसे रोका। फिर भी इस संसार में जिसकी अभिरुचि जिधर होती है, क्या उसको रोका जा सकता है ? अर्थात् भद्रमित्र की दानशीलता को उसकी माता न रोक सकी।)

यहाँ पर भद्रमित्र दानवीर रस का आश्रय है। आलम्बन-विभाव मुनिराज हैं, उनका उपदेश उद्दीपन विभाव है। सन्तोष में वृद्धि होना, दानशीलता में बाधक तत्त्वों की चिन्ता न करना इत्यादि अनुभाव हैं। निर्वेद, मति इत्यादि व्यभिचारि-भाव हैं।

करुण रस—

करुण रस की अभिव्यञ्जना श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में एक स्थल पर अत्यल्प मात्रा में हुई है; किन्तु है यह बहुत मर्मस्पर्शिनी। सत्यघोष अपनी वञ्चकता के कारण राजा सिंहसेन द्वारा अपदस्थ कर दिया गया। फलस्वरूप मरकर वह राजा के भण्डार में ही सर्प के रूप में पहुँचा। एक दिन भण्डारगृह में पहुँचे हुए सिंहसेन को उसने काट लिया, फलस्वरूप राजा की मृत्यु हो गई। रानी रामदत्ता उसके शोक में व्याकुल हो गई :—

"कदापि राजा निजकोषसद्मतः परीक्ष्य रत्नादि विनिर्जनन्तः।
निबद्धवैरेण च तेन भोगिना वरेण दष्टः सहसैव कोपिना॥
एवं
महीमहेन्द्रोऽशनिघोषसद्विषः बभूव यच्छोकवशादिहाक्षिपत्।
उरः स्वकीयं मुहुरातुरा तदाऽपि रामदत्तात्मदशा वशंवदा॥"[1]

यहाँ पर अपने पति की मृत्यु से रानी रामदत्ता के हृदय में शोक नामक स्थायिभाव का उदय हुआ है, इसलिए वह करुण रस का आश्रय है। मृत राजा सिंहसेन आलम्बन-विभाव है। उसकी मृत्यु और रानी का वैधव्य उद्दीपन विभाव हैं। रोमाञ्च, वक्षस्तल पर प्रहार और अश्रुपात इत्यादि अनुभाव हैं। आवेग, मोह स्मृति, विषाद, ग्लानि, चिन्ता इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

रौद्र रस—

इस काव्य में पाठक को एक स्थल पर रौद्र रसानुभूति भी होती है। स्तबकगुच्छ नगर के नागरिक वज्रसेन पर क्रोध करके उसे लाठियों से पीटना शुरू कर देते हैं। तत्पश्चात् वज्रसेन ने भीकुद्ध बायें कन्धे से निकले हुए तेजःसमूह से

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।११ और १५

सारे नगर को भस्म कर दिया; और स्वयं भी भस्म होकर नरक को पहुँच गया।[1]

वत्सल रस—

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र काव्य में ऐसे दो स्थल हैं जिनमें हमें वत्सल रस की अनुभूति होती है। दोनों ही स्थलों का सोदाहरण वर्णन प्रस्तुत है :—

(क) इस काव्य में वत्सल रस की अनुभूति सर्वप्रथम हमें वहाँ होती है, जहाँ भद्रमित्र का धनार्जन के लिए विदेश जाने का उल्लेख है। भद्रमित्र के माता-पिता दोनों ही—एकमात्र पुत्र होने से—उसे अत्यधिक चाहते हैं। इसलिए उनका विदेश जाना दुःखकारी होता है :—

"तस्मै पिता प्रत्यवदत् सुतेति महद्धनं मे सुतरामुदेति।
कार्याऽस्ति कुल्या मरवे यथा किञ्जगत्सु पाथोनिधये तथा किम् ॥
एकाकि एवाङ्गज ! मे कुलायः स्वयं त्वमानन्ददृशेऽनपायः।
दुःखायते मह्यमिदं वचस्ते किन्नाम यानं गुणसंप्रशस्ते ॥
× × ×
एवं निशम्योदितमत्र पित्रा भवन्ति वाचः सुत ते पवित्राः।
आपो यथा गांगभरस्य यत्त्वं पुनीतमातुः समितोऽसि सत्त्वम् ॥
कठोरभावान्निवसान्यहन्तूदयाद्रिवत्ते जननीह किन्तु।
रवेर्विना काशततिर्यथा स्यात्तमोधरा त्वद्रहिता व्युदास्या ॥
× × ×
कृत्वाऽत्र मामम्बुजसम्विहीनां सरोवरीमङ्गज ! किन्नु दीनाम्।
किलोचितं यातुमिति त्वमेव विचारयेदं विषणाधिदेव ॥"[2]

(उसके पिता ने उत्तर दिया कि हे पुत्र मेरे पास तो वैसे ही बहुत धन है। क्या मरुस्थल के लिए बनाई गई नहर को जल से परिपूर्ण समुद्र के लिये भी बनाने की आवश्यकता होती है ? (अर्थात् तुम्हें धनार्जन की आवश्यकता नहीं है।) हे पुत्र तुम मेरे कुल के एकमात्र आधार हो। तुमको देखने से ही मुझे आनन्द की प्राप्ति होती है। गुणों से परिपूर्ण तुम्हारे जाने की बात तो मेरे लिए अत्यन्त दुःखदायिनी है। × × × उसके वचन सुनकर उसके पिता ने कहा कि पुत्र ! पवित्र माता से उत्पन्न तुम्हारे वचन गङ्गा के निर्झर से आये हुए जल के समान पवित्र हैं। उदयाचल के समान कठोर दिल वाला मैं तो तुम्हारे बिना रह भी नहीं सकता हूं। किन्तु तुम्हारी माता तुम्हारे बिना मलिन मुख की कान्ति वाली हो

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।३१-३२
२. वही, ३।५-१३

जायगी, जैसे सूर्य के बिना आकाश की सत्ता अन्धकार से परिपूर्ण हो जाती है। माता ने कहा, हे बुद्धिमान् पुत्र ! मुझे कमल से रहित सरसी के समान दीन बनाकर यह तुम्हारे जाने का विचार क्या उचित है ?)

(ख) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में वत्सल रस का दूसरा उदाहरण वह स्थल है, जहाँ पर चक्रायुध का जन्म और बालक्रीड़ायें वर्णित हैं।[1]

दयोदयचम्पू में वर्णित अङ्ग रस—

दयोदय में शृङ्गार, करुण और वत्सल रसों को अङ्गरस के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनमें से शृङ्गार और करुण शान्त रस के पोषक होने के कारण उसके अङ्ग हैं और वत्सल रस अप्रधान होने के कारण शान्त के प्रति अङ्गता को धारण करता है। तीनों रस सोदाहरण प्रस्तुत हैं :—

शृङ्गार रस—

दयोदयचम्पू में शृङ्गार रस का वर्णन तीन स्थानों पर हुआ है। यहाँ पर इसके दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

(क) सोमदत्त गुणपाल सेठ का पत्र लेकर उसके घर पहुँचता है, उस समय उसके आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गुणपाल की पुत्री विषा के हृदय में रतिभाव का उदय होता है :—

"यदीक्षणमात्रेणैव विषा विषादप्रतियोगिनं भावमङ्गीकुर्वाणा
किलेत्थं विचचार स्वमनसि, × × × कोऽसौ श्रीमान् यः
खलु पूर्वपरिचित इव मम चेतःस्थानमनुगृह्णाति।
अनङ्गसमवायोऽपि सदङ्गसमवायवान्।
निर्दोषतामुपेतोऽपि दोषाकरसमद्युतिः॥
बहुलोहोचितस्थानोऽपि सुवर्णपरिस्थितिः।
सञ्चरन्नपि मच्चित्ते स्थितिमेति महाशयः॥
नाश्विनेयो द्वितीयत्वान्नेन्द्रोऽवृद्धश्रवस्त्वतः।
हृदयरूपतया कामोऽपि कथं भवतादयम्॥"[2]

यहाँ पर शृङ्गार रस का आश्रय विषा है। सोमदत्त आलम्बन विभाव है। उसका सुन्दर व्यक्तित्व उद्दीपन विभाव है। सस्नेह दृष्टिपात इत्यादि अनुभाव है। हर्ष, औत्सुक्य, मति, तर्क इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

(ख) शृङ्गार रस का वर्णन वहाँ भी देखने को मिलता है, जहाँ राजा सोमदत्त से अपनी पुत्री का पाणिग्रहण करने का निवेदन करते हैं। सोमदत्त और राजकुमारी गुणमाला दोनों ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो जाते हैं :—

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।१४।१६
२. दयोदयचम्पू, ४ श्लोक १४ से पूर्व का गद्यभाग एवं १४-१६ श्लोक।

"राजकुमारी असाधारणसौन्दर्यशालिनं तं दृष्ट्वा-
कामोऽस्त्यसौ किमुत मे हृदयं विवेश
सम्मोहनाय किमिहागत एष शेषः।
आखण्डलोऽयमथवा मृदुसन्निवेश-
श्चन्द्रो ह्यवातरदहो मम सम्मुदे सः॥
इति संजातसंकल्पा निजीयलोचनावलोकनसन्ततिविशालां
सुलक्षितकुसुममालां भद्रं दिशतु भगवानिति मृदुलालापाधि-
कालो मोचयामास सोमदत्तगलकन्दले।
सोमदत्तोऽपि तामविकलसकलावयवतया सद्गुण-
सम्पन्नजीवनदुकूलतया च समस्तनारीनिकरोत्तमाङ्गमण्डनरूपा-
मसाधारणरूपप्रशस्तिस्तूपामुद्वीक्ष्य विचारयति—
किम्भोगिनीयमनुयाति दृशैव मोहं
किं किन्नरी खलु ययाऽस्मि वशीकृतोऽहम्।
किं वा रतिः परिकरोति किलानुरागं
श्रीरेव भूषयति या मम वामभागम्॥
× × ×
इत्येवं मत्वा × × × सम्फुल्लाननतामाप।[1]

इस स्थल पर राजकुमारी और सोमदत्त शृङ्गार रस के परस्पर आलम्बन और आश्रय हैं। उनका रूप-सौन्दर्य, विवाह-प्रबन्ध इत्यादि उद्दीपन है। सस्नेह वीक्षण; गले में जयमाला डालना, रोमाञ्च तथा कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान न हो पाना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, औत्सुक्य, गर्व इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

करुण रस—

वयोदयचम्पू में करुण रस का वर्णन तीन स्थलों पर मिलता है, जिनमें से दो स्थल उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं।

(क) करुण रस की एक झलक हमें गुणपाल के पुत्र महाबल की अकाल मृत्यु के समय देखने को मिलती है :—

"अन्विष्यतामपि तु गत्वेति यावज्जगाद तावदेवानुसन्धानकरैरागत्य निवेदितं यत्किल श्रेष्ठिकुमारो महाबल एव स समस्ति, इत्येवं श्रुत्वाऽतीव-विषण्णवदना जाता।

विषा—कुतोऽस्त्यहो मम सहोदरो भ्राता कथमस्तु तेन विनाऽधुना

---

१. वयोदयचम्पू ७ श्लोक २३ के पूर्व के गद्यभाग से श्लोक २५ के गद्यभाग तक।

साता।"[1]

यहाँ पर मृत महाबल करुण रस का आलम्बन है। उसकी माता और बहिन आश्रय है। उसकी मृत्यु का समाचार उद्दीपन विभाव है। रोमाञ्च, विवर्णता, किङ्कर्तव्यविमूढता आदि अनुभाव हैं। जड़ता, विषाद, ग्लानि आदि व्यभिचारिभाव हैं।

(ख) गुणपाल अनजाने में ही विष के लड्डू खाकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पिता को मृत्यु के मुंह में पहुँचा हुआ देखकर विषा शोक से व्याकुल हो जाती है :—

"गुणपालः तदेतत् खादितवान् यावत्तावदेवाङ्गोपाङ्गानि तानयित्वा मुखं खलु व्यापाद्य स्फालयित्वा च चक्षुषी भूमौ निपपात।
विषा सहसैव तदिदमवस्थान्तरं पितुरवेक्ष्य—हे भगवन्।
किमिदं जातम्? अहो कथमिव कर्त्तुमारब्धवांस्तात
आगम्यतां शीघ्रमेव लोकैरिहातः इत्येवं पूच्चकार।
× × × गुणश्रीः—बहिर्देशतः समागताऽतर्कितोपस्थित-
मिदमात्मनो भौतिकमवसरमवेत्य सविषादं जगाद। × × ×
इत्यतो मया सम्पादित विषान्नमधुना मयापि भोक्तव्यमेव
किमनेन निःसारेण कलङ्कमलीमसेन जीवितव्येनेति॥"[2]

इस उद्धरण में विषा और गुणश्री करुण रस का आश्रय है। गुणपाल आलम्बन है। उसकी अनायास मृत्यु उद्दीपन विभाव है। भगवान् को सम्बोधित करना, क्रन्दन, लोगों को पुकारना, प्रलाप करना, विवर्णता, अनुमरण इत्यादि अनुभाव हैं। निर्वेद, मोह, अपस्मार, ग्लानि, विषाद, जड़ता, उन्माद इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

वत्सल रस—

वैसे तो दयोदयचम्पू में वत्सल रस की झांकी हमें तीन स्थलों पर देखने को मिलती है। किन्तु इनमें से एक ही स्थल उदाहरण के रूप में उल्लेखनीय है। गुणपाल सेठ के कहने पर चाण्डाल सोमदत्त को मारता नहीं है अपितु नदी के किनारे स्थित पेड़ के नीचे छोड़ जाता है। समीपस्थ वस्ती में रहने वाला गोविन्द नाम का ग्वाला, अपनी गायों को लेकर उसी मार्ग से निकला। बालक को देखकर निःसन्तान ग्वाले के हृदय में पुत्र-प्रेम का सोता फूट पड़ा, उसकी पत्नी भी सोमदत्त को पाकर हर्षित हुई। कवि के ही शब्दों में वत्सल रस का आस्वादन कीजिए :—

---

१. दयोदयचम्पू, ५ अन्तिम गद्यभाग।
२. वही, ६ श्लोक ६ के पहले के गद्यभाग से श्लोक ९ के बाद के गद्यभाग तक।

'सहसैवास्य दृष्टिश्चकोरीव चन्द्रमसं केकिनीव बलाहककुलमलिकुटुम्बिनीव कमलवनं पिकीव रसालकोरकं तं शिशुमुदीक्ष्यातीव सन्तोषमासादितवती। × × × धनश्रीरपि तेन मौक्तिकेन शुक्तिरिवादरणीयतां कामधेनुरिव वत्सेन क्षीरभरितस्तनतामुद्यानमालेव वसन्तेन प्रफुल्लभावं समुद्रवेलेव शशधरेणातीवोल्लाससद्भावमुदाजहार हारलसितवक्षःस्थला।

अहो किमौरसादपि रसाधिकोऽङ्कप्राप्तः पुत्रः प्रभवति यत्र न यौवनहानिर्न प्रसवपीड़ा, न चापुत्रवतीति नाम व्रीड़ा, समुल्लभ्यते च सहजमेव बाललालनक्रीड़ा जगतीत्येवं विचारितवती धनश्रीस्तमात्मजमिवातीव स्नेहेन पालयामास सरस्वतीव लम्बोदरम्।"[1]

यहाँ पर गोविन्द ग्वाला और धनश्री वत्सल-रस के आश्रय हैं। सोमदत्त आलम्बन है। गोविन्द का निःसन्तान होना, सोमदत्त की प्राप्ति, उसकी सरल मुस्कान इत्यादि उद्दीपन-विभाव हैं। स्नेहपूर्वक देखना, रोमाञ्च इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व, तर्क इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं।

रसाभास का स्वरूप

काव्य में जिन-जिन स्थलों पर रस-सामग्री का उचित रूप से प्रस्तुतीकरण न किया गया हो, जहाँ रसाभिव्यञ्जना में बाधा हो रही हो, रस की अभिव्यञ्जना पूर्णरूपेण न हो रही हो, वहाँ पर रसाभास होता है। अतएव रस का अनुचित रूप से प्रस्तुतीकरण रसाभास है।[2]

(ज)कवि श्रीज्ञानसागर के संस्कृत ग्रन्थों में रसाभास

कवि की संस्कृत-काव्यकृतियों के परिशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने रसाभास (नामक ध्वनि-काव्य-उपभेद) का भी चित्रण किया है। जयोदय महाकाव्य में शृङ्गार रसाभास और भयानक रसाभास का चित्रण मिलता है। सुदर्शनोदय काव्य में शान्त रसाभास, शृङ्गार रसाभास और रौद्ररसाभास का चित्रण किया गया है। श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में शान्तरसाभास का उल्लेख आया है। दयोदयचम्पू में शान्त रसाभास का वर्णन है। हाँ, वीरोदय महाकाव्य में रसाभास बिल्कुल भी नहीं है। अब सर्वप्रथम जयोदय के रसाभास सोदाहरण प्रस्तुत हैं :—

---

१. दयोदयचम्पू, ३।श्लोक १० के पूर्व के और बाद के गद्यभाग।

२. (क) 'तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिता.।'

—काव्यप्रकाश, ४।३६वीं कारिका के पूर्वार्ध का अर्धांश।

(क) जयोदय में रसाभास—

शृङ्गार रसाभास—

जयोदय महाकाव्य का वह स्थल शृङ्गाररसाभास का उदाहरण है, जहाँ रविप्रभ नामक देव अपनी काञ्चना नाम की पत्नी को जयकुमार के पास भेजता है। काञ्चना अपनी काल्पनिक जीवन-कहानी सुनाकर और तरह-तरह की चेष्टाओं से जयकुमार को आकर्षित करना चाहती है, किन्तु उसका प्रयास निष्फल हो जाता है।[1]

भयानक रसाभास—

जयोदय महाकाव्य में भयानक रसाभास का उदाहरण वह है, जहाँ पर मगर के द्वारा हाथी के ऊपर आक्रमण होने से जयकुमार घबरा जाते हैं। काव्य के धीरोदात्त एवं युद्धवीर नायक के मन में मगर को देखकर भय नामक स्थायिभाव का प्रादुर्भाव होकर उसका पुष्ट होना अनुचित है।[2]

(ख) सुदर्शनोदय में रसाभास—

शान्त रसाभास—

सुदर्शनोदय में शान्त रसाभास के दो उदाहरण मिलते हैं :—

(क) शान्त रसाभास का प्रथम उदाहरण वह स्थल है, जिसमें एक रजकी के क्षुल्लिका हो जाने का वर्णन है।[3]

(ख) शान्त रसाभास का दूसरा उदाहरण वह स्थल है, जिसमें सुदर्शन के उपदेश से देवदत्ता वेश्या और पण्डिता दासी आर्यिका-व्रत धारण कर लेती हैं :—

"इत्येवं वचनेन मार्दवतामोहोऽस्तभावं गतः,
यद्वद्गारुडिनः सुमन्त्रवशतः सर्पस्य दर्पो हतः,
आर्यात्वं सममेति पण्यललना दासीसमेतान्वितः
स्वर्णत्वं रसयोगतोऽत्र लभते लोहस्य लेखा यतः ॥"[4]

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में धोबिन, वेश्या और दासी को शान्त रस का आश्रय बना दिया है, जो अनुचित है, क्योंकि नीचपात्रगत निर्वेद को दर्पणकार ने अनुचित बताया है।[5] अतः यहाँ शान्त रसाभास है।

(ख) 'अनौचित्यप्रवृत्तत्व आभासो रसभावयोः।'
—साहित्यदर्पण, ३।२६२ का उत्तरार्ध।

१. जयोदय, २४।१०५-१३६
२. वही, २०।५१-५२
३. सुदर्शनोदय, ४।२८-३६
४. वही, ६।७४
५. साहित्यदर्पण, ३।२६५

शृङ्गार रसाभास—

सुदर्शनोदय में शृङ्गार रसाभास के पांच उदाहरण हैं। कपिला ब्राह्मणी का सुदर्शन पर आकर्षण प्रथम उदाहरण है, क्योंकि उसका प्रेम एकाङ्गी है।[1] इसी प्रकार रानी अभयमती का सुदर्शन के प्रति प्रेम[2] दूसरा और उनके द्वारा की गई कामुक चेष्टाएं[3] शृङ्गार रसाभास का तृतीय उदाहरण है। शृङ्गाररसाभास का चतुर्थ उदाहरण है—देवदत्ता वेश्या सुदर्शना के प्रति कहे गए कामुक वचन[4] और सुदर्शन के वचनों का कोई प्रभाव न पड़ना तथा देवदत्ता का पुनः कामचेष्टाएं करना शृङ्गाराभास का पांचवां उदाहरण है।[5]

रौद्र रसाभास—

सुदर्शनोदय में रौद्र रसाभास का भी एक उदाहरण मिलता है। रानी अभयमती मरकर व्यन्तरी हो गई है। सुदर्शन को देखकर उसका क्रोध भड़क उठता है, और वह सुदर्शन से कटुवचन कहती है :

"रे दुष्टाऽभयमत्याख्यां विद्धि मां नृपयोषितम्।
यस्याः साधारणीवाञ्छा पूरिता न त्वया स्मयात्॥
पश्य मां देवताभूयरूपान्तूपासिकाधिप।
त्वमिमां शोचनीयास्थामाप्तो नैष्ठुर्ययोगतः॥
कस्यापि प्रार्थनां कश्चिदित्येवमवहेलयेत्।
मनुष्यतामवाप्तश्चेत्तथा त्वं जगतीतले॥
हे तान्त्रिक तदा तु त्वं कृतवान् भूपमात्मसात्।
तवाद्य का दशा ते स्यान्मदीयकरयोगतः॥"[6]

यहां सुदर्शन मुनि के प्रति किया गया क्रोध अनुचित है, क्योंकि सज्जन के प्रति क्रोध में अनौचित्य नहीं तो और क्या? इसलिए यह स्थल भी रसाभास की श्रेणी में आ जाता है।

(ग) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में रसाभास—

इस काव्य में एक स्थल पर शृङ्गार रसाभास की और एक स्थल पर शान्त रसाभास की हल्की झलक मिलती है। महाकच्छ अपनी पुत्री प्रियङ्गुश्री का

---

१. सुदर्शनोदय, ५-१-५ और १४-१७
२. वही, ६।१७-१९
३. वही, ७।१७-२१
४. वही, ९।१४-१९
५. वही, ९।२७-२८
६. वही, ९।७८-२१

विवाह ऐरावण से करने के लिए उसके साथ आ रहा था। मार्ग में वज्रसेन नामक व्यक्ति ने उसका पीछा किया। उसकी यह चेष्टा अनुचित है, अतः शृङ्गार रसाभास का उदाहरण मानी जा सकती है।[1] वज्रसेन का ऊपरी मन से जिनदीक्षा ग्रहण करके तप करना शान्तरसाभास का उदाहरण है।[2]

(घ) दयोदयचम्पू में रसाभास—

दयोदयचम्पू में केवल शान्तरसाभास का ही वर्णन मिलता है और वह भी एक ही स्थल पर। वसन्तसेना वेश्या सोमदत्त के आचरण से प्रभावित होकर आर्यिकाव्रत धारण कर लेती है :—

"वसन्तसेना वेश्यापि—तत्र वसन्तमपि × × × ×
साधुशिरोमणिं दृष्ट्वा कौतुकविहीनत्वमात्मनेऽनुमन्यमाना च
तत्कवित्वमधिकुर्वाणेव सुवृत्तभावं सम्पादयितुमुद्यताऽभूत्। + + +
विषा-वसन्तसेने—एकमेव शाटकमात्रविशेषमार्यावृतमङ्गीचक्रतुः ॥"[3]

एक वेश्या के हृदय में शम भाव का जागरित होकर पुष्ट होना शान्तरसाभास का उदाहरण माना जा सकता है "शान्ते च हीननिष्ठे", साहित्यदर्पण, ३।२६५)।

(झ) भाव का स्वरूप

भारतीय साहित्यशास्त्रियों के अनुसार प्रधान रूप से व्यञ्जित व्यभिचारिभाव, देव, गुरु और राजा के प्रति रतिभाव और अपरिपुष्ट स्थायिभाव 'भाव' नाम से जाने जाते हैं।[4] जहाँ इस प्रकार के भावों का वर्णन होता है, उसे भावकाव्य कहा जाता है। अब देखना यह है कि हमारे आलोच्य महाकवि ने भावकाव्य का कैसा वर्णन किया है।

(ञ) कवि श्री ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में भाव

(क) जयोदय महाकाव्य में भाव—

जयोदय महाकाव्य में सबसे अधिक अभिव्यञ्जना देवविषयक भक्तिभाव

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।२८
२. वही, २।३०
३. दयोदयचम्पू, ७।१४८-१४९
४. (क) 'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः। भावः प्रोक्तः।'
—काव्यप्रकाश, ४।३५ और ३६ का एक भाग।

(ख) सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः।
उद्बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ॥
—साहित्यदर्पण, ३।२६० का उत्तरार्ध और २६१ का पूर्वार्ध।

की हुई है। इसमें गुरु-विषयक भक्ति और नृपविषयक भक्ति के भी उदाहरण मिलते हैं। प्रधान रूप से अभिव्यञ्जित व्यभिचारिभाव और अपरिपुष्ट स्थायिभाव के उदाहरण भी यत्र-तत्र हैं। क्रमशः भावकाव्य के इन पांच प्रकारों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

भगवद् विषयक भक्तिभाव—

जयोदय महाकाव्य में ९ स्थलों पर भगवद् विषयक भक्ति-भाव की अभिव्यञ्जना मिलती है। विस्तार के भय से केवल दो ही उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं :—

(अ) जयकुमार और अर्ककीर्ति के युद्ध के पश्चात् जयकुमार अपने मन को धैर्य बंधाने के लिए जिन भगवान्[1] का पूजन करते हैं :—

"सकलः सकलज्ञमाप्तवानपि सम्पार्थयितुं जनं स वा।
भगवान्भगवानभिष्टुतः विपदामप्युत सम्पदामुत ॥
सपदि विभातो जातो भ्रातो भवभयहरणविभामूर्तेः।
शिवसदनं मृदुवदनं स्पष्टं विश्वपितुर्जिनसवितुस्ते ॥
गता निशाथ दिशा उदघटिता भान्ति निपूतनयनभूते।
कोऽस्तु कौशिकादिह विद्वेषी परो नरो विशदीभूते ॥
मङ्क्तनमण्डनमस्तु समस्तं जिनदेवे स्वयमनुभूते।
हीराद्या हि कुनः प्रतिपाद्याश्चिन्तारत्ने सति पूते ॥
कलिते सति जिनदर्शने पुनश्चिन्ता कान्यकार्यपूर्ते-
भो न भवन्ति तृणानि किमात्मञ्जगति झगिति हि कर्णस्फूर्तेः ॥
निःसाधनस्य चार्हति गोप्तारं सत्यं निर्व्यसना भूस्ते।
तमसि च किं दीपैरुदयश्चेच्छान्तिकरस्य सुधास्यूतेः ॥
अर्हन्तमागोहरमगादधुना समर्थयितुंतरां
कश्मलादाजिभवाज्जयोदरमावहन्स्मरसन्निभम् ॥[1]

(आ) तीर्थयात्रा करते हुए जयकुमार हिमालय पर एक देवालय को देखकर वहाँ जाते हैं, और जिनभगवान् की पूजा एवं स्तुति करते हैं :—

"पुनश्च विघ्नप्रतिरोधि निः सहीति मन्त्रसूत्रं रुचितः समुच्चरन्।
निधानयाम्नो हि जिनालयस्य स कवाटमुद्घाटयति स्म धीरराट् ॥
निपूतपादाभिगमाभिलाषको निपूतपादः स्वयमप्यथासको।
जयेति वाचा कथितः श्रिया युतं जयेति वाचा गृहमाविशत्तराम् ॥

---

१. जयोदय, ८।८९ और उसके बाद का गीत।

समुन्ननामातिलघु प्रभोः पुरो द्वयं मिलित्वा करयोश्च साम्प्रतम् ।
लुठन्भुवीह प्रणनाम दण्डवज्जिनं यथासौ शरणागतः स्मरः ।
तदङ्घ्रियुग्मे कुसुमानि साम्प्रतं निजीयशस्त्राणि समर्प्य सादरः ।।

\+ \+ \+

जिनेशरूपं सुतरामदृष्टमापीय पीयूषमिवाभिपुष्टः ।
पुनश्च निर्गन्तुमशक्नुवानतस्ततो बभूवोचितसम्विधानः ।।
सूक्ष्मवतो लुप्तमवेत्य चेतः श्रीपादयोर्निजव्रजताथवेतः ।
अवापि तत्रत्यरजस्तु तेन संशोधनाधीनगुणस्तु तेन ।।"[1]

गुरुविषयक भक्तिभाव—

गुरुविषयक भक्तिभाव जयोदय में तीन स्थलों पर देखने को मिलता है। दो स्थल उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं :—

(अ) अपने उपवन में आए हुए मुनिराज के प्रति उदित भावों को भक्तिभाव के उदाहरण के रूप में देखिए :—

"पतिं यतीनां सुमतिं प्रतीक्ष्य तदा तदातिथ्यविधानदक्षम् ।
मुदोद्गतत्कामशरप्रतानमङ्कीचकारोपवनप्रधानः ।।
फुल्लत्यसङ्काधिपतिं मुनीनमवेक्षमाणो वकुलः कुलीनः ।
विनैव हानाकुरलान् वधूनां व्रताश्रितिं वागतवानदूनाम् ।।

\+ \+ \+

बद्धिष्णु रघुपानन्दवारिधिस्तस्य तावता ।
इत्थमाह्लादकारिण्यो गावः स्म प्रसरन्ति ताः ।।
कलशोत्पत्तितादात्म्यमितोहं तव दर्शनात् ।
आगस्त्यक्तोऽस्मि संसारसागरश्चुलुकायते ।।
ममात्मगेहमेतत्ते पवित्रैः पादपांशुभिः ।
मनोरमत्वमायाति जगत्पूतानिलिम्पितम् ।।
हे सज्जनपतेश्चन्द्रवत्प्रसादनिधेऽखिलः ।
पादसम्पर्कतो यस्य लोकोऽयं निर्मलायते ।।

... .

जन्मश्रीगुणसाधनं स्वयमवन् सन्दुःखदैन्याद्बहि-
र्यत्नेनैव विधुप्रसिद्धयशसे पापापकृत्सत्वपः ।
मञ्जूपासकसङ्गतं नियमनं शास्ति स्म पृथ्वीभृते
तेजःपुञ्जमयो यथाममथाहिंसाधिपः श्रीमते ।।"[2]

---

१. जयोदय, २४।६८-१०२
२. वही, १।८०-११३

(आ) मुनि के वचनों को सुनकर जयकुमार का हृदय श्रद्धा से भर उठता है, और सिर झुक जाता है :—

"इत्यवाप्यापरिशेषमेकतो गात्रमङ्कुरितमस्य भूभृतः ।
नम्रतामुपजगाम सच्छिरस्तावता फलभरेण वोढुरम् ॥
सन्निपीय वचनामृतं गुरोः सन्निधाय हृदि पूततत्पदौ ।
प्राप्य शासनमगादगारिराडात्मदौरथ्यमयमीरयंस्तदा ॥"[1]

नृपविषयक भक्तिभाव—

जयोदय महाकाव्य में नृपविषयक भक्तिभाव के दो उदाहरण देखने को मिलते हैं। प्रथम उदाहरण में कविनिष्ठ नृपविषयक भक्तिभाव की अभिव्यञ्जना देखने को मिलती है।[2] नृपविषयक भक्तिभाव का दूसरा उदाहरण वहाँ पर है, वहाँ जयकुमार सम्राट् भरत के पास जाते हैं और भरत के प्रति आदरभाव प्रकट करते हैं :—

"सदनुमानिते तरलितो हिते परिषदास्पदे भरतमाददे ।
यदिव खञ्जनः परमाञ्जनमच नभः स्थले शशिनमुज्ज्वले ॥
अनुसमग्रहीत्तनपि किन्न हि सा च तमोभिस्त्वमदुरश्मिः ।
कौमुदस्थितिं वर्द्धयन्निति सम्बभावतोढापरिस्थितिः ॥
भालं जयस्य नमदादिजचक्रपाणेः पादाग्रतस्त समभारिह तत्प्रमाणे ।
नित्यं विभावमय दोषविशोधनाय पङ्केरुहस्य पुरतः शशिनोऽभ्युपातः ॥
शतशः स्फुरत्किरणभुग्नखाग्रवत् करसंयुगं भरतचक्रिणोऽभवत् ।
रविबिम्बशोभि सहसोभिमातरः शशिशोभनं जयमुखं समुद्वरत् ॥
विबभूव भूः परिकृतेरपीति यत् प्रतिपत्कलोदयकरी कवेरियम् ।
समभूत्तमां मुरुचिभागिहोत्तमा सदसः प्रहर्षणगणश्रिया समा ॥"[3]

व्यङ्ग्य व्यभिचारिभाव—

व्यङ्ग्य व्यभिचारिभावों के अनेक उदाहरण जयोदय महाकाव्य में दृष्टिगोचर होते हैं, यहाँ उन सबको प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है, इसलिए उदाहरण रूप में केवल दो स्थलों का वर्णन प्रस्तुत है :—

(अ) भरत के पास गए हुए जयकुमार की प्रतीक्षा करती हुई सुलोचना का औत्सुक्य भाव देखिये :—

---

१. जयोदय, २।१४०-१४१
२. वही, १।१-७७
३. वही, २०।८-१२

"प्रतीक्षयामास जयं किशोरी यशोदयन्तं शशिनं चकोरी ।
सूनुः मकण्टं तमसोपमृष्ट-रयेण नीरोरुचयेन दृष्टः ॥"[1]

(ग्रा) हस्तिनापुर में प्रवेश करते हुये जयकुमार की चेष्टा में हर्ष नामक भाव की झलक देखिये :—

"गाव्रजत्यतिजवेन पत्तनं माविचारमिह यातु किञ्चन ।
प्रीतया तुलितेन मुदं वहन् निर्ययावपि महांगसंग्रहः ॥
स्पर्द्धितापि पुनरग्रगामिता सन्नियोगविषये शिथो रसात् ।
तद्वशस्य च मनोरथस्य चानन्यवेगिन इहाविराय सा ॥"[2]

अपरिपुष्ट स्थायिभाव—

जो स्थायिभाव पुष्ट होकर रस का रूप ग्रहण नहीं कर पाते, उन्हें भी 'भाव' माना जाता है । इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"दम्भातीतं कृत्वा मनोविशदभावितथि वै पद्मासोमसुतौ सत्यारम्भम् ।
तिष्ठत स्म मद्धर्मभावना मद्भावावाराद्दर्पाकृतिताविभौ भव्यौ वा ॥"[3]

यहाँ पर जय नामक अपरिपुष्ट स्थायिभाव की अभिव्यञ्जना हो रही है ।

(ख) वीरोदय महाकाव्य में भाव—

जयोदय के समान ही वीरोदय में भी देवविषयक भक्तिभाव की अभिव्यञ्जना सर्वाधिक हुई है । इसके अतिरिक्त इसमें गुरुविषयक भक्ति और नृप-विषयक भक्ति का भी एक-एक स्थल देखने को मिलता है । व्यभिचारिभाव एवं अपरिपुष्ट स्थायिभाव के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। क्रमशः उदाहरण प्रस्तुत हैं—

देवविषयक भक्तिभाव—

देवविषयक भक्तिभाव के वीरोदय में सात उदाहरण मिलते हैं, जिनमें से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण में कवि ने जैन-तीर्थङ्करों की स्तुति की है—

"श्रिये जिनः सोऽस्तु यदीयसेवा समस्तमर्थोत्तुजनस्य मेवा ।
द्राक्षेव मृद्वी रसने हृदोऽपि प्रसादिनी नोऽस्तु मनाक् श्रमोऽपि ॥
कामारिता कामितसिद्धये नः समर्थिता येन महोदयेन ।
सैवाभिजातोऽपि च नाभिजातः समाजमान्यो वृषभोऽभिघातः ॥

---

१. जयोदय, २०।५४
२. वही, २१।५-६
३. वही, २३।९७

चन्द्रप्रभं नौमि यदङ्गसारस्तं कौमुदस्तोममुरीचकार ।
सुखञ्जनः सलभते प्रणश्यत्तमस्तयाऽऽत्मीयपदं समस्य ।।

× × × × ×

वीर त्वमानन्दभुवाभवीरः मीरो गुणानां जगतामभीरः ।
एकोऽपि सम्पातितमामनेक लोकाननेकान्तमतेन नेक ।।"[1]

२ देवविषयक भक्तिभाव का एक उदाहरण वह स्थल है, जहाँ भगवान् के गर्भावतरण के पश्चात् देवगण ने माता प्रियकारिणी की पूजा की है—

"तदिह सुर-सुरेशाः प्राप्य सद्धर्मलेशा
वरपटह-रणाद्यैः किञ्चन श्रेष्ठपाद्यैः ।
नव-नवमपि कृत्वा ते मुहुस्तां च नुत्वा
सदुदयकलिताङ्गीं जग्मुरिष्टं वराङ्गीम् ।।"[2]

नृपविषयक भक्तिभाव —

नृपविषयक भक्तिभाव का उदाहरण वह है, जहाँ कवि ने राजा सिद्धार्थ का वर्णन किया है—

"निःशेषनम्रावनिपालमौलि-मालारजःपिञ्जरितांघ्रिमौलिः ।
सिद्धार्थनामाऽस्य बभूव शास्ता कीर्तीः श्रियो यस्य वदामि तास्ताः ।।
सौवर्ण्यमुद्वीक्ष्य च धैर्यमस्य दूरं गतो मेरुरहो नृपस्य ।
मुक्तामयत्वाच्च गम्भीरभावादेतस्य वार्धिर्गलपितः सदा वा ।।

+ + + + +

एकाऽस्य विद्या श्रवसोश्च तत्त्वं सम्प्राप्य लेभेऽथ चतुर्दशत्वम् ।
शक्तिस्तथा नीतिचतुष्कसारमुपागताऽसौ नवतां बभार ।।"[3]

गुरुविषयक भक्तिभाव —

मङ्गलाचरण में ही कवि ने अपने गुरुजनों के प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित किया है—

"ज्ञानेन चानन्दमुपाश्रयन्तश्चरन्ति ये ब्रह्मपथे सजन्तः ।
तेषां गुरूणां सदनुग्रहोऽपि कवित्वशक्तौ मम विघ्नलोपी ।।
एवं
"शक्तोऽथवाऽहं भविताऽस्म्युपायाद्भवन्तु मे श्रीगुरवः सहायाः ।
पितुर्विलग्धाङ्गुलिमूलतातिर्यदिष्टदेशं शिशुकोऽपि याति ।।"[4]

---

१. वीरोदय, १।१-५
२. वही, ४।६३
३. वही, ३।१-४
४. वही, १।७, ८

व्यङ्ग्य व्यभिचारिभाव—

वीरोदय में रानी प्रियकारिणी से स्वप्न सुनकर राजा की जो दशा हो जाती है, उसे हम हर्ष और आवेग नामक व्यभिचारिभावों की व्यंग्यता कह सकते हैं।[1] अपने पिता के सम्मुख विवाह प्रस्ताव अस्वीकार करते समय महावीर स्वामी का निर्वेद नामक व्यभिचारिभाव भी पूर्णरूपेण अभिव्यञ्जित हुआ है।[2]

अपरिपुष्ट स्थायिभाव—

रानी अपने द्वारा देखे गये सोलह स्वप्न राजा को सुनाने आती है—

"नयनाम्बुजसम्प्रसादिनीं दिनपस्येव रुचिं तमोऽर्दनीम्।
समुदीक्ष्य निजासनार्धके स्म स तां वेशयतीत्यथानके॥[3]

इस स्थल पर राजा सिद्धार्थ का रानी प्रियकारिणी के प्रति रतिभाव अपूर्ण-रूप से अभिव्यञ्जित हो रहा है।

(ग) सुदर्शनोदय में भाव—

सुदर्शनोदय में भी भावकाव्य के पाँचों प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं। पाँचों प्रकार सोदाहरण प्रस्तुत हैं—

देवविषयक भक्तिभाव—

सुदर्शनोदय में देवविषयक भक्तिभाव की अभिव्यञ्जना चार स्थलों पर हुई है। दो स्थल उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

(अ) मङ्गलाचरण में कवि ने जिनेन्द्रदेव की स्तुति की है—

"वीरप्रभुः स्वीयमुबुद्धिनावा भवाब्धितीरं गमितप्रजावान्।
सुधीवराराध्यगुणान्वया वाग्यस्यास्ति नः शास्ति कवित्वगावा॥
वागुत्तमा कर्मकलङ्कजेतुर्वुरन्तदुःखाम्बुनिधौ तु सेतुः।
ममास्त्वमुष्मिंस्तरणाय हेतुरदूष्टपारे कविताभरे तु॥"[4]

(आ) श्रीज्ञानसागर ने अर्हन्तदेव की पूजा में अनेक भजन सुदर्शन द्वारा प्रस्तुत कराये हैं, उनमें से एक प्रस्तुत है—

"जिनप परियामो मोदं तव मुखभासा॥
खिन्ना यदिव सहजकुद्विधिना, निःस्वजनी निधिना सा॥
सुरसनमशनं लब्ध्वा रुचिरं सुचिरक्षुधितजनाशा॥

---

१. वीरोदय, ४।३७
२. वही, ८।२३
३. वही, ४।३०
४. सुदर्शनोदय, १।१-२

केकिकुलं तु लपत्यतिमधुरं जलदस्तनितसकाशात् ।।
किन्न चकोरदृशो: शान्तिमयी प्रभवति चन्द्रकला सा ।।[1]

गुरुविषयक भक्तिभाव—

सुदर्शनोदय में गुरुविषयक भक्तिभाव की अभिव्यञ्जना सात स्थलों पर हुई है। दो स्थल उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

(अ) सुदर्शनोदय में मङ्गलाचरण में कवि ने गुरुवन्दना की है—

"भवान्धुनम्पातिजनैकबन्धुर्गुरुश्चिदानन्दसमाधिसिन्धुः ।
गतिर्ममैतत्स्मरणैकहस्तावलम्बिनः काव्यपथे प्रशस्ता ।।"[2]

(आ) सेठ वृषभदास और जिनयति स्वप्नों का तात्पर्य जानने हेतु एक मुनिराज के पास जाते हैं। दोनों उनका दर्शन करके उन्हें प्रणाम करते हैं—

"केशान्धकारोह शिरस्तिरोऽभूद् दृष्ट्वा मुनीन्दुं कमलाश्रियो भूः ।
करद्वतं कुड्मलतामयासीत्तयोर्जजृम्भे मुदपां सुराशिः ।।
कृतापराधाविव बद्धहस्तौ जगद्धितेच्छोर्हुतमग्रतस्तौ ।
मितोऽथ तत्प्रेमसमिच्छुकेषु सङ्क्लेशकृत्वाद्रतिकौतुकेषु ।।
दृष्ट्वेति निर्गत्य पलायिता वाङ्नमोऽस्त्वितीदृङ् मधुला मियावा ।।[3]

नृपविषयक भक्तिभाव—

राजा धात्रीवाहन के वर्णन में कवि का नृपविषयक भक्तिभाव अभिव्यञ्जित होता है—

"धात्रीवाहननामा राजाऽभूदिह नास्य समोऽवनिभाजाम् ।
तेजस्वीदृक् यथांऽशुमाली निजप्रजायाः यः प्रतिपाली ।।
यतिरिवासकौ समरसङ्गतः सुधारसहितः स्वर्गिबन्मतः ।
पृथुदानवारिरिन्द्रसमान एवं नानामहिमविधानः ।।"[4]

व्यङ्ग्य व्यभिचारिभाव—

जिनमति के वचनों में हर्ष नामक व्यभिचारिभाव की,[5] वृषभदास के विचारों में चिन्ता नामक व्यभिचारिभाव की[6] और ग्वाले के लड़के के मनोभावों

---

१. सुदर्शनोदय, ५।गीत सं ७
२. वही, १।३
३. वही, २।२५-२७
४. वही, १।३८-३९
५. वही, २।३९
६. वही, ३।४२

में दया नामक व्यभिचारिभाव की[1] परिपुष्ट अभिव्यञ्जना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। जड़ता नामक व्यभिचारिभाव की अभिव्यञ्जना प्रस्तुत है—

"इत्येवं वचसा जातस्तमसेवावृतो विधुः।
वैवर्ण्येनान्विततनुः किञ्चित्कालं सुदर्शनः॥"[2]

वैसे तो व्यञ्जित व्यभिचारिभाव के और भी उदाहरण हैं, किन्तु विस्तार के भय से उन्हें प्रस्तुत करना अनुचित समझती हूँ।

अपरिपुष्ट स्थायिभाव—

भावकाव्य के इस प्रकार के भी दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(अ) ',परिवृद्धिमितोदरां हि तां सुलसद्धामपयोधराञ्चिताम्।
मुमुदे समुदीक्ष्य तत्पतिर्भुवि वर्षामिव चातकः सतीम्॥"[3]

(पृथ्वी में सुन्दर जल-धारा वाले बादलों से युक्त वृद्धि को प्राप्त वर्षा को देखकर जैसे चातक प्रसन्न होता है, वैसे ही स्तनों पर सुशोभित हार वाली और बढ़ते हुए उदर वाली अपनी पत्नी को देखकर वह सेठ अत्यधिक प्रसन्न हुआ।)

यहाँ पर सेठ वृषभदास का वात्सल्यभाव अभिव्यञ्जित तो हुआ है, पर अपूर्ण रह गया है।

(आ) "अन्तःपुरं द्वाःस्थनिरन्तरायि सुदर्शनः प्रोषधसम्बिधायी।
विज्ञैरवाचीत्यवदः प्रयोगः स्यादत्र कश्चित्त्वपरो हि रोगः॥"[4]

यहाँ पर विस्मय नामक स्थायिभाव की अभिव्यञ्जना पूर्ण नहीं हो सकी है।

(घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में भाव—

इस काव्य में नृपविषयक भक्तिभाव के अतिरिक्त अन्य चार भावों का थोड़ा बहुत वर्णन मिल जाता है। क्रमशः चारों भाव सोदाहरण प्रस्तुत हैं—

देवविषयक भक्तिभाव—

इसका केवल एक उदाहरण है, वह भी ग्रन्थ के प्रारम्भ में—

"नमाम्यहं तं पुरुषं पुराणमभूद्युगादौ स्वयमेव शाणः,
धियोऽसिपुत्र्या दुरितच्छिदर्थमुत्तेजनायातितरां समर्थः॥

---

१. सुदर्शनोदय, ४।२४
२. वही, ५।१८
३. वही, २।५०
४. वही, ८।१

श्रीवर्द्धमानं भुवनत्रये तु विपत्पयोधेस्तरणाय सेतुम् ।
नमामि तं निर्जितमीनकेतुं नमामितो हन्तु यतोऽघहेतुः ।।"[1]

यहाँ पर कवि का ऋषभदेव के प्रति और वर्द्धमान भगवान् के प्रति भक्ति-भाव अभिव्यञ्जित हो रहा है ।

गुरुविषयक भक्तिभाव—

गुरुविषयक भक्तिभाव चार स्थलों पर वर्णित है । दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

(क) ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि की गुरुभक्ति वर्णित है—

"समस्ति काव्योद्धरणाय मे तु गुरोर्महानुग्रह एव हेतुः ।
पयोनिधेः सन्तरणाय सेतुर्वर्मार्थवा शस्त्रहर्ति विजेतुम् ।।[2]

(ख) राजा चक्रायुध यतिवेश धारण करके वन को चल देता है । वह अपने पिता मुनि अपराजित को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करता है । उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है । विनयपूर्ण शब्दों में उनकी वन्दना करता है, और संसार-सागर से पार उतरने का उपाय पूँछता है ।[3]

व्यङ्ग्य व्यभिचारिभाव—

कवि ने स्थान-स्थान पर मति,[4] अमर्ष[5] इत्यादि व्यभिचारिभावों को बड़े ही अच्छे ढङ्ग से अभिव्यञ्जित किया है ।

अपरिपुष्ट स्थायिभाव—

विस्मय,[6] क्रोध[7] इत्यादि स्थायिभावों की अपूर्ण अभिव्यञ्जना भी श्रीसमुद्र-दत्तचरित्र में दृष्टिगोचर होती है ।

(ङ) वयोदयचम्पू में भाव—

श्रीसमुद्रदत्तचरित्र के समान इसमें भी नृपविषयक भक्तिभाव को छोड़कर अन्य चार प्रकार के भाव वर्णित हैं । चारों सोदाहरण प्रस्तुत हैं—

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, १।१-२
२. वही, १।६
३. वही, ७।२४-३३
४. वही, ३।१
५. वही, ५।३२
६. वही, २।२४
७. वही, ४।११

देवविषयक भक्तिभाव—

देवविषयक भक्तिभाव की अभिव्यञ्जना केवल ग्रन्थ के प्रारम्भ में हुई है :—

"श्रीपतिर्भगवान् जीयाद् बहुधान्यहितार्थिनाम् ।
भक्तानामुद्गतत्वेन यद्भक्तिः सूपकारिणी ।।
कर्त्तुं कुवलयानन्दं सम्बद्धुं च सुखं जनैः ।
चन्द्रप्रभः प्रभुः स्यान्नस्तमस्तोमप्रहाणये ।।
श्रीमते वर्द्धमानाय नमोऽस्तु विश्वदृश्वने ।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ।।
नतस्तस्यै सरस्वत्यै विमलज्ञानमूर्तये ।
यत्कृपाङ्कुरमास्वाद्य गावो जीवन्ति नः स्फुटम् ।।"[1]

गुरुविषयक भक्तिभाव—

गुरुविषयक भक्तिभाव की अभिव्यञ्जना ग्रन्थ में चार स्थानों पर मिलती है । उनमें से दो प्रस्तुत हैं—

(अ) प्रथम में कवि का गुरुविषयक भक्तिभाव अभिव्यञ्जित होता है—

"यैः शास्त्राम्बुनिधेः पारं समुत्तुं महात्मभिः ।
पोतायितमितस्तेभ्यः श्रीगुरुभ्यो नमो नमः ।।"[2]

(आ) द्वितीय उदाहरण में सोमदत्त का माता-पिताविषयक भक्तिभाव अभिव्यञ्जित है—

"स च तां मृदुलतमहृदयलेशां स्वसवित्रीनिर्विशेषां गोष्वर-
ञ्चानितरां पितरमिव मन्वानः सुखेन समययापनं तन्वानः समवर्तत ।[3]

व्यङ्ग्य व्यभिचारिभाव—

मृगसेन के व्यवहार में जड़ता,[4] घण्टा धीवरी की चेष्टा में हर्ष,[5] मृगसेन के दृढ़सङ्कल्प में निर्वेद और मति[6] गुणपाल की गोविन्द से बातचीत में अवहित्था[7]

---

१. दयोदयचम्पू, १।१-४
२. वही; १।५
३. वही, ३।श्लोक १० के बाद का गद्यभाग ।
४. वही, २।श्लोक २ के बाद का गद्यभाग ।
५. वही, २।श्लोक ७ के बाद दूसरा गद्यभाग ।
६. वही, २।२८
७. वही, ४।श्लोक ३ और उसके पहले का गद्यभाग ।

सोमदत्त और विषा का समाचार जानकर गुणपाल की चिन्ता,[1] गुणश्री की व्याकुलता में शङ्का,[2] महाबल की मृत्यु के पश्चात् सोमदत्त का निर्वेद[3] और गुणपाल के व्यवहार में (जब सोमदत्त के जामाता होने पर भी वह उसको मारना चाहता है) अमर्ष[4] सम्यक् रीति से अभिव्यञ्जित हुआ है।

अपरिपुष्ट स्थायिभाव—

सोमदत्त के गले में बँधे पत्र को पढ़कर वसन्तसेना के मन में जो भाव जागरित होता है, वह औत्सुक्य है।[5] सोमदत्त की मधुर आकृति से उसके मन में जो स्नेह जागरित होता है, वह रति है।[6] किन्तु ये सभी स्थायिभाव उन स्थलों पर पूर्णरूपेण परिपुष्ट नहीं हो सके हैं। अतः इन स्थलों पर रसकाव्य न होकर भाव-काव्य ही रह गया है।[7]

(ट) भावाभास का स्वरूप

जब भावों की एकपक्षीय अथवा अनौचित्यपूर्ण अभिव्यक्ति होती है तो वह भावाभास कहलाती है।[8] कुछ भावों की सम्भावना नियत आश्रयों में होती है किन्तु जब ये भाव अनियत आश्रयों में दृष्टिगोचर होते हैं तो भावाभास के रूप में बदल जाते हैं।

(ठ) कवि श्रीज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में भावाभास

कविवर ज्ञानसागर के काव्यों में भावाभास के केवल तीन उदाहरण मिलते हैं। पहला उदाहरण सुदर्शनोदय का है—

"इत्थेवं पदयोर्दयोदयवतो नूनं पतित्वाऽथ सा
सम्प्राहाऽऽदरिणी गुणेषु शमिनस्त्वात्मीयनिन्दाद्दशा।

---

१. दयोदय चम्पू, ५। प्रारम्भिक गद्यभाग।
२. वही, ५। श्लोक १४ के बाद के संवाद में।
३. वही, ५। अन्तिम गद्यभाग।
४. वही, ६। श्लोक २ के पहले का गद्यभाग।
५. वही, ४।१२
६. वही, ४। श्लोक ११ के पहले के गद्यभाग से श्लोक १३ के पहले के गद्य भाग तक।
७. वही, ५। श्लोक १४ के बाद तीसरा गद्यभाग।
८. (क) काव्यप्रकाश, ४।३६वीं कारिका के पूर्वार्ध का अर्धांश।
(ख) साहित्यदर्पण, ३।२६२ का उत्तरार्ध।

स्वामिंस्त्वय्यपराद्धमेवमिह यन्मोढ्यान्मया साम्प्रतं
क्षन्तव्यं तदहो पुनीत भवता देयं च सूक्तामृतम् ॥"[1]

(सुदर्शन की दृढ़ता से प्रभावित होकर देवदत्ता ने उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् दयालु और शान्त सुदर्शन के चरणों पर गिरकर, उनके गुणों के प्रति आदरभाव धारण करने वाली, अपने दुष्कृत्यों की निन्दा करते हुए देवदत्ता ने कहा—हे स्वामिन्! अज्ञानवश जो मैंने आपके प्रति अपराध किया है, उसे क्षमा कर दीजिये। हे पवित्र आत्मा वाले! मुझे उपदेशरूप वचनामृत दीजिए।)

इस श्लोक में एक वेश्या में अपने स्वभाव के विरुद्ध ग्लानि, विबोध, मति, विषाद, शम (निर्वेद) आदि भाव दिखाई दे रहे हैं, अतएव उन्हें भावाभास कहा जा सकता है।

दूसरा उदाहरण श्रीसमुद्रदत्तचरित्र से है। इस स्थल पर रामदत्ता अपने ही पुत्र सिंहचन्द्र की वन्दना करती है, जो उचित भाव नहीं है। अतः इसे भक्तिभावाभास ही कहा जा सकता है।[2]

तीसरा उदाहरण दयोदयचम्पू से है। मृगसेन धीवर अपनी आखेट की प्रवृत्ति को छोड़कर मोक्षमार्ग की ओर उन्मुख होने लगता है। उसकी यह चेष्टा भी भावाभास के अन्तर्गत आएगी।[3]

(ङ) भावशक्ति का स्वरूप

हमारे हृदय में अनेक भाव सुषुप्तावस्था में रहते हैं। कुछ विशेष स्थितियों में ये जागरित होते हैं और कुछ विशेष कारणों से ये पुनः शान्त हो जाते हैं। हृदय में उठते हुए इन भावों के तिरोहित हो जाने को भावशान्ति कहते हैं।[4]

(द) कवि श्रीज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में भावशान्ति

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में एक दो उदाहरण भावशान्ति के भी दृष्टिगोचर होते हैं—

---

१. सुदर्शनोदय, ६।३१
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।१६-२१
३. दयोदयचम्पू, २। श्लोक ८ से श्लोक १३ के पहले के गद्य भाग तक।
४. (क) काव्यप्रकाश, ४।३६ का उत्तरार्ध।
(ख) साहित्यदर्पण, ३।२६७

(क) 'एवं सुमन्त्रवचसा भुवि भोगवत्या
दर्पोऽपसर्पणमगात्स्विदनन्यगत्या ।
हस्तं व्यमुञ्चदति मन्दतयाऽपि मत्या
यद्वोदयाद्वहुसुदर्शनपुण्यतत्या: ॥"[1]

(सुदर्शन ने कपिला से कहा कि वह नपुंसक होने के कारण उसकी आज्ञा पालन करने में असमर्थ है। उसके ऐसे वचन सुनकर संसार में भोगविलास करने वाली, कुटिल गतिवाली कपिला का दर्प समाप्त हो गया। निरुपाय होकर उसने सुदर्शन का हाथ छोड़ दिया। अथवा सुदर्शन के पुण्यों के कारण उसने उसका हाथ छोड़ा।)

इस श्लोक में सुदर्शन के दर्शन के कारण प्रबुद्ध रतिनाम स्थायिभाव उसके वचनों के परिणाम स्वरूप शान्ति को प्राप्त हो रहा है। अतएव यहाँ भावशान्ति है।

(ख) "इत्येवं वचनेन मार्दववता मोहोऽस्तभावं गत: ।
यद्वद्गारुडिन: सुमन्त्रवशत: सर्पस्य दर्पो हत: ॥"[2]

(देवदत्ता वेश्या की प्रार्थना पर सुदर्शन ने उसको जैनधर्म का उपदेश दिया। सुदर्शन के सुकोमल उपदेश वचनों से वेश्या का मोह वैसा ही तिरोहित हो गया, जैसे कि गारुडि के सुमन्त्र वश सर्प का दर्प नष्ट हो जाता है।)

प्रस्तुत श्लोक में मोह नामक व्यभिचारिभाव की शान्ति की स्पष्ट अभिव्यञ्जना के कारण भावशान्ति है।

(ण) भावोदय का स्वरूप

गम्भीर जलाशय में यदि पत्थर फेंका जाय तो उसके जल में अनेक लहरें उठने लगती हैं। इसी प्रकार विशिष्ट वातावरण से प्रभावित होकर हमारे हृदय के सोये हुए भाव जागरित हो जाते हैं। विशेष परिस्थितियों में हृदय में भावों का इस प्रकार जागरित हो जाना ही भावोदय है।[3]

(त) कवि श्रीज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में भावोदय

श्री ज्ञानसागर के सभी संस्कृत-काव्यों में भावोदय के उदाहरण देखने को मिलते हैं। क्रमश: उदाहरण प्रस्तुत हैं—

---

१. सुदर्शनोदय, ५।२०
२ वही, ९।७४
३. (क) काव्यप्रकाश, ४।३६ का उत्तरार्ध।
(ख) साहित्यदर्पण, ३।२९७

(क) जयोदय में भावोदय—

सेवक के वचनों को सुनकर अर्ककीर्ति में क्रोधनामक स्थायिभाव एवं उग्रतानामक व्यभिचारिभाव का उदय हुआ है।[१] इसी प्रकार मगर द्वारा आक्रान्त होने पर जयकुमार में दैन्य नामक भाव की अभिव्यक्ति हुई है।[२]

(ख) वीरोदय में भावोदय—

वीरोदय में भावोदय के दो उदाहरण हैं। भगवान् महावीर जब पूर्वजन्मों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, तो स्मृति नामक भाव का उदय माना जा सकता है।[३] गौतम इन्द्रभूति के मन में भगवान् की दिव्यविभूति को देखकर विस्मय भाव का उदय होता है।[४]

(सुदर्शनोदय में भावोदय—

सुदर्शनोदय में स्वप्नों को सुनकर सेठ के मन में हर्ष एवं विस्मय की अभिव्यक्ति,[५] पुत्रोत्पत्ति पर हर्ष की अभिव्यक्ति,[६] मनोरमा-सुदर्शन के परस्पर दृष्टि व्यवहार में औत्सुक्य की अभिव्यक्ति,[७] पिता के संन्यास से सुदर्शन के मन में निर्वेद की अभिव्यक्ति,[८] निष्फल अभयमती में जड़ता की अभिव्यक्ति,[९] रानी और राजा के व्यवहार के पश्चात् सुदर्शन में निर्वेद की अभिव्यक्ति[१०] एवं सुदर्शन के वचनों से देवदत्ता में भक्तिभाव की अभिव्यक्ति[११] भावोदय के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

(घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में भावोदय—

इस काव्य में उस स्थल पर विस्मय नामक भाव उदित हुआ है, जहाँ महाकच्छ राजा ऐरावण के वैभवपूर्ण नगर को देखता है।[१२]

---

१. जयोदय, ७।१७
२. वही, २०।५१
३. वीरोदय, १०।३८
४. वही, १३।२५-२७
५. वही, २।२१
६. वही, ३।४
७. वही, २।३४-३५
८. वही, ४।१५
९. वही, ७।३०-३१
१०. वही, ८।२०-२१
११. वही, ९।३०
१२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।१९

(ङ) दयोदयचम्पू में भावोदय—

दयोदयचम्पू में मृगसेन[1] कौतुक में औत्सुक्यभाव का,[2] घण्टा के व्यवहार में क्रोध नामक स्थायिभाव का,[3] गुणपाल के चिन्तन में विस्मय नामक स्थायिभाव का,[4] विषा के मनोभावों में हर्ष नामक संचारिभाव का[5] एवं नागरिकों के मनोभावों में विस्मय नामक स्थायिभाव का[6] उदय हुआ है।

(थ) भावसन्धि का स्वरूप

जहाँ दो भाव परस्पर मित्र के समान काव्य में आते हैं, वहाँ भावसन्धि होती है।[7]

(द) कवि श्रीज्ञानसागर के काव्यों में भावसन्धि

कवि श्री ज्ञानसागर के पाँचों काव्यों में मिलने वाले भावसन्धि के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) जयोदय में भावसन्धि—

सुलोचना जब जयकुमार के गले में जयमाला डालती है, वहाँ हर्ष एवं लज्जा नामक दो भावों की सन्धि है।[8] जयकुमार और सुलोचना का विवाह निश्चित होने पर अन्य राजाओं के मन में चिन्ता और वैवर्ण्य भाव साथ-साथ उठते हैं।[9]

(ख) वीरोदय में भावसन्धि—

संसार की दशा पर चिन्तन होते हुए महावीर को अपने पूर्वजन्मों का स्मरण हो आता है; और वह निर्विण्ण हो जाते हैं। अतः यहाँ पर स्मृति और निर्वेद नामक दो भावों की सन्धि है।[1] इसके पश्चात् भी उनके मन में स्मृति और तर्क, दोनों भाव, साथ-साथ उठते हैं।[2]

(ग) सुदर्शनोदय में भावसन्धि—

सुदर्शन जब अपने पिता को संन्यास लेते देखता है, तो उसके मन में

---

१. दयोदयचम्पू, १।२२
२. वही, २। श्लोक २२ के बाद का गद्यभाग।
३. वही, ३। प्रथम भाग।
४. वही, ४। श्लोक १४ के पूर्व के गद्यभाग।
५. वही, ६। श्लोक १० के पूर्व के गद्यभाग।
६. (क) काव्यप्रकाश, ४।३६ का उत्तरार्ध।
७. वीरोदय, २०।३८
८. वही, ११।१

निर्वेद और मोह नामक भाव साथ-साथ आ जाते हैं।[1] मुनि की दयनीय दशा देखकर ग्वाले के पुत्र में चिन्ता और विषाद नामक भाव साथ-साथ देखने को मिलते हैं।[2] रानी अभयमती के ऊपर दासी के वचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इस समय रानी के मोह और उग्रता नामक संचारी भाव एक साथ अभिव्यञ्जित होते हैं।[3]

(घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में भावसन्धि—

प्रियङ्गुश्री को पाने में असमर्थ वज्रसेन के हृदय में निर्वेद और रोष नामक भाव साथ ही उत्पन्न होते हैं।[4]

(ङ) दयोदयचम्पू में भावसन्धि—

साधु के चरणों में प्रतिज्ञा करते हुए मृगसेन के मति और धृति नामक भावों की साथ ही अभिव्यञ्जना होती है।[5] मृगसेन की प्रतीक्षा में रत धीवरी जब मृगसेन को आता हुआ देखती है तो उसके हर्ष और औत्सुक्य नामक भाव साथ-साथ अभिव्यञ्जित होते हैं।[6] सोमदत्त को मारने में सतत प्रयत्नशील गुणपाल के तर्क और अमर्ष नामक भाव अभिव्यञ्जित होते हैं।[7]

(ध) भावशबलता का स्वरूप

जहाँ एक ही स्थल पर कई भाव साथ-साथ आ जाते हैं, वहाँ भावशबलता होती है।[8]

(न) कवि श्रीज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में भावशबलता

कविवर ज्ञानसागर के पाँचों काव्यों में से भावशबलता के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) जयोदय में भावशबलता—

जयकुमार के विजयी होने पर भी महाराज अकम्पन प्रसन्न नहीं होते। उनके

---

१. सुदर्शनोदय, ४।१५
२. वही, ४।३५
३. वही, ६।२५
४. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।३०
५. दयोदयचम्पू, श्लोक के बाद का कथन
६. वही, पृ० सं० २३
७. वही, पृ० सं० ९६
८. (क) काव्यप्रकाश, ४।३६ का उत्तरार्ध,
(ख) साहित्यदर्पण, ३।२६७

मन में चिन्ता, जड़ता, मति, धृति, विषाद इत्यादि भाव एक साथ ही उदित हो जाते हैं।[1]

(ख) वीरोदय में भावशबलता—

जब भगवान् महावीर को अपने पूर्वजन्मों की याद आती है, तब उनका मन स्मृति, निर्वेद, चिन्ता, विषाद, मति, धृति इत्यादि भावों से भर उठता है।[2] भगवान् की दिव्यविभूति से प्रभावित गौतम इन्द्रभूति में तर्क, शङ्का, मति, धृति, भक्ति इत्यादि भावों की अभिव्यञ्जना एक साथ दृष्टिगोचर होती है।[3]

(ग) सुदर्शनोदय में भावशबलता—

सुदर्शन को देखकर कपिला ब्राह्मणी, मोह, व्यग्रता, औत्सुक्य, चञ्चलता इत्यादि कई भावों की शिकार हो जाती है।[4] कपिला के वचनों से प्रभावित रानी अभयमती के मन में व्यग्रता, औत्सुक्य, अमर्ष, चिन्ता, चपलता, स्मृति इत्यादि भाव उदित हो जाते हैं।[5] रानी अभयमती के दुराचरण से सुदर्शन के मन में निर्वेद, ग्लानि, मति, तर्क इत्यादि भाव उदित हो जाते हैं।[6]

(घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में भावशबलता—

राजा चक्रायुध जब दर्पण में मुँह देखते समय अपने शिर में एक सफेद बाल देखता है, तब उसके मन में निर्वेद, तर्क, मति, धृति, चिन्ता आदि भावों का उदय हो जाता है।[7]

(ङ) दयोदयचम्पू में भावशबलता—

मुनि के वचनों को सुनकर मृगसेन के मन में तर्क, निर्वेद, मति इत्यादि भावों का उदय एक साथ हुआ है।[8] मृगसेन की प्रतीक्षा करते हुए धीवरी के मन में चिन्ता, तर्क, शङ्का, चञ्चलता इत्यादि भावों का आवागमन होने लगता है।[9] घण्टा धीवरी के द्वारा घर से बाहर निकाल दिये जाने पर मृगसेन के मन में निर्वेद

---

१. दयोदय, ६।१-८
२. वीरोदय, ११।३७-४४
३. वही, १३।२५-३१
४. सुदर्शनोदय, ५।१-१५
५. वही, ६।१७-१६
६. वही, ७।२२-२६
७. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ७।२-२१
८. दयोदयचम्पू; १। श्लोक १४ के बाद का गद्यभाग।
९. वही, १। श्लोक ६ के पूर्व के गद्यभाग से श्लोक ७ के बाद के गद्यभाग तक।

तर्क, मति, धृति इत्यादि भावों की उत्पत्ति एक साथ हुई है।[1] पति के चले जाने पर धीवरी के मन में भी मति, निर्वेद, शङ्का, चिन्ता इत्यादि भावों का उदय एक साथ हुआ है।[2] पति की मृत्यु से व्याकुल धीवरी के मन में चिन्ता, व्यग्रता, जड़ता, मोह, निर्वेद, मति इत्यादि भाव आने जाने लगते हैं।[3] सोमदत्त के गले में बँधे हुये पत्र में उसकी मृत्यु का समाचार जानकर वसन्तसेना के मन में शङ्का, वितर्क, धृति, मति इत्यादि भावों की उत्पत्ति हुई है।[4]

यद्यपि भावशान्ति इत्यादि के और भी स्थल मुनिश्री के काव्यों में मिलते हैं, किन्तु विस्तार के भय से उनका प्रस्तुतीकरण नहीं किया है।

(प) ध्वनि का स्वरूप

जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ में अधिक चमत्कार दृष्टिगोचर होता है, उसे ध्वनि-काव्य कहा जाता है। काव्य के दो अर्थ होते हैं—एक तो वह जिसे कवि कहता है, दूसरा वह जिसे वास्तव में कवि कहना चाहता है। जब कवि के काव्य में दूसरा अर्थ सुन्दर बन पड़ता है, तब उसको उत्तम-काव्य या ध्वनि-काव्य कहा जाता है।[5]

(फ) कवि श्रीज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में ध्वनि

महाकवि श्रीज्ञानसागर के काव्यों में ध्वनि-काव्यत्व का प्राचुर्य है। किन्तु दृष्टान्त रूप में प्रत्येक काव्य में से एक-एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा—

(क) जयोदय महाकाव्य—

सुलोचना-स्वयम्वर के प्रसङ्ग में अलङ्कार से वस्तु व्यङ्ग्य ध्वनि का उदाहरण देखिये—

"काञ्चीपतिरयमार्ये काञ्चीमपहर्त्तुमर्हतु तवेति।
काञ्चीफलवदिदानीं द्विवर्णतां विभ्रमादेति॥"[6]

(हे आर्य! काञ्ची नगरी का यह शासक तुम्हारी करधनी को खोलने

---

१. जयोदयचम्पू, २।२३-२८
२. वही, २। श्लोक ३० के पूर्व के गद्यभाग से श्लोक ३१ तक।
३. वही, २। श्लोक ३२ के पूर्व के गद्यभाग से श्लोक ३४ तक।
४. वही, ४। श्लोक १० के बाद से श्लोक १२ के बाद के गद्यभाग तक।
५. (क) काव्यप्रकाश, १।४ का उत्तरार्ध।
   (ख) साहित्यदर्पण, ४।१ का उत्तरार्ध।
६. जयोदय ६।३६

योग्य हो, जो कि इस समय कचनार के फल के समान दो रंगों का विभ्रम उत्पन्न कर रहा है।)

यहाँ पर सुलोचना की परिचारिका काञ्चीनगरी के राजा का परिचय देती है। यहाँ पर उपमा अलङ्कार और द्वयर्थक 'द्विवर्णता' पद से यह ध्वनित होता है कि यह दोहरी नीति चलने वाला है, अतः इसका वरण करना उचित नहीं होगा।

(ख) वीरोदय महाकाव्य—

दिव्याङ्गनाओं द्वारा माता की सेवा के प्रसङ्ग में ध्वनि का एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"शिरो गुरुत्वान्नतिमाप भक्तितुलास्थितं चेत्युचितैव युक्तिः।
करद्वयी कुड्मलकोमला सा समुच्चचालापि तदैव तासाम्॥"[1]

(उसी समय उन देवियों के भक्तिरूपी तुला के एक पलड़े पर स्थित सिर तो भारी होने के कारण नीचे झुक गये और दूसरे पलड़े पर स्थित कमल के समान कोमल दोनों हाथ ऊपर उठ गए, यह बात उचित प्रतीत होती है)।

इस श्लोक में रूपक अलङ्कार से यह वस्तु ध्वनित होती है कि देवियों ने श्रद्धा सहित मस्तक झुका कर और दोनों हाथ जोड़कर माता प्रियकारिणी को प्रणाम किया।

(ग) सुदर्शनोदय—

देवदत्ता के सुदर्शन के साथ बातचीत करने में निकलती हुई ध्वनि का उदाहरण प्रस्तुत है :—

"अन्तः समासाद्य पुनर्जगाद कामानुरूपोक्तिविचक्षणाऽदः।
किमर्थमाचार इयान् विचार्यं बाल्येऽपि लब्धस्त्वकया वदाऽऽर्य्यं।"[2]

(सुदर्शन को अपने घर ले जाकर कामचेष्टा के अनुरूप वचन बोलने में चतुर उस वैश्या ने कहा—हे आर्य! इस बाल्यावस्था में क्या सोचकर तुमने इतने कठिन-व्रत को अङ्गीकृत किया है?)

यहाँ देवदत्ता के कथन में यह ध्वनि निकलती है कि यह समय तो भोग-विलास करने का है; साधु-वेश धारण करने का नहीं, अतः आप मेरे साथ भोग-विलास कीजिए। यह स्वतः सम्भवी वस्तु से वस्तुव्यङ्ग्य ध्वनि का उदाहरण है।

(घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र—

भद्रमित्र अपने पिता से धनार्जन हेतु विदेश जाने की अनुमति माँगता है; और कहता है :—

---

१. वीरोदय, ५।२५
२. सुदर्शनोदय, ६।१४

"आदित्य उर्व्या रसभुक् समस्ति ततो हि सन्तापकरप्रशस्तिः ।
विधुः कलाभिः परिवर्द्धकः सन् पितुः प्रसक्त्यै जगतोऽप्यलं सः ।"[1]

(सूर्य पृथ्वी के एकत्रित जल को ग्रहण करता है, इसीलिए उसकी प्रसिद्धि सन्ताप देने वाले रूप में होती है। किन्तु चन्द्रमा अपनी कलाओं से अपने पिता समुद्र की वृद्धि करता हुआ संसार के सभी लोगों को अच्छा लगता है।)

भद्रमित्र के कहने का तात्पर्य है कि पुत्र दो प्रकार के होते हैं—प्रथम तो वे होते हैं जो पिता द्वारा अर्जित धन को बिना सोचे समझे नष्ट करने पर तुले रहते हैं, और पिता को कष्ट देते हैं। दूसरे वे होते हैं जो पिता द्वारा अर्जित धन को अपने कौशल से बढ़ाते हैं, ऐसे पुत्रों को पिता तो प्यार करते ही हैं, अन्य लोग भी उनके गुणों की सराहना किए बिना नहीं रहते। अतः स्वयं धनार्जन करके मैं भी स्पृहणीय पुत्र बनना चाहता हूं, सन्तापकारी पुत्र नहीं। यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार से उक्त वस्तु ध्वनित होती है।

(ङ) दयोदयचम्पू—

गुणपाल की मृत्यु के पश्चात् शोकाकुल गुणश्री के कथन में दृष्टान्त अलङ्कार से वस्तुव्यङ्ग्य ध्वनि देखिए :—

"उद्धूलिता धूलिरहस्करायाप्यपेत्य सा मूर्ध्नि नुरस्विवनायाः ।
इमां सदुक्ति वलये प्रसिद्धामुपैति मे संघटितां सुविद्धा ॥"[2]

यहाँ गुणश्री यह कहना चाहती है कि स्वयं किये दुष्कर्मों का फल स्वयं को भोगना पड़ता है; मेरे पति भी सोमदत्त को मारने में सतत प्रयत्नशील थे, इसलिए स्वयं ही मृत्यु-मुख में पहुँच गये।

(ब) गुणीभूतव्यंग्य का स्वरूप

जिस काव्य में व्यंग्य गुणीभूत हो जाता है—अर्थात् जब वाच्यार्थ प्रधान हो; और व्यंग्यार्थ अप्रधान,—उस काव्य को गुणीभूतव्यंग्य काव्य कहते हैं।[3]

(भ) कवि ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में गुणीभूत-व्यङ्ग्य

ध्वनि-काव्य के समान ही गुणीभूत-व्यङ्ग्य काव्य के भी अनेक उदाहरण श्रीज्ञानसागर के काव्यों में दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु शोध-प्रबन्ध को और विस्तार देने की अनिच्छा से प्रत्येक काव्य का एक-एक ही उदाहरण प्रस्तुत करना ठीक रहेगा।

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।३
२. दयोदयचम्पू; ६।७
३. (क) काव्यप्रकाश, १।५ का पूर्वार्ध।
(ख) साहित्यदर्पण, ३।१३ का पूर्वार्ध।

(क) जयोदय महाकाव्य—

युद्ध की तैयारी के प्रसंग में अपराङ्ग गुणीभूतव्यंग्य का उदाहरण प्रस्तुत है :—

"अश्रुनीरमधुना सकज्जलमावधे रिपुवधूपयोधरः।
दिक्कुलं खलु रजोऽन्वितं तदुत्पातमस्य गमनेऽरयो विदुः ॥"

यहाँ पर प्रथम-पंक्ति में करुण रस की स्पष्ट अभिव्यञ्जना हो रही है किन्तु यह अभिव्यञ्जना वीर रस की अभिव्यञ्जना में सहायक है, इसलिए यहाँ पर अपरांग (गुणीभूत) व्यङ्ग्य काव्य है।

(ख) वीरोदय महाकाव्य—

भगवान् महावीर के प्रसङ्ग में अगूढ-गुणीभूत व्यंग्य का उदाहरण देखिए :—

"अतिवृद्धतयेव सन्निधिं समुपागन्तुमशक्यमम्बुधिम्।
अमराः करुणापरायणाः समुपानिन्युरथात्र निर्घृणाः ॥"[२]

यहाँ यह अभिव्यञ्जना निकलती है कि देवगण समुद्र के जल को सुमेरु पर्वत तक पहुंचा रहे हैं, यह अभिव्यञ्जना इतनी स्पष्ट है कि यहाँ ध्वनि काव्य जैसा आनन्द नहीं आता, इसलिये गुणीभूत व्यङ्ग्य काव्य है।

(ग) सुदर्शनोदय—

अंग-देश-वर्णन के प्रसङ्ग में असुन्दर गुणीभूत व्यङ्ग्य का उदाहरण प्रस्तुत है :—

"परमागमपारगामिना विजिता स्यां न कदाचनाऽमुना।
स्म दधाति सुपुस्तकं सदा सविशेषाध्ययनाय शारदा ॥"[३]

(कहीं परमागम के पारगामी इस सुदर्शन से मैं पराजित न हो जाऊं, यह सोचकर सरस्वती विशेष अध्ययन के लिये हाथ में सदैव पुस्तक धारण करती है।)

यहाँ पर ध्वनि निकलती है कि सुदर्शन अत्यन्त विद्वान् था, उसकी ग्राह्य शक्ति अद्भुत थी। किन्तु यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा सुन्दर नहीं है, अतः यहाँ पर असुन्दर गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य है।

---

१. जयोदय, ७।१०१
२. वीरोदय, ७।२३
३. सुदर्शनोदय, ३।३१

(घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र—

ग्रन्थारम्भ में अगूढगुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण देखिए :—

"नाहं कविमंत्यंभवो नु अस्मि सरस्वतीसंग्रहणाय तस्मिन् ।
ममाप्यतः काव्यपथेऽधिकारः समस्तु पित्रीननुवालचारः ॥"[1]

(मैं कवि नहीं हूँ, मैं तो मनुष्य जन्म को धारण करने वाला साधारण प्राणी हूँ । अतः विद्याप्राप्ति के लिए मेरा भी काव्यरूपी मार्ग में अधिकार है। बालक पिता इत्यादि पूज्य व्यक्तियों का ही अनुसरण करता है ।)

यहाँ पर यह ध्वनि स्पष्ट निकलती है कि मुझसे पूर्व अनेक कवि हो गए हैं । काव्य-रचना में मुझे उन्हीं का अनुसरण करना है । इस ध्वनि की अत्यधिक स्पष्टता के कारण यहाँ गुणीभूत व्यंग्य काव्य है ।

(ङ) दयोदयचम्पू—

महाबल की मृत्यु के पश्चात् गुणपाल के कथन में अगूढ (गुणीभूत) व्यंग्य की झलक देखिए :—

"अहो किलैतदप्यस्माकं शिरस्येव वज्रमापतितमाभातीति ।
मनसि निधाय जगादस पुनरागतो न वेति ॥"[2]

यहाँ गुणपाल के कथन से—कहीं महाबल ही तो मृत्यु को प्राप्त नहीं हो गया—यह अर्थ स्पष्टरूपेण अभिव्यञ्जित होता है ।

म. सारांश

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीज्ञानसागर ने भावपक्ष के समस्त भेदों को अपने काव्य में प्रस्तुत किया है । उनके काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उनकी कविता 'नवरसरुचिरा' ही नहीं वरन् 'दशरसरुचिरा' भी है। उनके काव्यों में वर्णित अन्य नौ रस शान्त रस की पुष्टि हेतु ही प्रस्तुत किए गए हैं । भावों की अभिव्यञ्जना में तो कवि ने अपना अद्भुत ही कौशल दिखाया है । भक्तिभाव की अभिव्यञ्जना भी शान्त रस की अभिव्यञ्जना में सहायक है । कवि की भावाभिव्यञ्जना को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कवि मानव मन का सूक्ष्मता से अध्ययन कर चुके हैं । एक ओर निर्वेद इत्यादि के द्वारा सोमदत्त के सारल्य को प्रस्तुत करते हैं, वहाँ दूसरी ओर अमर्ष के द्वारा गुणपाल के हठी स्वभाव को भी प्रस्तुत करते हैं । उनकी भावाभिव्यञ्जना ने समाज में प्राप्य सभी प्रकार के मानव-स्वभावों को हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है । जयोदय, वीरोदय, और दयोदयचम्पू को हम रसाभिव्यञ्जना एवं भावाभिव्यञ्जना की दृष्टि से सफल काव्य कह सकते हैं । किन्तु श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में कथानकों के विशृङ्खल होने के कारण रसाभिव्यञ्जना एवं भावाभिव्यञ्जना उचित प्रकार से नहीं हो पाई है । सहृदय पाठक को यह कमी खटकती है ।

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, १।१२
२. दयोदयचम्पू, पृ० सं० १०३

अष्टम अध्याय

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत ग्रन्थों में कलापक्ष

कला का स्वरूप और भेद

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में बताया गया है कि काव्य के दो पक्ष होते है—भावपक्ष और कलापक्ष। भावपक्ष यदि काव्य का प्राणतत्त्व है तो कलापक्ष काव्य का शृङ्गार है। अब इस अध्याय में मुनि श्री के काव्यों में कलापक्ष पर विचार करना ही हमारा वर्ण्य-विषय है।

'कला' शब्द 'संवारना' अर्थवाली कल् धातु से कच् एवं टाप् प्रत्ययों के संयोग से निष्पन्न हुआ है।[1] अतः 'कला' शब्द का शाब्दिक अर्थ है पदार्थ को संवारने वाली।

अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने कला के विषय में अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं। यहां उनके विचारों के साररूप में कला का स्वरूप कुछ इस प्रकार बताया जा सकता है :—किसी अमूर्त पदार्थ को सुरुचि के साथ सुन्दर एवं मूर्त रूप प्रदान करने वाली चेष्टा का नाम कला है। जब व्यक्ति इस जगत् के अव्यक्त सत्य को अपनी चेष्टाओं से व्यक्त रूप प्रदान करता है तब वह कलाकार कहलाता है और उसकी चेष्टा कला। भारत के प्राचीन विद्वानों ने चौसठ कलाएं बिनायी हैं।[2] पर पाश्चात्य विद्वानों ने कलाओं को केवल दो वर्गों में विभक्त

---

१. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ संख्या २५६

२. गीतम्, वाद्यम्, नृत्यम्, आलेख्यम्, विशेषकच्छेद्यम्, तण्डुलकुसुमबलिविकाराः, पुष्पास्तरणम्, दशनवसनाङ्गरागः, मणिभूमिकाकर्म, शयनरचनम्, उदकवाद्यम्, उदकाघातः, चित्राश्च योगाः, माल्यग्रथनविकल्पाः, शेखरकापीडयोजनम्, नेपथ्यप्रयोगाः, कर्णपत्रभङ्गाः, गन्धयुक्तिः, भूषणयोजनम्, ऐन्द्रजालाः, कौचुमाराश्च योगाः, हस्तलाघवम्, विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोजनम्, सूचीवानकर्माणि, सूत्रक्रीडा, वीणाडमरुकवाद्यानि, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोगाः, पुस्तकवाचनम्, नाटकाख्यायिका-

किया है—ललित कला और उपयोगी कला। ललित-कलाएं हमारे जीवन को सरस बनाती हैं और उपयोगी कलाएं हमारी दैनिक आवश्यकताएँ पूरी करती हैं। ललित कलाओं में पांच प्रसिद्ध कलाएँ हैं—काव्यकला, संगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला। इनमें काव्यकला सर्वश्रेष्ठ कला है। अपने मनोभावों को लेखनी और काव्यात्मक वाणी के माध्यम से सुन्दरतम अभिव्यक्ति प्रदान करना ही काव्यकला है।

(ख) काव्य कला के अङ्ग

जिस प्रकार किसी वस्तु को सजाने-संवारने की प्रक्रिया के कई अङ्ग होते हैं, उसी प्रकार काव्य को सुन्दरतम रूप देने वाली काव्य-कला के भी कुछ अङ्ग हैं, जो इस प्रकार हैं :—अलङ्कार, छन्द, गुण, भाषा, शैली, वाग्वैदग्ध्य इत्यादि। काव्य के कलापक्ष में इन सबका ही विचार किया जाता है।

काव्य में कला का अनुपात

जब कोई पदार्थ दो वस्तुओं के संयोग से निर्मित होता है, तब उन वस्तुओं का उस पदार्थ के निर्माण में परस्पर कितना अनुपात होना चाहिए ? यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। पुरुष जब अपने रूपरङ्ग, पद और प्रतिष्ठा के अनुसार ही अपना रहन-सहन बनाता है, तभी उसका व्यक्तित्व निखर पाता है और स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। यदि व्यक्ति अपने रूपरङ्ग इत्यादि की उपेक्षा करके वेशविन्यास करता है, तब उसका व्यक्तित्व या तो दब जाता है, या हास्यापद हो जाता है। बस, ऐसी ही स्थिति काव्य में कला के अनुपात को भी है। सच्ची कला वही है जो व्यक्ति के विचारों को वास्तविक अभिव्यक्ति दे सके। काव्य में भावपक्ष प्रधान होता है, इस बात को सभी साहित्यिक स्वीकार करते हैं। अतः काव्य में कला का

दर्शनम्, काव्यसमस्यापूरणम्, पट्टिकावानवेत्रविकल्पाः, तक्षकर्माणि, तक्षणम् वास्तुविद्या, रूप्यपरीक्षा, धातुवादः मणिरागाकरज्ञानम्, वृक्षायुर्वेदयोगाः, मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः, शुकसारिकाप्रलापनम्, उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्, अक्षरमुष्टिकाकथनम्। म्लेच्छितविकल्पाः, देशभाषाविज्ञानम्, पुष्पशकटिका, निमित्तज्ञानम्, यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाठ्यम्, मानसी काव्यक्रिया, अभिधानकोषाः, छन्दोज्ञानम्, क्रियाकल्पः, वैनयिकीनाम् छलितकयोगाः, वस्त्रगोपनानि, द्यूतविशेषः, आकर्षक्रीडा, बालक्रीडनकानि, वैजयिकीनाम्, व्यायामिकीनां च विद्यानां ज्ञानम्, इति चतुःषष्ठिरङ्गविद्याः।

—वात्स्यायन, कामसूत्रम्, ३।१५

(चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी तृतीय संस्करण १९८२)

उपयोग करते समय भावपक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जब कला कवि के भावों को अभिव्यक्त करने में सहायिका होती है, तब वह प्रशंसनीय होती है, अन्यथा भावपक्ष की उपेक्षा करके किया गया कला का प्रयोग सहृदयों द्वारा स्वीकरणीय नहीं हो सकता। काव्य का प्रमुख प्रयोजन है—शीघ्र आनन्द की प्राप्ति। भावपक्ष के प्राबल्य से प्राप्त इस आनन्द की अभिव्यक्ति करने में कला की जितनी मात्रा अपेक्षित है, कवि को उतनी ही मात्रा में इसका उपयोग करना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कला भावपक्ष के बराबर या उससे ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है, उसका महत्व भावपक्ष से कम ही है। कलापक्ष के सभी भेदों का प्रयोग किये बिना भी सहृदय को काव्य में आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। अतः काव्यप्रणयन के समय कवि को यह ध्यान रखना चाहिए कि कला भावपक्ष की साधिका के रूप में ही आये। वैसे कला का साधिका का यह रूप भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

(घ) महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों में कलापक्ष

काव्य कला का स्वरूप निर्धारित करने के पश्चात् हमारा वर्ण्य विषय है कि कविवर श्रीज्ञानसागर ने अपने काव्यों में कला-निरूपण किस सीमा तक किया है एवं उसके किन-किन अंगों का प्रयोग किया है? अतः अब प्रस्तुत हैं श्रीज्ञानसागर द्वारा प्रयुक्त काव्य-कला के अङ्ग :—

(अ) अलङ्कार—

अलङ्कार शब्द 'अलम्' उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निर्मित हुआ है। इस शब्द का तात्पर्य है—सजाने का उपकरण। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अलङ्कार की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—कविता-कामिनी को सुसज्जित करने वाले अनुप्रास-उपमादि उपकरणों को अलङ्कार कहा जाता है। स्त्री-पुरुष आवश्यकतानुसार ही अपने सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए अलंकारों का प्रयोग करते हैं। किसी-किसी को तो इनको धारण करने की आवश्यकता भी नही होती। यदि कोई अनावश्यक रूप से आभूषणों को धारण करता है तो वे भूषण के स्थान पर दूषण का रूप ले लेते हैं और उपहास का पात्र बना देते हैं। काव्य में भी अलङ्कारों की स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही हैं। जब तक ये अलङ्कार काव्य से प्राप्य आनन्द में बाधा नहीं पहुँचाते तब तक इनका प्रयोग उचित लगता है, किन्तु जहाँ सहृदय को अलङ्कारों की भरमार के कारण काव्य के रसास्वाद में बाधा होने लगती है, वहीं ये अलङ्कार रुचिकर लगने के स्थान पर बोझ लगने लगते हैं। कहीं-कहीं

काव्यों में इनकी उपस्थिति के अभाव में भी आनन्द प्राप्त हो जाता है, अतः ये काव्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण न होकर कवि के कौशल के परिचायक ही हैं। भारतीय-काव्य-शास्त्रियों को भी अलङ्कारों के विषय में ऐसी धारणा है।[1]

हमारे आलोच्य महाकवि ज्ञानसागर ने अपनी कविता-कामिनी को सजाने में अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया है। उनके काव्यों के प्रायः सभी श्लोक अलंकृत हैं। उनके काव्यों का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उपमेयोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, समन्वय, परिसंख्या, व्यतिरेक, अतिदेश, उल्लेख, समासोक्ति, अन्योक्ति, तद्गुण, स्वभावोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, असङ्गति, प्रतीप, यथासंख्य, दीपक, विभावना, एकावली, पुनरुक्तवदाभास इत्यादि अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया है। किन्तु अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अपह्नुति—उनके विशेष रूप से प्रिय अलङ्कार हैं। अब उनके काव्यों में प्रयुक्त मुख्य-मुख्य अलङ्कारों के उदाहरण प्रस्तुत हैं। सर्वप्रथम प्रस्तुत है, शब्दालङ्कारों में अग्रगण्य अनुप्रास :—

अनुप्रास :—

'अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।'

(साहित्य-दर्पण, १०।३)

श्रीज्ञानसागर ने अनुप्रास के छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास इत्यादि सभी भेदों का प्रयोग अपने काव्यों में किया है। अन्त्यानुप्रास अस्मदालोच्य कवि की सबसे बड़ी विशेषता है। काव्यों के कुछ अंशों को छोड़कर कवि ने अन्त्यानुप्रास का प्रयोग करने का स्तुत्य प्रयास किया है। निम्नलिखित श्लोक में वृत्त्यनुप्रास और अन्त्यानुप्रास की मिली-जुली छटा का अवलोकन कीजिए :—

"सपदि विभातो जातो प्रातर्भवभयहरणविभामूर्तेः।
शिवसदनं मृदुवदनं स्पष्टं विश्वपितुर्जिनसवितुस्ते॥" ८.१०

यहाँ पर क्रमशः 'तो' वर्ण की तीन बार 'भ' वर्ण की दो बार, 'दन' वर्ण-समूह की दो बार और 'तु' वर्ण की दो बार आवृत्ति हुई है। साथ ही प्रथम पंक्ति का अन्त्याक्षर 'ते' दूसरी पंक्ति में भी आवृत्त हुआ है।

अब देखिए लाटानुप्रास का उदाहरण—

"मनोरमाधिपत्वेन ख्याताय तरुणायते।
मनो रमाधिपत्वेन ख्याताय तरुणायते॥"

—सुदर्शनोदय, ६।२१

---

१. (क) काव्यप्रकाश, ८।६७
(ख) साहित्यदर्पण, १०।१

(हे रानी ! मनोरमा के पति-रूप में प्रसिद्ध उस युवक (सुदर्शन) को तुम्हारा मन लक्ष्मी के अधिपति के रूप में विख्यात करने के लिए युवावस्था धारण कर रहा है।)

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम पंक्ति की आवृत्ति द्वितीय पंक्ति में हुई है। दोनों पंक्तियों में तात्पर्य का भेद होने के कारण लाटानुप्रास है।

कवि के प्रिय अलङ्कार अन्त्यानुप्रास की भी एक झलक देख लीजिए—

"हे नाथ मे नाथ मनाग्विकारः,
चेतस्युतैकान्ततया विचारः।,
शत्रुश्च मित्रं च न कोऽपि लोके,
हृष्यज्जनोऽज्ञो निपतेच्च शोके॥
लोके लोकः स्वार्थभावेन मित्रम्,
नोचेच्छत्रुः सम्भवेन्नात्र चित्रम्।
राज्ञी माता मह्यमस्तूक्तकेतुः,
रुष्टः श्रीमान् प्रातिकूल्यं हि हेतुः॥" —सुदर्शनोदय, ८।१५-१६

यहाँ प्रथम पङ्क्ति के अन्तिम अक्षर की आवृत्ति दूसरी पङ्क्ति के अन्त में दृष्टिगोचर हो रही है, इसलिए अन्त्यानुप्रास है।

यमक—

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः।
यमकम्... .. ..॥
—(काव्यप्रकाश, ९।८३)

श्रीज्ञानसागर के काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उन्होंने यमक के अनेक प्रकार के भेदों तथा प्रभेदों का प्रयोग किया है, जिनके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

आद्य यमक—

"विपल्लवानामिह सम्भवोऽपि न विपल्लवानामुत शाखिनामपि।
सदा रमन्तेऽस्य विहाय नन्दनं सदारमन्ते रुचितस्ततः सुराः॥"
—जयोदय, २४।५५

प्रस्तुत पद्य में प्रथम पाद के आदिभाग की, द्वितीयपाद के आदिभाग में और तृतीय पाद के आदिभाग की चतुर्थपाद के आदिभाग में आवृत्ति होने के कारण एकदेशज आद्य यमक है।[1]

---

१. (क) "पादं द्विधा वा त्रिधा विभज्य तत्रैकदेशजं कुर्यात्।
आवर्तयेत्तमंशं तत्राभ्यासाति वा भूयः॥"
—रुद्रटकृत काव्यालंकार, ३।२०

मुख-यमक

"समाश्रिता मानवताऽस्तु तेन समाश्रिता मानवतास्तु तेन ।
पूज्येष्वथा मानवता जनेन समुत्थसामा नवताऽप्यनेन ।।"

—वीरोदय, १७।१२

इस श्लोक में प्रथम चरण की आवृत्ति द्वितीय चरण में की गई है। अतः 'मुख-यमक' है ।[1] इसी श्लोक के प्रथम चरण का मध्य भाग दूसरे चरणों के मध्य भागों में आवृत्त हुआ है, अतः यह एकदेशज मध्य-यमक[2] भी है ।

युग्म-यमक—

(क) "पुण्याहवाचनपरा समुदर्कसारा पुण्याहवाचनपरासमुदर्कसारा ।
आशासिता सुरभिता नवकौतुकेन वाशासितासुरभितानवकौतुकेन ।।"

—जयोदय, १८।६८

(ख) "सा काममुत्सङ्गकृतापि तेन सा काममुत्सङ्गकृताऽपि तेन ।
वाञ्छामि बालेऽन्तलतामनोहं वाञ्छामि बालेन्तलतामनोऽहम् ।।"

—जयोदय, १७।२३

उपर्युक्त दोनों श्लोकों में प्रथम चरण की आवृत्ति द्वितीय चरण में और तृतीय चरण की आवृत्ति चतुर्थ चरण में होने के कारण 'युग्म-यमक' है ।[3]

पुच्छ यमक—

"तमन्यचेतस्कमवेत्य तस्य सङ्कल्पतोऽनन्यमना बयस्यः ।
समाह सद्यः कपिलक्षणेन समाह सद्यः कपिलः क्षणेन ।।

—सुदर्शनोदय, ३।३६

(ख) 'द्विधा विभक्ते पादे प्रथमादिपादादिभागः पूर्ववत् द्वितीयादिपादादिभागेषु.....।

—काव्यप्रकाश, ९ कारिका ८३ के उत्तरार्ध का द्वितीय व्याख्या भाग ।

१. 'पर्यायेणान्येषामावृत्तानां सहादिपादेन । मुखसंदंशावृत्तयः क्रमेण यमकानि जायन्ते ।।

—रुद्रटकृत काव्यालंकार, ३।३

२. वही, ३।२०

३. "परिवृत्तिर्नाम भवेद्यमकं गर्भावृत्तिप्रयोगेण ।
मुखपुच्छयोश्च योगाद् युग्मकमिति पादजं नवमम् ।।"

—रुद्रटकृत काव्यालङ्कार, ३।१३

प्रस्तुत श्लोक में तृतीय चरण चतुर्थ चरण के रूप में आवृत्त हुआ है, इसलिए यह पुच्छ-यमक है।[1]

एकदेशज अन्त्य यमक—

"अहो किलाश्लेषि मनोरमायां त्वयाऽनुरूपेण मनोरमायाम्।
जहासि मत्तोऽपि न किन्नु मायां चिदेति मेऽत्यर्थमकिन्नु मायाम्॥"

—सुदर्शनोदय, ३।३८

स्पष्ट है कि प्रस्तुत श्लोक में प्रथम चरण के अन्त्य भाग की द्वितीय चरण के अन्त्य भाग में और तृतीय चरण के अन्त्य भाग की चतुर्थ चरण के अन्त्य भाग में आवृत्ति होने के कारण अन्त्य यमक है।[2]

श्लेष—

श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।"

(साहित्यदर्पण, १०।१२)

कविवर ज्ञानसागर ने श्लेष अलङ्कार का स्वतन्त्र रूप से भी प्रयोग किया हैं, और अन्य अलङ्कारों के सहायक के रूप में भी। यहाँ कुछ ऐसे वर्णन प्रस्तुत हैं, जिनमें श्लेष की सत्ता स्वतन्त्र है। सर्वप्रथम शीतकाल-वर्णन में श्लेष की छटा देखिए—

(क) "शाखिषु विपल्लवत्वमथैतत् सङ्कुचितत्वं खलु मित्रेऽतः।
शैत्यमुपेत्य सदा चरणेषु कलहमिते द्विजगणेऽत्र मे शुक्॥"

—वीरोदय, ६।४३

(इस श्लोक के दो अर्थ निकलते हैं—एक शीतकाल के पक्ष में और दूसरा आपत्काल में पक्ष में। श्लोक का प्रथम अर्थ इस प्रकार है—शीतकाल को प्राप्त करके वृक्षों का पत्तों से रहित हो जाना, दिन का छोटा होना, पैरों का ठिठुरना और दाँतों का किटकिटाना मेरे लिए शोक का कारण है। श्लोक का द्वितीय अर्थ इस प्रकार है—कुटुम्बीजनों का विपत्तिग्रस्त होना, मित्र का संकुचित एवं उदासीनतामय व्यवहार, सदाचरण में शैथिल्य और ब्राह्मणों में कलह होना मेरे लिए शोचनीय है।)

---

१. "अन्योन्यं पश्चिमयोरावृत्त्या पादयोर्भवेत्पुच्छः।"

—वही, ३।१० का पूर्वार्द्ध।

२. "पादं द्विधा वा त्रिधा विभज्य तत्रैकदेशजं कुर्यात्।
आवर्तयेत्तमंशं तत्रान्यत्रापि वा भूयः॥"

—वही, ३।२०

श्लोक में प्रायः प्रत्येक पद द्व्यर्थक है। स्पष्ट है कि यहाँ श्लेषालङ्कार है।

(ख) "यदद्य वाऽऽलापि जिनार्चनायामपूर्वरूपेण मयेत्यपायात्।
मनोऽरमायाति ममाकुलत्वं तदेव गत्वा सुहृदाश्रयत्वम्॥"

—सुदर्शनोदय, ३।३७

(सुदर्शन अपनी उदासी का कारण मित्रों को बता रहा है। उसके कथन में प्रथम अर्थ इस प्रकार है :—हे मित्रो, आज जिनपूजा के समय मेरे द्वारा अपूर्व रूप से आलाप लिया गया। आलाप जन्य थकान के कारण ही मेरा मन व्याकुल हो रहा है। श्लोक का दूसरा अर्थ है—हे मित्रो! आज जिनार्चना के समय मेरे द्वारा जिस बाला को देखा गया है, उस बाला के सुन्दर रूप के कारण ही मेरा मन व्याकुल है।)

प्रस्तुत श्लोक में 'वाऽऽलापि' और 'अपूर्वरूपेण' ये दोनों पद द्व्यर्थक हैं।

उपमा—

'उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।'

—कुवलयानन्द, ६

उपमा अलङ्कारसम्राज्ञी है। उसके सम्राज्ञी पद को मुनि श्रीज्ञानसागर ने अत्यधिक सम्मान दिया है। प्राकृतिक पदार्थों, नगरों और युद्ध के वर्णन के समय उन्होंने उपमाओं का खूब प्रयोग किया है। यह अलङ्कार कवि को इतना अच्छा लगता है कि उसने ज्ञान, वैराग्य और दर्शन की चर्चा करते समय भी इसका प्रयोग किया है। हमारे कवि अपने काव्यों में कभी श्लिष्ट उपमाओं का प्रयोग करते हैं और कभी मालोपमाओं की झड़ी लगा देते हैं। लीजिए, प्रस्तुत हैं उनके काव्यों की उपमाओं के कुछ उदाहरण—

"जयः प्रचक्राम जिनेश्वरालयं नयप्रधानः सुदृशा समन्वितः।
महाप्रभावच्छविरुन्नतावधिं यथा सुमेरुप्रभयान्वितो रविः॥"

—जयोदय, २४।६०

(नीतिज्ञ जयकुमार ने सुलोचना के साथ अत्यन्त प्रभावपूर्ण और श्रेष्ठ शोभा वाले जिनमन्दिर की परिक्रमा की, जैसे कि कान्तियुक्त सूर्य अत्यन्त प्रभावशाली और उन्नत सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करता है।)

प्रस्तुत श्लोक में जयकुमार और सुलोचना उपमेय हैं और सूर्य तथा सूर्य की प्रभा उपमान हैं। इसी प्रकार जिनेश्वरालय उपमेय और सुमेरु पर्वत उपमान हैं। 'महाप्रभावच्छविरुन्नतावधिम्' यह साधारण धर्म है। 'यथा' शब्द उपमा का वाचक है। अतएव यहाँ पूर्णोपमा है।

संसार की परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में कवि की उपमा देखिए—

"किमु भवेद्विपदामपि सम्पदां भुवि शुचापि रुचापि जगत्सदा।
करतलाहतकन्दुकवत्पुनः पतनमुत्पतनं च समस्तु नः॥"

—जयोदय, २५।१०

(इस संसार में कभी विपत्ति और कभी सम्पत्ति का आवागमन होता रहता है। यह संसार शोक और प्रसन्नता से युक्त रहता है। जिस प्रकार हाथ से आघात करने पर गेंद उठती और गिरती है उसी प्रकार संसार में भी भाग्यवशात् पतन और उत्थान होता रहता है।)

प्रस्तुत श्लोक में गेंद के गिरने उठने से संसार के पतन और उत्थान की सुन्दर उपमा दी गई है। गेंद उपमान है और भाग्य उपमेय। पतन-उत्थान साधारण धर्म हैं। 'वत्' शब्द उपमावाचक है।

अब कवि की एक श्लिष्ट उपमा प्रस्तुत है—

"सालङ्कारा सुवर्णा च सरसा चानुगामिनी।
कामिनीव कृतिर्लोके कस्य नो कामसिद्धये॥"

—जयोदय, २९।८२

(इस लोक में उपमादि अलङ्कारों से सुसज्जित, सुन्दर वर्ण-विन्यास वाली, शृङ्गारादि रसोपेत, छन्दोबद्ध कवि की कृति, कुण्डल हारादि अलङ्कारों से सुशोभित, अच्छे रङ्ग वाली, सरस चेष्टाओं वाली, पति की अनुगामिनी के समान किसकी वांछा पूरी नहीं करती?)

प्रस्तुत श्लोक में कविकृति उपमेय और कामिनी उपमान है। सालङ्कारा, सुवर्णा, सरसा और अनुगामिनी इत्यादि विशेषण कविकृति और कामिनी दोनों के पक्ष में श्लेष के माध्यम से प्रयुक्त किये गए हैं। 'इव' उपमा वाचक शब्द है।

रानी प्रियकारिणी के वर्णन में कवि की मालोपमा देखिये—

"दयेव धर्मस्य महानुभावा क्षान्तिस्तथाभूत्तपसः सदा वा।
पुण्यस्य कल्याणपरम्परेवाऽसौ तत्पदाधीनसमर्थसेवा॥"

—वीरोदय, ३।१६

(उदार भावों वाली वह रानी धर्म की दया के समान, तप की क्षमा के समान, पुण्य की कल्याण परम्परा के समान राजा के चरणों में रहती हुई उसकी पूर्ण सामर्थ्य से सेवा करती थी।)

प्रस्तुत श्लोक में दया; क्षमा और कल्याणपरम्परा रानी के उपमान रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, इसलिए यहाँ पर मालोपमा अलङ्कार है।

सुदर्शन की बाल्यकालीन चेष्टा में उपमा देखिये—

"गुरुमाप्य स वै क्षमाधरं सुदिशो मातुरथोदयन्नरम् ।
भुवि पूज्यतया रविर्यथा नृणनम्भोजमुदेऽन्नवत्तथा ॥"

—सुदर्शनोदय, ३।२०

(जब सुदर्शन अपनी सुकृतकारिणी माता की गोद से उठकर पिता के पास जाता था, तब लोगों के नयनकमलों को खिलाता हुआ वह सबके आदर का पात्र बन जाता था। उस समय उसकी शोभा वैसी ही होती थी, जैसे सूर्य पूर्वदिशारूप माता को छोड़कर उदयाचलरूप पिता के समीप जाकर सरोवरों के कमलों को विकसित करता हुआ संसार में सबके लिए पूज्य हो जाता है।)

प्रस्तुत श्लोक में सुदर्शन, उसकी माता, उसके पिता और नेत्र रूपी कमल उपमेय हैं; और सूर्य, पूर्वदिशा, उदयाचल सरोवर के कमल उपमान हैं। सर्वबन्धता साधारण धर्म है। 'यथा' शब्द उपमा-वाचक है।

चक्रायुध और उसकी रानियों के सम्बन्ध में कवि की उद्भावना द्रष्टव्य है—

"युवाऽगृहीद्वारिनिधेः समस्ता बभूवुरेताः सुरसाः समस्ताः ।
सा चित्रमाला खलु तासु गङ्गावदुत्तमा स्फीतिधरी सदंगात् ॥"

—श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।२०

(समुद्र के समान युवक चक्रायुध ने उत्तम जल को धारण करने वाली नदियों के समान, उत्तम चेष्टाओं को धारण करने वाली अनेक स्त्रियों के साथ विवाह किया। जिस प्रकार नदियों में गङ्गा सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार उन रानियों में चित्रमाला नामकी रानी अपूर्व सौन्दर्यशालिनी और श्रेष्ठ थी।)

प्रस्तुत श्लोक में चक्रायुध, चित्रमाला एवं अन्य स्त्रियाँ उपमेय हैं एवं समुद्र, गङ्गा और अन्य नदियाँ उपमान हैं। 'सुरसाः', 'उपमाः' और 'सदंगात्स्फीतिधरी' साधारण धर्म है। 'वत्' शब्द उपमावाचक है।

मालवदेश वर्णन में कवि द्वारा प्रयुक्त श्लिष्टोपमा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

".....सुप्रसिद्धो मालवनाम देशः स चानेककल्पपादपसन्निवेशतया ललिताप्सरःपरिवेषतया च किलापरस्वर्गप्रदेश इव समवभासते ॥"

—दयोदयचम्पू, १। श्लोक २ के बाद का गद्यभाग।

(अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त और स्वच्छ जल वाले तालाबों से युक्त वह सुप्रसिद्ध मालव नाम का देश, अनेक कल्पवृक्षों से युक्त, सुन्दर अप्सराओं से परिवेष्टित स्वर्ग के समान प्रतीत होता है।)

प्रस्तुत गद्यभाग में मालवदेश उपमेय और स्वर्ग उपमान है। 'अनेककल्पपादपसन्निवेशतया' और ललिताप्सरःपरिवेषतया' श्लेष के माध्यम से साधारण धर्म है। 'इव' उपमावाचक शब्द है।

वैसे तो कवि ने अपनी कृतियों में और भी अनेक सुन्दर-सुन्दर उपमाएँ प्रयुक्त की हैं, किन्तु उन सबको उद्धृत करना और उनका स्पष्टीकरण करना शोध-प्रबन्ध की वृद्धि के भय से यहाँ पर संभव नहीं, फिर उपमा के उपर्युक्त उदाहरण कवि की उपमाप्रियता के द्योतक हैं ही। अतः अब अन्य अलङ्कारों के उदाहरण प्रस्तुत किये जायेंगे।

उत्प्रेक्षा—

'सम्भावना स्यादुत्प्रेक्षा।'

—कुवलयानन्द, ३२

कवि द्वारा प्रयुक्त अर्थालङ्कारों में उत्प्रेक्षा अलङ्कार का द्वितीय स्थान है। कवि के काव्यों के परिशीलन से लगता है कि उसके काव्यों में मात्रा की दृष्टि से भले ही उपमा का स्थान हो, किन्तु चमत्कार की दृष्टि से उत्प्रेक्षा ही अलङ्कारों में सर्वोपरि है। प्रस्तुत हैं, उत्प्रेक्षा के कुछ उदाहरण—

सुलोचना के सुन्दर हाथ के सम्बन्ध में कवि की उद्भावना देखिये—

"समुत्कीर्य करावस्या विधिना विधिवेदिना।
तच्छेषांशैः कृतान्येवं पङ्कजानीति सिध्यति।"

—जयोदय, ३।४५

(सुलोचना के हाथों को देखकर यह सिद्ध हो जाता है कि विधाता ने सुलोचना के हाथों का निर्माण करने से बची हुई सामग्री से ही कमलों की रचना की है।)

उत्प्रेक्षा के माध्यम से सायंकाल की शोभा का अवलोकन कीजिए—

'रवेरयो बिम्बमितोऽस्तगामि उदेष्यदेतच्छशिनोऽपि नामि।
समस्ति पाश्वेषु रुषा निषिक्तं रतीश्वरस्याक्षियुगं हि रक्तम्॥"

—जयोदय, १५।१०

(तब सूर्य का बिम्ब अस्ताचलगामी हो रहा था और चन्द्रमा उदय होने जा रहा था। अस्त होता हुआ सूर्य और उदित होता हुआ चन्द्रमा—ये दोनों ऐसे लगते थे मानों पथिक जनों पर रोष के कारण लालिमा को प्राप्त कामदेव के नेत्र ही हों।)

अस्त होते हुये सूर्य की लालिमा और उदित होते हुये चन्द्रमा की लालिमा को ध्यान में रखकर कवि ने उक्त हेतूत्प्रेक्षा की है। कामदेव के नेत्रों को सूर्य-चन्द्र के उपमानरूप में प्रस्तुत कर दिया है।

राजा सिद्धार्थ की समृद्धिशालिता और यशस्विता के सम्बन्ध में कवि की उत्प्रेक्षा देखिये—

"हे तात जानूचितलम्बबाहोर्नाङ्गं विमुञ्चेत्तनुजा तवाहो।
सभास्वपीत्थं गदितुं नृपस्य कीर्तिः समुद्रान्तमवाप तस्य ॥"

—वीरोदय, ३।११

(समुद्र को सम्बोधित करते हुये कवि कहते हैं कि तुम्हारी पुत्री लक्ष्मी घुटनों तक लम्बी भुजाओं वाले राजा सिद्धार्थ के शरीर का आलिङ्गन करना सभाओं में भी नहीं छोड़ती, उसके इसी व्यवहार को बताने के लिए ही मानों उस राजा की कीर्त्ति समुद्र तक पहुँच गई है।)

राजा सिद्धार्थ का यश समुद्रपर्यन्त फैल गया है, यह सूचित करने के लिए कवि ने उक्त उत्प्रेक्षा की है।

बालक सुदर्शन की बालचेष्टा के सम्बन्ध में कवि की उत्प्रेक्षा प्रस्तुत है—

"मुहुरुद्गिलनापदेशतस्त्वतिपीतस्तनजन्मनोऽन्वतः ॥
अभितोऽपि भुवस्तलं यशः पयसाऽलङ्कृतवान्निजेन सः ॥"

—सुदर्शनोदय, ३।१८

(आवश्यकता से अधिक दूध पी लेने पर जब सुदर्शन बार-बार उसको इधर-उधर उगलता था, तो ऐसा लगता था मानों वह पृथ्वी तल को अपने यशोरूप दूध से दोनों ओर अलङ्कृत कर रहा हो।)

प्रस्तुत श्लोक में बालक की स्वाभाविक चेष्टा को यशः प्रसारण के रूप में क्या ही सुन्दर सम्भावना की गई है।

हेतूत्प्रेक्षा का एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

"अहो प्रकटमपि तनयरत्नमपह्नियतेऽमुष्मिन्भूतले धूर्तजनेन।
कथं पुनर्मयेदोडुरत्नानि विकीर्य स्थातुं पार्येतेति किल तान्युपसंहृत्य कुतोऽपिच्छन्नीभवितुं पलायाञ्चक्रे रजनी।"

—दयोदयचम्पू, ३। श्लोक ७ के बाद का गद्यांश

(बड़े आश्चर्य की बात है कि पृथ्वी तल पर धूर्तजनों के द्वारा प्रकट भी पुत्र रूप रत्न का अपहरण किया जा रहा है, फिर नक्षत्र रूप रत्नों को फैला कर मेरे द्वारा निश्चिन्तता से कैसे बैठा जाय, मानों यही सोचकर उन सबको एकत्रित करके रात्रि भी कहीं छिपने के लिए चली गई।)

रात्रिकाल व्यतीत हो जाने पर नक्षत्र गण दृष्टिपथ में नहीं आते, यह प्रकृति का शाश्वत नियम है। किन्तु यहाँ पर कवि ने उस नियम को रात्रिगमन और नक्षत्रलोप के रूप में हेतुपूर्वक सम्भावित करके पाठकों के हृदय को भलीभाँति चमत्कृत कर दिया है।

रूपक—

'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।

—काव्यप्रकाश, १०।९३

सर्वप्रथम आपके समक्ष कवि द्वारा वर्णित साङ्गरूपक का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"बकाः पताकाः करिणोऽम्बुवाहाः शरा मयूरास्तडितोऽसिका हा ।
ढक्कानिनादस्तनितानुवादः सुधीरणं वर्षणमुज्जगाद ॥"

—जयोदय, ८।६३

जयकुमार और अर्ककीर्ति के युद्ध का वर्णन है। यहाँ पर कवि ने युद्ध पर वर्षाकाल का आरोप किया है। पताकारूपी बगुले हैं, गजरूपी बादल हैं, बाण रूपी मयूर हैं, तलवाररूपी बिजली है और नगाड़ों की ध्वनिरूपी बादलों की गड़गड़ाहट है, इस प्रकार से युद्धरूपी वर्षाकाल है।

प्रस्तुत श्लोक में ध्वजों, हाथियों, बाणों, तलवारों और नगाड़ों की आवाज का क्रमशः बगुलों, बादलों, मोरों, बिजली और बादलों की गर्जना से अभेद स्थापित करने के कारण रूपक अलङ्कार है।

अब देखिये वसन्तर्तुवर्णन के प्रसङ्ग में रूपक का एक उदाहरण—

"मुकुलपाणिपुटेन रजोऽङ्गिनी दिशि ददाति रुचाऽम्बुजजिद्दृशाम् ।
स्थलपयोजवने स्मरधूर्त्तराड्ढरति तद्धृदयद्रविणं रसात् ॥"

—वीरोदय, ६।३४

(गुलाब और कमल के पुष्पों वाले उस वन में अपनी शोभा से कमल को जीतने वाली स्त्रियों के नेत्रों में अपने मुकुलित हस्त के दोने से कमलिनी पुष्प-पराग रूपी धूलि डाल रही है और कामदेव रूपी धूर्तराज अवसर पाते ही उनके हृदय रूपी धन को चुरा रहा है)

प्रस्तुत श्लोक में मुकुलपुट, पराग, कामदेव और हृदय का क्रमशः हाथ के दोने, धूल, धूर्तराज और धन से अभेद स्थापित किया गया है, इसलिए रूपक अलङ्कार है।

रूपक का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है—

"ननु जरा पृतना यमभूपतेर्मम समीपमुपाञ्चितुमीहते ।
बहुगदाधिकृतेह तदग्रतः शुचिनिशानमुदेति मदो वत ॥"

—श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ७।२

(अपने शिर पर सफेद बाल देखकर राजा चक्रायुध सोचता है कि अब अवश्य ही मेरे समीप यमरूपी राजा की वृद्धावस्थारूपी सेना, रोगरूपी गदाओं को धारण करके आना चाहती है। इसलिए श्वेत केशरूपी उसका चिह्न पहले से उदित हो गया है।)

प्रस्तुत श्लोक में वृद्धावस्था, यमराज, रोग और श्वेत केश का क्रमशः सेना, राजा, गदा और चिह्न से अभेद स्थापित करने के कारण साङ्गरूपक अलङ्कार है।

अपह्नुति—

"प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः ।।"

—काव्यप्रकाश, १०।९६

कविवर ज्ञानसागर द्वारा अपह्नुतियाँ भी कम चमत्कारिणी नहीं हैं। लीजिए, प्रस्तुत हैं उनकी कुछ सुन्दर अपह्नुतियाँ—

सुलोचना के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये जयकुमार कहते हैं—

"पङ्के जातं जितं मुखेन तव सुकेशि साम्प्रतमसुखेन ।
मूर्ध्नि मिलिन्दावलिच्छलेन कृपाणपुत्री क्षिपदिव तेन ।।"

—जयोदय, १४।४७

(हे सुन्दर बालों वाली ! तुम्हारे मुख के द्वारा कीचड़ में उत्पन्न कमल जीत लिया गया है। इसीलिए दुःखी होकर वह इस समय तुम्हारे सिर पर घुंघराले बालों की पङ्क्ति के बहाने से मानों तलवार का प्रयोग कर रहा है।)

प्रस्तुत श्लोक में सुलोचना के सिर पर विद्यमान घुंघराले बालों का निषेध करके वहाँ पर तलवार का स्थापन किया गया है, इसलिए अपह्नुति अलङ्कार है।

अब शरत्कालीन आकाश-वर्णन में अपह्नुति का सुन्दर प्रयोग देखिये—

"तारापदेशान्मणिमुष्टिवारात्प्रतारयन्ती विगताधिकारा ।
सोमं शरत्सम्मुखमीक्षमाणा रुषेव वर्षा तु कृतप्रयाणा ।।"

—वीरोदय, २२।९

(चन्द्रमा को शरद्-ऋतु के सम्मुख देखती हुई अपने अधिकार से वंचित वर्षा ऋतु मानों रुष्ट होकर तारों के बहाने से मुट्ठी में भरी हुई मणियों को फेंक कर प्रतारणा करती हुई चली गई।)

वर्षाकाल में आकाश मेघाच्छन्न रहता है, उस समय चन्द्रमा या तारे कोई भी वस्तु नहीं दिखाई देती। शरत्काल में आकाश स्वच्छ हो जाता है, अतः तब आकाश में चन्द्रमा और तारे दिखाई देते हैं। कवि ने इस प्रस्तुत बात का निषेध करके अब तक चन्द्रमा वर्षा के अधिकार में था और तारे उसकी मुट्ठी में थे, किन्तु शरत्काल के आने से चन्द्रमा वर्षा के अधिकार में न रहा, तब क्रोध में आकर तारों के बहाने से मुट्ठी में भरी मणियों को भी उसने फेंक दिया—इस अप्रस्तुत का विधान किया है। तारों के स्थान पर मणियों का स्थापन होने के कारण अपह्नुति अलङ्कार है।

राजा अपराजित द्वारा ऋषि की पूजा में वर्णित अपह्नुति का चमत्कार देखिये—

"समुद्गमद्भृंगभरापदेशादुपात्तपापोन्वयसम्विलोपी ।
यस्मै किलारामवरेण हर्षवारेण पुष्पाञ्जलिरर्पितोऽपि ॥"

—श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।३२

(जब उन ऋषिराज के लिए उस श्रेष्ठ उद्यान द्वारा हर्षित होकर पुष्पाञ्जलि अर्पित की गई, तब मँडराते हुये भ्रमरसमूह के बहाने उस बगीचे के पूर्वोपार्जित पाप के अंश भी विलीन होने लगे ।)

प्रस्तुत श्लोक में पुष्पों के साथ ही रहने वाले भ्रमर उद्यान में इधर-उधर मँडरा रहे थे, इस प्रकृत वस्तु का निषेध करके—कवि ने—पापसमूह विलीन हो रहा था—इस अप्रस्तुत वस्तु का स्थापन किया है, इसलिए यहाँ पर अपह्नुति अलङ्कार है ।

अर्थान्तरन्यास—

"सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ॥"

—काव्यप्रकाश, १०।१०६

श्रीज्ञानसागर को जब भी कुछ तथ्य प्रस्तुत करना होता है, तब वह इसी अलङ्कार का अवलम्बन ले लेते हैं। किसी व्यक्ति की निन्दा करने में, स्तुति करने में, उपदेश देने में और विनम्र निवेदन करने में इस अलङ्कार के सुन्दर-सुन्दर प्रयोग कवि के काव्यों में दृष्टिगोचर होते हैं। सम्राट् भरत की प्रशंसा में अर्थान्तरन्यास का उदाहरण देखिये—

"शुचिरिहास्मदधीश्वरणीधर ! सति पुनस्त्वयि कोऽयमुपद्रवः ।
तपति भूमितले तपने तमः परिहृतौ किमु दीपपरिश्रमः ॥"

—दयोदय, ६।७३

(सुमुख नामक दूत सम्राट् भरत से कहता है—हे सम्राट् जब आपका शासन है, तब (अर्ककीर्ति की दुश्चेष्टा रूप) यह उपद्रव कैसा ? अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य के इस धरातल पर तपते समय दीपक का परिश्रम व्यर्थ है ।)

यहाँ प्रथम-पंक्ति में वर्णित विशेष का द्वितीय पंक्ति में वर्णित सामान्य द्वारा समर्थन किया गया है । अतएव अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

सामान्य से विशेष के समर्थन का दूसरा उदाहरण देखिये—

"कवितायाः कविः कर्त्ता रसिकः कोविदः पुनः ।
रमणीरमणीयत्वं पतिर्जानाति नो पिता ॥"

—जयोदय, २८।८३

(कवि कविता का प्रणेता होता है, किन्तु सहृदय उसका अर्थ जानने वाला होता है । सुन्दर स्त्री के सौन्दर्य को पति जानता है, उसका पिता नहीं ।)

यहाँ पर द्वितीय पंक्ति में सामान्य बात कही गई है जो कि प्रथम पंक्ति में प्रस्तुत बात की समर्थिका है । अतएव अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

देवियों के प्रति प्रियकारिणी के कथन में अर्थान्तरन्यास की छटा देखिये—

"न चातकीनां प्रहरेत् पिपासां पयोदमाला किमु जन्मना सा ।
युष्माकमाशंकितमुद्धरेयं तर्करुचिं किन्न समुद्धरेयम् "

—वीरोदय, ५।२२

(यदि मेघमाला प्यास से व्याकुल चातकियों की प्यास नहीं बुझाती है, तो उसके जन्म से क्या लाभ ? तुम सबकी आशङ्काओं को मैं क्यों न समाप्त करूँ और तर्क में रुचि क्यों न धारण करूँ ?)

प्रस्तुत श्लोक की प्रथम पंक्ति में सामान्य बात कही गई है। उसका समर्थन द्वितीय पंक्ति के विशेष कथन से किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

गुणपाल का अर्थान्तरन्यास से अलङ्कृत कथन प्रस्तुत है—

"उत्थापयेत्तमुच्चैर्ना यस्य वाञ्छेन्निपातनम् ।
मूर्ध्ना न वाह्यते भूमौ दहनीयं किमिन्धनम् ॥"

—दयोदय, ४।७

(जिस व्यक्ति के विनाश की इच्छा की जाय, उसे पहिले खूब ऊँचा उठा देना चाहिए। क्या जलाने योग्य इन्धन शिर से नहीं ढोया जाता ?)

गुणपाल सोमदत्त को मारना चाहता है। अतः उसे अपने वश में करने की इच्छा से उसे पुरस्कृत करता है। मधुर वचनों से अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करता है। इसी प्रसङ्ग में वह उपरिलिखित कथन कहता है। प्रथम-पंक्ति में वर्णित विशेष बात का समर्थन द्वितीय-पंक्ति में वर्णित सामान्य बात से होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

परिसङ्ख्या—

"किंचित्पृष्टमपृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्प्यते ।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता ॥"

—काव्य-प्रकाश, १०।११६

श्रीज्ञानसागर ने कुण्डनपुर, चम्पापुर और चक्रपुर नगरों की समृद्धि का वर्णन करते समय इस अलङ्कार का प्रयोग किया है। लीजिए प्रस्तुत है—कुण्डनपुर के वर्णन में परिसंख्या का उदाहरण :—

"काठिन्यं कुचमण्डलेऽथ सुमुखे दोषाकरत्वं परं
वक्रत्वं मृदुकुन्तलेषु कृशता बालावलग्नेष्वरम् ।
उर्वोरेव विलोमताऽप्यधरता दन्तच्छदे केवलं
शंखत्वं निगले दृशोश्चपलता नान्यत्र तेषां दलम् ॥
वामानां सुवलित्रये विषमता शैथिल्यमङ्घ्रावुता-
प्यौद्धत्यं सुदृशां नितम्बवलये नाम्यण्डके नीचता ।

शब्देष्वेव निपातनाम यमिनामक्षेषु वा निग्रह-
श्चिन्ता योगिकदम्बकेषु पीण्डूनिचये सम्पीडनं चाह ह ॥"

—वीरोदय, २।४८-४९

(उस नगर में) कठिनता केवल स्त्रियों के स्तनमण्डल में ही दृष्टिगोचर होती है, दोषाकरता (चन्द्रतुल्यत्व) स्त्रियों के सुन्दर मुख में ही दृष्टिगोचर होती है, वक्रता उनके सुन्दर बालों में ही है, कृशता स्त्रियों के कटिप्रदेश में ही है, रोमराहित्य स्त्रियों की जङ्घाओं में ही है, अधरता केवल उनके ओष्ठों में ही है, शंखपना कण्ठ में ही है और चपलता दृष्टि में ही है। इस प्रकार कठोरता, दोषसमूह, कुटिलता, क्षीणता, प्रतिकूलता, नीचता, चपलता आदि अवगुण कहीं और दृष्टिगोचर नहीं होते।

विषमता स्त्रियों की त्रिवली में ही है, (अन्यत्र कहीं भी नहीं)। शिथिलता स्त्रियों के चरणों में ही है, (अन्यत्र कहीं भी नहीं)। उद्धतपन केवल स्त्रियों के नितम्बमण्डल में ही है (अन्यत्र नहीं)। गहराई नाभिमण्डल में ही है, (अन्यत्र नीचता नहीं है)। निपात शब्दों में ही होता है (अन्यत्र किसी के द्वारा किसी पर आक्रमण नहीं किया जाता)। संयमी व्यक्ति ही इन्द्रियनिग्रह करते हैं (कोई किसी को पकड़ता नहीं है)। योगिसमूह ही चिन्तन करता है, अन्य व्यक्ति चिन्ता से रहित हैं)। सम्पीडन पौण्ड समूह में ही है, व्यक्ति एक दूसरे को पीड़ा नहीं पहुँचाते)।

यहाँ कठोरता, चन्द्रतुल्यता, वक्रता आदि प्रतिपादित वस्तु अन्यत्र निषेध में पर्यवसित होती हैं, इसलिए परिसंख्या अलंकार है।

परिकरांकुर—

'साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत् परिकरांकुरः।'

—कुवलयानन्द, ६३

श्रीज्ञानसागर के काव्यों में इस अलंकार के उदाहरणों की अत्यल्प मात्रा उपलब्ध होती है। इतना होने पर भी यह अलंकार जितनी मात्रा में प्रयुक्त किया गया है, कवि के कौशल का परिचायक होने में समर्थ है। प्रस्तुत है परिकरांकुर अलंकार का एक उदाहरण :—

"... ... ...।
भरतेऽत्र गिरिर्महानुर्विजयार्द्धो धरणीभृतां गुरुः ॥
य उदक् समुपस्थितोऽमुतः स्खलतः सम्बलतः प्रवर्तिनः।
स्वयमर्द्धजयाय मध्यमो भरतस्यास्ति च चक्रवर्तिनः ॥'

—श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।१-२

(इस भरत क्षेत्र में सभी पर्वतों का गुरु विजयार्द्ध नामक महान् पर्वत विद्यमान है जो यहाँ से उत्तर की ओर इस भारतवर्ष के ठीक मध्य में स्थित है। सेनासहित दिग्विजय के लिए प्रस्थित चक्रवर्ती की आधी विजय को बताने वाला है।)

प्रस्तुत श्लोकों में विजयार्ध आधी विजय को देने में समर्थ हैं, अतः पर्वत की 'विजयार्द्ध' यह संज्ञा (विशेष्य) साभिप्राय होने से परिकरांकुर अलंकार है।

संसृष्टि अलङ्कार—

'सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः।'

—काव्यप्रकाश १०।१३६

श्रीज्ञानसागर के काव्यों में संसृष्टि अलंकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि कवि की कविता प्रायः अनुप्रास अलंकार से अलंकृत है। अनुप्रास के साथ ही साथ अन्य अलंकार भी निरपेक्ष रूप से स्थित हैं। हम उनके काव्यों में शब्दालंकारों, अर्थालंकारों और शब्दार्थालंकारों की—इस प्रकार से तीनों प्रकार की, संसृष्टि के उदाहरण प्राप्त करते हैं। यहाँ कवि की इस क्षमताको द्योतित करने के लिए दो उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं :—

"मृगीदृशश्चापलता स्वयं या, स्मरेण सा चापलताऽपि रम्या।
मनो जहाराङ्गभृतः क्षणेन मनोजहाराऽथ निजेक्षणेन॥'

—वीरोदय, ३।२५

प्रस्तुत श्लोक में अन्त्यानुप्रास और यमक की संसृष्टि स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रही है। अतः यहाँ पर शब्दालंकारों की संसृष्टि है।

दूसरा उदाहरण शब्दार्थालंकारसंसृष्टि का है।—

"नैर्मल्यमेति किल धौतमिवाम्बरन्तु
स्नाता इवात्र सकला हरितो भवन्तु।
प्राग्भूभृतस्तिलकवद्रविराविभाति
चन्द्रस्तु चोरवदुदास इतः प्रयाति॥"

—जयोदय, १८।६३

(प्रातःकाल का सुन्दर वर्णन है :—आकाश निर्मल होने के कारण धुला हुआ सा प्रतीत होता है। दिशाओं को देखकर ऐसा लगता है मानों उन्होंने स्नान कर लिया हो, सूर्य प्राची दिशा के राजा के तिलक के समान प्रकट हो रहा है और चन्द्रमा चोर की भाँति उदास होकर आकाश से प्रस्थान कर रहा है।)

प्रस्तुत श्लोक की प्रथम दो पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और द्वितीय दो पंक्तियों में उपमा अलंकार निरपेक्ष रूप से विद्यमान है, साथ ही अन्त्यानुप्रास की छटा भी स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रही है। अतः एक ही स्थल पर दो अर्थालंकार और एक शब्दालंकार की निरपेक्ष स्थिति होने के कारण संसृष्टि नामक अलंकार है।

सङ्कर अलङ्कार—

"अङ्गाङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।
सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः॥

—साहित्यदर्पण, १०।६८

कविवर ज्ञानसागर के काव्यों में ऐसे भी अनेक स्थल हैं जिनमें अलंकारों का सापेक्ष प्रयोग किया गया है। उदाहरण रूप में दो स्थल प्रस्तुत हैं :—

(क) "वणिक्पथस्तूपितरत्नजूटा हरि-प्रियाया इव केलिकूटाः।
बहिष्कृतां सन्ततमां हसन्तस्तत्राऽऽपदं चाऽऽपदमुल्लसन्तः॥"

—वीरोदय, २।१८

(विदेह देश के नगरों में बाजारों की दुकानों के बाहर थोड़ी-थोड़ी दूर पर रत्नों के स्तूपाकार ढेर लगाये गए थे, जो ऐसे प्रतीत होते थे मानों बहिष्कृत आपदाओं का उपहास सा करते हुए लक्ष्मी के क्रीड़ा-पर्वत हैं।)

प्रस्तुत श्लोक में स्तूपाकार रत्न के ढेरों की उपमा लक्ष्मी के क्रीड़ा-पर्वतों से दी गई है; और साथ ही क्रियोत्प्रेक्षा भी है। यह उत्प्रेक्षा उपमा की सहायिका है। अतः परस्पर अङ्गाङ्गिभाव होने के कारण यहाँ संकर अलंकार है।

(ख) "यतः खलु सोऽस्माकं तारुण्यतेजःसमुन्नयनाय तरणिरिवोत्तरायणः, सर्वदेवानुकूलाचरण-करण-परायणः सुललित-मनोरथ-लता-पल्लवनिमित्त-मम्बुधरायणः।'

—दयोदय-चम्पू, २।३१ का गद्यभाग।

(क्योंकि वह हमारे तारुण्य रूपी तेज को उन्नत करने के लिए उत्तरायण में स्थित सूर्य के समान है, सर्वदा अनुकूल आचरण करने वाला है, इसलिए हमारी सुन्दर मनोकामना रूपी लता-पल्लव को बढ़ाने वाले जलधर के समान है।

प्रस्तुत गद्यभाग में तारुण्य पर तेज का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है और मृगसेन धीवर के उपमान रूप में सूर्य को प्रस्तुत करने के कारण उपमा अलंकार है। रूपक एवं उपमा परस्पर सापेक्ष अलंकार हैं, इसलिए संकर अलंकार है।

चित्रालंकार—

'तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता।'

—काव्यप्रकाश, ९।८५

श्रीज्ञानसागर ने अपने काव्यों में न केवल शब्दालंकार और अर्थालंकार प्रयुक्त किए हैं, अपितु चित्रालंकार भी प्रयुक्त किए हैं। उनके काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उन्होंने छः चित्रबन्धों में अपना कौशल प्रदर्शित किया है, जो इस प्रकार है—

(क) चक्रबन्ध, (ख) गोमूत्रिकाबन्ध, (ग) यानबन्ध, (घ) पद्मबन्ध, (ङ) तालवृन्त-बन्ध और (च) कलशबन्ध। क्रमशः ये चित्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

(क) चक्रबन्ध—

कविवर ने चक्रबन्ध का प्रयोग केवल 'जयोदय' नामक महाकाव्य में किया है। प्रत्येक सर्ग के उपान्त्य श्लोक में उन्होंने चक्रबन्ध प्रयुक्त किये हैं। इसलिए इस काव्य में २८ चक्रबन्ध उपलब्ध होते हैं। इन चक्रबन्धों की यह अभिनव विशेषता है कि इनमें 'जयोदय' महाकाव्य में वर्णित २८ प्रमुख घटनाओं का संकेत मिलता है। वे घटनाएं इस प्रकार हैं :—

(क) जयकुमार द्वारा मुनि की उपासना, (ख) रन्तिप्रभ नामक नागपति को जयकुमार से विनम्र प्रार्थना, (ग) दूत द्वारा सुलोचना के विवाह में जयकुमार आदि राजाओं को आमन्त्रित करना, (घ) राजाओं का स्वयंवर की इच्छा से काशी पहुँचना, (ङ) स्वयंवर की तैयारियाँ होना, (च) विद्या देवी द्वारा राजाओं का परिचय एवं सुलोचना द्वारा जयकुमार को जयमाला पहिनाना, (छ) अर्ककीर्ति और जयकुमार के युद्ध की तैयारियाँ होना, (ज) अर्ककीर्ति का युद्ध में पराजित हो जाना (झ) काशीनरेश द्वारा सम्राट् भरत के पास क्षमायाचना के लिए दूत को भेजना, (ञ) पाणिग्रहण संस्कार प्रारम्भ होना, (ट) जयकुमार का सुलोचनारूप वर्णन करना, (ठ) विवाह सम्पन्न हो जाना, (ड) सुलोचना सहित जयकुमार का गङ्गा नदी के तट पर पहुँचना (ढ) जयकुमार का जलक्रीड़ा करना, (ण) सन्ध्या के पश्चात् रात्रि का आगमन, (त) सोमरस का पान करना, (थ) सुरत विहार करना, (द) प्रातःकालीन शोभा, (ध) जयकुमार द्वारा प्रातःकालीन सन्ध्या-वंदन करना, (न) जयकुमार की भरत चक्रवर्ती से भेंट, (प) जयकुमार का हस्तिनापुर पहुँचना, (फ) जयकुमार और सुलोचना द्वारा भोग-विलास की अनुभूति करना, (ब) पूर्वजन्म का स्मरण एवं दिव्यविभूति की प्राप्ति होना, (भ) जयकुमार और सुलोचना द्वारा तीर्थयात्रा करना, (म) जयकुमार के मन में विरक्ति उत्पन्न होना, (य) पुत्र के राज्याभिषेक के बाद जयकुमार का वन को चले जाना, (ब) भगवान् ऋषभदेव द्वारा जयकुमार को उपदेश देना और (र) जयकुमार और सुलोचना द्वारा मोक्षप्राप्ति।

चक्रबन्ध बनाने की विधि—

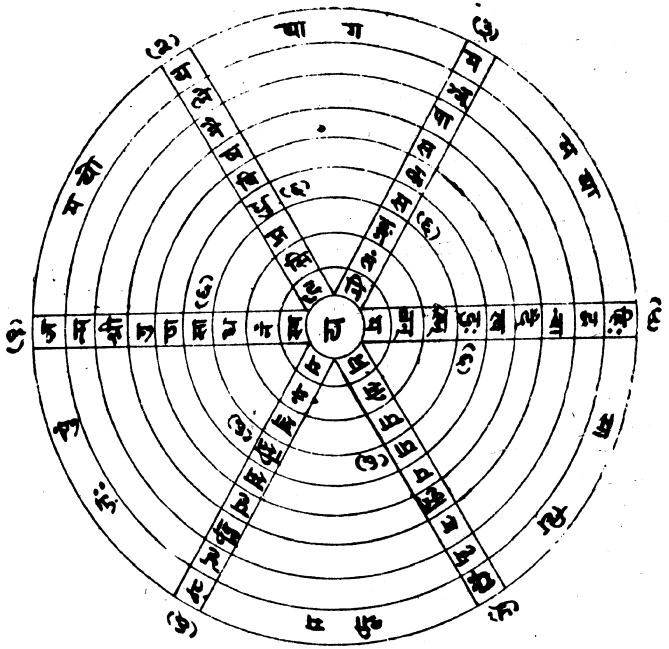
चक्रबन्ध बनाने के लिए श्लोक के चरणों के अक्षरों की संख्या के बराबर गोल आकार वाले चक्रों को बनाकर उसमें छः अरों को स्थापित किया जाता है। मध्य में धुरी होती है। श्लोक के प्रथम तीन चरणों को चक्र के अरों में इस प्रकार रखा जाता है कि प्रथम चरण प्रथम अरे से होता हुआ चतुर्थ अरे में पहुँचता है, द्वितीय चरण द्वितीय अरे से पंचम अरे में पहुँचता है, तीनों चरणों के मध्य के अक्षर को धुरी में रखा जाता है। चतुर्थ चरण को षष्ठ अरे में ही नेमि में घुमा दिया जाता है। इस चरण के सात अक्षर अरों में मानकर अरों के मध्य में दो-दो अक्षर रखे जाते हैं।

प्रत्येक सर्ग का उपान्त्य-श्लोक और उससे बनने वाला चक्र-बन्ध-चित्र क्रमशः प्रस्तुत है :—

(क) जयमहीपतेः साधुसदुपास्तिचक्रबन्धः

"जन्मश्रीगुणसाधनं स्वयमवन् सन्दुःखदैन्यादबहिः,
यत्नेनैष विधुप्रसिद्धयशसे पापापकृत्सस्वपः ।
मञ्जूपासकसङ्गतं नियमनं शास्ति स्म पृथ्वीभृते,
तेजःपुञ्जमयो यथागममथाहिंसाधिपः श्रीमते ॥"

—जयोदय, १।११३

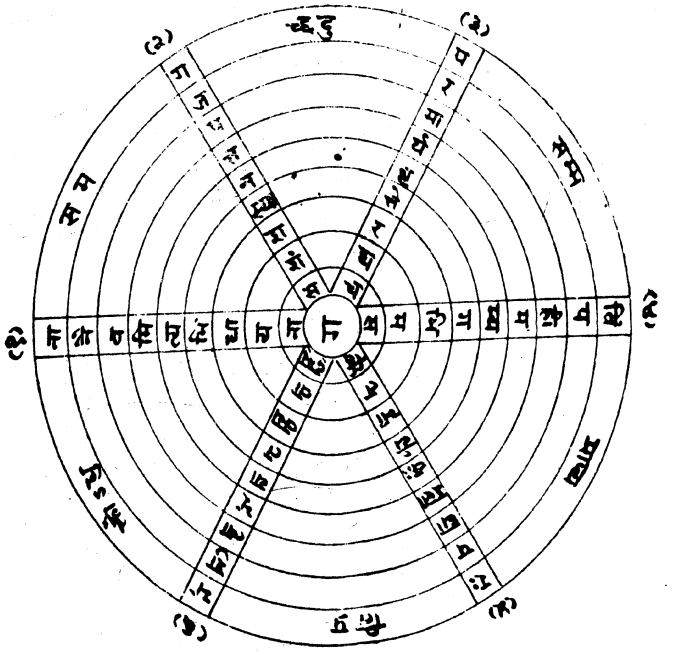


इस चक्रबन्ध के अरों के प्रत्येक प्रथम अक्षर और छठे अक्षर को क्रमशः पढ़ने पर 'जयमहीपतेः साधुसदुपास्ति'—यह वाक्य बनता है। यह वाक्य इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि जयकुमार के द्वारा साधु की उपासना की गई है; जो पूरे सर्ग का वर्ण्य-विषय है।

(ख) नागपतिसम्बचक्रबन्धः—

"नानैवमित्यभिधाय रागः समभिगम्य महीपतिं,
गजपस्तनस्य शशंस गर्हितभार्यकः श्लाघापरः।
परमार्थवृत्तेरथ च गद्गद्वाक्यतया भूत्वाशुभः,
भक्तोऽधुना समगच्छदुपसम्मतिं प्राप्य रतिप्रभः॥"

—जयोदय, २।१६०

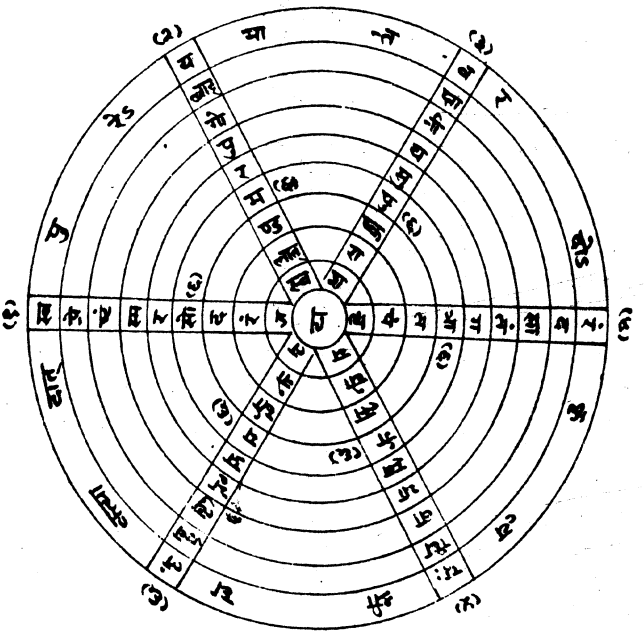


इस चक्रबन्ध के अरों के प्रथम अक्षरों को क्रमशः पढ़ने पर 'नागपतिसम्ब'—यह वाक्यांश निकलता है, जो इस बात का द्योतक है कि इस सर्ग में—'सुर्य ने जयकुमार से जो विनम्र निवेदन किया' उसका वर्णन है।

(ग) स्वयंवरसोमपुत्रागमचक्रबन्ध

"स्वप्रेष्ठं स्मरसोदरं जयनृपं तत्रागतं सादरं,
यत्नाद् गोपुरमण्डलात् स्वयमघोत्सर्गस्वभावाधिपः।
वप्तानीय सुपुष्करालयतनोर्धामप्रभूत्युज्ज्वलं,
भक्त्यादात्स्वपुरेऽयमान्तवरदोऽरं कृत्यपः श्रीधरः॥"

—जयोदय, ३।११६

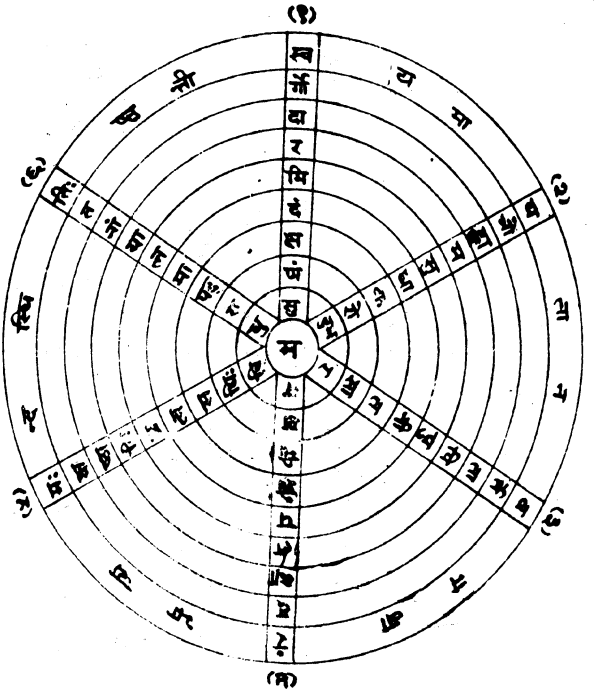


इस चक्रबन्ध के अरों के प्रथम एवं छठे अक्षरों को क्रमशः पढ़ने पर 'स्वयंवर', 'सोमपुत्रागम' ये दो शब्द निकलते हैं, जिनसे इस बात का संकेत मिलता है कि इस सर्ग में सुलोचना के स्वयंवर की सूचना राजाओं को दी गई है; और निमन्त्रण पाकर सोमपुत्र जयकुमार काशी नगरी पहुँच गये हैं।

(घ) स्वयंवरमतिचक्रबन्ध

"स्वर्गोदारमिदं क्षणं सुमनसामीशोपलब्धादरम्,
यत्रोद्दामसुधाकरोद्यमविधिः सत्त्वप्रतिष्ठाक्षमः।
वर्त्तेतापि पुनीतसारमधुरा पद्मालयानां ततिः,
तिष्ठन्ती स्वयमापतानवनवारम्भाप्यमन्दस्थितिः ॥"

—जयोदय, ४।६८

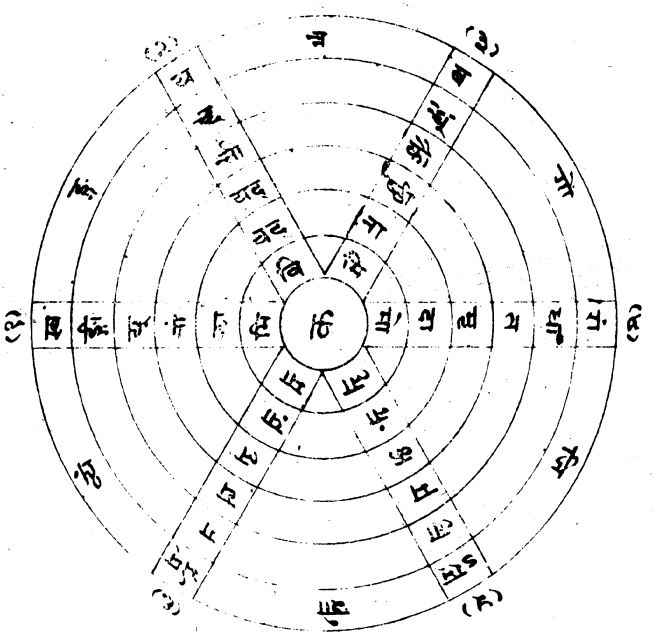


इस चक्रबन्ध के अरों के प्रथम अक्षरों को क्रमशः पढ़ने से 'स्वयंवरमतिः' —यह शब्द बनता है। यह शब्द इस बात का संकेत देता है कि इस सर्ग में 'अनेक राजा सुलोचना-स्वयंवर में पहुँचने की इच्छा रखते हुये काशी की ओर प्रस्थान करते हैं।'

(ङ) स्वयंवरारम्भचक्रबन्ध

"स्वङ्गीयूनां कामिकमोदामृतधारां,
यच्छन्ती यद्वद्विकलानां कमलाऽरम् ।
बन्धूकोष्ठी नामिकमापालय गर्भं,
भव्यं स्वङ्गं यन्नवगोराजिरशोभम् ।।"

—जयोदय, ५।१०६

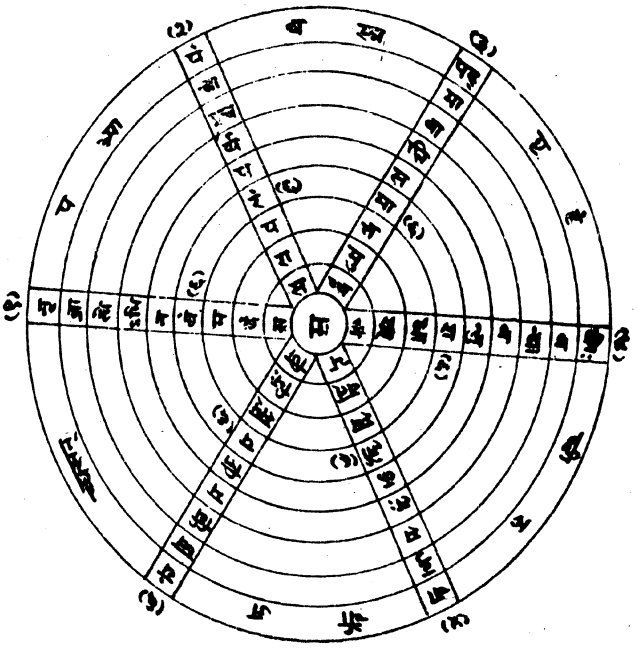


इस चक्रबन्ध के अरों के प्रथम अक्षरों को क्रमशः पढ़ने से 'स्वयंवरारम्भ' यह शब्द बनता है। इस शब्द का यह तात्पर्य है कि इस सर्ग में 'स्वयंवर प्रारम्भ' होने का वर्णन है।

(च) नृपपरिचय, वरमालारोपचक्रबन्ध

"नूत्नातोऽभिनवं मदं समचरत् धारान्तु वन्धावलिः
पञ्चाश्चर्यपरम्परा समभवत्स्वर्लोकतः सद्रुचा।
पद्मावाप्तिसमात्तमुच्चमणिभिः सम्पत्तिमर्थिव्रयं,
यच्छन्सन्नृप आप वस्त्रपगृहं रिष्टोरुवर्चो जयः॥"

—जयोदय, ६।१३४

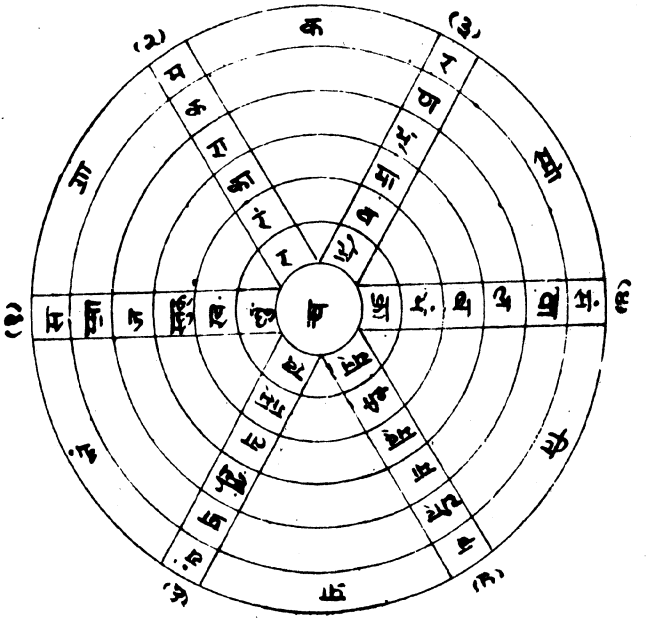


इस चक्रबन्ध के अरों में स्थित प्रथम और षष्ठ अक्षरों को क्रमशः पढ़ने से 'नृपपरिचय' और 'वरमालारोप' ये दो शब्द बनते हैं। इन दोनों शब्दों से यह तात्पर्य निकलता है कि इस सर्ग में राजाओं का परिचय वर्णित है एवं मनोनीत वर को माला पहिनाने का भी संकेत मिलता है।

(ङ) समरसंचयचक्रबन्ध

"सम्भ्राजस्तुक् खलु चक्राभं बलवासम्,
मकराकारं रचयन् श्रीमद्माधीद् च ।
रणभूमावभ्रे च खगस्तार्क्ष्यप्रायम्,
यत्नं संग्रामकरं स्मांसति च प्रायः ॥"

—जयोदय, ७।११५

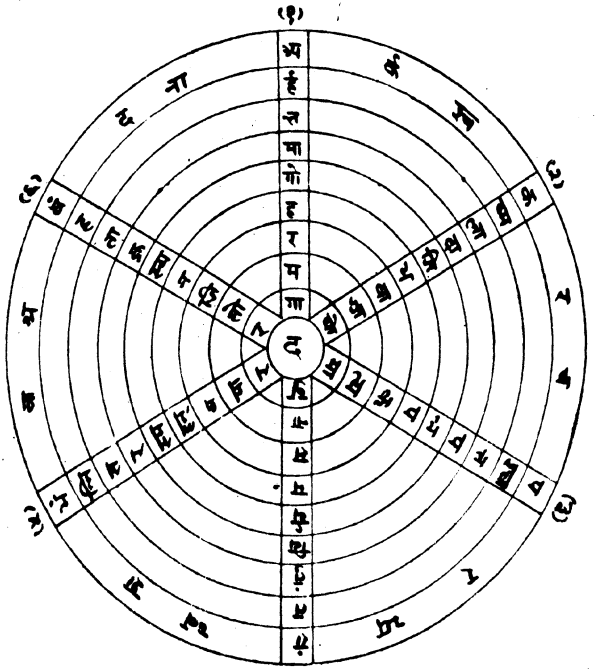


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों में स्थित प्रथमाक्षरों को पढ़ने से क्रमशः 'समर-संचय' शब्द बनता है। इस शब्द से यह संकेत मिलता है कि इस सर्ग में युद्ध के लिए सेना सजाने का वर्णन किया गया है।

(ब) अर्कपराभवचक्रबन्ध

अर्हन्तमागोहरमप्रमादधुना समर्थयितुंतराम्,
कश्मलादाजिभवाज्जयोदरमावहन्स्मरसन्निभम् ।
पश्चात्तपन्नपकृत्यमादरतो जिनस्य कृतावहम्,
वन्दना अर्कश्चकर च परम्पराध्वशमवाश्रवम् ।।"

—जयोदय, ८।९५

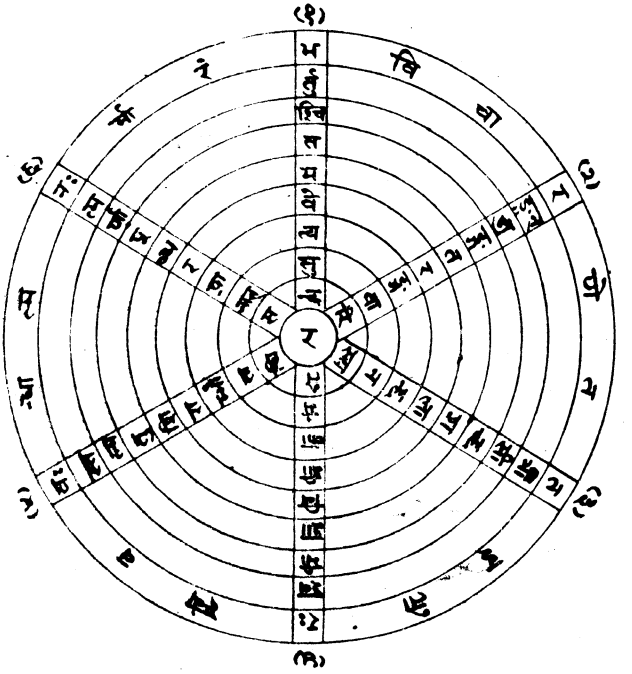


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों में स्थिति प्रथमाक्षरों को क्रमशः पढ़ने पर 'अर्क-पराभव' शब्द बनता है। इस शब्द से यह संकेत मिलता है कि इस सर्ग में युद्ध में अर्ककीर्ति के हारने का वर्णन है।

(ङ) भरतलम्बनचक्रबन्ध

"भर्तुश्चित्तमवेत्य सुन्दरतमं काशीविशामीश्वरः,
रङ्गन्तुंगतरङ्गवारिरचिताम्भोराशितुल्यस्तवः ।
तत्रासीच्छशलाञ्छनस्य रसनात्प्रारब्धपूर्णात्मनः,
नर्मारम्भविचारणे तत इतो लक्ष्यं बबन्धात्मनः ॥"

—जयोदय, ६।१५

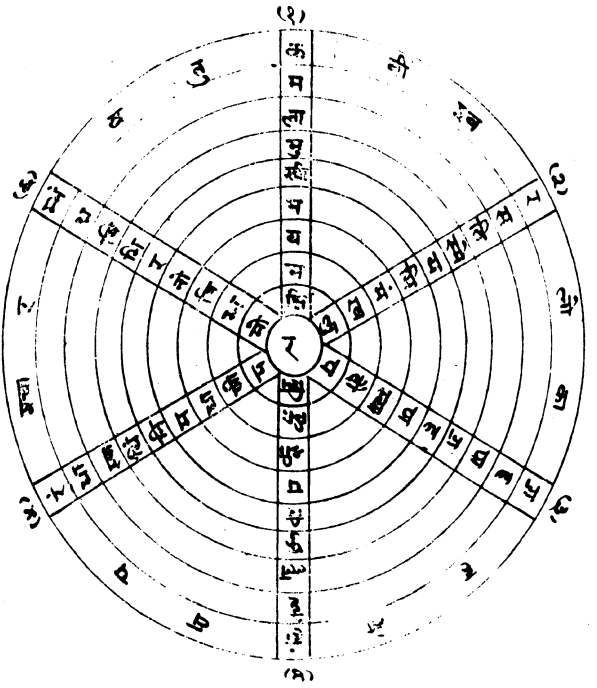


प्रस्तुत चक्रबन्ध के छहों अरों के प्रथम अक्षरों को मिलाने से 'भरत-लम्बन' शब्द बनता है, जो इस बात की ओर संकेत करता है कि इस सर्ग में स्वयम्बर इत्यादि की सूचना सहित भरत-चक्रवर्ती से क्षमायाचना का वर्णन किया गया है।

(ग) करग्रहारम्भचक्रबन्ध

:'कमलामुखीमयमक्षिरश्मिभिः श्रीपरिफुल्लदेहाम्,
रसति स्मेयमिमं खलु रमणीधामनिधिं स्वाधारम् ।
ग्रहणग्रहणस्यादौ परमो भविनोरभिविश्रम्भम्,
भवतु कवीश्वरलोकाग्रहतो हावपरश्चारम्भः ।।"

—जयोदय, १०।१२१

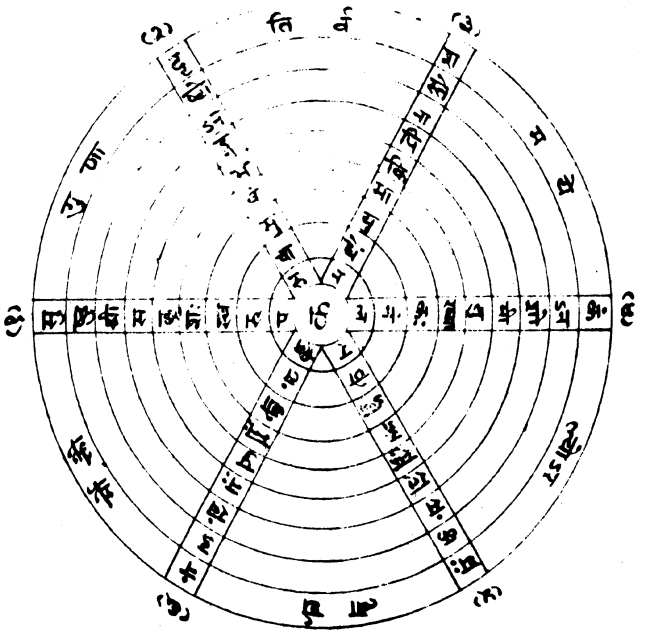


प्रस्तुत चक्रबन्ध के छहों अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों को पढ़ने से 'करग्रहारम्भ' शब्द बनता है। यह शब्द इस बात की सूचना देता है कि इस सर्ग में सुलोचना के पाणिग्रहण संस्कार प्रारम्भ होने का वर्णन है ।

(ट) सुदृशः कथनं चक्रबन्ध

"सुष्ठु श्रीसदृशः स्वरूपकलनं कः स्यातुमीशोऽनकम्,
दृष्टोऽनङ्गभवं सुचारुकरणोऽप्यङ्गस्फुरत्सङ्कथः।
शस्तेनापि किमायुधेन कलितं व्योम्नः पुनः खण्डनम्,
नर्मोक्तौ सुगुणादतिर्वशमये कल्योऽरयत्वार्थनः ॥"

—जयोदय, ११।११५

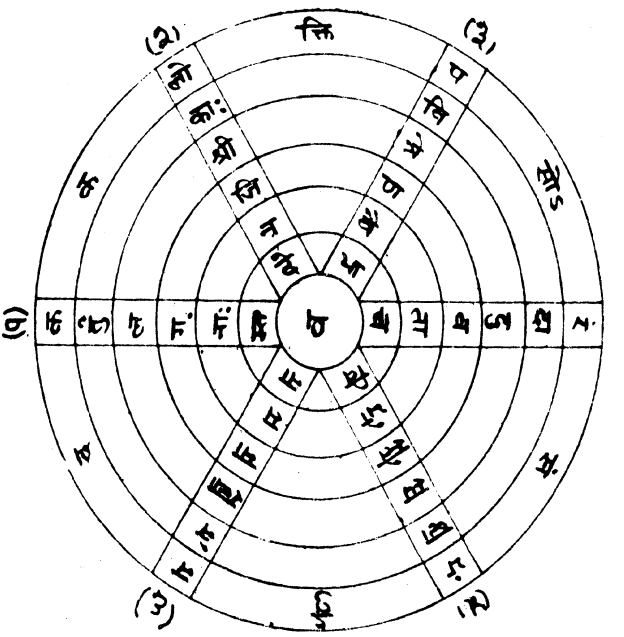


प्रस्तुत चक्रबन्ध के छहों अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों को पढ़ने से 'सुदृशः कथनम्' वाक्य बनता है, जिसका अर्थ है कि इस सर्ग में जयकुमार द्वारा सुलोचना के रूप-सौन्दर्य का वर्णन' किया गया है।

(ठ) करोपलम्भनचक्रबन्ध

"कर्तुं लगनास्तव च तावदुदारम्,
लोकाः श्रीजिनदेवविभोस्ते स्पष्टाभम् ।
पवित्रेण वै भावना समाख्यानेन,
नन्दककलोक्तिपः सोऽरं सम्भर्तुनैः ॥"

—जयोदय, १२।१५७

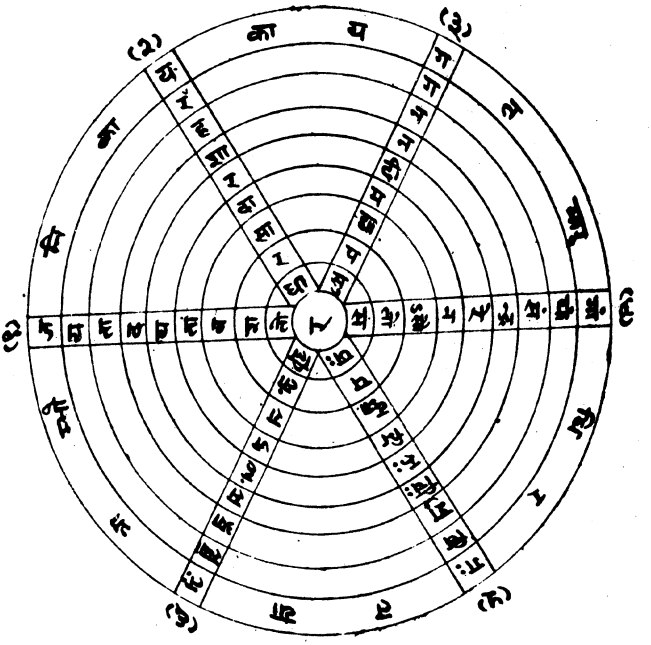


इस चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों को पढ़ने से 'करोपलम्भन' शब्द बनता है, जो इस बात की सूचना देता है कि इस सर्ग में विवाह कार्य के पूर्णतया समाप्त हो जाने का वर्णन है ।

(ङ) जयोवङ्गागत चक्रबन्ध—

"जयतादयतावशतो रसतोऽसौ नरेन्द्रसंयोगाम्,
य रह शारदासाधारणः पद्माभिरुचिः शुचिगः।
गगननदीमद्यापि सुलसितां राजहंस आख्यात-
स्तत्राम्भोजनिकायगतमार्गाधिरगतयातः ॥"

—दयोदय, १३।११६

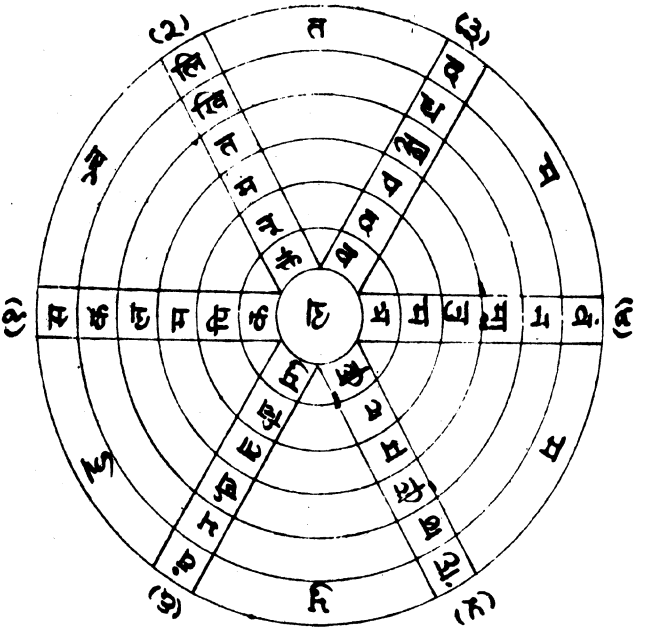


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों को पढ़ने से 'जयोगङ्गागत' वाक्य निकलता है, जो इस सर्ग की उस घटना की ओर संकेत करता है जहाँ विवाह के पश्चात् जयकुमार गङ्गा-नदी के तट पर पहुँचते हैं।

(ङ) सरिदवलम्बचक्रबन्ध

"सकलमपि कलत्रमनुमानकम्,
लिखितमनूक्तं ललितमतिबलम् ।
दधत्स्वपदबलमुचितार्थभवम्,
बहु संचरितदमवमलं भुवः ।।"

—जयोदय, १४।९९

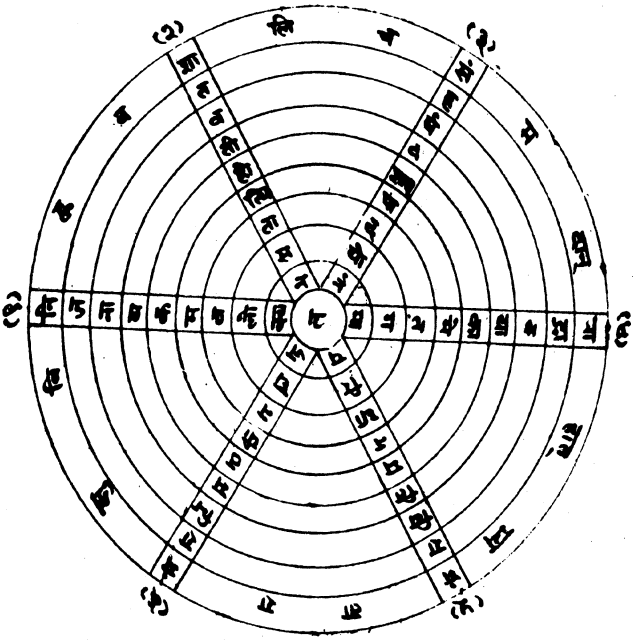


इस चक्रबन्ध में अरों में विद्यमान प्रथम अक्षरों को क्रमशः पढ़ने से 'सरिद-वलम्ब' शब्द बनता है। इस सर्ग में कवि ने जयकुमार के नदी विहार का वर्णन किया है, जो इस शब्द द्वारा संकेतित होता है।

(ग) निशासमागमचक्रबन्ध

"निजनायकमवलोक्य तमागतमेका यावद्रामा,
सातवतीहोत्थितासनतः परिधानमतिविरामम् ।
संहर्षवशात्पादयोर्नतं जघनपीठमभिरामम्,
मंक्षुविनिह्नवशालि च समदान्माहात्म्यगतारामम् ॥"

—जयोदय, १५।१०८

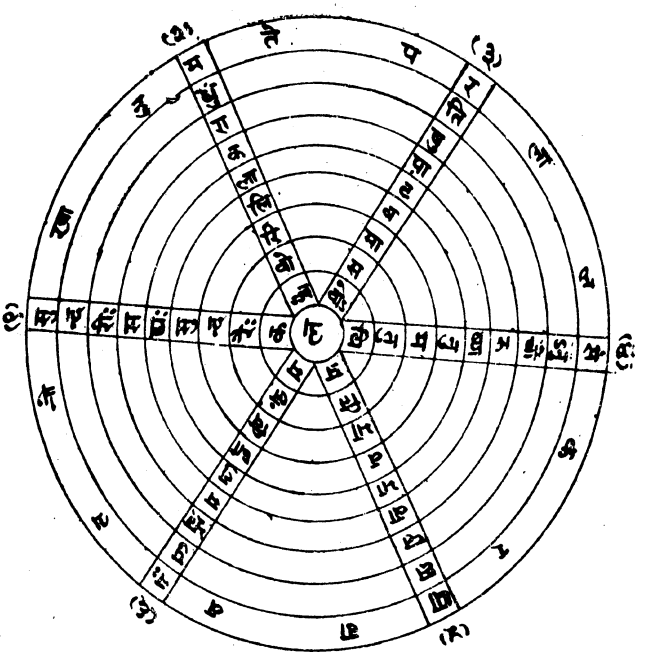


प्रस्तुत चक्रबन्ध में विद्यमान अरों के प्रथम अक्षरों को पढ़ने से 'निशा-समागम' शब्द निकलता है, जो इस बात की ओर संकेत करता है कि इस सर्ग में रात्रिकालीन शोभा का वर्णन किया गया है।

(त) सोमरसपानचक्रबन्ध

"सुन्दरीः सद्यः सुन्दरैः कलयितुमनुष्णरुचोऽनुसम्,
मधुराकलालिरिवोज्ज्वलप्रतिभावभावाप्तक्षपा ।
रतिषु पाटवमाश्रवोऽलमलं विधातुमभूत् पुनः,
न तनोः सुजानुमतेः परं लालसकरः पठाकनः ॥

—वयोदय, १६।८४

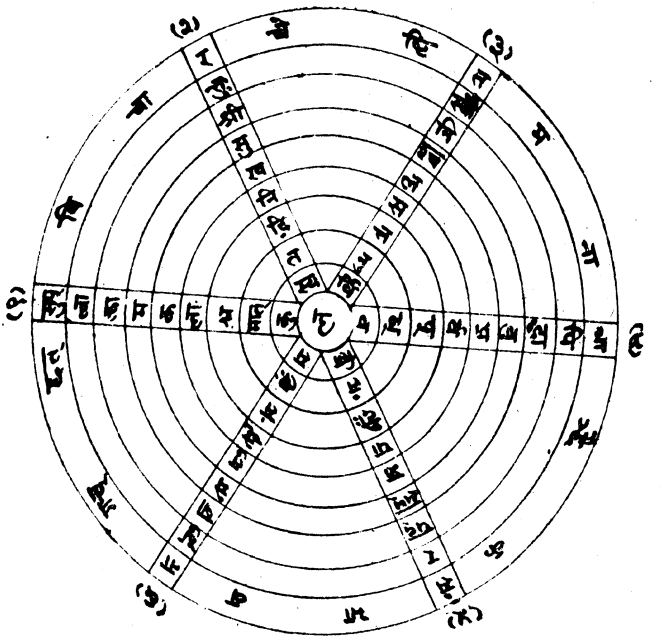


प्रस्तुत चक्रबन्ध के प्रत्येक अरे के प्रथम अक्षरों को पढ़ने से 'सोमरसपान' शब्द निकलता है, जो इस सर्ग में वर्णित मद्यपान का द्योतक है।

(घ) सुरतवासनाचक्रबन्ध

"सुप्त्वा कामकलाश्रमात्कुलवधू पूर्वं प्रबुद्धापि वा,
रन्तुः श्रीमुखनिद्रितस्य ललितं दोः पाशसम्पद्वशम् ।
तस्थौ निश्चलसत्तनुर्विनसतः सञ्चेत्तुमेवाधुना
नागच्छत्सुविचारचेष्टितमना बाञ्छैकसम्भावनाम् ॥"

—जयोदय, १७।१४२

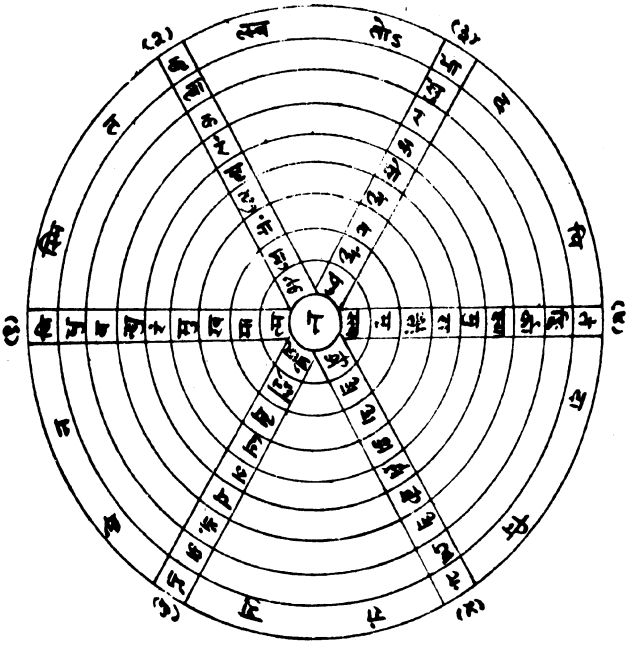


इस चक्रबन्ध के प्रत्येक अरे के प्रथम अक्षरों को पढ़ने से 'सुरतवासना' शब्द निकलता है, जो इस सर्ग में वर्णित स्त्री-पुरुषों के सुरत-विहार का संकेत देता है।

(ङ) विकृतभातनभश्चक्रबन्ध

"विधुबन्धुरं मुखमात्मनस्त्वमृतैः समुक्ष्यार्काङ्कितम्,
कृत्वा करं मृदुनांशुकेन किलालकच्छविलाञ्छनम्।
भासुरकपोलतलं पुनः प्रोञ्छन्त्यगुरुपत्रांकभा,
भावेन विस्मितकृत्स्वतोऽभादपि तदा नितरां शुभा॥"

—जयोदय, १८।१००

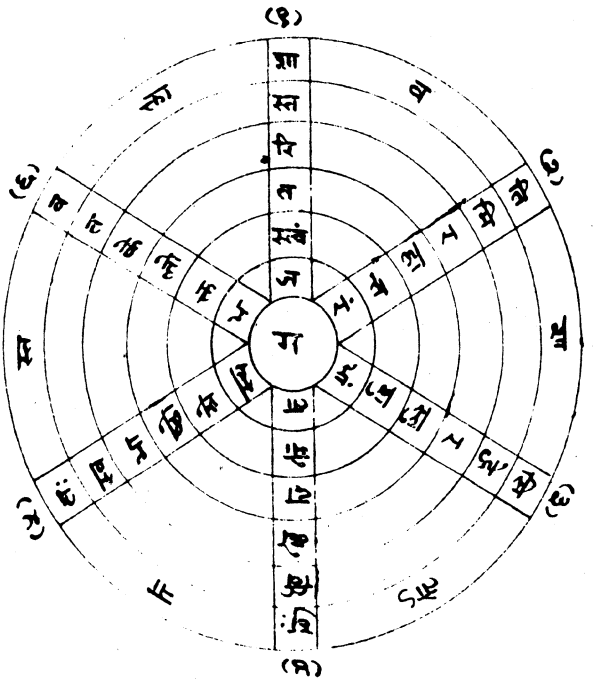


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथम अक्षरों के पढ़ने से 'विकृतभातनभः' शब्द बनता है। यह शब्द इस सर्ग में वर्णित परिवर्तित एवं चमकते हुये आकाश से युक्त प्रभात का द्योतक है।

(ब) शान्तिसिन्धुस्तवचक्रबन्ध

"शास्तरितस्त्वं जगतां मोदाब्धेर्बिधुः
तिमिरहान्तरङ्गस्य श्रेष्ठो भास्वतः।
सिद्धेरस्तु सुभाङ्ग भक्तलोके तव
वक्त्राशावति शासितोऽघुनातः स्तवः॥"

—जयोदय, १९।१२०

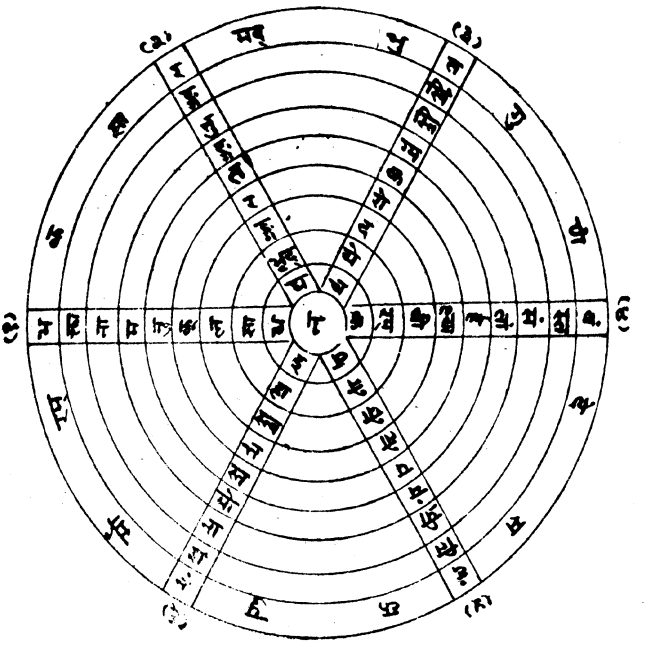


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथम अक्षरों को पढ़ने से 'शान्ति-सिन्धुस्तवः' शब्द बनता है। यह शब्द इस सर्ग में वर्णित जयकुमार के प्रातःकालीन सन्ध्या-वन्दन आदि की सूचना दे रहा है।

(ग) भरतवन्दनचक्रबन्ध

"भक्तानामनुकूलसाधनकरम्वीक्ष्यार्हतां संस्तवं,
रङ्गत्तुङ्गतरङ्गभूदधनवने पोतोपमं प्रीतिदम्।
तस्मिंस्तिग्मकरोदये च न इहास्त्वन्तस्तमोनाशनम्,
नर्मारम्भकसारमद्भुतगुणं वन्दे सदङ्गं पुनः॥"

—जयोदय; २०।१६

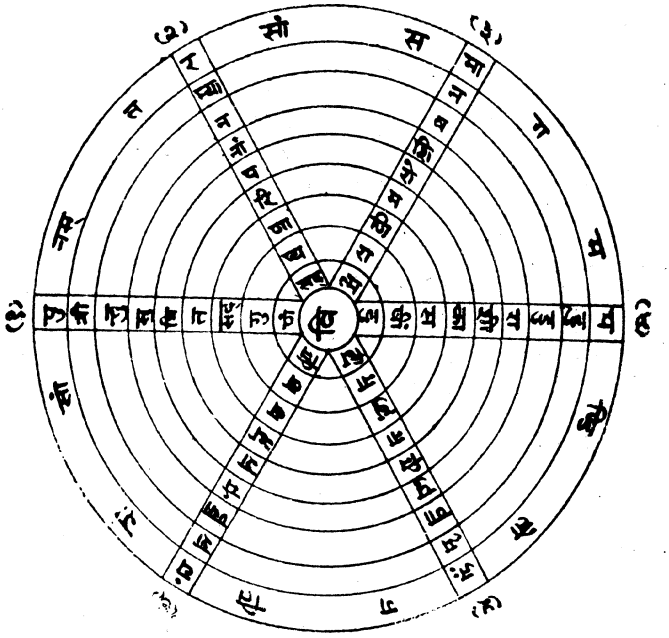


इस चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथम अक्षरों को पढ़ने से 'भरतवन्दनम्' शब्द बनता है। इस शब्द से यह तात्पर्य निकलता है कि कवि ने इस सर्ग में जयकुमार द्वारा भरतचक्रवर्ती की वन्दना कराई है।

(घ) पुरमापद्मयचक्रबन्ध

"पुत्रीन्तु सुत्रितसद्गुणं विदुषीं सकाशीराडुडुप-
रम्याननां परिणाप्य सद्विधिनाधुना निपुणात्मजः।
मानवशिरोमणिरात्मविन्निवबन्धशर्मण्याशयम्,
यशसां पुनस्तरसां समागमपण्डितो जगति यः॥"

—जयोदय, २१।९७

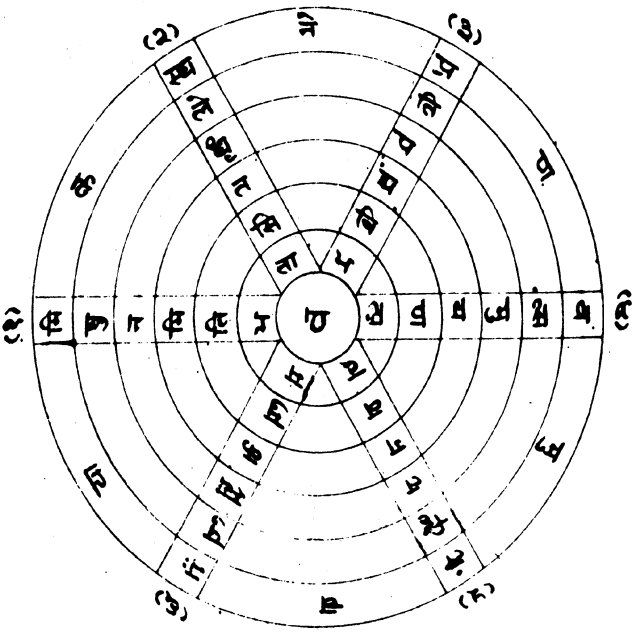


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथम अक्षरों को मिलाने से 'पुरमापद्मय' शब्द बनता है। इस शब्द का तात्पर्य निकलता है कवि ने इस सर्ग में जयकुमार के अपनी नगरी हस्तिनापुर पहुँचने का वर्णन किया है।

(फ) मिथः प्रवर्तनम् चक्रबन्ध

"मिथुनमिति भवत्प्रणयमुत्सव-
स्थले घृतसिताम्बवगतहितम् ।
प्रतिपद्य विभवममुकस्य पुनः ॥"
नयामि कथने प्रणवमुत नः ॥"

—जयोदय, २२।९१

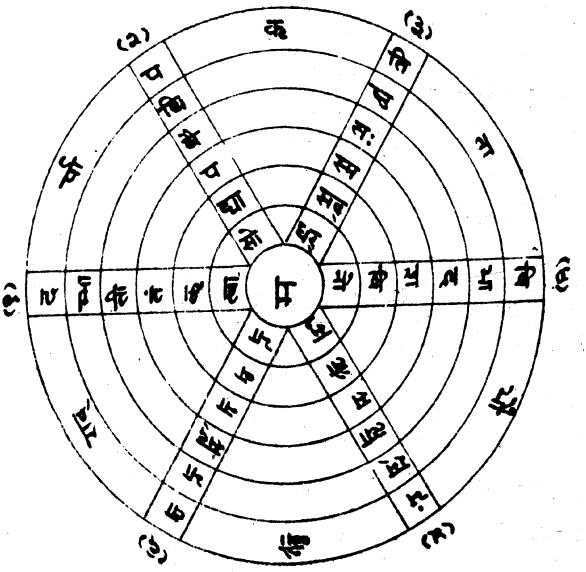


प्रस्तुत चक्रबन्ध के छहों अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों को मिलाने से 'मिथः प्रवर्तनम्'—यह शब्द बनता है। इस शब्द से हमें यह संकेत मिलता है कि कवि ने इस सर्ग में सुलोचना और जयकुमार के मैथुनव्यापारों (भोग-विलास) का वर्णन किया है।

(ब) दम्पतिविभवाचक्रबन्ध

"दम्भातीतं कृत्वा मनोविशदभावि
पथि वै पद्मासोमसुतौ सत्यारम्भम्।
तिष्ठतः स्म सद्धर्मभावना सद्भावा
वाराद्वर्षापकृतिताविभौ भव्यौ वा।"

—जयोदय, २३।९७

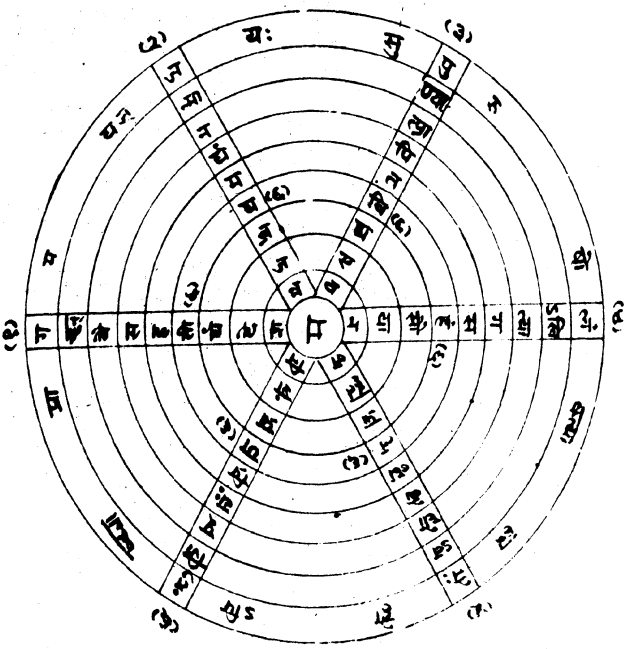


प्रस्तुत चक्रबन्ध के छहों अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों को एक साथ मिला कर पढ़ने से 'दम्पतिविभवा' शब्द बनता है। इस शब्द से यह तात्पर्य निकलता है कि कवि ने इस सर्ग में सुलोचना और जयकुमार के पूर्वजन्मों का और उनके द्वारा प्राप्त दिव्य विभूतियों का वर्णन किया है।

(ग) गजपुरनेतुस्तीर्थविहरणम् चक्रबन्ध

"गच्छन्वै सह तीर्थदेशमनयासौ हंसगत्याऽखिलम्,
जन्मानर्घमव व्रजन्नमलहृत्प्रालब्धबोधोऽवने: ।
पुण्यात्प्रापितविश्व एवमनिशं प्राणप्रिय: पूजितुं,
तुष्टया प्रागमयज्जय: सुपुरुषो रक्त्याह्वनेहोऽपि तु ।।"

—जयोदय, २४।१४८

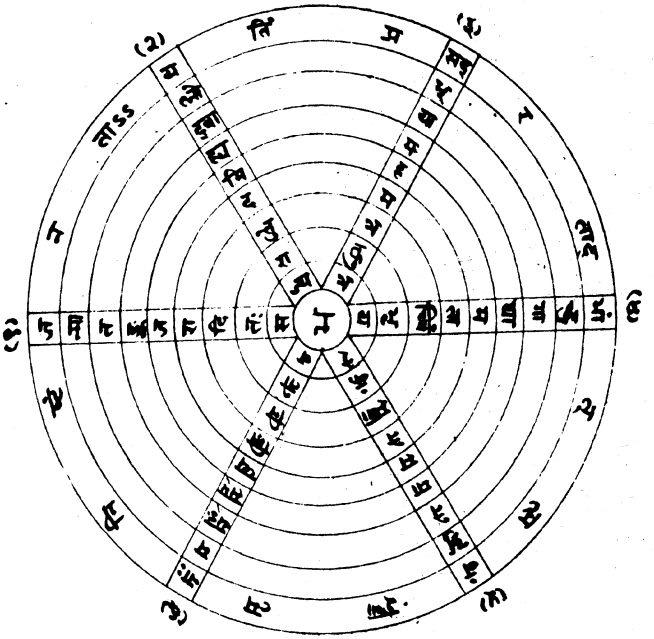


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों के प्रथमाक्षरों और षष्ठाक्षरों को क्रम से पढ़ने पर गजपुरनेतुस्तीर्थविहरणम्' शब्दसमूह बनता है। यह शब्द समूह इस बात का द्योतक है कि कवि ने इस सर्ग में जयकुमार के तीर्थविहार का वर्णन किया है।

(ग) जयसद्भावनाचक्रबन्ध

"जन्मातङ्कजरादितः समयभूच्चिन्तामथागाच्छुभाम्,
यत्नोद्बाह्यमिदन्तु राज्यभरकं स्थाने समाने ध्रुवम् ।
सद्भूयामहमत्र कुत्र भवतो निक्षिप्य सम्यङ्मनाः,
नानिष्टं जनताऽऽयति प्रसरताद् भातूत्सवश्चात्मनाम् ॥"

—जयोदय, २५।८०

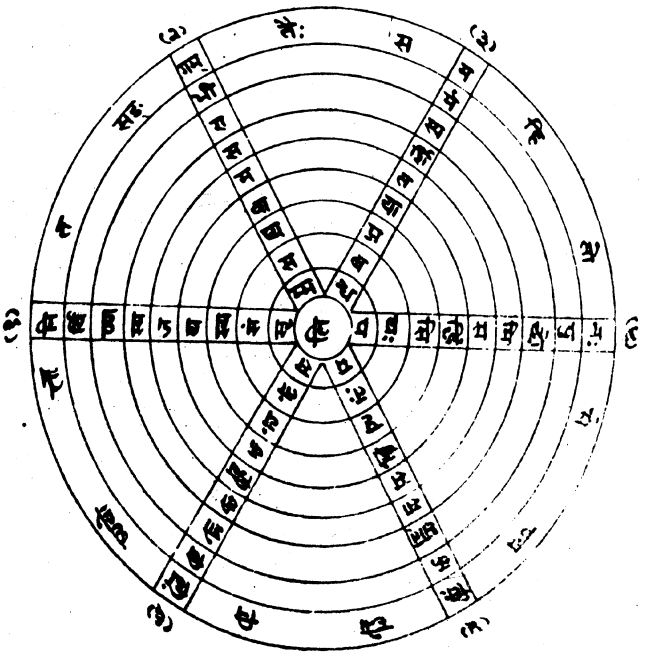


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों के प्रथमाक्षरों को पढ़ने से 'जयसद्भावना' शब्द बनता है, जो इस बात का द्योतक है कि कवि ने इस सर्ग में जयकुमार के मन में उठती हुई वैराग्यभावना का वर्णन किया है।

(य) निर्गमनविधिचक्रबन्ध

"निर्विण्णस्य जयस्य संसृतिपथः सिद्धिं समिच्छो पुनः,
गम्भीरां समवाप्य सम्मतिमतः पृच्छां स साक्षात्कविः।
मर्मस्पर्शितया प्रबन्धति सतां यं कञ्चिदीशो विधिम्,
धिष्ण्योत्तानितसङ्गतैः स महितो नर्मण्यविघ्नो निधिः॥"

—जयोदय, २६।१०७

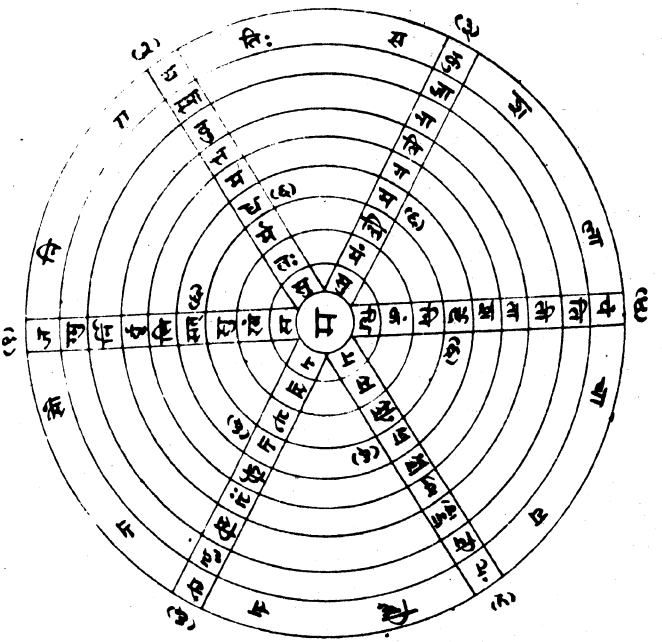


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों के प्रथमाक्षरों को पढ़ने से 'निर्गमनविधि' शब्द बनता है। इस शब्द का तात्पर्य यह निकलता है कि इस सर्ग में जयकुमार के परिग्रह-त्याग कर नगर से निकलने का वर्णन किया गया है।

(ब) जयकुपतये सद्धर्मदेशनाचक्रबन्ध

"जग्मुर्निवृतिसत्सुखं समधिकं निर्देशतातीतिपम्,
यस्मादुत्तमधर्मतः सुमनसस्ते शश्वदुद्भाषितम् ।
कुज्ञानातिगमन्तिमं सुमनसा तेनार्जितः सिद्धये,
येनासौ जनिरायति, सकुशला पञ्चाय तच्छित्तये ॥"

—जयोदय, २७।६६

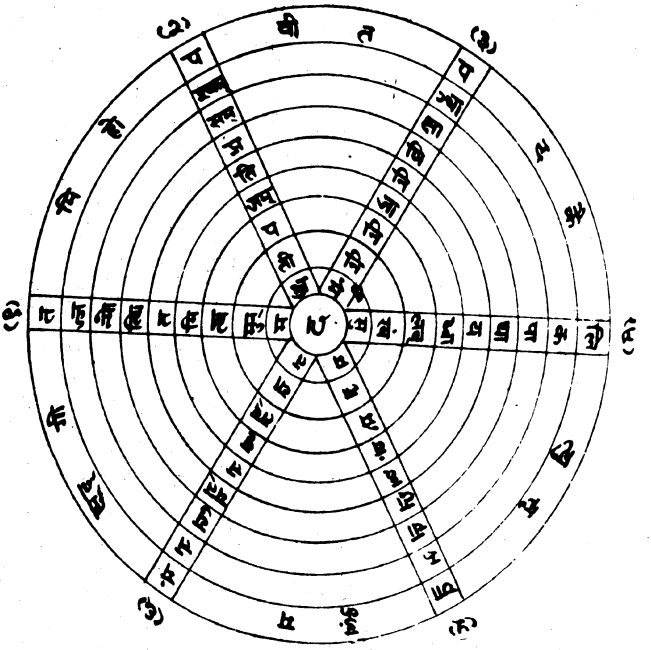


प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों और तत्पश्चात् षष्ठाक्षरों को मिलाकर पढ़ने से 'जयकुपतये सद्धर्मदेशना'—ये दो शब्द बनते हैं। इनका तात्पर्य यह निकलता है कि कवि ने इस सर्ग में राजा जय के प्रति ऋषभदेव का उपदेश वर्णित किया है।

(२) तपःपरिणाम चक्रबन्ध

"तज्जन्मोत्थितमित्थमुन्मदसुखं लब्ध्वा यथापाकलि,
पश्चात् सम्प्रति जम्पती प्रमदतामेवं हृदा चारुणा।
पञ्चाक्षाणि निजानि निर्मदतया तद्वृत्तमत्युत्तमम्,
मंक्षुद् गीतमिहोपवीतपदकैरित्युत्तृणाङ्कं मम ॥"

—जयोदय, २८।७१



प्रस्तुत चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों को क्रमशः पढ़ने से 'तपः-परिणाम' यह शब्द बनता है। इससे तात्पर्य निकलता है कि कवि ने इस श्लोक में जयकुमार द्वारा मोक्षप्राप्ति का वर्णन किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि चित्रालङ्कारों को प्रयुक्त करते समय कवि के हृदय में दो इच्छायें रही होंगी, एक तो पाण्डित्य-प्रदर्शन की ओर

दूसरी सर्ग का सारांश देने की। ये सभी चक्रबन्ध वास्तव में 'जयोदय' महाकाव्य के सार रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

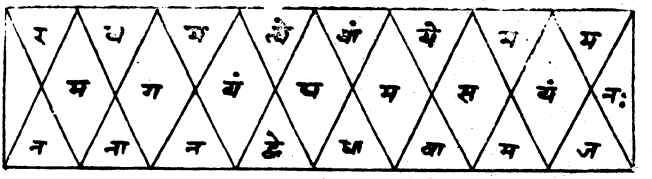
महाकवि ने अपने 'वीरोदय' नामक महाकाव्य में गोमूत्रिकाबन्ध, यानबन्ध, पद्मबन्ध और तालवृन्तबन्ध नामक चार चित्रालङ्कारों का प्रयोग किया है—

यहाँ उन सभी के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

गोमूत्रिकाबन्ध

"रमयन् गमयंस्त्वेष वाङ्मये समयं मनः।
न मनागनयं द्वेष धाम वा समयं जनः॥"

—वीरोदय, २२।३७

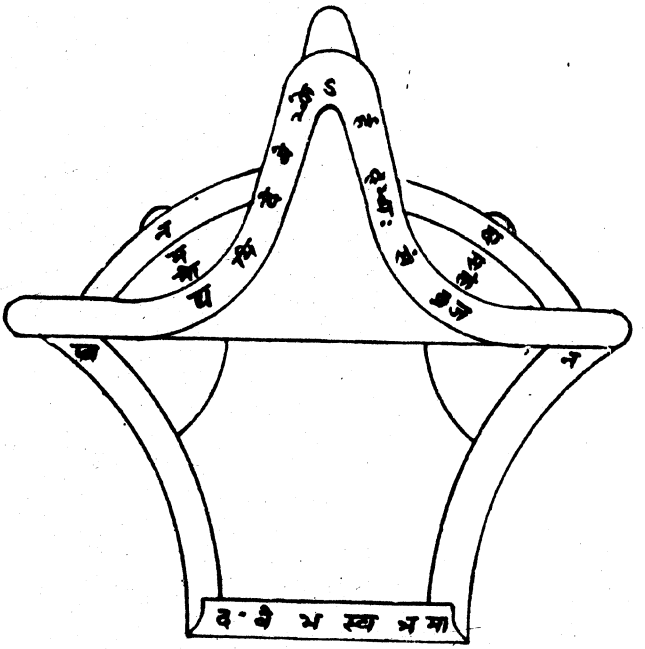


श्लोक से गोमूत्रिकाबन्ध बनाने की विधि यह है कि इसमें श्लोक की प्रथम पंक्ति के पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें इत्यादि विषम अक्षरों को चित्र की प्रथम पंक्ति में रखा जाता है और इसी प्रकार श्लोक की द्वितीय पंक्ति के पहले, तीसरे, पाँचवे, सातवें, नवें इत्यादि विषम अक्षरों को चित्र की तीसरी पंक्ति में रखा जाता है और दोनों पंक्तियों के बीच के दूसरे, चौथे, छठे, आठवें इत्यादि सम अक्षरों को क्रमशः द्वितीय पंक्ति में रखा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्लोक का एक अक्षर लेकर, एक अक्षर छोड़ा जाता है। लिए हुए अक्षरों से प्रथम और तृतीय पंक्ति बन जाती है; और छोड़े गये अक्षरों से द्वितीय पंक्ति बन जाती है। इस बन्ध में लिखित श्लोक की विशेषता यह होती है कि दूसरे, चौथे आदि सम अक्षर दोनों पंक्तियों में एक ही होते हैं। अतः इस बन्ध में निबद्ध श्लोक को पढ़ते समय एक अक्षर तृतीय पंक्ति का और एक अक्षर द्वितीय पंक्ति का लेना होगा जैसा कि उपर्युक्त चित्र में है।

यानबन्ध

"न मनोऽमि देवेभ्योऽर्हद्भ्यः संव्रजतां सदा।
दासतां जनमात्रस्य भवेदप्यद्य नो मनः॥"

—वीरोदय, २२।३८

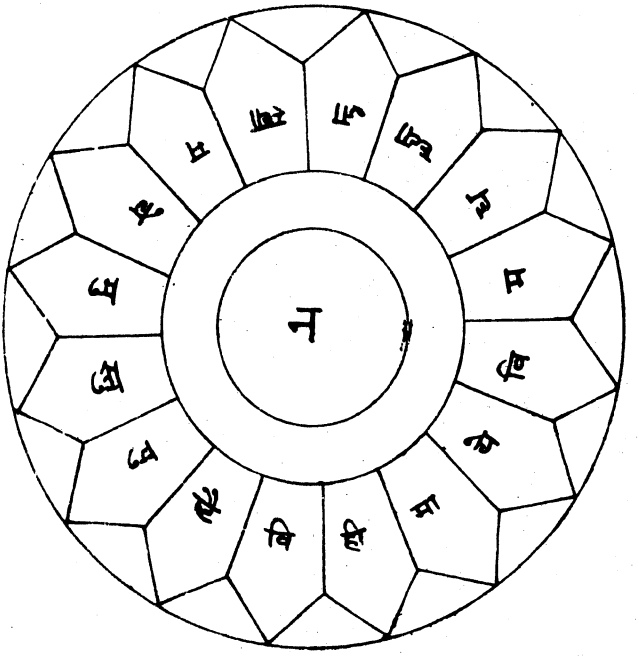


श्लोक को वितान और मण्डप में लिखने के पश्चात् स्तम्भों और मंच में लिखा जाता है। इस श्लोक के प्रथम दो चरण मण्डप और वितान में हैं, तत्पश्चात् तृतीय चरण दाहिने स्तम्भ से मंच की ओर और चतुर्थ चरण मंच से होता हुआ बायें स्तम्भ में लिखा गया है।

पद्मबन्ध

"विनयेन मानहीनं विनष्टैनः पुनस्तु नः।
मुनये नमनस्थानं ज्ञानध्यानधनं मनः॥"

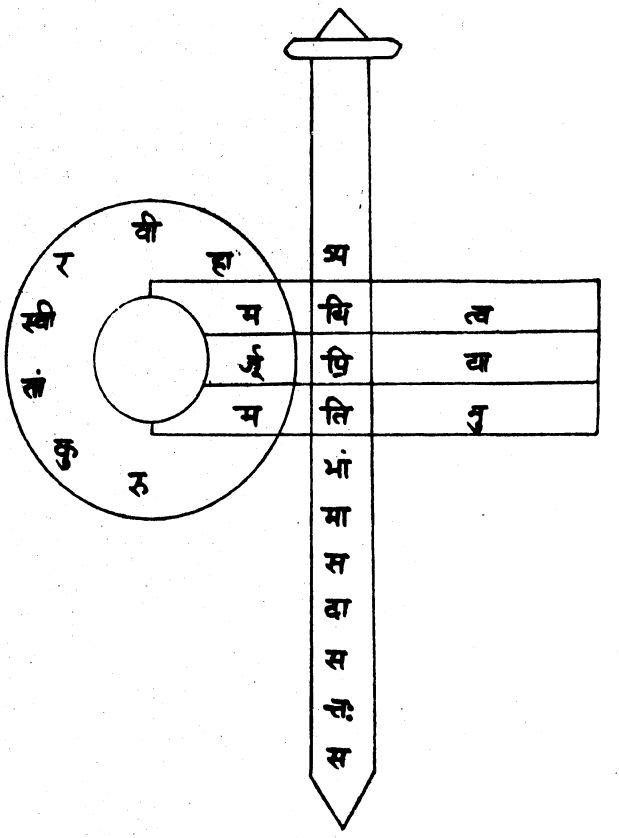
—वीरोदय, २२।३९



कमल में पंखुड़ियाँ और पराग ये दो वस्तुएँ विद्यमान होती हैं। अतः पद्मबन्ध की रचना में एक अक्षर बीच में पराग के रूप में और शेष अक्षर पंखुड़ियों के रूप में विद्यमान रहते हैं। उपर्युक्त श्लोक में 'न' अक्षर पराग-रूप में स्थित है। शेष अक्षर अनुलोम-प्रतिलोम विधि से पढ़े जाते हैं, अर्थात् पंखुड़ी से मध्य में और मध्य से पंखुड़ी में पढ़ा जाता है।

तालवृन्तबन्ध

"सन्तः सदा समा भान्ति
मर्जूमति नुतिप्रियाः।
अयि त्वयि महावीर,
स्वीतां कुरु मर्जूं मयि॥" —वीरोदय, २२।४०



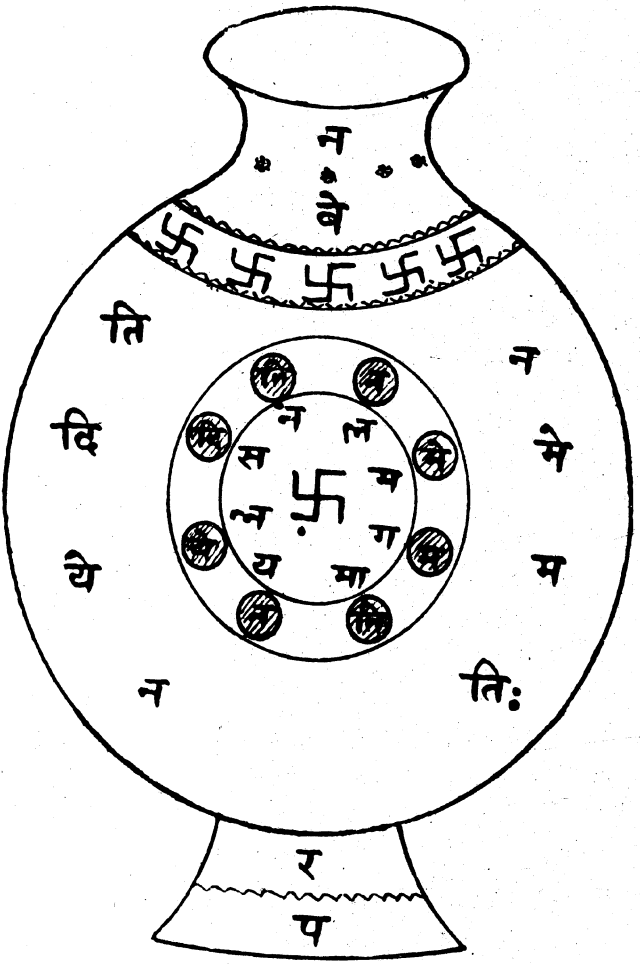
इस बन्ध में श्लोक को क्रमशः दण्ड में स्थित करते हुये, दण्ड और तालवृन्त की सन्धि में ले जाते हैं, तत्पश्चात् तालवृन्त में घुमाया जाता है, जैसा कि उपर्युक्त श्लोक में है।

सुदर्शनोदय में कवि ने एक चित्रबन्ध प्रयुक्त किया है—कलशबन्ध। अब इसका उदाहरण प्रस्तुत है।

कलशबन्ध

"परमागमलम्बेन नवेन सन्नयं जप।
यन्न सन्नरमङ्गं मां नयेदिति न मे मतिः ।।"

—सुदर्शनोदय, ६।७६



इस बन्ध में श्लोक का प्रारम्भ कलश की आधारशिला से होता है। तत्पश्चात् श्लोक को कलश के ठीक बीच में बायीं ओर पढ़ते हुये शीर्षस्थान तक ले जाया जाता है। पुनः ठीक बीच के बायीं ओर से पढ़कर पुनः आधारशिला पर पहुँचकर फिर बीच में और तत्पश्चात् कलश के बाहरी भाग में पढ़ा जाता है, जैसा कि उपर्युक्त श्लोक में है।

(आ) छन्द—

गतिरहित जीवन असम्भव है। सांसारिक प्राणी को उसके चरण गतिशील बनाते हैं, और काव्य को गतिशील बनाते हैं उसमें प्रयुक्त किए गए छन्द।

'छन्द' शब्द 'छन्द् धातु से 'असुन्' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है। इस शब्द का तात्पर्य ऐसे श्लोक से है जो श्रोता को प्रसन्न कर सके।

श्लोकों को जब चरणों, वर्णों और मात्राओं के आकर्षक बन्धन में निबद्ध किया जाता है, तब उनमें प्रवाह, सौन्दर्य और गेयता आ जाती है। फलस्वरूप पाठक या श्रोता जब ऐसे श्लोकों को पढ़ता या सुनता है, तब उसे मधुर सङ्गीत सुनने जैसा आनन्द मिलता है; और वह छन्दोबद्ध श्लोकों से युक्त काव्य को पढ़ने में या सुनने में ऐसा लीन हो जाता है कि अन्य सभी कार्यों को विस्मृत कर देता है।

काव्य की पद्यात्मक विधा की रचना तो पूर्णतया छन्दोबद्ध श्लोकों में ही की जाती है। अतः इस विधा में छन्दों का महत्व अत्यधिक है। गद्यात्मक विधा में छन्दों का इतना महत्व तो नहीं होता, किन्तु गद्यकवि भी अपने काव्यों में यत्र-तत्र छन्दोबद्ध श्लोकों का प्रयोग करके छन्दों के महत्व का उद्घोष करते ही हैं। इतना ही नहीं बल्कि वे बीच-बीच में ऐसी शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जहाँ किसी न किसी वृत्त-विशेष की सिद्धि होने लगती है, ऐसे ही स्थलों को साहित्यदर्पणकार ने गद्यकाव्य का 'वृत्तगन्धि' नामक भेद माना है (साहित्यदर्पण, ६।३३०)।

नाटकों में भी जब कोई पात्र अपने कथन की पुष्टि करना चाहता है, या किसी भावविशेष का अभिनय करता है, तब शीघ्र ही छन्दोबद्ध श्लोक का प्रयोग करता है। चम्पूकाव्यों में तो जितना महत्त्व गद्य का होता है, उतना ही पद्य का, इसलिए उनमें भी छन्दों की महिमा अक्षुण्ण है।

कवि अपने काव्यों में दो प्रकार के छन्दों का प्रयोग करते हैं—मात्रिक और वार्णिक। मात्रिक छन्दों में मात्राओं की और वार्णिक छन्दों में वर्णों की व्यवस्था से श्लोकों को निबद्ध किया जाता है। साथ ही सुकवि यह भी ध्यान रखते हैं कि कौन से छन्द वीररस के वर्णन में, कौन से प्रकृति-वर्णन में और कौन से भक्तिभाव प्रकट करने में सहायक होंगे आदि-आदि।

स्पष्ट है कि काव्य को आह्लादक एवं प्राणवान् बनाने में छन्दों का प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करता है। अतः कोई भी काव्यशास्त्री और काव्य-प्रणेता कलापक्ष के इस अङ्ग की उपेक्षा नहीं करता है।

महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उन्होंने प्रचलित एवं अप्रचलित दोनों प्रकार के छन्दों का अपने काव्यों में प्रयोग किया है। उनके काव्यों में प्रयुक्त छन्दों की कुल संख्या ४६ है। आगे प्रस्तुत किए गए

रेखाचित्र से ज्ञात हो जाएगा कि उन्होंने कितने प्रचलित और कितने अप्रचलित छन्दों का अपने काव्यों में कितने श्लोकों में प्रयोग किया है और कौन छन्द सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है :—

महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों में प्रयुक्त वर्गीकरण छन्द-तालिका

क्रम सं०	प्रचलित छन्द	अप्रचलित छन्द	जयो-दय	वीरो-दय	सुदर्शनो-दय	श्रीसमुद्र-दत्तचरित्र	दयो-चम्पू	मुनि-मनोरञ्जन-शतक	योग
१.	उपजाति(क)		७५८	५०३	१३८	१३४	२६	+	१५६२
२.	अनुष्टुप्		३०३	१७८	१४८	४६	१०८	१००	८८३
३.		वियोगिनी	२७५	४२	३५	२७	२	+	३८१
४.		रथोद्धता	२७३	१	१	+	+	+	२७७
५.		मात्रासमक	२२६	१२	१७	३	४	+	२६२
६.	द्रुतविलम्बित		१६४	६	४	३२	४	+	२४३
७.	वंशस्थ		१५३	२५	४	३६	३	+	२२१
८.	आर्या		१६३	२६	१	+	१	+	२२१
६.		स्वागता	१५२	+	१	३३	+	+	१८६
१०.	वसन्ततिलका		१२१	४०	१५	२	५	+	१८३
११.	उपेन्द्रवज्रा		६६	३४	१२	१६	१	+	१५६
१२.		मालभारिणी	१४१	+	+	+	+	+	१४१
१३.	शार्दूलविक्रीडित		६४	३८	२०	२	८	+	१३२
१४.	इन्द्रवज्रा		३५	५४	१०	१३	१	+	११३
१५.	भुजंगप्रयात		३	१३	१	+	+	+	१७
१६.	उपजाति (ख)		४	८	१	१८	+	+	१४
१७.		सखी	११	+	+	+	+	+	११
१८.		प्रौपच्छन्दसिक	१०	+	+	+	+	+	१०
१६.	मालिनी		७	२	+	+	+	+	६
२०.	गति		८	+	+	+	+	+	८
२१.		रोला	५	+	+	+	+	+	५
२२.		दोहा	४	+	+	+	+	+	५
२३		इन्द्रवंशा	२	१	१	१	+	+	४
२४.	शिखरिणी		३	१	+	+	×	+	४
२५.		वैतालीय	२	+	१	+	+	+	३
२६.	मन्दाक्रान्ता		२	१	+	+	+	+	३

२७.	स्रग्विणी	३	+	+	+	+	+	३
२८.	पृथ्वी	३	+	+	+	+	+	३
२९.	मञ्जुभाषिणी	३	+	+	+	+	+	३
३०.	ललित	३	+	+	+	+	+	३
३१.	लावनी	३	+	+	+	+	+	३
३२.	हरिगीतिका	२	+	+	+	+	+	२
३३.	पुष्पिताग्रा	२	+	+	+	+	+	२
३४. शालिनी		१	+	+	+	+	+	२
३५.	उपचित्रा	१	+	+	+	+	+	१
३६.	तामरस	१	+	+	+	+	+	१
३७.	उद्गीति	१	+	+	+	+	+	१
३८.	उपगीति	१	+	+	+	+	+	१
३९.	पञ्चचामर	१	+	+	+	+	+	१
४०.	तोटक	१	+	+	+	+	+	१
४१.	दोधक	१	+	+	+	+	+	१
४२. स्रग्धरा		१	+	+	+	+	+	१
४३.	चन्द्रलेखा	१	+	+	+	+	+	१
४४.	सनाई	१	+	+	+	+	+	१
४५.	प्रतिभा	१	+	+	+	+	+	१
४६.	अरल	१	+	+	+	+	+	१
कुलयोग १७	२९	३०७९	९८८	४१२	३४५	१६६	१००	५०९०

श्रीज्ञानसागर द्वारा अपने काव्यों में प्रयुक्त छन्दों की उपर्युक्त सारिणी को देखने से ज्ञात हो जाता है कि कवि ने ५०९० श्लोकों को ४६ छन्दों में निबद्ध किया है। इन छन्दों में १७ छन्द प्रचलित हैं और २९ छन्द अप्रचलित। सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाले छन्दों के क्रम में उपजाति का स्थान सर्वप्रथम है। तत्पश्चात् अनुष्टुप्, वियोगिनी रथोद्धता, मात्रासमक, द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, आर्या, स्वागता, वसन्ततिलका, उपेन्द्रवज्रा, मालभारिणी, शार्दूलविक्रीडित एवं इन्द्रवज्रा इन १३ छन्दों का स्थान पाया जाता है।

ज्ञानसागर जी ने जयोदय के ३०७९ श्लोकों को ४६ छन्दों में, वीरोदय के ९८८ श्लोकों को १८ छन्दों में, सुदर्शनोदय के ४१२ श्लोकों को १९ छन्दों में, श्री-समुद्रदत्तचरित्र के ३४५ श्लोकों को १२ छन्दों में, दयोदयचम्पू के १६६ श्लोकों को ११ छन्दों में और मुनिमनोरञ्जनशतक के १०० श्लोकों को १ छन्द में निबद्ध किया है।

अब कुछ छन्दों के लक्षण एवं कवि द्वारा उनके प्रयोग का विवेचन प्रस्तुत है :—

उपजाति—

"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु
वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥"

—छन्दोमंजरी, २।३

श्रीज्ञानसागर ने जयोदय महाकाव्य के ७५८, वीरोदय के ५०३, सुदर्शनोदय के १३८, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र के १३४ और दयोदयचम्पू के २६ श्लोकों में इस छन्द को निबद्ध किया है। समीक्षकों के अनुसार इस छन्द का प्रयोग शृङ्गाररस के आलम्बनभूत उदात्तनायिकाओं के रूपवर्णन, वसन्तर्तु एवं उसके अंगों के वर्णन में करना चाहिए।[1] अपने आलोच्य कवि के काव्यों को देखकर यह ज्ञात होता है कि उपजाति के प्रयोग सम्बन्धी उपर्युक्त नियम की ओर उनका कोई ध्यान न था। क्योंकि उन्होंने अपने काव्यों में अधिकांशतः प्रायः प्रत्येक सर्ग में इस छन्द का प्रयोग कर दिया है। उन्होंने इस छन्द का प्रयोग न केवल वसन्त वर्णन में ही[2] अपितु युद्ध-वर्णन में भी किया है।[3] उन्होंने नगर-वर्णन में भी इस छन्द के प्रयोग में अपनी कुशलता का परिचय दिया है[4], उनकी यह कुशलता नायिका के रूप-वर्णन में भी दृष्टिगोचर हो जाती है।[5] पिंगलाचार्यों द्वारा बताए गए उपजाति के प्रायः सभी भेद उनके काव्यों में दृष्टिगोचर हो जाते हैं।[6] 'स्पष्ट है कि कवि इस छन्द के कुछ निश्चित स्थलों के अतिरिक्त भी इसका प्रयोग करने में कुशल है।

---

१. "शृंगारालम्बनोदारनायिकारूपवर्णनम् ।
वसन्तादि तदङ्गञ्च सच्छायमुपजातिभिः ॥"

—सुवृत्ततिलकः ३।१७

२. वीरोदय, ६।१-२, ४-१३

३. जयोदय, ८।१-३, ५-६०, ६३, ६५७-७५

४. वीरोदय, २।२, ५, ७, ६-१२, १४, १६-२२, ३५-४४

५. जयोदय, ११।१-३८, ४०-४७, ४६-५१, ५३-५६, ६२-३८, ७०-७६

६. वही, ८।१ (जाया); २(बुद्धि), ३ (शाला), ५ (हंसी), ८(रामा), ६ (माला); सुदर्शनोदय, १।४ (प्रेमा), ५ (ऋद्धि)।

वियोगिनी—

'विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी ।'

छन्दों में मात्रा की दृष्टि से, श्रीज्ञानसागर के काव्यों में इस छन्द का तृतीय स्थान है। कुछ पिङ्गलाचार्यों ने इस छन्द का नाम सुन्दरी भी दिया है।[1]

कवि ने इस छन्द का प्रयोग जयोदय के २७५, वीरोदय के ४२, सुदर्शनोदय के ३५, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र के २७ और दयोदयचम्पू के २ श्लोकों में किया है। इस प्रकार वियोगिनी छन्द में निबद्ध श्लोकों की संख्या ३८१ है। इस छन्द का प्रयोग कवि ने विवाह-वर्णन[2] कन्या की विदा एवं नदी वर्णन[3] और देवगणों द्वारा भगवज्जन्माभिषेक वर्णन[4] में किया है।

रथोद्धता—

'रान्तराविह रथोद्धता लगौ ।'

—वृत्तरत्नाकर ३।३८

रथोद्धता छन्द के प्रयोग के विषय में विद्वानों का मत है कि इसका प्रयोग चन्द्र, चन्दनादि उद्दीपन विभावों के वर्णन में अच्छा होता है।[5] किन्तु हमारे आलोच्य महाकवि श्रीज्ञानसागर ने इस छन्द का प्रयोग मुनि-उपदेशवर्णन,[6] दूत-वार्ता, युद्धसज्जा[7] एवं नगरागमनवर्णन[8] में किया है। यह छन्द जयोदय के २७५

---

१. 'म्रयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः सजरा लगौ यदि सुन्दरी तदा ।'

—छन्दोमञ्जरी, ३।६

२. जयोदय, १०।१-८१

३. वही, १३।१-८२

४. वीरोदय, ७।१-३६

५. रथोद्धता विभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु ।'

—सुवृत्ततिलक, ३।१८ का पूर्वार्ध।

६. जयोदय, २।१-११०, ११३, ११६-१२०, १२२, १२४-१२६ तथा १३६

७. वही, ७।५८-१०४

८. वही, २१।१-६६, ८६-६०

श्लोकों में, वीरोदय और सुदर्शनोदय के एक-एक श्लोक में (इस प्रकार कुल मिलाकर २७७ श्लोकों में) उपलब्ध होता है। कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों में मात्रा की दृष्टि से इसका स्थान चतुर्थ है।

मात्रासमक—

"मात्रासमकं नवमो लगान्तम्।"

—वृत्तरत्नाकर, २।३२

सोलह मात्राओं वाले इस छन्द का प्रयोग कवि ने जयोदय के २६६, वीरोदय के १२ सुदर्शनोदय के १७, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र के ३ दयोदयचम्पू के ४ (इस प्रकार कुल २६२) श्लोकों में किया है। मात्रा की दृष्टि से इस छन्द का स्थान कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों में पंचम है। पिंगलाचार्यों ने इस छन्द के वानवासिका, चित्रा, उपचित्रा, विश्लोक एवं पादाकुलकवृत्त नामक भेद किये हैं।[1] किन्तु कवि ने सर्वत्र ही इस छन्द के पादाकुलक नामक भेद का प्रयोग किया है, जिसमें ह्रस्व अथवा लघु का बन्धन नहीं होता।[2] इस छन्द का प्रयोग कवि ने सर्ग-समाप्ति,[3] वन-क्रीड़ा वर्णन[4] और नायक-नायिका-प्रेम-वर्णन[5] में किया है।

द्रुतविलम्बित—

"अभिव्यक्तं नभभरैरक्षरैर्द्वादशाक्षरम्।
वदन्ति वृत्तजातिज्ञा वृत्तं द्रुतविलम्बितम्॥"

—सुवृत्ततिलक, १।२७

कवि ने इस छन्द में जयोदय के १६४, वीरोदय के ६, सुदर्शनोदय के ४, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र के ३२ और दयोदयचम्पू के ४ (इस प्रकार से कुल २४३) श्लोक निबद्ध किए हैं। मात्रा की दृष्टि से कवि के काव्यों में प्रयुक्त छन्दों में इस छन्द का स्थान छठा है। कवि ने अपने काव्यों में इस छन्द का प्रयोग चिन्ता, मति आदि भाव-वर्णन[6] और वैराग्य-वर्णन[7] में किया है।

---

१. छन्दःशास्त्रम्, ४।४२-४७

२. 'यदतीतकृतविविधलक्ष्मयुतैर्मात्रासमादिपादैः कलितम्।
अनियतवृत्तपरिणामयुक्तं प्रथितं जगत्सु पादाकुलकम्॥'

—वृत्तरत्नाकर, २।३७

३. वीरोदय, १।३६

४. वही, १४।१-८२, ८७, ६३-६४, ६६

५. जयोदय, २२।१-८२, ८८, ६१

६. वही, ६।१-८६

७. (क) वही, २५।१-८६
(ख) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ७।१-३०

आर्या—

"यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ।।"

—श्रुतबोध, ४

मात्रा की दृष्टि से कवि के काव्यों में प्रयुक्त इस छन्द का स्थान आठवाँ है। इस छन्द में जयोदय के १९३, वीरोदय के २६, सुदर्शनोदय और दयोदयचम्पू का एक-एक (इस प्रकार से कुल २२१) श्लोक निबद्ध हैं। कवि ने इस छन्द के समस्त भेदों का प्रयोग किया है। इस छन्द का प्रयोग कवि ने स्वयंवरवर्णन[1] और स्वप्न-वर्णन[2] में किया है।

वसन्ततिलका—

'स्भौ जौ गौ वसन्ततिलका ।'

—छन्दोऽनुशासनम् २।३१

कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों में मात्रा की दृष्टि से वसन्ततिलका छन्द का स्थान दसवाँ है। यह छन्द जयोदय के १२१, वीरोदय के ४०, सुदर्शनोदय के १५, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र के २ और दयोदय चम्पू के ५—इस प्रकार से कुल १८३ श्लोकों में निबद्ध किया गया है। इस छन्द का प्रयोग कवि ने काव्य के उपसंहार में[3] और प्रभातवर्णन में[4] किया है।

कालभारिणी—

"विषमे सजसा यदा गुरू चेत्, सभरा येन तु कालभारणीयम् ।'

—छन्दोमञ्जरी, ३।१२

कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों में मात्रा की दृष्टि से इस छन्द का बारहवाँ स्थान है। यह छन्द केवल जयोदय के १४१ श्लोकों में निबद्ध है। इस छन्द का प्रयोग कवि ने पाणिग्रहण वर्णन एवं बारात-वर्णन[5] में किया है।

शार्दूलविक्रीडित—

"मसजैः सततैर्गेन युक्तमेकोनविंशवत् ।
शार्दूलक्रीडितं प्राहुश्छिन्नं द्वादशसप्तभिः ।।"

—सुवृत्ततिलक, १।३६

कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों में इस छन्द का स्थान मात्रा की दृष्टि से १३वाँ है। यह छन्द जयोदय के ६४, वीरोदय के ३८, सुदर्शनोदय के २०, श्लोकों में प्रयुक्त

१. जयोदय, ६।१, ३-१३१
२. वीरोदय, ४।३४-३६, ३९-५६
३. वही, २२।१-२७
४. जयोदय, १८।१।८६
५. वही, १२।१-८१, ८३-११८, १२१-१३९

किया गया है। इस छन्द के प्रयोग के विषय में विद्वानों का मत है कि इस छन्द का प्रयोग राजाओं की वीरता की प्रशंसा में श्रेष्ठ होता है।[1] परन्तु श्रीज्ञानसागर ने इस छन्द का प्रयोग सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन के लिए और सर्ग का नामोल्लेख करने के लिए किया है।

दोहा—

'यस्या: प्रथमतृतीययो: पादयो: प्रथमं षट्कलो गण:,
ततश्चतुष्कल: ततस्त्रिकल इत्येवं त्रयोदश मात्रा:, द्वितीय-
चतुर्थयो: षट्कलचतुष्कलौ समानौ त्रिकलस्थाने एको
लघुरेवेत्येकादश मात्रास्तदिदमष्टाचत्वारिंशन्मात्राभिर्दोहाच्छन्द: ।'

—वृत्तरत्नाकर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
चतुर्थ संस्करण, पञ्चमोऽध्याय:, पृ० सं० १४७-१४८

यह छन्द जयोदय के ४ एवं सुदर्शनोदय के १ श्लोक (इस प्रकार केवल ५ श्लोकों में प्रयुक्त किया गया है।[2]

पुष्पिताग्रा—

'अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।।'

—वृत्तरत्नाकर, ४।१०

यह छन्द जयोदय के केवल २ ही श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है।[3]

पञ्चचामर—

'जरौ जरौ वदन्ति पञ्चचामरम्'।

—वृत्तरत्नाकर, ३।१५२

यह छन्द जयोदय के केवल एक ही श्लोक में प्रयुक्त हुआ है।[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीज्ञानसागर जहाँ उपजाति जैसे अति प्रचलित छन्द का प्रयोग करने में कुशल हैं, वहाँ रथोद्धता एवं कालभारिणी जैसे अप्रचलित छन्दों का प्रयोग भी उन्होंने अपने काव्यों में यथास्थान किया है। कवि का छन्दोविधान महाकाव्य में छन्दसम्बन्धी नियमों की शृंखला से मुक्त है। उनके

---

१. 'शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलक्रीडितं मतम्।

—सुवृत्ततिलक, ३।२२

२. (क) जयोदय, २०।९०, २२।८९, २३।८२-८३
(ख) सुदर्शनोदय, ६।२३

३. जयोदय, १०।१११, ११८

४. वही, २०।२५

काव्यों में प्रायः छन्दों का मिश्रित प्रयोग मिलता है। किन्तु यह प्रयोग रसचर्वणा में बाधक नहीं बना है।

(इ) गीत राग-रागिणी--

ताल एवं रागनिबद्ध कविता गाई जाने पर गीत की संज्ञा धारण कर लेती है। लयबद्धता को सुन्दर कविता और संगीत का गुण माना गया है। साहित्य और संगीत का बड़ा भारी सम्बन्ध है। इन दोनों को एक ही स्थान पर उपस्थिति सहृदय को आह्लाद प्राप्त कराने में सहायक है। अतः यदि कोई कवि अपने काव्य में संगीत को भी शामिल कर लेता है तो उसका काव्य अधिक मनोरम हो जाता है।

महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों में गीत—

श्रीज्ञानसागर ने अपने संस्कृत-काव्यों में स्थान-स्थान पर अपनी संगीत-प्रियता का परिचय दिया है। कभी वसन्त की शोभा से आकृष्ट होकर तो, कभी रात्रि के भयानक अन्धकार से डरकर, कभी प्रभातकालीन सौन्दर्य से प्रभावित होकर, तो कभी भक्तिवश उन्होंने गीतों के रूप में भी अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये हैं। उनके काव्य में गाए गए गीत क्रमशः प्रभाती, काफीहोलिकाराग, सारंग-राग, श्यामकल्याणराग और सौराष्ट्रीय रागों में निबद्ध हैं। कुछ गीत 'कव्वाली' शैली में भी पाए जाते हैं।

कवि के काव्यों में प्राप्त गीतों की संख्या ३७ है। इनमें से चार गीत जयोदय महाकाव्य के २३वें सर्ग में हैं; १ गीत २५ सर्ग में है, १ गीत दयोदयचम्पू के सप्तम लम्ब में है, ८ गीत सुदर्शनोदय के पंचम सर्ग में हैं, ९ गीत षष्ठ सर्ग में हैं, ८ गीत ७वें सर्ग में है और ३ गीत नवें सर्ग में हैं।

'जयोदय' एवं दयोदयचम्पू' में गीत किन रागों में गाए गए हैं, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। उन्हें गायक एवं संगीतकार की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। सुदर्शनोदय काव्य में २ गीत प्रभात राग भैरव में, दो गीत काफी होलिकाराग में, ६ गीत सारंगराग में, २ गीत श्यामकल्याण राग में, ११ गीत देशिक सौराष्ट्रीय राग में, ६ गीत कव्वाली शैली में, १ गीत छंदचाल नामक शैली में और १ गीत रसिकराग में निबद्ध हैं। प्रभाती, काफीहोलिका, सारंग; श्यामकल्याण—ये चार राग तो संगीत के बहुचर्चित राग हैं। देशिक सौराष्ट्रीय क्षेत्रविशेष का राग है। कव्वाली शैली आज के उर्दूप्रिय सहृदयसमाज की अतिप्रसिद्ध गायन शैली है। रसिक राग ब्रजप्रवेश में प्रसिद्धिप्राप्त रसिया नामक राग का ही नामान्तर प्रतीत होता है। किन्तु छन्दचाल नामक गायन-शैली का संगीतशास्त्र में कोई पारिभाषिक

शब्द नहीं मिलता। अब कुछ गीतों के राग-सहित उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

प्रभाती राग-भैरव—

इस राग का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

राग-भैरव	संवादी—ऋषभ
	स्वर—रे, ध कोमल, अन्य शुद्ध
थाट-भैरव	गायन समय—प्रातःकाल तथा
जाति-सम्पूर्ण	गेयवस्तु—भक्ति के गीत[1]
वादी-धैवत	

महाकवि श्रीज्ञानसागर द्वारा इस राग में निबद्ध एक गीत इस प्रकार है :—

"अहो प्रभातो जातो भ्रातो भवभयहरणजिनभास्करतः ॥स्थायी॥
पापप्राया निशा पलायामास शुभायाद्भूतलतः।
नक्षत्रता दृष्टिपथमपि नाञ्चति सितद्युतेर्निर्गमनमतः ॥स्थायी॥
खगभावस्य च पुनः प्रचारो भवति दृष्टिपथमेष गतः।
क्रियते विप्रवरैरिहादरो जडजातस्य समुत्सवतः ॥स्थायी॥
साऽमेरिकाविकस्य तु मलिना रुचिः सुमनसामस्ति यतः।
भूराजो शान्तये वन्दितुं पादौ लगतु विरागभृतः ॥स्थायी॥[2]

काफी होलिकाराग—

इस राग का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

राग—काफी,	संवादी—स
थाट—काफी,	स्वर—ग, नि कोमल, अन्य शुद्ध,
जाति—सम्पूर्ण	गायन समय—मध्य रात्रि
वादी—प,	गेय वस्तु—होली, भजन इत्यादि।[3]

ज्ञानसागर जी द्वारा इस राग में निबद्ध एक गीत उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है :—

---

१. विनायकराव पटवर्धन विरचित, 'रागविज्ञान', तृतीयभाग, सप्तम संस्करण, पृ० सं० १०६
२. सुदर्शनोदय, ५ प्रथम गीत।
३. (क) वसन्त, संगीत विशारद, (प्रकाशक—संगीत कार्यालय हाथरस) पृ० १८१
(ख) विनायकराव पटवर्धन 'राग-विज्ञान' तृतीयभाग, पृ० सं० १८४

कदा समयः समायादिह जिनपूजायाः ।
कञ्चनकलशे निर्मलजलमधिकृत्य मञ्जु गङ्गायाः ।
वारांधारावसर्जनेन तु पदयोर्जिनमुद्रायाः ।
लयोऽस्तु कलङ्ककलायाः ।। स्थायी ।।
मलयगिरेश्चन्दनमथ नन्दनमपि लात्वा रम्भायाः ।
केशरेण सार्धं विसृजेयं पदयोर्जिनमुद्रायाः,
न सन्तु कुतश्चापायाः ।। स्थायी ।।
मुक्तोपमतन्दुलदलमुज्ज्वलमादाय श्रद्धायाः ।
सद्भावेन च पुञ्जं दत्वाऽप्यग्रे जिनमुद्रायाः
पतिः स्यां स्वर्गरमायाः ।। स्थायी।।
कमलानि च कुन्दस्य च जातेः पुष्पाणि च चम्पायाः ।
अर्पयामि निर्दर्पतयाऽहं पदयोर्जिनमुद्रायाः,
यतः सौभाग्यं भायात् ।।स्थायी।।[1]

श्यामकल्याण राग—

श्यामकल्याण राग का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

राग—श्यामकल्याण जाति षाडव सम्पूर्ण
थाट—काफी
वादी—पंचम गायन समय—रात्रि का प्रथम प्रहर ।[2]
संवादी—षड्ज
स्वर—कोमल नि, तीव्र म

इस राग में निबद्ध कवि का एक गीत उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है :—

"जिनप परियामो मोदं तव मुखभासा ।।
खिन्ना यदिव सहजकद्विधिना, निः स्वजनीनिधिना सा ।।
सुरसनमशनं लब्ध्वा रुचिरं सुचिरक्षुधितजनाशा ।।
केकिकुलं तु लपत्यधिमधुरं जलदस्तनितसकाशात् ।।
किन्न चकोरदृशोः शान्तिमयी प्रभवति चन्द्रकला सा ।।"[3]

सारङ्ग राग

सारङ्ग राग का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

राग—शुद्ध सारंग स्वर दोनों म, दोनों नि
गायन समय-दिन का दूसरा प्रहर[4]

---

१. सुदर्शनोदय, ५ चतुर्थ गीत के प्रथम चार भाग ।
२. नारायण लक्ष्मण गुणे, संगीतप्रवीणदर्शिका (प्र० भा०), द्वितीय संस्करण पृ० सं० ५८
३. सुदर्शनोदय, ५ छठा गीत ।
४. संगीत विशारद, पृ० सं० १८२

जाति—षाडव
वादी—रे
संवादी—प

महाकवि द्वारा इस राग में निबद्ध एक गीत उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है :—

"स वसन्त आगतो हे सन्तः, स वसन्तः ॥
परपुष्टा विप्रवराः सन्तः सन्ति सपदि सूक्तमुदन्तः ॥
लताजातिरुपयाति प्रसरं कौतुकसान्मधुरवरं तत् ॥
लसति सुमनसामेष समूहः किमुत न सखि विस्फुरवन्तः ॥
भूरानन्दमयीयं सकला प्रचरति शान्तैः प्रभवं तत् ॥[1]

सौराष्ट्रीय राग—

इस राग का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

राग—सौराष्ट्रीय, संवादी—षड्ज
थाट—भैरव, स्वर—दोनों ध,
वादी—मध्यम, गायन समय—प्रातःकाल[2]

उदाहरण—

"न हि परतल्पमेति स ना तु ॥स्थायी॥
किन्तु भूरागस्य भूयाद् बुधो विवदे जातु,
क्षणिकनर्मणि निजयशोमणिसुलभं च जहातु ।
न हि परतल्पमेति स ना तु ॥१॥
भोजने भुक्तोज्झिते भुवि वो जनेश्वरि, भातु,
स्वकरोऽपि स कुक्करो न हि परो दृशमपि यातु ।
न हि परतल्पमेति स ना तु ॥[3]

कव्वाली—

सङ्गीत में दो गायन शैलियाँ हैं—बड़ा ख्याल एवं छोटा ख्याल। कव्वाली छोटा ख्याल नामक गायिकी का भेद है। इसका आविष्कार सबसे प्रथम चौदहवीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ, कवि तथा राजमंत्री हजरत अमीर खुसरू ने किया था। इस गीत की कविता छोटी होती है। गीतों में

---

१. सुदर्शनोदय, ६ प्रथम गीत।
२. सौराष्ट्रीयं भैरवस्यावमेले मांशः पूर्णो धैवतघ्नद्वयोगी।
आरोहे स्यात्तीव्रधोऽन्योवरोहे प्रातर्गेयो दुर्बलोऽस्मिन्निषादः ॥"
—रागकल्पद्रुमाङ्कुरे ॥८॥
विष्णुनारायण भातखण्डे, हिन्दुस्तानी संगीतपद्धति, पृ० सं० १४१
३. सुदर्शनोदय, ६।७वें गीत के प्रथम दो भाग।

शृङ्गार एवं करुण रस प्रधान होता है। फारसी एवं उर्दू भाषा का प्रयोग होता है। मुसलिम समाज के अतिरिक्त हिन्दुओं में भी शैली का प्रचार पाया जाता है। इसको गाने वाले 'कव्वाल' कहलाते हैं। कव्वाली के साथ ढोलक एवं तालियाँ बजाई जाती हैं। इसे द्रुत लय में गाया जाता है। इसमें एकताल, त्रिताल, झपताल रूपक एवं पश्तो इत्यादि तालों का विशेष प्रयोग होता है।[1]

उदाहरण—

"समस्ति यताऽमनो नूनं कोऽपि महिमूर्ध्न्यहो महिमा ॥स्थायी॥
न स विलापी न मुद्वापी दृश्यवस्तुनि किल कदापि।
समन्तात्तत्र विधिशापिन्यदृश्ये स्वात्मनीव हिया ॥समस्ति. ॥

नरोत्तमनवीनता यस्मान्न भोगाधीनता स्वस्मात्।
सुभगतमपक्षिणस्तस्मात् किं करोत्येव साप्यहिमा ॥ समस्ति. २ ॥

न दक् खलु दोषमायाता सदानन्दा समा याता।
क्वापि बाधा समायाता द्रुमालीवेष्यते सहिमा ॥ समस्ति. ३ ॥

इयं भूराश्रितास्त्यभितः कण्टकैर्यत्पदो रुदितः।
स चमंसमाश्रयो यदितः कुतः स्यात्तस्य वा महिमा ॥ समस्ति. ४ ॥[2]

संगीत—शास्त्रियों ने जिस राग गायन का जो समय बताया है, श्री ज्ञानसागर ने अपने गीतों का भी वही समय रखा है। काफीहोलिकाराग और श्यामकल्याण राग का गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। सुदर्शन ने अपने सन्ध्याकालीन पूजन में ही इन गीतों को गाया है। सारंग राग गायन का समय दिन का दूसरा प्रहर है। कवि ने इस राग में निबद्ध गीत की विषय-वस्तु के रूप में वसन्तवेलावर्णन का चयन किया है। चम्पापुर के सभी नगरवासियों ने दोपहर में वसन्तोत्सव और वन-विहार किया है।

संगीत भावपक्ष को प्रबल बनाने का मधुरतम साधन है। अपने काव्यों में जहाँ-जहाँ कवि ने इन गीतों को निबद्ध किया है, वहाँ-वहाँ कवि की संगीतप्रियता का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही उस-उस स्थल का काव्य-सौन्दर्य भी बढ़ गया है।

---

१. (क) विक्रमादित्य सिंह निगम, संगीत कौमुदी, पृ० सं० ११३-११४
(ख) शान्तिगोवर्धन, संगीतशास्त्रदर्पण, पृ० सं० ६६-६७
(ग) वसन्त, संगीत-विशारद, पृ० सं० १५४

२. सुदर्शनोदय, ८ पहला गीत।

(ई) गुण—

'गुण' शब्द का तात्पर्य है बढ़ाने वाला। लौकिक जगत् में गुणवान् व्यक्ति में शौर्य्य, औदार्य्य, सारल्य, धैर्य आदि गुणों के समान साहित्य-जगत् में माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन गुण सगुण काव्य में देखे जाते हैं। हम देखते हैं कि समाज में जिस व्यक्ति के पास जितने अधिक गुण होते हैं, उसमें उतनी अधिक मानवता होती है। ऐसे व्यक्ति की प्रतिष्ठा भी खूब होती है। इसी प्रकार साहित्य-जगत् में जिस काव्य में माधुर्यादि गुण जितनी अधिक मात्रा में प्रयुक्त किये जाते हैं, उस काव्य में रसाभिव्यञ्जना भी उसी मात्रा में होती है; और ऐसा काव्य साहित्य जगत् में प्रतिष्ठा भी अधिक प्राप्त करता है। निर्गुण व्यक्ति के समान ही माधुर्यादि गुणों से रहित काव्य रसाभिव्यञ्जना में समर्थ न होने के कारण सहृदयग्राह्य नहीं होता। अतः यदि शौर्य, औदार्य आदि गुण मानवता के द्योतक हैं, तो माधुर्यादि गुण रसाभिव्यञ्जना के द्योतक हैं। स्पष्ट है कि गुणों की सत्ता काव्य में जहाँ-जहाँ होगी, वहाँ-वहाँ रसाभिव्यञ्जना होगी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली शूरता, उदारता इत्यादि के समान ही काव्य की आत्मा रस की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली मधुरता इत्यादि विशेषताओं को ही 'गुण' कहा जाता है।[1]

काव्यशास्त्रियों में रस के उत्कर्षाधायक इस तत्त्व के भेदों के विषय में विभिन्न मान्यताएँ प्रचलित हैं। किन्तु मान्यता केवल तीन गुणों की ही प्राप्त हुई है; और वे तीन गुण हैं—माधुर्य, ओज और प्रसाद।[2]

माधुर्य गुण का स्वरूप एवं उसके अभिव्यञ्जक तत्त्व—

मन को द्रवीभूत करने वाला संयोग शृङ्गार में विद्यमान आह्लादस्वरूप गुण ही माधुर्य गुण है। संयोग शृङ्गार के अतिरिक्त इस गुण का चमत्कार करुण, विप्रलम्भ और शान्तरस में भी क्रमिक अतिशयता से देखा जाता है।[3] माधुर्य गुण के अभिव्यञ्जक तत्त्व इस प्रकार हैं—

(क) वर्णों का संयोग अपने वर्ग के पंचम वर्णों से।

(ख) टवर्ग को छोड़कर कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग और पवर्ग का प्रयोग।

---

१. "ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥"
—काव्यप्रकाश (मम्मट), ८।६६

२. माधुर्यौजःप्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश।"
—वही, ८।६८ का पूर्वार्ध।

३. "आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्॥
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।"
—वही, ८।६८ का उत्तरार्ध, ६९ का पूर्वार्ध।

(ग) ह्रस्व रकार और णकार का प्रयोग।
(घ) समासरहित अथवा स्वल्पसमासवाली रचना।[1]

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में माधुर्य गुण

महाकवि ज्ञानसागर के सभी काव्य शान्तरस-प्रधान हैं। उनमें यत्र-तत्र संयोग शृङ्गार और करुण रस का भी प्रयोग मिलता है। ऐसी स्थिति में उनके काव्यों में माधुर्य-गुण का प्राचुर्य होना स्वाभाविक है। इस तथ्य से सम्बन्धित कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) 'शशिहरो भविता सविता पिता तदुदयेन हसिष्यति पङ्कजम्।
अलिनि चिन्तयतीति विषस्थिते द्रुतमिहोद्भजतेऽम्बुजिनीं गजः॥[2]

(क) 'कलकृतामितिझंकृतनूपुरं क्वणितकिङ्किणीकङ्कृतकङ्कणम्।
मृगदृशां मुखपद्मविदक्षया रथमिनः कृतवान् किल मन्थरम्॥'[3]

(ग) "लतेव मूद्वी मृदुपल्लवा वा कादम्बिनी पीनपयोधरा वा।
समेखलाभ्युन्नतिमन्नितम्बा तटी स्मरोत्तानगिरेरियं वा।
कापीव वापी सरसा सुवृत्तमुद्वेव शाटीव गुणैकसत्ता।
विधोः कला वा तिथिसत्कृतीदृषाऽलङ्कारपूर्णा कवितेव सिद्धा॥"[4]

(घ) "नरो न यो यत्र न भाति भोगी भोगो न सोऽस्मिन्न वृषोपयोगी।
वृषोपयोगोऽपि न सोऽथ न स्याद्यथोत्तरं संगुणसम्प्रयोगी॥
शीलान्विता सम्प्रति यत्र नारी शीलं सुसन्तानकुलानुसारि।
पित्रोरनुज्ञामनुवर्तमाना समीक्ष्यते सन्ततिरङ्गजानाम्॥"[5]

(क) "कामोऽस्त्यसौ किमुत मे हृदयं विवेश
सम्मोहनाय किमिहागत एष शेषः।
प्राक्खण्डलोऽयमथवा मृदुसन्निवेशश्चन्द्रो ह्यवातरदहो मम सम्मुदे सः॥[6]

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम उदाहरण में शान्त रस, द्वितीय में वसन्त, तृतीय में जिनमति का सौन्दर्य, चतुर्थ में नगर-वर्णन और पंचम उदाहरण में शृङ्गार

---

१. "मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू।
अवृत्तिमंध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा॥"
—काव्यप्रकाश (मम्मट), ८।७४

२. जयोदय, २५।३८
३. वीरोदय, ६।२६
४. सुदर्शनोदय, २।५-६
५. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।३-४
६. जयोदयचम्पू, ७।२३

रस की शोभा स्पष्ट ही प्रतीत हो रही है। इन उदाहरणों में असमस्तपदावली भी दृष्टिगोचर हो रही है और दूसरे उदाहरण में वर्ण अपने वर्ग के पंचम अक्षर से संयुक्त हैं। अतएव यहाँ पर माधुर्य गुण है। माधुर्य गुण के कारण ही यहाँ पर शान्त इत्यादि रस अपेक्षाकृत अधिक आह्लादक हो गए हैं।

ओजोगुण का स्वरूप एवं उसके अभिव्यञ्जक तत्त्व—

वीररस, वीभत्स रस और रौद्ररस में क्रमशः अतिशयता से रहने वाली, चित्त के विस्तार की कारणभूत दीप्ति को ही ओज कहते हैं।[1] ओजो गुण के अभिव्यञ्जक तत्त्व इस प्रकार हैं—

(क) वर्ग के प्रथम और तृतीय अक्षरों का द्वितीय और चतुर्थ से योग।
(ख) रेफ का वर्ग के किसी भी अक्षर से किसी प्रकार का योग।
(ग) एक से अक्षरों का साथ-साथ प्रयोग।
(घ) टवर्ग का बहुल प्रयोग।
(ङ) दीर्घ समास से युक्त पदावली का प्रयोग।
(च) उद्धत रचना।[2]

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में ओजोगुण

श्रीज्ञानसागर के काव्यों में ओजो गुण भी कुछ स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है, जिसके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) 'य एकचक्रस्य सुतोऽत्र चक्रः स्यान्नश्चतुश्चक्रतयैव शक्रः।
जयो जयस्येति समुन्नताङ्गाश्चीच्चकुरित्यत्र जवाच्छताङ्गाः॥
नभोऽत्र भो त्रस्तमुदीरणाग्निर्भवदभयनामतिदारुणाग्निः।
सुभैरवैः सैन्यरवैः करालवाचालवक्त्रैरिव पूच्यकाल॥'[3]

(ख) 'उत्फुल्लोत्पलचक्षुषां मुहुरथाकृष्टाऽऽननश्रीर्बला-
त्कारावद्धतनुस्ततोऽयमिह यद्विम्बावतारच्छलात्।
नानानिर्मलरत्नराजिजटिलप्रासादभित्तावितिं
तच्चन्द्राश्मपतत्पयोभरमिषाच्चन्द्रग्रहो रोदिति॥'[4]

---

१. 'दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः॥
बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च।
—काव्यप्रकाश (मम्मट) ८।६९ का उत्तरार्ध, ७० का पूर्वार्ध।

२. 'योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेफ तुल्ययोः।
टादिः शषौ वृत्तिर्दैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि॥'
—वही (मम्मट), ८।७५

३. जयोदय; ८।५, ६

४. वीरोदय; २।४६

(ग) 'उत्खातांघ्रिपवद्धि निष्फलमितः सञ्जायते चुम्बितं
पिष्टोपासशरीरवच्च लुलितोऽप्येवं न याति स्मितम् ।
संभृष्टामरबद्दिसर्जनमतः स्याद्दासि अस्योचितं
भिन्नं जातु न मे हृगन्तशरकैश्चेतोऽस्य सम्बर्मितम् ॥'[1]

(घ) 'गतो नृपद्वार्यपिनिष्फलत्वमेवान्वभूत्केवलमात्मसत्त्वः ।
पुनः प्रतिप्रातरिदं ब्रुवाणः बभूव भद्रः करुणैकशाणः ॥'[2]

उपर्युक्त उदाहरणों में पहला उदाहरण युद्ध-वर्णन का है । इस उद्धरण में एक से अक्षर, रेफ का संयुक्त प्रयोग एवं समस्त पदावली दृष्टिगोचर हो रही है । इन विशेषताओं के कारण ओजो गुण वीर रस को दीपित कर रहा है । दूसरे, तीसरे उदाहरण में दीर्घ समास ओजो गुण का व्यञ्जक है । इसी प्रकार चौथे उदाहरण में भी समस्त पदावली प्रयुक्त की गई है ।

प्रसादगुण का स्वरूप एवं उसके अभिव्यञ्जक तत्त्व—

सब रसों में स्थिर रहने वाले गुण को प्रसाद गुण कहा जाता है ।[3] जिस रचना को पढ़ते ही उसका अर्थ स्पष्ट हो जाय तो समझना चाहिए कि वहाँ प्रसाद गुण भी है ।[4]

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में प्रसाद गुण

निस्सन्देह कविवर के काव्य प्रसादगुणोपेत हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) "धर्मस्वरूपमिति सैष निशम्य सम्य-
ग्नर्मप्रसाधनकरं करणं नियम्य ।
कर्मप्रणाशनकशासनकुद्धुरीणं
शर्मैकसाधनतयार्थितवान् प्रवीणः ।।"[5]

(ख) "रराज मातुरुत्सङ्गे महोदारविचेष्टितः ।
क्षीरसागरवेलाया इवाङ्के कौस्तुभो मणिः ॥
अगादपि पितुः पार्श्वे उदयाद्रेरिवांशुमान् ।
सर्वस्य भूतलस्यायं चित्ताम्भोजं विकासयन् ॥"[6]

---

१. सुदर्शनोदय, ७।३१
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।३३
३. "शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः ॥
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः ।"
—काव्यप्रकाश(मम्मट), ८।७० का उत्तरार्ध और ७१ का पूर्वार्ध ।
४. 'श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् । साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ॥ —वही, ८।७६
५. जयोदय, २७।६५
६. वीरोदय, ८।८६

(ग) "हे नाथ मे नाथ मनोऽविकारि सुराङ्गनाभिश्च तदेव वारि।
मनोरमायां तु कथं सरस्यां सुदर्शनस्येत्थमभूत्समस्या॥
मुनिराह निशम्येदं शृणु तावत्सुदर्शन।
प्रायः प्राग्भवभाविन्यौ प्रीत्यप्रीती च देहिनाम्॥"[1]

(घ) 'रे रे कियज्जल्पसि कोऽसि नाहं
जानाम्यपि त्वां कुत आगतोऽसि।
दूरं व्रजोन्मत्त! मृषोक्तिकोऽसि
संजायते भूतपिशाचदोषी॥"[2]

(ङ) "पत्नी तदेकनामाऽभूत्तस्यच्छन्दोऽनुगामिनी।
स्मरस्य रतिवत्कान्तिरिवेन्दोर्भव भास्वतः॥
गुणपालाभिधो राजश्रेष्ठः सकलसम्मतः।
कुबेर इव यो वृद्ध-श्रवसो द्रविणाधिपः॥"[3]

(ङ) भाषा—

हमारे विचारों की अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन भाषा है। व्यक्ति अन्य बातों में अशक्त होने पर भी सशक्त भाषाभाषी होने के कारण जीवन के कई क्षेत्रों में प्रायः विजय पा जाता है। साहित्यकार के लिए तो भाषा का महत्त्व अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा और भी अधिक है। योद्धा के हाथ में तलवार का जो महत्त्व होता है, काव्यकार के काव्य में वही महत्त्व भाषा का है। साहित्यकार अपनी भाषा के माध्यम से ही अन्य व्यक्तियों के समीप आ पाता है। स्पष्ट है कि भाषा कलापक्ष का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है।

अब प्रश्न यह उठता है कि एक कवि को किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिए? प्रत्येक काव्यप्रणेता का, सामाजिक प्राणी होने के नाते, यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने काव्य में ऐसी भाषा का प्रयोग करे जो उसके हृदय की आवाज जनता तक पहुँचा सके। यदि वह पाण्डित्य-प्रदर्शन के साथ ही जनता तक कुछ सन्देश भी पहुँचाना चाहे तो ऐसी स्थिति में उसे अधिक सावधानी बरतनी चाहिए।

---

१. सुदर्शनोदय, ४।१५-१६
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।२६
३. दयोदयचम्पू, १।१३, १४

कवि श्रीज्ञानसागर के संस्कृत काव्य-ग्रन्थों की भाषा

श्रीज्ञानसागर ने अपने काव्यों में लौकिक संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है। परन्तु उनके काव्यों में कुछ स्थलों पर समाज में समाई हुई उर्दू भाषा के भी कुछ शब्द आ गये हैं। जैसे 'मेवा'[1], 'अमीर'[2], 'नेक'[3], 'शतरंज'[4], 'बाजी'[5], 'कुरान'[6], 'फिरङ्गी'[7], 'बादशाह'[8], 'खरीदी'[9] इत्यादि। देश में आजकल प्रायः उर्दू मिश्रित हिन्दी बोली जाती है। अतः अनायास ही ये शब्द कवि के काव्यों में आ गये हैं। कवि के काव्यों में 'जयोदय' महाकाव्य की भाषा में प्रौढता, मधुरता, प्रासादिकता, आलङ्कारिकता इत्यादि गुण साथ ही देखने को मिलते हैं।[10] अन्य काव्यों की भाषा 'जयोदय' की अपेक्षा सरल है। कवि ने अपनी भाषा को प्रभाव-पूर्ण बनाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है।।[11] उन्होंने समस्त पदों का प्रयोग भी अत्यल्प मात्रा में किया है, जिससे भाषा में सरलता का भी गुण आ गया है। उनकी भाषा विषय-वर्णनानुरूप भी है। कवि के 'जयोदय', 'वीरोदय', 'सुदर्शनोदय' एवं 'दयोदयचम्पू' की भाषा की सक्षक्तता के विषय में तो कोई विवाद मेरे मन में नहीं है। परन्तु 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' की भाषा में यत्र-तत्र शैथिल्य के दर्शन हो जाते हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने अपने काव्यों में देशकाल एवं विषयवस्तु के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है।

---

१. वीरोदय, १।१
२. वही, १।५
३. वही, १।५
४. वही, १७।१४
५. वही, १७।१४
६. वही, १६।१०
७. वही, १७।२८
८. जयोदय, १६।२०
९. वही, २७।३७
१०. वही, १।१०२
११. (क) 'नाम्बुधौ मकरतोऽरिता हिता' (जल में रहकर मगर से वैर?)
—जयोदय, २।७०

(ख) वंशे नष्टे कुतो वंश-वाद्यस्यास्तु समुद्भवः'
(न रहे बांस न बजे बांसुरी)।
—दयोदयचम्पू, ३।४

(ऊ) शैली—

शैली भावपक्ष और कलापक्ष को जोड़ने का एक साधन है। यही वह तत्त्व है, जिसके द्वारा हम किसी कवि की मौलिकता की परीक्षा कर पाते हैं। 'शैली' शब्द का तात्पर्य है ढंग। अतः साहित्य के क्षेत्र में अपने विचारों को प्रकट करने का जो ढंग कवि या लेखक अपना लेते हैं, उसी को शैली कहते हैं। प्रत्येक कवि या लेखक की अपनी-अपनी शैली होती है। किसी की शैली भावपक्ष की अभिव्यञ्जना कराने में समर्थ होती है तो किसी की शैली उसके पाण्डित्य-प्रदर्शन का साधन होती है। कवि के कहने के इस ढंग को काव्यशास्त्रीय दृष्टि से तीन प्रकार का कहा गया है—

(क) वैदर्भी शैली—

इस शैली में कवि ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है, जो माधुर्य गुण के अभिव्यञ्जक होते हैं। इस शैली में समासों का प्रायः अभाव होता है या कहीं-कहीं स्वल्प समासों की छटा दृष्टिगोचर होती है। इस स्थिति में यह शैली सरल और मधुर होने के कारण काव्य को आह्लादक बना देती है। इसकी यह विशेषता है कि इसमें कलापक्ष को भावपक्ष के अनुरूप ही प्रस्तुत किया जाता है।[1]

(ख) गौडी शैली—

इस शैली में ऐसे वर्णों का प्रयोग किया जाता है, जो ओजो गुण के अभिव्यञ्जक होते हैं। दीर्घसमासों का इसमें बहुतायत से उपयोग किया जाता है। यह शैली आडम्बरपूर्ण होती है। कवि को इस शैली में अपने पाण्डित्यप्रदर्शन का भी अवसर मिल जाता है। अतः इस शैली में रचित काव्य पाठक से बौद्धिक व्यायाम करवाता है।[2]

(ग) पाञ्चाली शैली—

इस शैली में प्रसाद गुण के अभिव्यञ्जक वर्णों का प्रयोग किया जाता है। इसमें पांच-पांच और छः-छः तक पदों के समास भी मिलते हैं। साथ-साथ मधुर-वर्णों का भी प्रयोग मिलता है। वास्तव में यह शैली वैदर्भी और गौडी शैली का मिश्रित रूप है। इस शैली में रचित काव्य को पढ़ने पर वर्ण्य-विषय आसानी से समझा जा सकता है।[3]

महाकवि ज्ञानसागर की शैली—

जब हम उपर्युक्त तीनों शैलियों की विशेषताओं को आलोच्य महाकवि श्रीज्ञानसागर की रचनाओं में घटाते हैं तो ज्ञात हो जाता है कि उनके काव्यों को प्रस्तुत करने की शैली वैदर्भी है। गौडी और पांचाली शैली के उदाहरण उनके काव्यों में अत्यल्प हैं। सर्वप्रथम वैदर्भी शैली के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

---

१. साहित्यदर्पण, ९।२ का उत्तरार्ध, ३ का पूर्वार्ध।
२. वही, ९।३ का उत्तरार्ध, ४ के पूर्वार्ध का अर्धभाग।
३. वही, ९।४

(क) "अखिलानुल्लङ्घ्य जनान् सुलोचना जयकुमारमुपयाता ।
माकन्दक्षारमिव पिकापि का सा मधौ ख्याता ॥
सा देवी राजसुता चेतो यत्तदनुकूलकं लेभे ।
मेघेश्वरगुणमाला वर्णयितुं विस्तराद्रेभे ॥
अवनौ ये ये वीरा नीराजनमामनन्ति ते सर्वे ।
यस्मै विक्रान्तोऽयं समर्पति च नाम तदखर्वे ॥
सद्वंशसमुत्पन्नो गुणाधिकारेण भूरिशो नम्रः ।
चाप इवाश्रितरक्षक एष च परतक्षकः काम्रः ॥"[1]

प्रस्तुत श्लोकों में सुलोचना-स्वयंवर का वर्णन है । यहाँ पर स्वल्पसमासा और असमासा शब्दावली का प्रयोग है । माधुर्य गुण भी स्पष्ट दिखाई दे रहा है । इन श्लोकों के पढ़ने से पाठक के मन में आगे आने वाले वर्ण्य-विषय के प्रति औत्सुक्यपूर्ण आह्लाद भी जागरित होता है ।

(ख) "सुतनुः समभाच्छ्रियाश्रिता मृदुना प्रोच्छनकेन मार्जिता ।
कनकप्रतिमेव साऽशिताप्यनुशाणोत्कशनप्रकाशिता ।
मृदुराप्तजलाभिषेचना प्रथमं प्रावृडभूत्सुलोचना ।
तदनन्तरमुज्ज्वलाम्बरा समवापापि शरच्छ्रियं तराम् ॥"[2]

इन श्लोकों में विवाह के पूर्व किये गए सुलोचना के स्नान एवं अलंकरण का वर्णन है । मधुर शब्दावली के प्रयोग के कारण वर्णन रोचक हो गया है ।

(ग) "नवप्रसङ्गे परिहृष्टचेता नवां वधूटीमिव कामि एताम् ।
मुहुर्मुहुश्चुम्बति चञ्चरीको माकन्दजातामथ मञ्जरीं कोः ॥
आम्रस्य गुञ्जत्कलिकान्तरालेनालीकमेतत्सहकार नाम ।
स्ववर्त्मकर्मक्षण एव पान्थाङ्गिने परासुत्वभृतो वदामः ॥"[3]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने वसन्त ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है । यहाँ पर पाठक के मन में आह्लाद उत्पन्न करने में मधुर शब्दावली से युक्त प्रवाहपूर्ण वैदर्भी शैली पूर्णतया सफल हुई है ।

(घ) "रराज मातुरुत्सङ्गे महोदारविचेष्टितः ।
क्षीरसागरवेलाया इवाङ्के कौस्तुभो मणिः ॥
अगादपि पितुः पार्श्वे उदयाद्रेरिवांशुमान् ।
सर्वस्य भूतलस्यायं चित्ताम्भोजं विकासयन् ॥"[4]

---

१. जयोदय, १०२-१०५
२. वही, १०।२८-२९
३. वीरोदय, ६।२०-२१
४. वही, ८।८-९

यहाँ वैदर्भी शैली में प्रस्तुत भगवान् महावीर की बाल्यावस्था की सुन्दर चेष्टाओं का यह सुन्दर वर्णन किस सहृदय को आकर्षित नहीं करेगा ?

(ङ) "सुमानसस्याथ विशांवरस्य मुदा विभिन्नास्य सरोरुहस्य ।
मुनीशभानोरभवत्समीपे लोकान्तरायततमः प्रतीपे ॥
निशीक्षमाणा भगवंस्तदीयपादाम्बुजालैः सहचारिणीयम् ।
मेरुं सुरद्रुं जलधिं विमानं निर्धूमवह्निं च न तद्विदानः ॥
किं दुष्फला वा सुफला फला वा स्वप्नावलीयं भवतोऽनुभावात् ।
भवानहो दिव्यदृगस्ति तेन संश्रोतुमिच्छा हृदि वर्तते नः ॥"[1]

उपर्युक्त श्लोकों में स्वप्नावली के तात्पर्य के प्रति सेठ वृषभदास की जिज्ञासा वर्णित है ।

(च) "कदा समयः स समायादिह जिनपूजायाः ॥
कञ्चनकलशे निर्मलजलमधिकृत्य मञ्जुगङ्गायाः ।
वारां धाराविसर्जनेन तु पदयोर्जिनमुद्रायाः ।
जयोऽस्तु कलङ्ककलायाः ॥ स्थायी ॥
मलयगिरेश्चन्दनमथ नन्दनमपि लात्वा रम्भायाः ।
केशरेण सार्धं विसृजेयं पदयोर्जिनमुद्रायाः,
न मन्तु कुतश्चापायाः ॥स्थायी २ ॥[2]

इस उदाहरण में स्वाभाविक अलङ्कृतता, सङ्गीतमयता, मधुरता, सरलता आदि गुणों से परिपूर्ण वैदर्भी शैली है ।

(छ) 'सा सुन्दरी नाम बभूव रामा वामासु सर्वास्वधिकाभिरामा ।
राजाधिराजस्य रतीश्वरस्य रतिर्यथा प्रीतिकरीह तस्य ॥
वश्येव पञ्चेषुरसप्रवीणा दासीव सत्कर्मविधौ धुरीणा ।
भर्त्रे सभाया भुवि वाचि वीणा साचिव्य इन्द्रस्य शचीव लीना ॥
राज्ञः सदा मोहकरीव युक्तिर्यां मौक्तिकोत्पत्तिकरीव शुक्तिः ।
अनङ्गसन्तानमयीव मुक्ति-स्थलीह लावण्यवतीव मुक्तिः ॥[3]

इन पंक्तियों में चक्रपुर के राजा अपराजित की रानी का गुणसमूह एवं सौन्दर्य वर्णित है । शब्दावली में सरलता, माधुर्य, प्रवाह इत्यादि विशेषताएं वैदर्भी शैली की ही पोषिका हैं ।

(ज) 'रुचिकरे मुकुरे मुखमुद्धरन्नथ कदापि स चक्रपुरेश्वरः ।
कमपि केशमुदीक्ष्य तदा सितं समवदद् यमदूतमिवोदितम् ॥

---

१ सुदर्शनोदय, ३।३३,३५
२. वही, ५ चतुर्थ गीत के प्रथम दो भाग ।
३. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।११-१३

ननु जरा पृतना यमभूपतेर्मम समीपमुपाञ्चितुमीहते ।
बहुगदाधिकृतेह तदग्रतः शुचिनिशानमुदेति मदो बत ॥
तरुणिमोपवनं सुमनोहरं दहति यच्छमनाग्निरतः परम् ।
भवति भस्मकलेव किलासकी पलितनामतया समुदासकी ॥
नववधू किल सङ्कुचितान्मतिरपसरेन्मुखवारिविवाढृतिः ।
विवलताच्च कटी कुलटेव सा स्खलतु पिच्छलगेव पुना रसा ॥"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में चक्रायुध की वृद्धावस्था के विषय में विचार वर्णित हैं। इन विचारों में स्वाभाविकता और रोचकता स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रही है।

(ग) "धनश्रीरपि तेन मौक्तिकेन शुक्तिरिवादरणीयतां कामधेनुरिव वत्सेन क्षीरभरितस्तवतामुद्यानमालेव वसन्तेन प्रफुल्लभावं समुद्रवेलेव शशधरेणातीवोल्लाससद्भावमुदाजहार हारलसितवक्षःस्थला"[2]

प्रस्तुत गद्यांश में सोमदत्त को पुत्र रूप में प्राप्त करने वाली धनश्री की प्रसन्नता का सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन है।

(घ) 'यदीक्षमात्रेणैव विषा विषादप्रतियोगिनं भावमङ्गीकुर्वाणा किलेत्थं विचचार स्वमनसि, मनसिजमनोज्ञो मृदुलमांसलसकलावयवतया समवाप्तारोग्यो दृशामनिमेषतयोपभोग्यो मदीयहृदीषाङ्करणयोग्योऽस्ति कोऽसौ श्रीमान् यः खलु पूर्वपरिचित इव मम चितः स्थानमनुगृह्णाति ।'[3]

प्रस्तुत गद्यभाग में सोमदत्त के दर्शन से विषा के हृदय में उठते हुए रतिभाव का सुन्दर वर्णन किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त सभी उदाहरण ऐसी वैदर्भी शैली के हैं, जिसमें माधुर्य गुण की प्रधानता है, समास अत्यल्प हैं, अलङ्कार स्वभावतः आये हैं, फलस्वरूप सरलता एवं प्रवाह स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रथम और द्वितीय उदाहरण तो अत्यधिक हृदयावर्जक हैं।

अब एक दो उदाहरण पाञ्चाली शैली के भी प्रस्तुत हैं। स्वयंवरमण्डप में उपयुक्त वर की खोज में घूमती हुई राजकुमारी सुलोचना का एक शब्द-चित्र इस प्रकार है :—

वैद्योपक्रमसहितान्तत्र न भोगाधिभुव इमान्सुहिता ।
तत्याज सपदि दूराम्मधुराधरपिण्डखर्जूरा ॥
चालितवती स्थलेऽत्रामुकगुणगतवाचि तु सुनेत्रा ।
कौतुकितमेव वक्षयं साङ्गुष्ठानमिकोपयोगमयम् ॥

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ७।१-४
२. दयोदयचम्पू, ३।१० के बाद का गद्यांश।
३. वही, ४ श्लोक १४ के पूर्व का गद्यभाग।

यानजना अनयान्ताम्बरचारिम्यो धराचरकुलं ताम् ।
कमलेभ्यः कुमुदशिवं शशिकिरणहासभासमिव ।।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में समस्त किन्तु मधुर शब्दावली का ऐसा प्रयोग किया गया है, जो अर्थ के अनुरूप है ।

अब भगवान् महावीर के जन्माभिषेक हेतु प्रस्थित देवगणों की झांकी प्रस्तुत है :—

"अरविन्दधिया दधद्रवि पुनरैरावण उष्णसच्छविम् ।
धुतहस्ततयात्तमुत्थजन्ननयद्धास्यमहो सुरव्रजम् ।।
झषकर्कटनक्रनिर्णये वियदब्धावुत तारकाचये ।
कुवलयकारान्वये विधुं विबुधाः कौस्तुभमित्थमभ्यधुः ।।
पुनरेत्य च कुण्डिनं पुराधिपुरं त्रिक्रमणेन ते सुराः ।
उपतस्थुरमुष्य गोपुराग्रभुवीत्थं जिनभक्तिसस्तुराः ।।[2]

प्रस्तुत श्लोकों में प्रवाहपूर्ण शैली है । शैली के इस वैशिष्ट्य से हास और उत्साहभाव और भी अधिक आह्लादक हो गए हैं ।।

गौडी शैली के उदाहरण मुनिश्री के काव्यों में नहीं के ही बराबर हैं । कारण यह है कि कवि का शब्दाडम्बर पर विश्वास नही है । उनकी रचनाओं में जहाँ दीर्घ समास दिखाई देते हैं, उनमें सुगमता और प्रवाहपूर्णता पाई जाती है । अतः ऐसे स्थलों की शैली को 'गौडी शैली' नहीं कहा जा सकता ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीज्ञानसागर ने अपने काव्यों में प्रधानतया वैदर्भी शैली का ही प्रयोग किया है । यह शैली उनके काव्यों की विषयवस्तु के अनुरूप भी है । भक्तिभाव, शान्तरस एवं शृङ्गाररस वर्णन में आडम्बर की कोई अपेक्षा नहीं होती । अतः गौडी शैली कवि के अनुकूल भी नहीं होती । कहीं-कहीं वैदर्भी के साथ ही माधुर्यमिश्रित जो पांचाली शैली है, वह भी कथाप्रवाह को बल देती है ।

(ङ) वाग्वैदग्ध्य—

'वाग्वैदग्ध्य' का तात्पर्य है—वाणी की शालीनता, बात को कहने का विदग्धता से युक्त सुन्दरतम ढङ्ग । जब भी हमारा सम्पर्क किसी वाग्विदग्ध व्यक्ति से होता है, तब उसकी अनुपस्थिति में भी हमें उसकी याद आती रहती है ।

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत काव्यों में वाग्वैदग्ध्य

कविवर के भी कुछ पात्र वाग्विदग्ध हैं । उनके काव्यों में वर्णित वाग्वैदग्ध्य के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

---

१. जयोदय, ६।११।१३
२. वीरोदय, ७।१०-१२

(क) काशी नरेश अकम्पन का दूत अत्यधिक वाग्विदग्ध है। वह जब स्वयंवर में आमन्त्रित करने हेतु जयकुमार के पास जाता है, उस समय वह सुलोचना के गुणों का वर्णन करने में अपने वाग्वैदग्ध्य का परिचय देता है :—

"विचक्षणेक्षणाक्षुण्णं वृत्तमेतद्गतं मतम्।
क्षणादं क्षणमाध्यानात्कर्णालङ्करणं कुरु॥"[1]

(वह जयकुमार से कहता है कि सावधान होकर, सुख देने वाले इस असाधारण वृत्तान्त को थोड़ी देर के लिए अपने कान का आभूषण बना लो) 'मेरी बात सुनो' के स्थान पर उक्त कथन कहकर दूत न केवल जयकुमार को अपितु पाठक को भी प्रभावित करता है।

और भी—

"यात्रा तवात्रास्तु तदीयगात्रावलोकनैर्लब्धफला विधाता।
वामेन कामेन कृतेऽनुकूले तस्मिन् पुनः श्रीः सुघटा न दूरे॥"[2]

(विधाता आपकी यात्रा को उस सुलोचना के दर्शन से प्राप्तफल वाला बनाये। उस प्रतिकूल गति वाले कामदेव के अनुकूल होने पर लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती।)

यहाँ पर दूत ने जयकुमार को सुलोचना के उपयुक्त वर के रूप में पाकर उन्हें उक्त आशीर्वाद दिया है। साथ ही उसके कथन का यह भी तात्पर्य है कि जयकुमार को सुलोचना अवश्य अच्छी लगेगी। दूत की वाक्चातुरी से जयकुमार अत्यधिक प्रभावित होते जाते हैं।

(ख) सुलोचना की परिचारिका विद्यादेवी भी वाक्चतुरा है स्वयंवर मण्डप में राजाओं का परिचय कराते समय वह अपने वाक्कौशल से पाठक का मन मोह लेती है। प्रस्तुत हैं उसकी वाणी से निकले हुए वाग्वैदग्ध्य के दो उदाहरण :—

(अ) "काञ्चीरतिरयमार्ये काञ्चीमपहर्तुमर्हतु तवेति।
काञ्चीफलवदिदानीं द्विरणंता विभ्रमादेति॥"[3]

(हे आर्ये! यह कांची देश का स्वामी तुम्हारी करधनी को उतारने के योग्य हो। जो कि इस समय कचनार के फल के समान दो रङ्गों के विभ्रम को उत्पन्न कर रहा है।)

यहाँ 'द्विरणंता' शब्द से परिचारिका ने सुलोचना को सावधान कर दिया

---

१. जयोदय, ३।३८
२. वही, ३।९२
३. वही, ६।३६

है कि दोहरी रीति को अपनाने वाला काव्यपति तुम्हारे द्वारा वरण करने योग्य नहीं है।

(ब) वह सुलोचना के मन की बात एकदम जान लेती है। जैसे ही वह सुलोचना को जयकुमार के अनुकूल देखती है, वैसे ही विस्तारपूर्वक जयकुमार के गुणों का विस्तृत वर्णन करने लगती है और अन्त में कह भी देती है कि यदि तुम्हारी इच्छा जयकुमार का वरण करने की है तो इसी समय उसके गले में जय-माला डाल दो—

"यदि चेज्जयेवरिणी त्वं दृक्शरविद्धं ततः शिथिलमेनम्।
अयि बालेऽस्मिन् काले सृजाव बन्धाविलम्बेन ।।"[1]

(ग) अर्ककीर्ति का अनवद्यमति नामक मन्त्री भी वाग्विदग्ध है। अर्ककीर्ति को अति विनयपूर्वक जयकुमार और महाराज अकम्पन को क्षमा करने के लिए समझाता है। उसका कहना है कि सेवक की उन्नति उसके स्वामी के उत्कर्ष में बाधक नहीं बनती क्योंकि वृक्षों की पुष्प-समृद्धि ही वसन्त का माहात्म्य बढ़ाती है। फिर इसी जयकुमार ने तो भरत को दिग्विजय दिलवायी, अतः यह उनका स्नेह पात्र है। पिता के समान पूज्य राजा अकम्पन के प्रति द्वेष भाव रखना तो गुरुद्रोह ही होगा।[2]

(घ) 'जयोदय' काव्य का नायक जयकुमार भी वाग्विदग्ध है। वह युद्ध में भी अर्ककीर्ति से जीत जाता है और वाग्वैदग्ध्य में भी। वह अर्ककीर्ति से कहता है कि जिस प्रकार जल बिन्दु समुद्र के जल-समूह में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार मेरा मन भी आपसे सन्धि करने को उत्सुक है। + + + मैं और आप अलग-अलग हैं, ऐसी भेदबुद्धि समाप्त हो। मिलन तो अत्यधिक सम्पत्ति देने वाला होता है जबकि विरह कम्पन उत्पन्न करता है। अतः हम लोगों में विघटन नहीं, संघटन होना ही उचित है।[3]

(ङ) 'सुदर्शनोदय' का नायक सेठ सुदर्शन स्थान-स्थान पर अपनी वाक्चातुरी का परिचय देता है। जब उसके मित्र उसके अनमनेपन का कारण पूछते हैं तो वह बड़ी चतुराई से मनोरमा दर्शन से उत्पन्न सन्ताप की बात को टाल देता है और कहता है कि जिनदेव के मन्दिर में उच्च स्वर से भजन गाने से मुझे क्लान्ति का अनुभव हो रहा है।[4]

---

१. जयोदय, ६।११८
२. वही, ७।३५-४३
३. वही, ६।११-४६
४. सुदर्शनोदय, ३।३७

(च) 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्र' का नायक भद्रचित्र एवं उसके माता-पिता तीनों ही वाग्वैदग्ध्य से युक्त हैं। भद्रमित्र की रत्नद्वीप यात्रा के समय हमें तीनों के वाग्वैदग्ध्य का ज्ञान हो जाता है।[1]

इसके अतिरिक्त 'दयोदयचम्पू' के पात्र सोमदत्त,[2] राजा का दूत[3] और राजा का द्वारपाल[4] भी वाग्वैदग्ध्य का परिचय देते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त भी कवि के काव्यों में वाग्वैदग्ध्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं, किन्तु वे अधिक आकर्षक एवं उद्धरणीय नहीं हैं।

संवाद—

कवि जब काव्य-प्रणयन करता है तो वह कुछ बातें अपने आप कहता है और कुछ बातें काव्य के पात्रों के माध्यम से कहलाता है। काव्य में आए पात्रों के पारस्परिक आलाप-संलाप को ही संवाद कहा जाता है। काव्य की नाटक नामक विधा में तो पात्रों के इन कथोपकथनों का ही महत्त्व होता है, क्योंकि पात्र अपने इन संवादों के माध्यम से ही दर्शक को अपना परिचय देता है और कथा को गति देता है। काव्य की गद्यात्मक विधा में भी कहीं-कहीं कवि पात्र को सामने प्रस्तुत करने के लिए,—मानों स्वयं उसके बारे में कहते-कहते थक गया हो,—उससे संवाद करवाता है। किन्तु पद्यकाव्य वर्णनात्मक होते हैं, अतः इनमें संवादात्मकता का गुण कम ही देखने को मिलता है।

महाकवि ज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यों में संवाद

श्रीज्ञानसागर के काव्यों में अनेक संवाद हैं। उदाहरणार्थ—दूत-जयकुमार-संवाद, अर्ककीर्ति-अनवद्यमति-संवाद, सिद्धार्थ-प्रियकारिणी-संवाद, प्रियकारिणी-देवी-संवाद, वर्धमान-सिद्धार्थ-संवाद, सेठ वृषभदास-जिनमति-संवाद, सुदर्शन-कपिला-संवाद, सुदर्शन-मनोरमा-संवाद, सुदर्शन-देवदत्ता-संवाद, भद्रमित्र-माता-पिता का संवाद, श्रीभूति-भद्रमित्र-संवाद, मृगसेन-घण्टा-संवाद, गुणपाल-गोविन्द-संवाद, गुणपाल-गुणश्री-संवाद, दूत-सोमदत्त-संवाद, मंत्री-वृषभदत्त-संवाद, राजा-विषा-संवाद आदि-आदि। यहाँ आपके समक्ष कुछ महत्त्वपूर्ण संवादों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(क) वन-विहार के समय कपिला और रानी अभयमती का वार्तालाप देखिये—

---

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।३-१४
२. दयोदयचम्पू, ७।३-४, ६, ९
३. वही, ७।२, ५
४. वही, ७।८

"कान्तारस्तद्विहारेऽस्मिन् समुदीक्ष्य मनोरमाम् ।
स्तनन्धयान्वितामत्र कपिलाऽऽह्वावनीश्वरीम् ॥
केयं केनान्विताऽनेन मौक्तिकेनेव शुक्तिका ।
जगद्विभूषणेनास्ति स्वरूपात्पूततां गता ॥
अस्ति सुदर्शनतरुणाऽभ्युदेयं सुखलताऽयमथ च पुनः ।
कौतुकभूमिरमुख्या नयनानन्दाय विलसतु नः ॥
प्रत्युक्तया शनैरास्यं सनैराश्यमुदीरितम् ।
नपुंसकस्वभावस्य स्वभाऽवश्यमियं नु किम् ॥
निशमयेत्यगदद्राज्ञी सगदेव हि भाषसे ।
समुन्मत्ते किमेतावत् समुन्माम्ते क्षीहि न ॥
श्रुतमश्रुतपूर्वमिदं तु कुतः कपिले त्वया स वै श्लैष्म्ययुतः ।
पुरुषोत्तमस्य हि मानवता केनानुनीयतां मानवता ॥
इत्यतः + + + + + + ।
+ + + + + + + ॥
हे अवनीश्वरि सम्वच्मि न नेति सः ।
सम्प्रार्थितः स्वयं प्राह मयैकाकी किलैकदा ॥
राज्ञो प्राह किलाभागिन्यसि त्वं तु नगेष्वसौ ।
पुन्नाग एव भो मुग्धे दुग्धेषु भुवि गव्यवत् ॥
+ + + + + + + ।
+ + + + + + + ॥
असा हसेन तत्रापि साहसेन तदाऽवदत् ।
विप्राणी प्राणितावाप्त्या को न मुह्यति भूतले ॥
आस्तां महिषये देवि श्रीमतीति भवत्यपि ।
सुदर्शनभुजाश्लिष्टा यदा किल धरातले ॥"[1]

रानी अभयमती और कपिला के इस वार्त्तालाप में उत्तर-प्रत्युत्तर, रोचकता, उपयुक्तता इत्यादि सभी गुण मिलते हैं। कपिला की धूर्तता का परिचय भी इन संवादों के माध्यम से अच्छी प्रकार हो जाता है।

(ख) अब प्रस्तुत है रत्नद्वीप जाने के लिए उत्सुक भद्रमित्र का अपने माता-पिता के साथ वार्त्तालाप—

"अतो नमस्कृत्य पितुः पुरस्तान्निवेदयामास विदामतस्ताम् ।
आदेश एवास्ति यतो गुरूणां फलप्रदोऽस्मभ्यमहः पुरूणाम् ॥

---

१. सुदर्शनोदय, ६।३-१४

आदित्य उर्व्यां रसभुक् समस्ति ततो हि सन्तापकर प्रशस्ति ।
विधुः कलाभिः परिवर्द्धकः सन् पितुः प्रसक्त्यै जगतोऽखिलं सः ।।
++ ++ ++ ++ ++ :
++ ++ ++ ++ ++ ॥
तस्मै पिता प्रत्यवदत् सुतेति महद्धनं मे सुतरामुदेति ।
कार्याऽस्ति कुल्या मरवे यथा किञ्जगत्सुपायोनिधये तथा किम् ।।
एकाकि एवाङ्गज ! मे कुलायः स्वयं त्वमानन्दशेऽनपायः ।
दुःखायते मह्यमिदं वचस्ते किन्नाम यानं गुणसंप्रशस्ते ।।
निशम्य पुत्रः पुनरित्युवाच सत्यान्विता भो भवतां तु वाचः ।
तथापि कर्त्तव्यपथाधिरोह-वशंवदः साम्प्रतमागतोऽहम् ।।
हे तात शातद्युतिरेष जात- मात्रस्थितिर्वारिनिधेः प्रयातः ।
सुखेन खे नर्मनिधेर्विधातिशयप्रदः सन्निहरान्विभाति ।।
देहेन यास्यामि मनोऽलिरस्तु तथापि ते पादपयोजवस्तु ।
साफल्यदातास्तु च ते शुभाशिर्वादो यतो मामिह रक्षितासि ।।
एवं निशम्योदितमत्र पित्रा भवन्ति वाचः सुत ! ते पवित्राः ।
आपो यथा गांगझरस्य यत्त्वं पुनीतमातुः समितोऽसि सत्त्वम् ।।
कठोरभावान्निवसान्यहन्तूदयाद्रिवत्ते जननीह किन्तु ।
रवेर्विना काशततिर्यथा स्यात्तमोधरास्त्वद्रहिता व्युदास्या ।
इतीरितोऽभ्येत्य स जन्मदात्रीं नत्वा जगादोत्तमपुण्यपात्रीम् ।
मातर्वयस्यैः सह यामि देशान्तरं शुभाशीर्भवतात्तु ते सा ।।
कृत्वाऽत्र मामम्बुजसंविहीनां सरोवरीमङ्गज ! किन्नु दीनाम् ।
किलोचितं यातुमिति त्वमेव विचारयेदं धिषणाधिदेव ।।
इत्येतदुक्तेः प्रतिवादमाह बालोऽत्र नाहं भवतीं त्यजामि ।
नेष्यामि यास्यामि सहात्मनात्म-चित्ते निधायेत्युत संवदामि ।।"[1]

उपर्युक्त कथोपकथन में वाक्य कुछ लम्बे हो गये हैं। पर इसका कारण यह है कि तीनों पात्र धैर्यवान् और सहिष्णु हैं। फिर भी वाक्य सरस और उपयुक्त हैं।

(ग) कवि श्रीज्ञानसागर के काव्यों का तीसरा महत्त्वपूर्ण संवाद वह है, जहाँ घण्टा धीवरी और मृगसेन धीवरी का वार्त्तालाप होता है। घण्टा धीवरी पर कुटुम्ब पालन का भार है। जब उसका पति खाली हाथ लौटता है और ज्ञान की बातें करने लगता है, उस समय उसका क्रोध भड़क उठता है। मृगसेन धीवर का

१. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।२-१४

मन पूर्णतः विरक्त हो चुका था। अतः वह अपनी पापमयी वृत्ति को छोड़ देता है और अपना मन्तव्य घण्टा के सामने रखता है। इस स्थल पर निर्वेद और क्रोध भावों का ऐसा द्वन्द्व होता है जो कि तूफानी हवाओं के पर्वतों पर प्रहार की भाँति प्रतीत होता है—

"घण्टा—अस्ति चेदस्तु किन्तेन। स साधुर्वयन्तु गृहस्थाः,
किं तस्य कथयास्माकं सिद्धिः। तस्य मार्गो योगस्त्यागश्चास्माकन्तु
संयोगो भोगोऽपि चेति महदन्तरम्।
आत्मकर्त्तव्यविस्मृत्या परकार्यकरो नरः।
सद्यो विनाशमायाति कीलोत्पाटीव वानरः॥

+ + + मृगसेनः प्रत्याह—हे भामिनि, किमया किलाकरणीयमेव कृतम्, किन्तावदहिंसाधर्मो मनुष्यमात्रस्यापि कर्त्तव्यभावं नासादयति? + + + + घण्टा (शिरो धुनित्वा) जगाद—हे भगवन्, सदबुद्धि देहीदृशेभ्यो धर्मधर्मेतिरटनकारकेभ्यः। इदमपि न जानन्ति धर्मान्धाः यत्किल धर्मपालनं शरीरस्थितिपूर्वकम्, शरीरस्थितिश्च वृत्त्यधीना। वदन्तु गृहस्थाः साधवोऽपि तनुस्थित्यायहारमन्वेषयन्तः प्रतिभान्ति, तदलाभे तेऽपि कति न पथभ्रष्टा जाताः। श्रीमती भगवतस्तस्यर्षभदेवस्यापि काले तेन सार्द्धं दीक्षिता राजानो भुक्त्यलाभादेवोत्पथमवाप्ता इति श्रूयते + + + + + मृगसेनः प्रतिजगाद—यदि कान्ते, स्विदियान्ते विचारस्तर्हि शृणु—किमियं वृत्तिर्यास्माभिरेकान्तेन परसत्त्वसंहारेणैव सम्पाद्यते। + × + मृगसेनः प्रतिवदति स्म—कर्षणेऽपि हिंसा भवति चेद् भवतु किन्तु न कृषीवलः करोति वयन्तु कुर्म इत्येतदत्यन्तमन्तरमस्ति।

घण्टा—तदा पुनर्भवतः साधोश्च विचारेणास्माभिर्बुभुक्षितैरेव मर्तव्यमिति नायं धर्मोऽस्मादृशामनुकूलतया प्रतिभाति। सङ्गच्छतु साधुसन्निधिमेव भवान् किमधुनास्माभिः प्रयोजनमिति सम्प्रतर्ज्य मृगसेनं बहिष्कृत्य द्वारस्यारसङ्घठनपूर्वकमर्गलप्रदानमपि चकार।"[1]

(घ) रोचकता एवं उपयुक्तता की दृष्टि से दूत, सोमदत्त, राजा एवं मंत्री का संवाद भी द्रष्टव्य है।[2] इस स्थल पर अपने संवादों द्वारा दूत अपने वाक्चातुर्य का और मंत्री अपनी मन्त्रणा शक्ति का परिचय देते हैं। सभी कथन समयानुकूल हैं।

उपर्युक्त संवादों के अतिरिक्त पूर्वोक्त गिनाए गये संवादों में प्रायः नीरसता है। जब एक पात्र बोलना शुरू करता है तो दूसरा पात्र काफी देर में बोलने का

---

१. दयोदयचम्पू, २। श्लोक १३ के पूर्व के गद्यभाग से २२ के बाद के गद्यभाग तक।

२. वही, ७।१-१२

अवसर पाता है—जैसे अर्ककीर्ति-अनवद्यमति-संवाद।[1] यदि यहाँ पर अर्ककीर्ति और अनवद्यमति एक दूसरे की बात को काटते, उत्तर-प्रत्युत्तर को अधिक अवसर मिलता तो संवादों में अवश्य रोचकता आ जाती।

चूँकि श्रीज्ञानसागर के काव्य पद्यकाव्य हैं, जो प्रायः वर्णनात्मक होते हैं। ऐसी स्थिति में पात्रों के कथोपकथन नहीं के बराबर होते हैं, यदि होते हैं तो उनमें भी वर्णनात्मकता एवं उपदेशात्मकता आ जाती है। फिर भी संवादों की दृष्टि से हम अपने आलोच्य कवि को असफल नहीं कह सकते। क्योंकि सोदाहरण संवादों ने यह बात सिद्ध कर दी है कि यदि कवि नाटक लिखते तो उनके संवाद अवश्य ही अधिक रोचक, सशक्त और अवसरानुकूल होते। किन्तु खेद की बात है कि हमारे कवि ने दृश्यकाव्य की रचना नहीं की।

देशकाल—

यह वह तत्त्व है जो पाठक और पात्रों में सम्बन्ध बनाने के लिए एक विशिष्ट वातावरण बना देता है। प्रत्येक काव्य की कथा किसी विशेष देश और काल की होती है। भले ही वह काल्पनिक हो, किन्तु देशकाल के उचित वर्णन से सत्य ही प्रतीत होती है।

देश और काल के उचित वर्णन से हमारा तात्पर्य है कि काव्य का पात्र जिस स्थान पर रहकर अपनी लीलायें करता है, उस देश का भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से ऐसा वर्णन करना चाहिए कि पात्र की गतिविधियों का देश की परिस्थितियों से तादात्म्य स्थापित हो सके। इसी प्रकार पात्र की चेष्टाएं भी काल के अनुसार होनी चाहिएँ।

कवि को चाहिए कि वह अपनी कथावस्तु से सम्बद्ध देश में यातायात के साधन के रूप में केवल बैलगाड़ी उपलब्ध है, तो पात्रों द्वारा पुष्पक-विमान से यात्रा न कराए। भूलोकनिवासी पात्र को सहसा प्रकट या अन्तर्हित न कराए। आधुनिक युग के व्यक्तियों को रथ और वैदिककाल के पात्रों को कार, साइकिल पर न घुमाए। आजकल के सामाजिक को कन्दमूल और आदिम युग के प्राणी को पूरी-सब्जी, पुलाव इत्यादि खाता हुआ न चित्रित करे, क्योंकि ये सभी बातें देश और काल के विरुद्ध हैं अतः कवि को अपने काव्य वास्तविकता, मनोरंजकता और उपहासराहित्य के लिए इस तत्त्व का ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा पाठक को काव्य पढ़ने में कोई आनन्द नहीं आयेगा। वह पग-पग पर काव्य की हँसी उड़ाकर उसे कोरी गप्प की संज्ञा देगा। काव्यों के पात्रों की सजीवता की दृष्टि से, कथावस्तु के प्रवाह की दृष्टि से यह तत्त्व महत्त्वपूर्ण है, ऐसा मानकर कवि को देशकाल का उचित वर्णन करना चाहिए।

---

१. जयोदय, ७।३३-५४

महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों में देशकाल—

महाकवि के काव्यों में पात्रों, भौगोलिक स्थानों एवं घटनाओं का वर्णन देशकाल के अनुरूप ही किया गया है।

उन्होंने अपने काव्य के पात्रों को उनके स्वभाव एवं परिस्थितियों के अनुसार प्रस्तुत किया है। देववर्ग के पात्र मानववर्ग के पात्रों के उत्कर्ष में सहायक हैं।[1] मानव वर्ग के पात्रों में नागरिक भोगविलास युक्त जीवन व्यतीत करते हैं[2] और ग्रामीण जनों का जीवन-स्तर सादगी एवं सरलता से युक्त है।[3] व्यन्तरवर्ग के प्राणी मायाचार करने में रत रहते हैं।[4]

पात्रों की लीलाभूमियों के रूप में काशी,[5] हस्तिनापुर,[6] कुण्डनपुर,[7] चम्पापुर,[8] चक्रपुर[9] और उज्जयिनी[10] का ऐसा वर्णन किया है, जिससे उनकी समृद्धि की झलक भी मिल जाती है और पाठक काव्य के पात्रों के पूर्व उनकी जन्मभूमि एवं कर्मभूमि का परिचय भी पा लेता है। पावापुर भगवान् महावीर की मोक्षभूमि है,[11] यह तो ऐतिहासिक सत्य ही है।

विवाह के समय नगरी को सजाना,[12] बहुपत्नीप्रथा[13] और वित्तीय अधिकारियों के स्थान पर नगर श्रेष्ठियों की नियुक्तियाँ[14] आदि भी तत्समयानुसार ही हैं।

(ङ) सारांश

कविवर ज्ञानसागर ने कला के प्रायः सभी भेदों का प्रयोग अपने काव्यों में

---

१. वीरोदय, पाँचवाँ सर्ग।
२. वही, २।३८, ४४
३. सुदर्शनोदय, १।२१-२२
४. वही, ९।७६-८३
५. जयोदय, ३।७३-८५
६. वही, ११।६६-६९
७. वीरोदय, २।२१-५०
८. सुदर्शनोदय, १।११-३७
९. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।१-८
१०. दयोदयचम्पू, १। श्लोक १० के पूर्व का गद्यभाग एवं १०-११
११. वीरोदय, २१।२१
१२. जयोदय, ३।७३-८५
१३. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।१८-१९
१४. दयोदयचम्पू, १।१४

किया है। उनका यह कला-प्रयोग काव्य में किसी भी प्रकार का असन्तुलन नहीं लाता, अपितु भावपक्ष को सबल बनाता है।

कवि के पाँचों काव्य पूर्णतः अलङ्कृत हैं, किन्तु उनकी यह अलङ्कारप्रियता कहीं भी रसरङ्ग का कारण नहीं है। उनके अनुप्रास, श्लेष, यमक इत्यादि अलङ्कार वर्ण्य-विषय के अनुरूप हैं; और चित्रालङ्कार न केवल कवि के अलङ्कारशास्त्रीयज्ञान के परिचायक हैं, अपितु कथा के सार रूप में भी प्रस्तुत हुये हैं।

उनके गीत उनकी सङ्गीत-प्रियता के द्योतक हैं, साथ ही भक्तिभाववर्णन के समय इन गीतों के प्रयोग से कवि के हृदयोद्गारों को भी प्रकट होने में सहायता मिलती है। गुण, भाषा, शैली, वाग्वैदग्ध्य, देशकाल इत्यादि सभी के प्रयोग में कवि को स्पृहणीय सफलता मिली है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे कवि का कलापक्ष भावपक्ष के सर्वथा अनुरूप है। वह कहीं भी पाण्डित्य प्रदर्शन का साधन मात्र होकर नहीं आया है। अतः यदि हम कहें कि कवि श्री ज्ञानसागर ने भावपक्ष और कलापक्ष के माणिकाञ्चन संयोग को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

नवम अध्याय

महाकवि ज्ञानसागर का जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन : एक संक्षिप्त परिचय—

संसार में जितने भी प्राणी जीवन धारण करते हैं, वे पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं होते। समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, धर्म और दर्शन —संसार में उपलब्ध इन तत्त्वों से उनका जीवन अवश्य ही प्रभावित होता है। फलस्वरूप इन्हीं के नियन्त्रण में रहकर वे अपना क्रियाकलाप करते हैं। प्राणियों को समाज, राजनीति आदि की कुछ बातें अनुकूल हैं और कुछ प्रतिकूल। अपना जीवन सफल बनाने के लिए लोग प्रतिकूल बातों में परिवर्तन करके उनको अनुकूल बनाना चाहते हैं। वे एक विशिष्ट प्रकार का समाज राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति एवं धर्म चाहते हैं। जीवन को प्रभावित करने वाले समाज, राजनीति आदि इन तत्त्वों के विषय में व्यक्ति की ऐसी धारणा को ही 'जीवन-दर्शन' कहा जाता है। कोई व्यक्ति कैसा जीवन चाहता है, यही उसका जीवन-दर्शन है। कवि का जीवन के प्रति दृष्टिकोण क्या होता है ? यह उसके काव्यों का परिशीलन करने से अच्छी प्रकार ज्ञात हो सकता है। यहाँ अपने आलोच्य महाकवि ज्ञानसागर का जीवन के प्रति दृष्टिकोण उनके काव्यों के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

कवि की सामाजिक विचारधारा—

श्री ज्ञानसागर के काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उन्हें ऐसा समाज प्रिय है, जिसके लोगों को धर्म एवं मानवता के प्रति आस्था हो तथा भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व अधिकाधिक मात्रा में हों। मुनियों का कर्तव्य लोगों में धर्म के प्रति चेतना लाना हो, शासक प्रजारंजन करते हुए राज्य करे, वणिग्जन अर्थ-व्यवस्था को सँभाले, सेवक उपर्युक्त तीनों श्रेणियों के लोगों की सेवा करें। स्पष्ट है कि श्री ज्ञानसागर भारत में प्रचलित वर्णव्यवस्था को मानते है[1]। परन्तु वह वर्ण-

---

१. वीक्ष्येदृशीमङ्गभृतामवस्थां तेषां महात्मा कृतवान् व्यवस्थाम्।
विभज्य तान् क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-भेदेन मेघा-सरितां समुद्रः॥
यस्यानुकम्पा हृदि तूदियाय स शिल्पकल्पं बुबलोत्सवाय।
निगद्य विद्मः कृषिकर्म चायमिहार्थशास्त्रं नृपसंस्तवाय॥
—वीरोदय, १८।१३-१४

व्यवस्था को जन्म के अनुसार नहीं, वरन् कर्मों के अनुसार मानते हैं। इसीलिए उन्होंने ब्राह्मणों के कुछ आवश्यक लक्षण बताए हैं, जो इस प्रकार है :—

ब्राह्मण को सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करना चाहिए, तपश्चरण, इन्द्रियसंयम, शोकराहित्य में उसकी प्रवृत्ति होनी चाहिए, उसे छल प्रपंच से सर्वथा दूर रहना चाहिए; उसमें क्षांति, संयम और शुद्धता की अधिकता होनी चाहिए, प्राणिमात्र के प्रति दया होनी चाहिए; उसे आत्म-चिन्तन करना चाहिए, और परनिन्दा से दूर रहना चाहिए। निस्पृह मन, वचन और काय से शुद्ध-अद्वैतभाव की प्राप्ति, रात्रिभोजन का परित्याग करने वाला, एक समय खाने वाला, निर्जन्तुक जल को पीने वाला पुरुष ही ब्राह्मण कहलाता है। समाज में जिन्हें ब्राह्मण कहा जाता है वे ब्राह्मण नहीं हैं, वास्तविक ब्राह्मण तो उपर्युक्त गुणों सम्पन्न रहने वाला व्यक्ति ही होता है।[1]

कवि का दृष्टिकोण है कि लोग साधुओं की बात का विश्वास करें, उनका आदर करें। यही कारण है कि उन्होंने अपने काव्य में स्वप्नों का फल बताने के लिए सम्भ्रान्त सेठ वृषभदास को जिनमन्दिर के मुनि के पास भेजा।[2] समाज के लोगों से उन्हें अपेक्षा है कि अपने पूज्य जनों के प्रति आदर-भाव रखें और उनकी कही बात को विनम्र होकर सुनें। सेठ वृषभदास का पुत्र सुदर्शन इस भाव का उदाहरण है। वह चम्पापुरी के राजा के उच्चपद का विचार करता हुआ उसके द्वारा अपने प्रति किये गए दुर्व्यवहार पर ध्यान नहीं देता।[3] सेठ वृषभदास के दीक्षा लेने पर स्वयं भी दीक्षा लेने का विचार करने लगता है।[4] इसी प्रकार वीरोदय महाकाव्य के नायक भगवान् महावीर भी पिता द्वारा प्रस्तुत अपने विवाह के प्रस्ताव को जिस विनम्रता से अस्वीकृत करते हैं, वह देखने योग्य है।[5]

महाकवि के मन में शिक्षित समाज की झाकी है। देश से निरक्षरता को हटाने की प्रबल इच्छा है। उसकी धारणा है कि प्रत्येक अभिभावक का कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों को शिक्षित करे। यही कारण है कि उसके दयोदयचम्पू काव्य में ग्राम के निवासी गोविन्द ग्वाले द्वारा अपने पालित पुत्र सोमदत्त को यथाशक्ति शिक्षा दिलवाने का वर्णन है।[6]

---

१. वीरोदय, १४।३५-४३
२. सुदर्शनोदय, २।२२:२४
३. वही, २।२२-२४
४. वही, ४।१५
५. वीरोदय, ८।२३, २८-४५
६. दयोदयचम्पू, लम्ब ४, श्लोक ६ के पूर्व एवं बाद का गद्यभाग।

श्रीज्ञानसागर की नागरिक समाज की अपेक्षा ग्रामीण समाज में सरलता एवं सौहार्द के अधिक दर्शन होते हैं। जिस अनाथ बालक के विषय में सुनकर सेठ गुणपाल उसको मारने के लिए तत्पर हो जाता है,[1] उसी बालक को देखकर बस्ती में रहने वाले गोविन्द-ग्वाले के मन में दया एवं वात्सल्य का स्रोत उमड़ने लगता है।

श्रीज्ञानसागर ने वर्णव्यवस्था के आधार पर ही विवाह-संस्कार को मान्यता दी है। राजकुमारी सुलोचना और जयकुमार का विवाह और सेठ सागरदत्त की पुत्री मनोरमा के साथ सेठ वृषभदास के पुत्र सुदर्शन का विवाह इस तथ्य के उदाहरण हैं।[2]

सम्भवतः कविवर ज्ञानसागर पुत्र को पुत्री से अधिक महत्त्व देते हैं, इसलिए उनके काव्यों में पुत्र-जन्मोत्सव[4] का वर्णन तो मिलता है, किन्तु पुत्री के जन्मोत्सव का उल्लेख तक कहीं नहीं मिलता। किन्तु उन्होंने विवाह में पुत्र की इच्छा की भाँति ही पुत्री की भी इच्छा को महत्त्व दिया है। सुलोचना स्वयंवर[5] और सुदर्शन मनोरमा-विवाह[6] इस तथ्य के उदाहरण हैं।

पति-पत्नी का दाम्पत्य-जीवन सुखमय हो, इसके लिए कवि का विश्वास है कि पुरुष को एकपत्नीव्रत होना चाहिए।[7] हाँ, यदि राजनीति की दृष्टि से अनेक विवाह करने पड़ें, तो कोई बात नहीं।[8] इसी प्रकार पत्नी को भी चाहिए कि वह पति में एकनिष्ठ होकर रहे, अन्यथा उसकी दशा रानी अभयमती के समान होगी।[9]

कवि का यह भी विश्वास है कि स्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्रता देना ठीक नहीं, पति का पत्नी पर नियन्त्रण होना चाहिए; अन्यथा वह अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर सकती है। साथ ही कवि ने स्त्री के सहचरी-रूप को दासीरूप से

---

१. वही, लम्ब ३, श्लोक ३ के बाद का गद्यभाग।
२. वही, लम्ब ३, श्लोक ३ के बाद का गद्यभाग तथा श्लोक १०
३. (क) जयोदय, १२वाँ सर्ग।
   (ख) सुदर्शनोदय, ३।४८
४. (क) वीरोदय, ८।१-६
   (ख) सुदर्शनोदय, ३।४-१४
५. जयोदय, ६।११६-१२१
६. सुदर्शनोदय, ३।४२-४८
७. वही, ६ श्लोक २६ के पहले का गीत।
८. दयोदयचम्पू, लम्ब ७, श्लोक १२ के बाद के गद्यांश।
९. सुदर्शनोदय, ८।३५

अधिक महत्ता प्रदान की है।[1] यदि पति द्वारा ग्रहण किया गया मार्ग समुचित हो, तो स्त्रियों को चाहिए कि स्वयं भी उसी ओर बढने का प्रयत्न करें।

महाकवि की मान्यता है कि पुत्र-पुत्री को अपने माता-पिता की आज्ञा माननी ही चाहिए, किन्तु माता-पिता को भी अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए जो उनकी सन्तान के हित में बाधक हो, जैसा कि गुणपाल एवं गुणमती ने किया।[2] कवि की दृष्टि में सन्तान को माता-पिता की अनुचित आज्ञा का उल्लङ्घन कर देना चाहिए।[3]

श्रीज्ञानसागर को नारी का वेश्या रूप अच्छा नहीं लगता है। यही कारण है कि उनके काव्य की एक वेश्या तो सोमदत्त को उद्यान में सोता हुआ देखकर उसके प्रति वात्सल्य से विभोर हो जाती है[4] और दूसरी वेश्या सुदर्शन के तपस्वी एवं दृढ़-व्यक्तित्व के आगे झुक जाती है।[5] इससे स्पष्ट है कि कवि ने नारी के स्वाभाविक गुणों की वेश्याओं के अस्वाभाविक दुर्गुणों पर विजय कराई है, जो आज के वेश्यावृत्युन्मूलन का ही प्रतीक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्री ज्ञानसागर ऐसा समाज चाहते हैं, जिसमें सब प्रकार से स्वस्थ, कर्तव्यपरायण, सदाचारी एवं धर्मात्मा व्यक्ति हों।

कवि की राजनैतिक विचारधारा --

किसी राज्य के संचालन की रीति को ही राजनीति कहते हैं। राजनीति प्रत्येक शासक की अलग-अलग होती है। किसी राजा की नीति सफल होती है और किसी की असफल। सफल राजनीति वह है जिसके अनुसार राजा प्रजा पर नियन्त्रण भी कर सके और उसे वात्सल्य भी दे सके। इस प्रकार की नीति में विद्रोह की सम्भावना भी नहीं हो सकती।

श्री ज्ञानसागर के काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि कवि को इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान है कि राजा के प्रजा के प्रति और प्रजा के राजा के प्रति क्या-क्या कर्तव्य होने चाहिएँ? एक मुनि द्वारा राजकुमार जयकुमार को दिए गए उपदेश में कवि की इस राजनैतिक विचारधारा का ज्ञान हो जाता है उसके अनुसार राजा को अपने सेवकों से उचित व्यवहार करना चाहिए। दान, सम्मान इत्यादि से शत्रुओं को भी अपने वश में कर लेना चाहिए।[6] जो राजा प्रजा के हित का ध्यान रखता है, योग्य व्यक्ति को ही कार्य सौंपता है और सोच-विचार कर ही

१. (क) जयोदय, २८।६६
(ख) सुदर्शनोदय, ८।२७, ३३, ३४
२. दयोदयचम्पू, षष्ठ लम्ब।
३. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।७, ८
४. दयोदयचम्पू, लम्ब ४, श्लोक ११ और १२ के बाद के गद्यभाग।
५. सुदर्शनोदय, ६ श्लोक ३१ तथा इसके पूर्व का गीत।
६. जयोदय, २।७०-७२

कार्य करता है, उसके ही राज्य में प्रजा सुखी होती है एवं उसके ही प्रति प्रजा में भक्तिभावना भी उदित होती है। राजा सिद्धार्थ[1], चक्रवर्ती सम्राट् भरत,[2] एवं वृषभदत्त[3] ऐसे ही प्रजावत्सल शासक हैं। सम्राट् भरत तो राजनीति में अत्यधिक निपुण हैं। अधीनस्थ राजाओं से उनके ऐसे पारिवारिक सम्बन्ध हैं कि वे सभी उनके विरुद्ध विद्रोह करना तो दूर रहा, सोच भी नहीं सकते। राजा को प्रजावत्सल एवं राजनिपुण होने के साथ ही साथ, दूरदर्शी भी होना चाहिए। उसे न केवल बाह्य लोगों की अपितु अन्तःपुर के वृत्तान्तों की भी पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। राजा को व्यक्ति की पूरी परख होनी चाहिए, अन्यथा अन्तःपुर में होने वाले भ्रष्टाचारों के लिए सुदर्शन जैसे निरपराध प्रजाजन दोषी ठहराये जाते हैं।[4] राजाओं को यह भी चाहिए कि वह वास्तविक अपराधी को खोजकर ही न्यायपूर्वक दण्ड की व्यवस्था करें।[5]

राज्य-संचालन का सर्वप्रमुख अधिकारी राजा होता है। कवि ने न्यायाधीश के रूप में भी राजा को ही स्वीकार किया है।[6] राज्य की सलाह देने के लिए एक मंत्रिमण्डल भी होना चाहिए।[7] राजा को अर्थव्यवस्था चलाने के लिए एक राजसेठ का पद भी कवि को मान्य है।[8] राज्य की सुरक्षा हेतु कवि को सेनापति पद भी स्वीकार्य है।[9] राजाओं के संदेशों को इधर-उधर भेजने के लिए दूतों की भी अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए।[10]

प्रजा को राजा के नियन्त्रण में रहना चाहिए। राजा की ओर से प्रसारित आज्ञा का प्रत्येक प्रजाजन को पालन करना चाहिए। कवि ने आज्ञाकारी प्रजाजन के रूप में सोमदत्त को प्रस्तुत किया है, जो राजा की आज्ञा प्राप्त होने पर राजकुमारी से विवाह की विनम्र स्वीकृति देता है।[11]

युद्ध के सम्बन्ध में भी कवि की एक निश्चित धारणा है कि जब प्रतिपक्षी

---

१. वीरोदय, ३।३
२. जयोदय, ७।३३
३. दयोदयचम्पू, १।१२
४. सुदर्शनोदय, ७।३५-३६
५. वही, ८।१०
६. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।४
७. जयोदय, ३।८
८. दयोदयचम्पू, १।१४
९. जयोदय, ६।१४
१०. वही, ६।५८
११. दयोदयचम्पू, ७ श्लोक १२ और १३ के बीच का गद्यभाग।

राजा युद्ध करने पर उतारू हो जाए तो पीठ दिखाने की अपेक्षा युद्ध ही करना चाहिए।[1] योद्धाओं को परस्पर समान शस्त्र एवं वाहन का प्रयोग करना चाहिए[2] युद्ध की समाप्ति पर मृत व्यक्तियों का अन्तिम संस्कार एवं घायलों का उपचार करना चाहिए।[3]

स्पष्ट है कि कवि ऐसी राजनैतिक व्यवस्था चाहता है जिसमें प्रजा की खुशहाली एवं अधीनस्थ राजाओं पर मधुर-नियन्त्रण रह सके।

कवि की आर्थिक विचारधारा—

कवि की हार्दिक इच्छा है कि प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो। अपनी इस इच्छा को उन्होंने वणिक्पुत्र भद्रमित्र के चरित के रूप में अभिव्यक्त किया है।[4]

व्यक्ति को अपनी वर्णव्यवस्था के अनुसार ही आजीविका का उपार्जन करना चाहिये। समाज में अर्थोपार्जन का कार्य वणिग्जनों को ही शोभा देता है[5] तथा वध आदि निन्द्य कर्म चाण्डालों का पैतृक व्यवसाय है।[6]

कवि ने अपने काव्यों में समुद्रीय व्यापार[7], पशुपालन,[8] कृषि,[9] मिट्टी के बर्तन बनाने[10] आदि व्यवसायों का उल्लेख किया है। आखेटवृत्ति को उन्होंने निन्द्य कर्म मानकर जनसामान्य को उसे छोड़ने की प्रेरणा दी है।[11]

जयकुमार को उपदेश देते समय भी मुनि ने अपनी योग्यता के अनुसार व्यक्ति को अर्थोपार्जन करने की सलाह दी है। स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि में प्रत्येक गृहस्थ पुरुष को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए धनोपार्जन अवश्य ही करना चाहिए।[12]

---

१. जयोदय, ७।८२-८५
२. वही, ८।६४-६५
३. वही, ८।८५
४. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।१-१६
५. सुदर्शनोदय, २।१-३
६. वही, ७।३६
७. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।१७
८. दयोदयचम्पू, ३ श्लोक ६ के बाद का गद्यभाग।
९. सुदर्शनोदय, १।२१
१०. वही, ७।१
११. दयोदयचम्पू, प्रथम एवं द्वितीय लम्ब।
१२. जयोदय, २।१११-११६

कवि की सांस्कृतिक विचारधारा—

महाकवि श्री ज्ञानसागर की प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति गहन आस्था है। वह वेद-वेदाङ्गों की शिक्षा पर विश्वास करते हैं।[1] परन्तु उन्होंने कर्मकाण्ड में की जाने वाली हिंसा की कठोर निन्दा की है और 'अजैर्यष्टव्यम्' इत्यादि वेद-वाक्यों का सुसंस्कृत एवं अहिंसापरक भावार्थ समझाने का प्रयत्न किया है। उनकी दृष्टि में 'अजैर्यष्टव्यम्' इस वेदवाक्य का तात्पर्य—'बकरों से यज्ञ-क्रिया का सम्पादन करना चाहिये—ऐसा नहीं है, अपितु इस वाक्य का तात्पर्य है—'न उगने योग्य पुराने धान्य से यज्ञ करना चाहिए।[2]

कवि का पुनर्जन्म एवं कर्मफल में सुदृढ़ विश्वास है। उनके अनुसार अपने पूर्वजन्म में जो जैसा करता है, दूसरे जन्म में उसको उसी के अनुसार फल भोगने पड़ते हैं। सोमदत्त ने पूर्वजन्म में एक मछली को जीवन-दान दिया था, अतः वर्तमान जन्म में वह बारंबार मृत्यु के मुख से बचता रहा।[3] श्रीभूत पुरोहित ने वैश्यपुत्र का धन हड़पने का प्रयत्न किया था, इसलिए वह बार-बार कुयोनियों में जन्म ले लेकर भटकता रहा।[4]

श्री ज्ञानसागर की जिनेन्द्रदेव के प्रति दृढ़-भक्ति है। उनके संस्कृत भाषा में लिखे गए प्रत्येक ग्रन्थ का शुभारम्भ श्री जिनदेव की ही स्तुति से हुआ है।[5] उनके काव्यों के नायक श्री भगवान् जिनेन्द्रदेव के ही भक्त हैं।[6] इसके अतिरिक्त पात्रों द्वारा किया गया जिनदेव का पूजन भी कवि की भगवान् जिनेन्द्र में आस्था को अभिव्यक्त करता है।

भगवान् जिनेन्द्रदेव की मूर्त्तियों एवं जिनालयों पर कवि की आस्था नितान्त

---

१. सुदर्शनोदय, ३।३०-३१
२. वीरोदय, २८।५०-५१
३. दयोदयचम्पू, १ श्लोक १२ के बाद तीसरा गद्यभाग, ३ श्लोक ७ के बाद दूसरा गद्यभाग, ४।११, ५ श्लोक १४ के पूर्व का गद्यभाग, ६।१२
४. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।२८-३२, ४।५, ३५, ५।३२, ३४
५. (क) जयोदय, १।१
   (ख) वीरोदय, १।१
   (ग) सुदर्शनोदय, १।१
   (घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, १।१
   (ङ) दयोदयचम्पू, १।१
   (च) सम्यक्त्वसारशतक, १।१
६. (क) जयोदय, २४।५८-६०
   (ख) सुदर्शनोदय, ५ प्रारम्भ के ८ गीत

स्पष्ट है।[1] प्राय: सनातनधर्मावलम्बी हिन्दुओं की बालिकाएं अपने विवाह के अवसर पर सर्वप्रथम गौरी पूजन के लिए जाती हैं, परन्तु कवि ने ऐसे अवसर पर जिनपूजन की ही प्रेरणा दी है। 'जयोदय' की नायिका सुलोचना अपने विवाह के अवसर पर श्रीजिनदेव के ही पूजन हेतु जाती है।[2]

मंत्र शक्ति पर भी कवि का विश्वास है। 'णमो अरिहंताणं' इस मंत्र के बल से ही एक ग्वाले ने सेठ के पुत्र के रूप में जन्म लिया और जिनभक्ति के फल-स्वरूप मोक्ष भी प्राप्त किया।[3] गारुडिक ने अपनी मंत्र-शक्ति से ही राजा सिंहसेन को काटने वाले दुष्ट सर्प की पहिचान की।[4]

कवि ने इन्द्राणी, श्री, ह्री आदि देवियों एवं इन्द्र, कुबेर इत्यादि देवगणों की भी सत्ता स्वीकार की है। जिस प्रकार सनातन धर्म वाले इन देव-देवियों को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के शासन में स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार कवि ने अपनी परम्परानुसार इन देव-देवियों को जिनेन्द्रदेव का सेवक बताया है।[5]

कवि ने मानव जाति के अतिरिक्त एक और जाति बताई है—व्यन्तर एवं व्यन्तरी। कवि के अनुसार जब कोई व्यक्ति प्रतिशोध की भावना से आत्मघात करता है, तब उसका इसी योनि में जन्म होता है। इस योनि का स्वभाव प्रतिपक्षी के साथ दुर्व्यवहार करने का ही होता है।[6]

श्री ज्ञानसागर का ज्योतिर्विद् एवं ज्योतिष, दोनों पर ही विश्वास है। उनके अनुसार प्रत्येक शुभकार्य के लिए देवज्ञों से अथवा स्वयं मुहूर्त्त जान लेना चाहिए।[7]

हिन्दू-संस्कृति के सोलह संस्कारों पर उनकी आस्था है। उनके अनुसार नामकरण, विद्यारम्भ, विवाह इत्यादि संस्कार उचित समय पर ही होने चाहिएँ।[8] जयकुमार और सुलोचना के विवाह के अवसर पर वर को विवाहमण्डप में बुलाना, मन्त्रोच्चारणपूर्वक पाणिग्रहण कराना, बारात का सहर्ष स्वागत करना और हर्षमय विधान सहित वर-वधू को विदा करना आदि बातों का वर्णन यह बताता है कि

---

१. वीरोदय, २।३३-३६
२. जयोदय, ५।६१
३. सुदर्शनोदय, ४।२६-२७
४. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।१२-१४
५. वीरोदय, पंचम एवं सप्तम सर्ग।
६. (क) जयोदय, २।१४२-१४३
   (ख) सुदर्शनोदय, ८।३५; ९।७६-६३
७. दयोदयचम्पू, ४ श्लोक १७ के पूर्व का गद्यांश।
८. (क) वीरोदय, ८।२२
   (ख) सुदर्शनोदय, ३।१५ तथा २९

कवि को प्राचीनकाल से चली आ रही इन परम्पराओं पर पूरा विश्वास है।[1]

स्वप्न-दर्शन पर भी अपनी पूर्व-परम्परा के अनुसार उन्हें अत्यधिक विश्वास है। तीर्थङ्कर की माता पूर्व-जन्म से पूर्व सोलह स्वप्न देखती है।[2] और अन्तः केवली की माता पुत्रजन्म से पूर्व पाँच स्वप्न देखती है।[3] महाकवि की आस्था है कि ये स्वप्न में उत्पन्न होने वाले पुत्र की विशेषताओं का स्पष्ट संकेत देते हैं।[4]

श्री ज्ञानसागर ने व्यक्ति के पूर्वजन्मों को भी माना है। उनके प्रत्येक काव्य में पात्रों के पूर्वजन्मों से सम्बन्धित कथाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं।[5]

ज्ञानसागर जी राजा एवं मुनिजनों को राष्ट्र का सम्माननीय व्यक्ति मानते हैं। राजा जिस मार्ग से भी निकले, प्रजा को उसका स्वागत करना चाहिए।[6] त्याग की साक्षात् प्रतिमा मुनि तो न केवल जनसामान्य के ही, अपितु राजा के भी पूज्य होते हैं।[7]

वह त्यागोन्मुख भोग पर ही विश्वास करते हैं।[8] हिन्दू-संस्कृति के अनुसार वह भी यह मानते हैं कि पुत्र के राज्याभिषेक के पश्चात् पुरुष को तपस्या हेतु तपोवन में चला जाना चाहिए।[9]

---

१. जयोदय, १०।६, एकादश सर्ग, द्वादश सर्ग; १३।१-२१
२. वीरोदय, ४।२७
३. सुदर्शनोदय, २।१४-१८
४. (क) वीरोदय, ४।४०-६१
   (ख) सुदर्शनोदय, २।३६-४०
५. (क) जयोदय, २३।१०-६७
   (ख) वीरोदय, ११।१-३७
   (ग) सुदर्शनोदय, ४।१७-३७
   (घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।२२-३७
   (ङ) दयोदयचम्पू, लम्ब १, श्लोक २१ के बाद चौथे गद्यांश से दूसरे लम्ब तक।
६. जयोदय, ३१।५१-५२
७. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।३४
८. वही, ४।६
९. (क) जयोदय, २१।६७
   (ख) वही, २६।३८
   (ग) सुदर्शनोदय, ४।१४
   (घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।३३

वह अतिथि-वत्सल भी हैं। सोमदत्त का पालित पिता गोविन्द ग्वाला गुणपाल के विषय में बिना जाने ही उसका अतिशय सत्कार करता है और सोमदत्त को भी उसकी सेवा में नियुक्त कर देता है।[1]

कवि ने जलक्रीड़ा, पतङ्गक्रीड़ा एवं शतरंज-क्रीड़ा के सन्दर्भ में भी अपने ज्ञान का परिचय दिया है,[2] जो उसकी मनोरंजनप्रियता का परिचायक है।

कवि के अनुसार विवाह के समय कन्या को सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजाना चाहिए,[3] विवाहादि के शुभ अवसरों पर मङ्गलगीतों का प्रबन्ध होना चाहिये[4] एवं इन अवसरों पर दान भी देना चाहिए।[5]

भारतीय त्यौहारों पर भी श्रीज्ञानसागर की आस्था है। इसलिए उन्होंने अपने काव्यों में झूला-झूलने[6] और वसन्तोत्सव में वनविहार[7] करने का उल्लेख किया है।

हमारे कवि सङ्गीतप्रिय भी हैं। भारतीय परम्परानुसार उनका विश्वास है कि राग एवं ताल में निबद्ध भजनों के गायन से देवता अवश्य ही भक्त की पुकार सुन लेते हैं। अतः जहाँ कहीं भी उनके मन में भक्तिभाव जागरित हुआ है, वहाँ उन्होंने सङ्गीतमय भजन अपने इष्ट देव को सुनाये हैं।[8] उनके मतानुसार सङ्गीत हमारे मनोभावों एवं अन्तर्द्वन्द्व के प्रस्तुतीकरण में पर्याप्त सहायक होता है।[9]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्री ज्ञानसागर प्राचीन भारतीय संस्कृति को आदर की दृष्टि से देखते थे।

कवि की धार्मिक विचारधारा—

महाकवि श्री ज्ञानसागर जैनधर्म को मानने वाले हैं। यह जैनधर्म दो प्रकार

---

१. दयोदयचम्पू, चतुर्थ लम्ब।
२. (क) जयोदय, चतुर्दश सर्ग।
   (ख) वीरोदय, १२।२४-२६
   (ग) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ३।४१-४२
३. जयोदय, १०।२८-४०
४. वही, १०।१५-२२
५. वही, ३।६
६. वीरोदय, ४।७१-२३
७. सुदर्शनोदय, ६ प्रारम्भ के ४ गीत एवं १-३ श्लोक।
८. (क) जयोदय, १९वाँ सर्ग।
   (ख) सुदर्शनोदय, ५ प्रारम्भ के ८ गीत।
९. वही, ६ श्लोक २४ के बाद का गीत।

का हैं—श्वेताम्बर जैनधर्म और दिगम्बर जैनधर्म। कविवर के काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उन्हें दिगम्बर जैनधर्म पर ही विश्वास है। उन्होंने जैनधर्म कि वा जैन-दर्शन की अपने काव्यों में यत्र-तत्र प्रसङ्गानुकूल जो मीमांसा प्रस्तुत की है, उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है :

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह—इन पाँच पदार्थों का माहात्म्य सभी धर्मों में मान्य है। महाकवि श्रीज्ञानसागर की भी इन पाँचों महाव्रतों में गहन आस्था है। इन महाव्रतों के माहात्म्य प्रस्तुतीकरण हेतु ही उन्होंने अपने काव्यों की रचना की है, जिनमें 'दयोदयचम्पू' की रचना अहिंसाव्रत की पोषिका है, क्योंकि इस काव्य में एक मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर मृगसेन नामक धीवर के द्वारा अहिंसाव्रत के धारण करने का एवं उसके फलस्वरूप होने वाले फलों का वर्णन किया गया है। 'श्रीसमुद्रदत्तचरित्रकाव्य' सत्य और अस्तेय व्रतों का पोषक है। इस काव्य का नायक सत्य बोलकर उत्कर्ष की ओर अग्रसर होता है और श्रीभूति नामक पुरोहित चोरी के अपराध में दण्ड पाता है। 'वीरोदय' महाकाव्य ब्रह्मचर्य की महिमा का उद्घोष करता है। इस काव्य के नायक भगवान् आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं; और अपना समय लोककल्याण के मार्ग में लगा देते हैं। 'जयोदय' महाकाव्य अपरिग्रहव्रत के माहात्म्य के प्रस्तुतीकरण के लिये लिखा गया है। इस काव्य का नायक राजा होकर भी अपने वैभव को छोड़कर वन का आश्रय लेता है। 'सुदर्शनोदय' महाकाव्य इन पाँचों धर्मों के अतिरिक्त चित्त की दृढ़ता रूप आवश्यक धर्म के प्रस्तुतीकरण के लिए लिखा गया है। इतना ही नहीं उन्होंने इन व्रतों को धर्म रूप वृक्ष का आवश्यक अङ्ग भी माना है।[1]

भोजन के विषय में भी महाकवि की जैनधर्मानुसार कुछ निश्चित मान्यताएँ हैं, जैसे कि प्रत्येक व्यक्ति को पके हुए फल खाने चाहिएँ। क्योंकि कच्चे फलों में जीव होते हैं।[2] प्रत्येक गृहस्थ को निरामिष भोजन करना चाहिये और मदिरा, भङ्ग इत्यादि पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये।[3] अचार, मुरब्बा, मक्खन, बड़, पीपल, गूलर, अञ्जीर, पिलखन आदि को नहीं खाना चाहिये। चमड़े में रखे हुये तेल, घृत आदि पदार्थ नहीं खाने चाहिएं। चना, मूंग, छांछ इत्यादि द्विदल अन्न के साथ कच्चा दूध, दही, छांछ इत्यादि का उपयोग करना चाहिये।[4]

---

१. सुदर्शनोदय, ६।७०
२. वीरोदय, १६।३३
३. (क) जयोदय, २।१०६
   (ख) सुदर्शनोदय, ४।४३-४४
४. (क) वही, ६।५६-५८
   (ख) सागरधर्मामृत, २।११-१३

जैनधर्मावलम्बी गृहस्थों के विषय में विशेष व्यवहार की कुछ अनुकरणीय बातें भी कवि ने बताई हैं। तदनुसार गृहस्थ पुरुष को जीविकोपार्जन के लिये कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिये।[1] शैशवावस्था में विद्याग्रहण करके युवावस्था में धर्म का पालन करना चाहिये। उसका मन करुणा एवं निर्मल बुद्धि से युक्त होना चाहिये। परस्त्री में सद्बुद्धि रखनी चाहिये। दूसरे की सम्पत्ति में आसक्ति नहीं करनी चाहिये। वृद्ध जनों की बातों को सुनना चाहिये। अपना आचरण दूसरों के अनुकूल बनाना चाहिये[2]। गृहस्थ पुरुष को भी जल छानकर ही पीना चाहिए।[3] पर्व के दिनों में गृहस्थों को उपवास करना चाहिये।[4] इस प्रकार छल प्रपञ्च से रहित होकर गृहस्थ जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करके अन्त में संन्यास ले लेना चाहिये।[5]

जैन धर्मानुसार श्रावक को ग्यारह प्रतिमाएं धारण करनी पड़ती हैं, जो इस प्रकार हैं:—

दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामयिक प्रतिमा, प्रोषध प्रतिमा, सचित्तत्याग प्रतिमा, रात्रि-भोजन त्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरम्भ त्याग प्रतिमा, परिग्रह त्याग प्रतिमा, अनुमति त्याग प्रतिमा और उच्छिष्ट त्याग प्रतिमा।[6]

श्रीज्ञानसागर ने त्यागोन्मुख गृहस्थ श्रावक के लिये जिन ग्यारह नियमों के पालन का आदेश दिया है, वे जैनधर्म सम्मत उपर्युक्त ग्यारह प्रतिमायें ही हैं, उनका सरल एवं व्यावहारिक आशय इस प्रकार हैं :—

(क) उत्तेजक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये (दर्शन प्रतिमा)।

(ख) अतिथि को भोजन कराने के बाद भोजन करना चाहिये (व्रत प्रतिमा)।

(ग) "चर्मस्थिते धृते तैले तोये चाऽपि विशेषतः।
रसोत्पन्नाः सदा जीवाः सम्भवेयुर्मतं बुधैः॥"
—धर्मोपदेशपीयूषवर्ष—श्रावकाचार, ३।२७

१. वीरोदय, १६।१६

२. वही, १८।२३-३६

३. (क) वीरोदय, १६।२६
(ख) "वस्त्रेणातिसुपोतेन क्षालितं तत्पिवेज्जलम्। अहिंसाव्रतरक्षार्थं मांस-दोषापनोदने।" —धर्मसंग्रहश्रावकाचार, ३।३४

४. (क) जयोदय, २।३८
(ख) सुदर्शनोदय, ७।८-६
(ग) जैनधर्मामृत, ४।६३-६४

५. वीरोदय, १८।४०

६. जैनधर्मामृत, ४।१२६-१३६

(ग) तीनों सन्धाओं में भगवान् का स्मरण करना चाहिए (सामयिक प्रकार)।
(घ) अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उपवास करके मन को निश्चल रखना चाहिये (प्रोषध प्रतिमा)
(ङ) अग्नि-पक्व वस्तुओं का सेवन करना चाहिये (सचित्तत्याग प्रतिमा)
(च) दो बार से ज्यादा कदापि नहीं खाना चाहिये। अच्छा तो यह है कि एक ही बार खाने का अभ्यास करना चाहिये (रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा)।
(छ) कामसेवन का त्याग करके मन को आत्मचिन्तन में लगाना चाहिये (ब्रह्मचर्य प्रतिमा)।
(ज) ब्रह्मचर्य द्वारा इन्द्रिय-संयम करना चाहिए (आरम्भत्याग प्रतिमा)।
(झ) पूर्वोपार्जित धन के प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए (परिग्रह त्याग प्रतिमा)।
(ञ) दूसरे पुरुषों का भी सांसारिकता से मन हटाते हुए स्वयं सारा समय परमात्मा में लगाना चाहिए (अनुमतित्याग प्रतिमा)।
(ट) अपने लिए बनाए गए भोजन की आवश्यकता पड़ने पर दूसरों के लिए सहर्ष दान कर देना चाहिए (उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा)।[1]

जैनी महात्माओं के क्रमिक विकास के सोपान—

पुरुष वर्गीय जैनी महात्मा—

जैन-धर्म-ग्रन्थों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि जैन-धर्म में गृहस्थ व्यक्ति विरक्त होकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं। जैनधर्ममतावलम्बी गृहस्थ उपर्युक्त ग्यारह प्रतिमाओं में से प्रथम छः का पालन करते हैं; और ब्रह्मचारी सातवीं, आठवीं और नवीं प्रतिमाओं का पालन करते हैं।[2] तत्पश्चात् व्यक्ति के वानप्रस्थ आश्रम में जाने का विधान है। इस आश्रम में पहुँचे हुए व्यक्ति को ही क्षुल्लक किंवा भिक्षुक कहा जाता है।[3] भिक्षु की उपाधि प्राप्त करके पुरुष दसवीं एवं ग्यारहवीं प्रतिमाओं का भी पालन करते हैं।[4]

---

१. सुदर्शनोदय, ९।५९-६९
२. 'षडत्र गृहिणो ज्ञेयास्त्रयः स्युर्ब्रह्मचारिणः।'
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१) यशस्तिलकचम्पू, उपासकाध्ययन, ८२४ का पूर्वार्द्ध।
३. 'उत्कृष्टः श्रावको यः प्रक्षुल्लकोऽत्रैव सूचितः।
स चाऽपवादलिङ्गी च वानप्रस्थोऽपि नामतः॥'
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२) धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ६।२७९
४. 'भिक्षुकौ द्वौ तु निर्दिष्टौ ततः स्यात्सर्वतो यतिः॥'
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१) यशस्तिलकचम्पू, उपासकाध्ययन, ८२४ का उत्तरार्ध।

क्षुल्लकावस्था के कुछ लक्षण एवं नियम भी जैन-ग्रन्थों में मिलते हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

क्षुल्लकावस्था में मुनि के समीप खण्डवस्त्र धारण करके दीक्षा ग्रहण करता है और तदनन्तर सदा मुनि के समीप ही रहता है। भिक्षा के ही अन्न से अपनी क्षुधा शान्त करता है। दीक्षा ग्रहण करने के तीन या चार महीने बाद इसके केश-लुंचन का विधान है। इसके लिए कोमल शय्या के निषेध का आदेश है। इसको पापरहित कमण्डलु धारण करना चाहिये, अन्यप्रदत्त अल्पमूल्य वाला कौपीन एवं खण्डवस्त्र रखना चाहिए, भिक्षा के लिये एक छोटा सा पात्र रखना चाहिए, भिक्षा-वृत्ति के लिये सामान्य गति से चलना चाहिये, भिक्षा श्रेष्ठ घर से ही लेनी चाहिए, परन्तु उसके लिये अनुरोध नहीं करना चाहिये। क्षुल्लक को कच्चे पदार्थ नहीं खाने चाहिएँ। भोजन के स्वाद पर भी विचार नहीं करना चाहिए। छांछ, दही, मांस, रक्त, चर्म, हड्डी, मद्य इत्यादि पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। क्षुल्लक को अन्न खराब नहीं करना चाहिये। भोजन के बाद कुल्ला करना चाहिये, और अपना पात्र धोकर गुरु के समीप चला जाना चाहिये तथा उनको प्रणाम करके उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।[1]

इन भिक्षुओं के क्रमशः चार उत्कृष्ट रूप हैं—(क) साधु, (ख) यति, (ग) मुनि और (घ) ऋषि।[2] इनमें से साधु सामान्य रूप है, जिसका आत्मा तत्त्व में लीन है, मन आत्मा में लीन है, इन्द्रियाँ मन में लीन हैं, जो क्षपणक श्रेणी में आरूढ है, ऐसे भिक्षु को यति या योगी कहते हैं।[3] आत्मविद्या में मान्य, अवधिज्ञानी, मनः

---

१. श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२), प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, २४।२२-६८

२. भिक्षवो जिनरूपधारिणस्ते बहुधा भवन्ति—अनागारा यतयो मुनय ऋषयश्चेति।

—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१) चरित्रसागरश्रावकाचार, श्लोक २२ के पूर्व गद्य।

३. (क) 'तत्त्वे पुमान्मनः पुंसि मनस्यक्षकदम्बकम्।
यस्य तूक्तं स योगी स्यान्न योगोच्छ्रादुरीहितः॥'

—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१) यशस्तिलकचम्पूगत उपासकाध्ययन, ८३८

(ख) 'यतयः उपशमक्षपणकश्रेण्यारूढा भण्यन्ते।'

—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१) चरित्रसार श्रावकाचार, श्लोक २०२ के पूर्व का गद्य।

पर्यय ज्ञानी एवं केवलज्ञानी पुरुष मुनि कहलाते हैं[1] तथा ऋद्धि प्राप्त क्लेश समूह को रोकने वाले पुरुष ऋषि कहलाते हैं।[2]

इस स्थिति के बाद पुरुष में वीतरागता चरमसीमा तक बढ़ने लगती है। फलस्वरूप उसे परमेष्ठी कहा जाता है।[3] श्रेष्ठता के क्रम में इनके भी पाँच भेद होते हैं :—अर्हन्त परमेष्ठी, सिद्धपरमेष्ठी, आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय परमेष्ठी और साधु परमेष्ठी। इनमें अर्हन्त परमेष्ठी की संज्ञा उसे मिलती है, जो शारीरिक विकारों से रहित, जातिकर्मों को नष्ट करने वाला, अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य से युक्त हो।[4] जिस पुरुष के ज्ञानावरणादि आठ कर्म नष्ट हो गये हों, जिसके अन्दर सम्यक्त्वादि आठ गुण हों, जो लोकाकाश के ऊपर स्थित, आनन्दयुक्त, कर्म-मल से रहित हो उसे सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं।[5] दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चरित्राचार और तपस्याचार इन पाँच आचारों का स्वयं पालन करने वाला एवं शिष्य वर्ग से

---

१. (क) 'मान्यत्वादात्मविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः॥'
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१), यशस्तिलकचम्पू उपासनाध्ययन, ८२६ का उत्तरार्ध।
(ख) 'मुनयोऽवधिमानः पर्ययभवज्ञानिनश्च कथ्यन्ते।'
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१), चरित्रसार श्रावकाचार, श्लोक २२ के पूर्व का गद्य।

२. (क) 'रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः।'
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१) यशस्तिलकचम्पू श्रावकाचार, श्लोक २२ के पूर्व का गद्य।

३. 'परमेऽत्युत्तमे स्थाने तिष्ठन्ति परमेष्ठिनः। ते चार्हंसिद्ध आचार्यः पाठकः साधुराख्यया।
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२) धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ७।११४

४. (क) 'स्वभावज्ञानजामर्त्यविहिताऽतिशयान्वितः। प्रातिहार्यैरनन्तादिचतुष्केन युतो जिनः।
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२) धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ७।११७
(ख) जैनधर्मामृत, २।७३-७६
(ग) नेमिचन्द्र मुनि, द्रव्यसंग्रह, ३।५०

५. (क) श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२) धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ७।११६
(ख) जैनधर्मामृत, २।७७-७९
(ग) नेमिचन्द्र मुनि, द्रव्यसंग्रह, ३।५१

भी करवाने वाला, छत्तीस गुणों का धारक पुरुष आचार्य परमेष्ठी कहा जाता है।[1] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित धर्मोपदेश करने में तत्पर शास्त्राभ्यास करने वाले पुरुष को उपाध्याय परमेष्ठी की संज्ञा प्राप्त होती है[2] और सम्यक्त्व का साधन करने वाले, शान्त प्रवृत्तियों वाले पुरुषों को साधु परमेष्ठी कहा जाता है।[3]

जैन धर्मग्रन्थों में परमेष्ठी की संज्ञा प्राप्त करने के पूर्व मुनि की दैगम्बरी दीक्षा का विधान मिलता है। दिगम्बर मुनि × × ×को वस्त्रों का परित्याग कर देना चाहिए, शिर के केशों का लुंचन कर देना चाहिए, आभरणों को छोड़कर केवल पिच्छी धारण करनी चाहिए, वन में निवास करना चाहिए और अधिक बोलने तथा सोने का भी परित्याग कर देना चाहिए।[4]

ज्ञानसागर के काव्यों में प्राप्त होने वाली जैन महात्माओं की श्रेणियां—

जैन-धर्म-ग्रन्थों में उपर्युक्त विवेचन के आधार पर जब हम अपने आलोच्य-महाकवि ज्ञानसागर की रचनाओं को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि उन्होंने भी अपने काव्यों में अनेक प्रकार के रूपों का उल्लेख किया है। यहां हम अतिसंक्षिप्त रूप में उन्हें प्रस्तुत कर रहे हैं :—

दिगम्बर मुनि—

पुरुष की जैन-धर्म-सम्मत स्थिति का कवि ने अपने काव्यों में ६ बार उल्लेख किया है, जयोदय और वीरोदय में एक-एक बार, सुदर्शनोदय और श्रीसमुद्र-

---

१. (क) 'आचाराद्या गुणा अष्टौ तपो द्वादशधा दश।
स्थितिकल्पः षडावश्यमाचार्योऽमीभिरन्वितः॥'
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२), धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ७।११७
(ख) जैनधर्मामृत, २।८६-८७
(ग) नेमिचन्द्र मुनि, ३।५२

२. (क) 'एकादशाङ्गं सत्पूर्वचतुर्दशश्रुतं पठन्।
व्याकुर्वन्पाठयन्नन्यानुपाध्यायो गुणाग्रणीः॥'
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२), धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ७।११८
(ख) जैनधर्मामृत, २।८९-९५
(ग) नेमिचन्द्रमुनि, ३।५३

३. (क) 'दर्शनज्ञानचारित्रत्रिकं भेदेतरात्मकम्।
यथावत्साधयन्साधुरैकान्तपदमाश्रितः॥
—श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२) धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ७।११९
(ख) जैनधर्मामृत, २।९६-१०३
(ग) नेमिचन्द्रमुनि, ३।५४

४. श्रावकाचारसंग्रह (भाग-२) धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ६।२८०-२८२

दत्तचरित्र में दो-दो बार दयोदय-चम्पू में तीन बार।[1] दिगम्बर मुनि बनने के लिए कवि ने भी वस्त्रपरित्याग, केशलुंचन, मौनधारण, सहिष्णुता, एकाकिविहरण, मयूरपिच्छ-कमण्डलु धारण इत्यादि नियमों के विषय में प्रेरित किया है।[2]

मुनि—

साधु की इस अवस्था का कवि ने अपने काव्यों में ७ बार उल्लेख मात्र किया है—जयोदय और सुदर्शनोदय में एक-एक बार तथा श्रीसमुद्रदत्तचरित्र में पाँच बार।[3]

ऋषि—

साधु की इस अवस्था का वर्णन केवल सुदर्शनोदय में, और वह भी एक बार, आया है। सुदर्शनोदय में वर्णित एक ऋषिराज ने ही सेठ वृषभदास को दीक्षा देकर उपकृत किया है।[4]

योगी—

श्री ज्ञानसागर ने योगी पुरुष की विशेषताओं को जैनधर्म सम्मत ही बताया है। उनके अनुसार सुख की प्राप्ति हेतु इच्छाओं का निरोध करने वाले, चतुर्निकाय के देवगणों से सुपूजित, चञ्चल मन का नियन्त्रण करने वाले, इन्द्रिय निग्रह में तत्पर और बाह्य आडम्बर से रहित पुरुष को योगी कहा जाता है।[5]

महाकवि ज्ञानसागर ने अर्हन्त परमेष्ठी के वे गुण बताए हैं, जो जैन-दर्शना-

---

१. (क) जयोदय, २८।६६
   (ख) वीरोदय, १०।२४-२६
   (ग) सुदर्शनोदय, ४।१४, ८।३२
   (ङ) दयोदयचम्पू, १। श्लोक २२ के पूर्व का गद्यभाग, ७।श्लोक १७ के बाद का गद्यभाग, ७। श्लोक ३८ के पूर्व का गद्यभाग।

२. (क) वीरोदय, १०।२४।३७
   (ख) दयोदयचम्पू, श्लोक ३८ के पूर्व का गद्यभाग।

३. (क) जयोदय, १।७७
   (ख) सुदर्शनोदय, २।२४-२५
   (ग) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, २।२७, ४।६, १७, १८, ५।३०

४. सुदर्शनोदय, ४।१-१४

५. 'इच्छानिरोधमेवातः कुर्वन्ति यतिनायकाः।
   पादौ येषां प्रणमन्ति देवाश्चतुर्णिकायकाः॥
   मारयित्वा मनो नित्यं निगृह्णन्तीन्द्रियाणि च।
   बाह्याडम्बरतोऽतीतास्ते नरा योगिनो मताः॥'
   —वही, ९।४२-४३

चार्यों को मान्य हैं। मुनिराज सुदर्शन ने मोक्ष प्राप्ति के पूर्व अर्हन्त-परमेष्ठी-पद प्राप्त किया है। उस समय देह में उनको जरा भी ममत्व न रहा, उनके रागादि घातिया कर्म क्रमशः नष्ट हो गए। तत्पश्चात् वह पूर्ण निर्मल आत्मा वाले हो गये। उनकी आत्मा में सारा जगत् प्रतिबिम्बित होने लगा। गुणों से विभूषित वह सुदर्शन मुनि सर्ववंदेय हो गए।[1]

स्त्री वर्गीय जैनी महात्मा—

आर्यिका—

जैन-दर्शन एवं धर्म-ग्रन्थों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि जैन-धर्म में स्त्री को संन्यास-दशा का यह एक ही प्रकार मिलता है। आर्यिका स्त्री को दीक्षा लेते समय एक ही साड़ी धारण करनी आवश्यक होती है, अत्यल्प परिग्रह धारण करने वाली आर्यिका को भी केशलुंचन, कमण्डलु एवं पिच्छीधारण एवं आभरण त्याग करना पड़ता है।[2]

श्री ज्ञानसागर जी भी स्त्रियों के उत्कर्ष के पक्षपाती हैं। उन्होंने दो बार सुदर्शनोदय में, एक-एक बार श्रीसमुद्रदत्तचरित्र और दयोदय चम्पू में आर्यिका-व्रत की दीक्षा का उल्लेख किया है।[3] कवि के अनुसार स्त्री के लिए सर्वथा वस्त्र-त्याग का विधान नहीं है। पर आर्यिका बनते समय स्त्री को साड़ी के अतिरिक्त और

---

१. त्यक्त्वा देहगतस्नेहमात्मन्येकान्ततो रतः।
बभूवास्य ततो नाशमगू रागादयः क्रमात्॥
निःशेषतो मले नष्टे नैर्मल्यमधिगच्छति।
आदर्श एव तस्यात्मन्यखिलं बिम्बितं जगत्॥
न दीपो गुणरत्नानां जगतामेकदीपकः।
स्तुतो जनतयाधीतः स निरञ्जनतामधात्॥'
—वही, ९।८४-८६

२. "कौपीनेऽपि समूर्च्छत्वान्नार्हत्यार्यो महाव्रतम्।
अपि भाक्तसमूर्च्छत्वात् साटकेऽप्यार्यिकार्हति॥
× × ×
यदौत्सर्गिकमन्यद्वा लिङ्गमुक्तं जिनैः स्त्रियाः।
पुंवत्तदिष्यते मृत्युकाले स्वल्पीकृतोषधेः॥'
—श्रावकाचारसंग्रह सागरधर्मामृत, ८।३६, ३८

३. (क) सुदर्शनोदय, ८।३३-३४, ९।७४
(ख) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।१६
(ग) दयोदयचम्पू, ७।श्लोक ३७ के पूर्व का गद्यभाग।

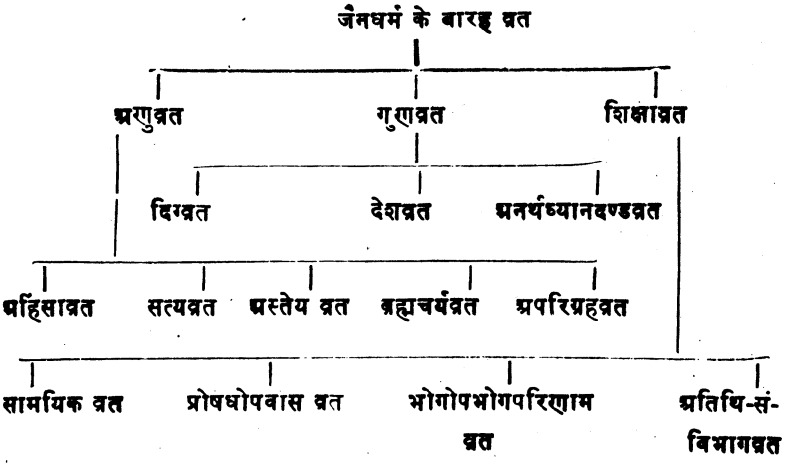
सभी परिग्रहों को छोड़ देना चाहिये।[1]

क्षुल्लिका—

आर्यिका के अतिरिक्त कवि ने क्षुल्लिका का भी वर्णन किया है। यह वर्णन जैनधर्म ग्रन्थों में नहीं मिलता। किन्तु क्षुल्लिकावस्था के विषय में कवि का कथन है :—

क्षुल्लिकावस्था में स्त्री को केवल एक श्वेत साड़ी और एक श्वेत उत्तरीय—ये दोनों वस्त्र धारण करने चाहिएँ, कमण्डलु और थाली इन दो पात्रों से अपना निर्वाह करना चाहिये। क्षुल्लिका स्त्री दया, क्षमा, सन्तोष सत्य इत्यादि गुणों को धारण करती है। अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास करती है। क्षुल्लिका स्त्री तीनों सन्ध्याओं में पूजन करती है. अग्निपक्व दाल, भात, शाक, रोटी इत्यादि को भिक्षा के रूप में गृहस्थों से ग्रहण करती है। दिन में केवल एक बार खाना खाती और पानी पीती है। जिनदेव का स्मरण करते हुए प्राणिमात्र से मैत्रीभाव रखती है।[2]

जैन धर्माचार्यों ने श्रावकों के जो बारह व्रत बताये हैं, वे निम्नलिखित रेखाचित्र में प्रस्तुत हैं[3] :—



इनमें से अणुव्रतों के विषय में तो कवि के विचार इसी अध्याय में प्रस्तुत

१. (क) सुदर्शनोदय, ८।३३-३४
(ख) दयोदय चम्पू, ७।श्लोक ३८ के पूर्व का गद्यभाग।
२. सुदर्शनोदय, ४।३१-३६
३. जैनधर्मामृत, ४।५-१०७

किये गये हैं,[1] शेष सात व्रतों में से दो गुणव्रतों (दिग्व्रत और देशव्रत) को छोड़कर पाँच व्रतों का कवि ने अपनी कृतियों में जो उल्लेख किया है उसका वर्णन तत्तद् व्रतों के परिचय के साथ अब यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) अनर्थदण्डव्रत—

अकारण किये जाने वाले पापजनक कार्यों को अनर्थदण्ड कहा जाता है, जैसे आखेट-गमन, युद्ध, परस्त्रीगमन, चोरी का विचार करना, विद्या-व्यापार-लेखनकला-खेती-सेवा और कारीगरी से भरण-पोषण करने वालों को पापोपदेश देना, अकारण ही पृथ्वी खोदना, वृक्ष उखाड़ना, हरी दुर्वा पर चलना, पानी नष्ट करना, तथा फल-फूलों का संग्रह करना, छुरी इत्यादि हिंसा के उपकरण बनाना और बेचना, बुरी बातों को सुनना और सुनाना, दूसरों को अज्ञानभरी बातों की शिक्षा देना, द्यूत-क्रीड़ा, सट्टेबाजी आदि-आदि। इन सब अनर्थदण्डों का परित्याग ही जैनधर्म में 'अनर्थदण्डव्रत' कहलाता है। इस व्रत को धारण करने वाला पुरुष अहिंसाव्रत का सच्चा धारक होता है।[2]

श्री ज्ञानसागर की जैनधर्म-सम्मत इस व्रत पर पूरी-पूरी आस्था है। इसीलिए तो उन्होंने 'जयोदय' महाकाव्य के नायक जयकुमार को गृहस्थ धर्म एवं राजनीति की शिक्षा देने वाले मुनि के द्वारा अनर्थदण्डों का परित्याग करने के लिए उपदेश दिलवाया है।[3] इसी प्रकार 'दयोदयचम्पू' के नायक मृगसेन धीवर के हृदय में आखेट-गमन के प्रति विरक्ति जागरित कराकर उन्होंने उक्त व्रत के प्रति न केवल अपनी आस्था ही प्रकट की हैं,[4] अपितु समाज के अन्य सभी व्यक्तियों को उक्त व्रत पालन की प्रेरणा भी दी है।

(ख) सामयिक शिक्षा-व्रत—

राग और द्वेष का त्याग करके समस्त द्रव्यों में साम्यभाव का आलम्बन करके रहस्य प्राप्ति के मूल कारण भगवद् गुणों का स्मरण करना ही सामयिक शिक्षा व्रत है। इसे रात्रि और दिन के अन्त में अवश्य ही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त समय में भी करने में और भी अधिक अच्छाई संभव है।

श्रीज्ञानसागर भी जैनियों के इस व्रत के पक्षपाती हैं। उन्होंने इस व्रत को तीनों सन्ध्याओं में करने का उपदेश दिया है[5] :—

---

१. कवि की धार्मिक विचारधारा, पृ० सं० ४६६-४७०
२. जैनधर्मामृत, ४।८६-९२
३. जयोदय, २।१२६-१३७
४. दयोदयचम्पू, १।श्लोक २२ से लम्ब पर्यन्त एवं द्वितीय लम्ब।
५. जैनधर्मामृत, ४।९३-९४

"अद्येदिनं प्रातरिवाथ सायं यावच्छरीरं तनुमानमायाम् ।
स्मरेदिदानीं परमात्मनस्तु सदैव यन्मङ्गलकारिवस्तु ।।"[1]

(ग) प्रोषधोपवास व्रत—

जैन-धर्माचार्यों ने इस व्रत को सामयिक-शिक्षाव्रत के स्थायित्व के लिए आवश्यक माना है।[2] उनका कहना है कि प्रत्येक काल के दोनों पक्षों के अर्द्धभाग में प्रोषधोपवास अवश्य करना चाहिए। प्रोषधोपवास करने के दिन से पहले के दिन दोपहर से ही उपवास कर लेना चाहिए। इस समय पुरुष को राग-द्वेष से रहित होकर एकान्त सेवन करना चाहिए। वहाँ धर्म का चिन्तन करते हुए दिन बिताना चाहिये। तत्पश्चात् सन्ध्याकालीन क्रियाओं को करके पवित्र विस्तर पर स्वाध्याय करते हुए निद्रा रहित ही रात्रि को बिताना चाहिये।[3]

श्रीज्ञानसागर के अनुसार महीने की अष्टमी और चतुर्दशी तिथि को सोलह प्रहर का उपवास प्रारम्भ गुरु के समीप करना चाहिए और समाप्ति पर अतिथि को भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करना चाहिये।[4]

(ग) भोगोपभोग परिणाम शिक्षा व्रत—

श्रम और आसक्ति को हटाने के लिए इन्द्रिय के विषयों को अतीव परिमित संख्या में रखना ही 'भोगोपभोगपरिणाम' नामक शिक्षाव्रत है। शरीर को बहुत बाधा व पहुँचाने वाले तथा स्थावर जीवों की हिंसा के हेतुभूत जिमीकन्द, मूली, अदरक, मक्खन इत्यादि अनुपसेव्य पदार्थों का परित्याग कर देना चाहिए।[5]

हम देखते हैं कि श्री ज्ञानसागर जी ने पुरुष को भोगोपभोग के पदार्थों के प्रति त्याग का उपदेश किया है :—

"भोगोपभोगतो वांछा भवेत् प्रत्युत दारुणा ।
वह्निः किं शान्तिमायाति क्षिप्यमाणेन दारुणा ? ।।
ततः कुर्यान्महाभाग इच्छाया विनिवृत्तये ।
सदाऽऽनन्दोपसम्पत्त्यै त्यागस्यैवावलम्बनम् ।।[6]

(ङ) अतिथि-संविभागशिक्षाव्रत—

वैदिक साहित्य में मानव मात्र को अतिथि-वत्सलता की शिक्षा देते हुए 'अतिथिदेवो भव' जैसे वाक्य प्रस्तुत किये गए हैं। जैन धर्माचार्यों ने भी अतिथि की सेवा को 'व्रत' का नाम दिया है। उनके अनुसार दाता श्रावक जब दिगम्बर-वंशधारक साधु को नवधाभक्तिसहित आहारादि द्रव्य-विशेष का दान करता

१. सुदर्शनोदय, ६।६१
२. जैनधर्मामृत, ४।६६-१०२
३. सुदर्शनोदय, ७।६ एवं आगे का गीत।
४. जैनधर्मामृत, ४।१०३-१०५
५. सुदर्शनोदय, ६।४०-४१

है, तब उसकी इस क्रिया को 'अतिथि-संविभाग' नामक शिक्षाव्रत कहा जाता है।[1]

श्रीज्ञानसागर भी इस 'अतिथिसंविभाग व्रत' को महत्त्व देते हैं। उनकी कृति 'दयोदयचम्पू' के पात्र सोमदत्त एवं विषा घर आये हुए दिगम्बर साधु को अभिवादनपूर्वक बुलाते हैं। उनकी प्रदक्षिणा करके उन्हें उच्चासन पर बिठाते हैं, उनके चरण धोकर उनकी पूजा करते हैं और हर्षित होकर उन्हें निर्दोष भोजन समर्पित करते हैं।[2]

महाकवि ज्ञानसागर की दृष्टि में जैन-धर्म का ज्ञानपंचक—

जैन धर्म में सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद माने गये हैं— मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान एवं केवल ज्ञान।[3] कवि ने अपने काव्यों में आरम्भिक दो ज्ञानों (मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान) को छोड़कर शेष तीनों (अवधिज्ञान, मनःपर्यय-ज्ञान एवं केवलज्ञान) की चर्चा की है। यहाँ अतिसंक्षेप में उन तीनों ही ज्ञानों का परिचय एवं मुनिश्री के काव्यों में प्राप्त उनकी चर्चा का क्रमिक उल्लेख प्रस्तुत है।

अवधिज्ञान—

जैन-धर्म-ग्रन्थों के अनुसार बाह्य कारणों के प्रति निरपेक्ष, सम्यक्-दर्शन आदि गुणों से उत्पन्न क्षय एवं उपशम का कारण तथा भौतिक विषयों को मर्यादित करने वाला ज्ञान ही अवधिज्ञान कहलाता है।[4]

इस ज्ञान का उल्लेख कवि ने अपने एक काव्य वीरोदय में एक स्थान पर

---

१. जैनधर्मामृत, ४।१०७

२. दयोदयचम्पू, ७।श्लोक १७ और श्लोक २१ के बीच का गद्यभाग।

३. (क) 'तज्ज्ञानं पञ्चविधं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलभेदेन।'
—माधवाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, कारिका १९ के बाद का गद्यभाग।

(ख) 'मतिश्रुतावधिज्ञानं मनःपर्ययकेवलम्।
तदित्थं सान्वयैर्भेदैः पञ्चधेति प्रकल्पितम्॥'
—जैनधर्मामृत, ३।३

४. (क) 'सम्यग्दर्शनादिगुणजनितक्षयोपशमनिमित्तमवच्छिन्नविषयं ज्ञानमवधिः।'
—माधवाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, कारिका १९ के बाद का गद्यभाग।

(ख) देवनारकयोर्ज्ञेयस्त्ववधिर्भवसम्भवः। षड्विकल्पश्च शेषाणां क्षयोपशम-लक्षणः॥'
—जैनधर्मामृत, ३।६

किया है, जहाँ इस ज्ञान की सहायता से ही भगवान् महावीर ने अपने पूर्वजन्मों के वृत्तान्तों को जाना था।[1]

मनःपर्ययज्ञान—

इस ज्ञान के विषय में जैनधर्माचार्यों का कहना है कि जब व्यक्ति के मन से ईर्ष्या, ज्ञानावरण इत्यादि हट जाते हैं; और उसका मन निर्मल हो जाता है, तब व्यक्ति दूसरे के मन की बात को आसानी से जान जाता है। व्यक्ति की इसी स्थिति का नाम मनःपर्याय ज्ञान है।[2] किन्तु श्रीज्ञानसागर के अनुसार दैगम्बरी दीक्षा लेने के बाद महापुरुषों के मन में मनःपर्याय ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। कवि ने इस ज्ञान को मानसिक अन्धकार का संहारक कहा है। जयकुमार एवं भगवान् महावीर के मन में दैगम्बरी दीक्षा लेने के बाद इसी ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ था।[3]

केवल ज्ञान—

कर्मरूपी मल के नष्ट हो जाने पर महापुरुषों को केवल ज्ञान होता है। समस्त द्रव्यों के अनन्त पर्यायों को जानने वाला, सम्पूर्ण विश्व का अवलोकन करने के लिए नेत्र के समान, अनन्त, एक और अतीन्द्रिय ज्ञान केवल ज्ञान कहा जाता है।[4]

कविवर ज्ञानसागर ने केवल ज्ञानी के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है :—केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले की दृष्टि निर्निमेष हो जाती है, उसके चार मुख दृष्टिगोचर होने लगते हैं, शरीर की छाया नहीं पड़ती, उसके प्रभाव से पृथ्वी हरी-भरी हो जाती है, उसका शरीर पृथ्वीतल का स्पर्श नहीं करता, नख और केश नहीं

---

१. वीरोदय, ११।१

२. (क) 'ईर्ष्यान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमे सति परमनोगतस्यार्थस्य स्फुटं परिच्छेदकं ज्ञानं मनःपर्यायः।'
—सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हत दर्शन, कारिका १९ के बाद के गद्यभाग से।
(ख) 'ऋजुविपुल इत्येवं स्यान्मनःपर्यायो द्विधा।
विशुद्धयप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषोऽवगम्यताम्॥
—जैनधर्मामृत, ३।७

३. (क) जयोदय, २८।६२ (ख) वीरोदय, १०।२७

४. (क) 'तपःक्रियाविशेषान्यदर्थं सेवन्ते तपस्विनः तज्ज्ञानमन्यज्ञानावृष्टं केवलम्।'
—सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, कारिका १९ के बाद के गद्यभाग से।
(ख) 'अशेषद्रव्यपर्यायविषयं विश्वलोचनम्। अनन्तमेकमत्यक्षं केवलं कीर्तितं बुधैः॥'
—जैनधर्मामृत, ३।८

बढ़ते, भोजन का सर्वथा त्याग हो जाता है, सर्वज्ञता आ जाती है और उसके प्रभाव से समस्त वातावरण आनन्दमय हो जाता है।[1]

कवि ज्ञानसागर की दृष्टि में ईश्वर—

सनातन धर्मावलम्बी नैयायिक लोग ईश्वर को पुरुष का भाग्यविधाता मानते हैं। किन्तु जैन धर्मावलम्बी जन ईश्वर के विषय में कुछ दूसरी ही मान्यता रखते हैं। वे ईश्वर का कर्ता होना स्वीकार नहीं करते, क्योंकि यदि ईश्वर को कर्ता माना जाय, तो मनुष्य के लिए कोई कार्य शेष ही नहीं रहेगा।[2]

श्रीज्ञानसागर भी ईश्वर को कर्ता नहीं मानते। उनका मत है कि संसार में होने वाले परिवर्तन काल नामक द्रव्य की सहायता की अपेक्षा रखते हैं, ईश्वरकृत नियमन की नहीं।[3]

इसी प्रकार कोई भी वस्तु न तो उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है, उसमें केवल परिवर्तन होता है। चूँकि प्रत्येक वस्तु में वस्तुत्व नामका एक धर्म होता है अतः वह अपना कार्य करती है। बीज से वृक्ष की और वृक्ष से बीज की उत्पत्ति स्वतः होती है। अतः वस्तु के उत्पन्न होने या नष्ट होने में भी ईश्वर को कारण मानना व्यर्थ है। यदि ईश्वर का इन पदार्थों के परिणमन में प्रभाव पड़ता तो वस्तु के स्वाभाविक धर्म व्यर्थ हो जाते। अतः स्पष्ट है कि ईश्वर संसार का नियन्ता नहीं है।[4]

श्रीज्ञानसागर की दृष्टि में कर्मकाण्ड—

श्राद्धतर्पण इत्यादि कर्मकाण्डीय क्रियाओं का जैनधर्म में कोई स्थान नहीं है।

---

१. वीरोदय, १२।४०-५१

२. (क) तदुक्तं वीतरागस्तुतौ—

'कर्त्तास्ति कश्चिज्जगतः स चैकः, स सर्वगः, स स्ववशः स नित्यः।
इमाः कुहेवाकविडम्बनाः स्युस्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥
(वी० स्तु० ६) इति।

अन्यत्रापि—

'कर्त्ता न तावदिह कोऽपि यथेच्छया वा लुप्तोऽन्यथा कटकृतावपि तत्प्रसङ्गः।
कार्यं किमत्र भवतापि च तत्कलाभैराहत्य च त्रिभुवनं पुरुषः करोति ॥'इति।
—श्रीमन्माधवाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, पृ० सं० १३३-१३४

(ख) श्रावकाचारसंग्रह (भाग-१) अमितगतिकृत, श्रावकाचार, ४।७७-१००

३. 'न कोऽपि लोके बलवान् विभाति समास्ति चैका समयस्य जातिः।
यतः सहायादभवतादभूतः परो न कश्चिद्भुवि कार्यदूतः ॥'
—वीरोदय, १८।२

४. वीरोदय, १६।३८-४४

मुनि श्रीज्ञानसागर इन विधियों का न तो धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति में उपयोग मानते हैं और न मोक्ष की प्राप्ति में। व्यक्ति की इनमें प्रवृत्ति होना तो बिल्कुल मूर्खता है।[1]

श्रीज्ञानसागर की दृष्टि में जैन-धर्म की उपयोगिता—

कहना न होगा कि कवि श्रीज्ञानसागर की केवल जैनधर्म पर आस्था है। उन्होंने कहीं भी सनातन धर्म या बौद्ध-धर्म के प्रति अपनी रुचि नहीं दिखाई है। इसका एक कारण तो यह है कि यह आस्था उन्हें संस्कार में मिली थी, किन्तु इसका दूसरा विशेष कारण यह भी है कि वास्तव में यह धर्म अन्य धर्मों की अपेक्षा मानवमात्र के लिए उपयोगी है। इसकी उपयोगिता के अनेक प्रमाण कवि ने अपने काव्यों में प्रस्तुत किए हैं।

यह निस्सन्दिग्ध है कि इस धर्म की सबसे बड़ी विशेषता सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह नामक पंच महाव्रत हैं। वैसे तो इन पाँचों व्रतों की महिमा सभी धर्मों में मान्य है, किन्तु जैन-धर्म में इनका कठोरता से पालन करना आवश्यक है।

इस धर्म के अनुसार सत्य महाव्रत का पालन इसलिए आवश्यक है कि पुरुष वाणी से पवित्र हो। असत्य वचन बोलकर दूसरों को ठगने वाला व्यक्ति भेद खुलने पर सत्यघोष ब्राह्मण की तरह अवश्य ही दुःखद परिणाम भोगने को बाध्य हो जाता है।[2]

अहिंसा महाव्रत का पालन हमें प्राणिमात्र के प्रति दया की शिक्षा देता है। क्योंकि प्रत्येक प्राणिमात्र को चोट लगने पर कष्ट की अनुभूति होती है। हिंसा करने वाले को यह सोचना चाहिए कि मैं जिनकी हिंसा कर रहा हूँ, उन्हें जो कष्ट हो रहा है, कदाचित् कोई मुझे मारे तो मुझे भी वैसा ही कष्ट सहन करना पड़ेगा।

ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन हमें कामुकता से हटने की शिक्षा देता है। इस महाव्रत का पालन करने से निस्सन्देह ही पुरुष का जीवन मर्यादित हो जाता है। फलस्वरूप वह अपना जीवन लोककल्याण में लगा सकता है।

अस्तेय महाव्रत का पालन हमें कर्मठता सिखाता है। चोरी करने वाला व्यक्ति निष्क्रिय होकर चोरी से लाये पदार्थों पर निर्भर हो जाता है, जबकि अस्तेय महाव्रत का पालन करने वाला व्यक्ति आजीविकोपार्जन के लिये कुछ न कुछ कार्य अवश्य करता है।

अपरिग्रह महाव्रत का पालन पुरुष में निर्भीकता का गुण उत्पन्न कर देता है। इस महाव्रत का पालन हमें सिखाता है कि संसार में कोई भी पदार्थ अपना नहीं है, यहाँ तक कि शरीर भी नहीं, अतः किसी वस्तु पर ममता नहीं रखनी चाहिए।

---

१. (क) जयोदय, २।८८
   (ख) वीरोदय, १५।६१
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ४।५

उपर्युक्त महा तों का पालन करने के फलस्वरूप ही व्यक्ति में सत्यवादिता, दया, सदाचार, कर्मठता और निर्लोभता जैसे स्पृहणीय गुण आ जाते हैं।

जैन-धर्म में ब्रह्मचर्य त को विशेष महत्त्व दिया गया है। भगवान् महावीर एवं सेठ सुदर्शन में यह गुण प्रचुर रूप से दृष्टिगोचर होता है।[1] इतना ही नहीं कवि श्रीज्ञानसागर ने इन दोनों महापुरुषों के माध्यम से परोपकारपरायणता और सहिष्णुता जैसे अद्भुत गुणों की भी शिक्षा दी है।

जैन-धर्म केवल वानप्रस्थियों के लिए ही नहीं, अपितु गृहस्थों के लिए भी उपयोगी है। गृहस्थों को सदाचरण, आहार-विहार, अतिथिपूजन, देवपूजन, आत्म-कल्याण आदि अपेक्षित गुणों की शिक्षा देने में यह धर्म पूर्णतया समर्थ है। यह धर्म व्यक्ति को अन्धविश्वास से भी दूर रहने की शिक्षा देता है।[2]

इस प्रकार अपने काव्य के पात्रों के माध्यम से कवि ने इस धर्म की उपयोगिता को सिद्ध करने में विलक्षण सफलता प्राप्त की है। प्रकारान्तर से इस तथ्य का वर्णन इस शोध-प्रबन्ध में भी अन्यत्र हो चुका है,[3] अतः पुनरावृत्ति के भय से यहाँ इसका विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है।

कवि की दार्शनिक विचारधारा—

जैन धर्म के समान ही कवि की जैन-दर्शन पर भी पूरी-पूरी आस्था है। उन्होंने अपने काव्यों में साहित्य की गङ्गा के साथ दर्शन की यमुना का भी अद्भुत समन्वय किया है। यहाँ उनके द्वारा प्रस्तुत जैन-दर्शन से सम्बन्धित तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत है—

स्याद्वाद सिद्धान्त—

यह जैन-दर्शन का वस्तु के यथार्थस्वरूप को जानने में सहायक परम प्रसिद्ध सिद्धान्त है। सभी जैन-दार्शनिकों ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।[4]

श्री ज्ञानसागर की भी इस सिद्धान्त के प्रति रुचि है। उनके अनुसार प्रत्येक वस्तु में अर्थक्रियाकारिता होती है। अतः निरर्थक वस्तु का अभाव मानना चाहिए।

---

१. (क) वीरोदय, ८।२३-४३
   (ख) सुदर्शनोदय, ५।१६, ७।२६, ६।२६
२. (क) वीरोदय, १८।३३-३६
   (ख) सुदर्शनोदय, ४।४०-४५
   (ग) दयोदयचम्पू, ७।१८
३. (क) जयोदय, २७;६५-६६
   (ख) वीरोदय, १५वाँ सर्ग।
   (ग) सुदर्शनोदय, ४।१४, ४७
   (घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, अष्टम सर्ग।
   (ङ) दयोदयचम्पू, लम्ब १।२२-२४; लम्ब ७।श्लोक ३७ और ३८ के बीच का गद्यभाग।
४. श्रीमन्माधवाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हत-दर्शन, पृ० सं० १६६-१७६

प्रत्येक वस्तु पूर्वरूप को छोड़ती हुई नवीन रूप को धारण करती है, किन्तु वह अपने मूलस्वरूप को नहीं छोड़ती। अतः प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—इन तीन रूपों को धारण करती है।[1]

एक ही वस्तु किसी के लिए अपेक्षित और किसी के लिए अनपेक्षित होती है। अतः वस्तु में सत् और असत् दोनों गुण पाये जाते हैं। इन दो गुणों की विवक्षा एक ही व्यक्ति नहीं कर सकता। इसलिए अस्ति, नास्ति के अतिरिक्त वस्तु में अवक्तव्य नामक तीसरा गुण भी पाया जाता है। इस प्रकार (क) अस्ति, (ख) नास्ति, (ग) अवक्तव्य, (घ) अस्ति-नास्ति, (ङ) अस्ति-अवक्तव्य, (च) नास्ति-अवक्तव्य के भेद से वस्तु के एक संयोगी, द्विसंयोगी, और त्रिसंयोगी कथन करने से सात धर्म सिद्ध हो जाते हैं। जैन-दर्शन में इनको ही सप्तभङ्ग कहा जाता है। प्रत्येक भङ्ग के पूर्व में 'स्यात्' पद जोड़ा जाता है, जब व्यक्ति 'स्यादस्ति' कहता है तब अन्य छः धर्मों का स्थान गौण हो जाता है और जब व्यक्ति 'स्यान्नास्ति' कहता है, तब 'स्यादस्ति' आदि अन्य छः धर्मों की अप्रधानता हो जाती है। अतः विवक्षापूर्वक वस्तु के धर्मों का कथन ही स्याद्वाद (अनेकान्तवाद और अपेक्षावाद) कहलाता है। इसकी सहायता से हम वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान सकते हैं।[2]

द्रव्य-स्वरूप एवं भेद—

जैन-दर्शनानुसार श्री ज्ञानसागर का कहना है कि वस्तु में स्थित ध्रुव नामक विशेषता को गुण कहा जाता है, और उत्पाद तथा व्यय नामक विशेषताओं को पर्याय कहा जाता है। गुण एवं पर्याय से युक्त वस्तु का नाम ही द्रव्य है।[3]

जैनदर्शन ग्रन्थों और ज्ञानसागर के काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि कवि ने द्रव्य के भेद इन ग्रन्थों के आधार पर ही किए हैं। उनके अनुसार द्रव्यों के दो प्रकार हैं—सचेतन और अचेतन। चेतन द्रव्य ही स्वयं भोक्ता, स्वतन्त्र एवं महत्त्वपूर्ण पदार्थ हैं। चेतन द्रव्य या जीव के चार प्रकार हैं—देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यञ्च। इनमें से देव, नारकी और मनुष्य इन तीन जीवों को चर या त्रस जीव कहा जाता है। तिर्यञ्च जीवों की चर एवं अचर (स्थावर) के भेद से दो कोटियाँ हैं। चर जीव उन्हें कहते हैं, जिनकी एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं

---

१. वीरोदय, १६।१-३

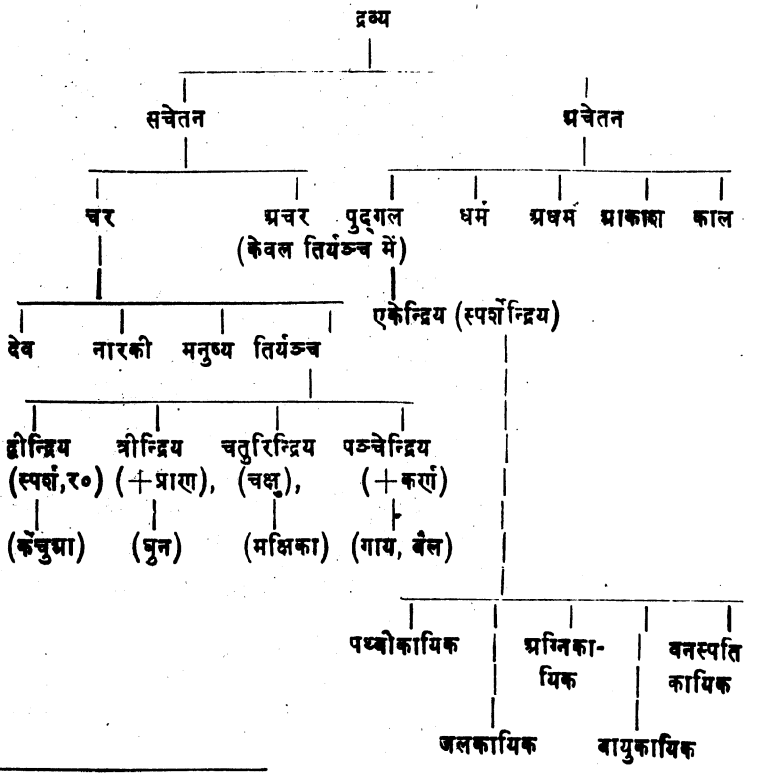
२. (क) वीरोदय, षु६।४-१७

३. (क) 'समुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं क्षीणकल्मषाः।
गुणपर्ययवद्द्रव्यं वदन्ति जिनपुङ्गवाः॥
—जैन धर्मामृत, ८।४

(ख) 'ध्रुवांशमाख्यान्ति गुणेन नाम्ना पर्येति योऽन्यद्द्वितयोक्तधामा।
द्रव्यं तदेतद् गुणपर्ययाभ्यां यद्वाऽत्र सामान्यविशेषताभ्याम्॥'
—वीरोदय, १६।१८

और अचर जीव उन्हें कहते हैं, जिनको एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियां होती हैं, जिनको केवल स्पर्शेन्द्रिय होती हैं। इस प्रकार से तिर्यञ्च जीवों के भेद चार चर और पांच अचर के भेद से नौ प्रकार होते हैं, जो इस प्रकार हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय—ये चार चर हैं, पृथ्वीकायिक जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पांच एकेन्द्रिय और अचर (स्थावर) हैं। अचेतन द्रव्य के भी पांच प्रकार हैं :—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। पुद्गल द्रव्य मूर्त्त होता है, शेष चार अमूर्त्त हैं। जीव और पुद्गल द्रव्यों के गमन का कारण धर्म द्रव्य है। और पुद्गल को ठहरने में सहायक कारण अधर्म-द्रव्य है। समस्त द्रव्यों को अपने भीतर अवकाश देने वाला द्रव्य आकाश द्रव्य है। द्रव्यों के परिवर्तन में निमित्त कारण को कालद्रव्य कहते हैं।[1]

द्रव्यों के भेद प्रभेद से सम्बन्धित रेखाचित्र प्रस्तुत है :—



१. (क) श्रावकाचारसङ्ग्रह (भाग-१), यशस्तिलकचम्पू उपासकाध्ययन, १०८-११०
(ख) श्रावकाचारसङ्ग्रह (भाग-१), अमितगति श्रावकाचार, ३।१-३३
(ग) श्रावकाचारसङ्ग्रह (भाग-२), प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, २।१६-३०

ध्यान—

जैन दर्शनाचार्यों ने ध्यान को आभ्यन्तर तप का एक प्रकार बताते हुए उसके चार भेद किये हैं :— आर्त, रौद्र, धर्म्य एवं शुक्ल।[1]

हमारे कवि का यही मत है। उनके अनुसार आत्मा के उपभोग में एकाग्रता का आना ही ध्यान कहलाता है। ध्यान के आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ये चार भेद हैं। किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ता रूप शोकातुरता का नाम आर्त-ध्यान है। हिंसक कार्यों के प्रति प्रवृत्ति को रौद्र ध्यान कहते हैं। शरीर और आत्मा को भिन्न-भिन्न समझते हुए धार्मिक कार्यों में प्रवृत्ति को ही धर्म्य ध्यान कहते हैं, अब जब इसी ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय का भेद समाप्त हो जाता है, तो इस (धर्म्य ध्यान) को ही शुक्ल-ध्यान कहा जाता है।[2]

कर्म—

जैन-धर्म में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र एवं अन्तराय—ये आठ कर्म बताये गए हैं।[3]

श्रीज्ञानसागर ने भी इन आठ कर्मों को मानते हुए बताया है कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय—ये चार 'घातिया' कर्म हैं। आत्मा को ज्ञान दर्शन एवं शक्ति का उपयोग करने में बाधक और भुलावे में डालने वाले कर्मों को जैन-दर्शन में 'घातिया' कर्म कहते हैं। 'अघातिया' कर्म सीधे-सीधे आत्मा के गुणों को हानि नहीं पहुँचाते। ये क्रमशः आत्मा में ऊँच-नीच का भेद, अच्छी-बुरी चीजों से सम्पर्क, शरीर और उसके अङ्गोपाङ्गादि बनाने में सहायक और आत्मा को शरीर में रोकने इत्यादि का कार्य करते हैं। अतः घातिया कर्म आत्मा के अनुजीवि गुणों का और अघातिया कर्म प्रतिजीवि गुणों का क्षय करते हैं।[4]

(घ) जैन-धर्मामृत, ८।१-२४

(ङ) नेमिचन्द्र मुनि, द्रव्य-संग्रह, १।१२, २।१५, १७-१९; २१

(च) वीरोदय, १९।२४-३८

१. 'स्वाध्यायः शोधनं चैव वैयावृत्यं तथैव च।
व्युत्सर्गो विनयश्चैव ध्यानमाभ्यन्तरं तपः॥ × × ×
आर्तं रौद्रं च धर्मं च शुक्लं चेति चतुर्विधम्।
ध्यानमुक्तं परं तत्र तपोऽङ्गमुभयं भवेत्॥'
—जैनधर्मामृत, १२।१४, २२

२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ८।३४-४०

३. 'ज्ञान-दर्शनयो रोधौ वेद्यं मोहायुषी तथा।
नामगोत्रान्तरायौ च मूलप्रकृतयः स्मृताः॥'
—जैनधर्मामृत, १०।१२

४. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ८।८-१०

इन्हीं कर्मों के फलस्वरूप जीव का संसार में बन्धन हो जाता है। वह अपने शरीर को ही आत्मा मान लेता है। इन कर्मों का परिपाक भी उदय, उदीरणा, उदयाभावक्षय तथा प्रयत्न के भेद से चार प्रकार का है। इनमें समयानुसार कर्म-फल का मिलना उदय है, बलपूर्वक कर्मफल पाना उदीरणा है, कर्मोदय के अनुसार उसका फल भोगना उदयाभावक्षय है, और तटस्थ रहते हुए धीरे-धीरे कषायों से रहित होना प्रयत्न है।[1]

जब व्यक्ति क्षपणक श्रेणी में चढ़ता है तो उसके प्रथम चारों घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं, और केवल ज्ञान प्राप्त करने पर तो व्यक्ति के शेष चारों कर्म भी नष्ट हो जाते हैं।[2]

गुणस्थान—

जैनदर्शनानुसार आत्मा के गुणों की क्रमिक विकास की स्थिति को गुण-स्थान कहते हैं। ये मिथ्यादृष्टि, इत्यादि नामों से चौदह प्रकार के होते हैं।[3] कवि ने बताया है कि क्षपणक श्रेणी में चढ़ते समय आठवाँ गुणस्थान होता हैं।[4] जैनधर्म के अनुसार आठवें गुणस्थान को 'अपूर्वकरणसंयत' की संज्ञा दी गई है। विभिन्न क्षणवर्ती जीवों के परिणाम का अपूर्व होना, एक समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश और विदृश होना अपूर्वकरण है। ये अपूर्वकरण परिणाम किसी कर्म का उपशमन तो नहीं करते, किन्तु घातिया कर्म को नष्ट करने की भूमिका बाँध देते हैं। अतः विशुद्धि वृद्धिङ्गत होने लगती है।[5]

आत्मा—

श्री ज्ञानसागर ने बताया कि आत्मा के तीन भेद होते हूं, बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। शरीर को ही अपनी आत्मा समझने वाला व्यक्ति 'बहिरात्मा' है, चैतन्य को आत्मा मानने वाला व्यक्ति 'अन्तरात्मा' है, और देह से पृथक् होकर निष्कलङ्क तथा सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्म तत्त्व में लीन रहने वाला

---

१. वही, ८।११-१८

२. 'सुदर्शनोदय, ९।८४-८६

३. 'मिथ्यादृक् सासनो मिश्रोऽसंयतो देशसंयतः।
प्रमत्त इतरोऽपूर्वानिवृत्तिकरणौ तथा॥
सूक्ष्मोपशान्तसंक्षीणकषाया योग्ययोगिनौ।
गुणस्थानविकल्पाः स्युरिति सर्वे चतुर्दश॥'
—जैनधर्मामृत, ६।१-२ एवं इनके पूर्व की प्रस्तावना।

४. वीरोदय, १२।३८

५. 'अपूर्वः करणो येषां भिन्नं क्षणमुपेयुषाम्।
अभिन्नं सदृशोऽन्यो वा तेऽपूर्वकरणाः स्मृताः।
क्षपयन्ति न ते कर्म शमयन्ति न किञ्चन।
केवलं मोहनीयस्य शमन-क्षपणे रताः॥
—जैन धर्मामृत, ११।३

व्यक्ति 'परमात्मा' ही है।[1]

गुप्ति—

प्रायः साधु मन, वचन और काय की रक्षा करते हैं। यहाँ रक्षा शब्द का आशय संयम लेना चाहिए। साधुओं की इस अवस्था को जैनधर्मावलम्बियों ने मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति माना है। हमारे कवि ने भी इसी बात को स्वीकार किया है। उनके अनुसार अत्यधिक आवश्यकता होने पर ही मन, वचन और काय का प्रयोग किया जाता है।[2]

समिति—

जैन-दर्शन में दिगम्बर जैनी साधुओं के लिए पञ्च समितियों का विधान किया गया है—ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदाननिक्षेपण समिति और उत्सर्ग समिति।[3] कवि ने भी इन समितियों पर अपनी आस्था प्रकट की है।[4] उनके अनुसार सावधानीपूर्वक चेष्टा का नाम ही समिति है।[5] कवि ने इनका वर्णन भी जैन-धर्मानुसार ही किया है। दिन में प्रासुक् मार्ग में चार हाथ की भूमि को शुद्ध करते हुए कार्यवश गमन ही ईर्या समिति रूप गति है। भेद, चुगली, कठोरता, परिहास आदि से रहित, हित से युक्त असन्दिग्ध भाषा, भाषा समिति कहलाती है। आहार सम्बन्धी छियालीस दोषों से रहित अन्नादि का स्वाध्याय और ध्यानसिद्धि के लिए ग्रहण करना एषणा समिति है। ज्ञान के

१. सुदर्शनोदय, ६।७२

२. (क) 'योगानां निग्रहः सम्यग्गुप्तिरित्यभिधीयते।
मनोगुप्तिर्वचोगुप्तिः कायगुप्तिश्च सा त्रिधा॥'
—जैनधर्मामृत, ११।३

(ख) 'मनोवचःकायविनिग्रहो हि स्यात्सर्वतोऽमुष्य यतोऽस्त्यमोही।
तेषां प्रयोगस्तु परोपकारे स चापवादो मदमत्सरारेः॥'
—वीरोदय, १८।२७

(ग) असमानगुणोऽन्येषां समितिष्वपि तत्परः।
गुप्तिमेषोऽनुजग्राहागुप्तरूपधरोऽपि सन्॥
—श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ६।२१

(घ) 'अवसरमुपेत्य वचोगुप्तिमतीत्य भाषासमितिमवलम्बितवान्।'
—दयोदयचम्पू, लम्ब ७ श्लोक २८ के पूर्व का गद्यांश।

३. (क) 'ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गभेदतः।
तन्निमित्तास्रवभावात्सद्यो भवति संवरः॥'
—जैनधर्मामृत, ११।५

४. 'असमानगुणोऽन्येषां समितिष्वपि तत्परः।'
—श्री समुद्रदत्तचरित्र, ६।२१ का पूर्वार्ध।

५. वीरोदय, १८।२७

उपकरण और संयम के उपकरणों का यत्नपूर्वक उठाना और रखना आदान-निक्षेपण समिति है। दूरवर्त्ती, गूढ, विशाल, बाधारहित, शुद्ध पृथ्वीतल पर मल-मूत्र का विसर्जन ही उत्सर्ग समिति है। इन समितियों का उपयोग करने से पुरुष अहिंसा, ब्रह्मचर्यादि व्रतों की रक्षा करने में समर्थ हो जाता है।[1]

उपयोग—

जैनधर्मानुसार कवि ने 'उपयोग' के चार प्रकार बताये हैं। शरीर को ही सब कुछ समझ लेना अशुभोपयोग है। शरीर से आत्मा को भिन्न मानकर विवेक-पूर्ण विचार करना शुभोपयोग है। शरीर को आत्मा से भिन्न करने में चेष्टा करने के विचार को शुद्धोपयोग कहते हैं। एक साथ सब पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण करना ही परमोपयोग है। परमोपयोग की स्थिति तक आते-आते व्यक्ति 'परमात्मा' की संज्ञा को प्राप्त कर लेता है।[2]

योग—

मन, वचन और काय की आत्मा के प्रति चेष्टा का नाम योग है। जैन धर्म के अनुसार कवि ने इसको दो प्रकार का माना है—शुभ योग और अशुभ योग। अपने शरीर और इन्द्रियों को पुष्ट बनाने के लिए की जाने वाली चेष्टा का नाम अशुभयोग है। अपने साथ औरों के कल्याण के लिए सचेष्ट होना शुभयोग है। अतः हिंसा, निर्दयता, दुष्टता से पूर्ण कार्य 'अशुभयोग' और अहिंसा, दया और परोपकार से पूर्ण कार्य 'शुभयोग' की श्रेणी में आते हैं।[3]

धर्म-अधर्म एवं पुरुष का कर्त्तव्य—

श्रीज्ञानसागर के अनुसार जीव का तामसभाव अधर्म है; और परम्परा को बढ़ाने वाला है। जीव का तात्त्विक भाव ही धर्म है और मोक्ष का कारण है।[4]

अतएव व्यक्ति को चाहिए कि वह राग-द्वेष से विमुख होकर सन्तोष को धारण करे। मदमात्सर्य के कारण पुरुष ज्ञेय पदार्थ को जानने में असमर्थ हो जाता है। जब आत्मा क्षोभरहित हो जाता है, तब ज्ञानी व्यक्ति त्रैकालिक पदार्थों को निर्बाध रूप से जान लेता है।[5] यह संसार क्षणभंगुर है, इसलिए सुख-दुःख में समभाव रखना चाहिए।[6]

---

१. (क) जैनधर्मामृत, ५।८-१३
   (ख) वीरोदय, १८।२५-२८
२. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, ८।२१-२४
३. वही, ८।२५-२९
४. सुदर्शनोदय, ४।१२
५. वीरोदय, २०।२-५
६. दयोदयचम्पू, ७।३५-३७

प्रमाण—

जैन-दार्शनिकों ने दो प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान।[1] किन्तु कवि ने इन दो के अतिरिक्त स्मृति को भी प्रमाण मान लिया है।[2]

सारांश—

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने धर्म एवं दर्शन के विषय में जितने विचार प्रकट किये हैं, उतने समाज इत्यादि के विषय में नहीं। इसका कारण यह है कि महाकवि ज्ञानसागर आजीवन ब्रह्मचारी रहे; और उन्होंने अपना अधिकाधिक समय धर्मचिन्तन में लगाया। सनातन धर्म की विकृतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। धर्म के प्रति उनकी इतना आस्था से स्पष्ट है कि उन्हें धर्मप्रधान समाज, धर्मप्रधान राज्य, धर्मानुकूल अर्थव्यवस्था और धर्मानुकूल संस्कृति प्रिय है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि समाज इत्यादि के प्रति अपनी मान्यता को पूर्णरूपेण प्रकट करने में वह असमर्थ रहे। प्रस्तुत अध्ययन में समाज इत्यादि के प्रति उनकी विचार धारा इस बात की पुष्टि करती है। उन्होंने न केवल साधु-संन्यासियों अपितु गृहस्थों के आचार-व्यवहार की बहुत सी बातें बताई हैं, जिनका पालन करने से व्यक्ति आत्मकल्याण के साथ-साथ लोक-कल्याण भी कर सकता है।

---

१. माधवाचार्य, सर्वदर्शनसङ्ग्रह, पूर्वपीठिका, पृ० सं० २८

२. वीरोदय, २०।३६-२१

दशम अध्याय

उपसंहार

ज्ञानसागर का संस्कृत-काव्यों में स्थान

आचार्य मुनि ज्ञानसागर जी २०वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके द्वारा रचित काव्य-ग्रन्थों की समालोचना पहले के अध्यायों में की जा चुकी है। अब हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि सरस्वती की समाराधना तत्पर मुनि श्री ज्ञानसागर का संस्कृत-कवियों में स्थान निर्धारित करें।

जब-जब महाकवियों के विषय में चर्चा होती है, तब-तब प्रायः लोग कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, बाणभट्ट, त्रिविक्रमभट्ट, धनपाल इत्यादि कवियों की गणना शीघ्रता से करने लग जाते हैं। यह ठीक है कि इन कवियों की श्रेष्ठता में सन्देह का कोई स्थान नहीं है, तथापि आज के समालोचकों को चाहिए कि वह प्राचीन कवियों की महत्ता को ध्यान में रखते हुए भी अर्वाचीन कवियों को न भुलाएँ क्योंकि आज भी कालिदास और बाणभट्ट की भाँति ही न जाने कितने कवि संस्कृत साहित्य-सम्पदा की वृद्धि कर रहे हैं।

रुढ़िवादिता एवं पूर्वाग्रह को छोड़कर जब हम अपने आलोच्य कवि ज्ञान-सागर को परखते हैं तो हमें उनमें भी महान् कवि और महान् जैन-दार्शनिक के दर्शन होते हैं। उन्होंने जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्तचरित्र और दयोदयचम्पू—पाँच संस्कृत-काव्य-ग्रन्थरूप पुष्प सरस्वती को समर्पित किये हैं।

कवि ने अपने इन काव्यों के माध्यम से जैन-धर्म तथा सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतों की शिक्षा समाज को दी है। अपने इस प्रयास से एक ओर वह कालिदास जैसे कवियों की श्रेणी में आते हैं; दूसरी ओर वह बौद्धदर्शन के महान् कवि अश्वघोष की समता पाने के भी योग्य सिद्ध होते हैं।

कवि ने काव्यशास्त्र सम्मत काव्य के स्वरूप के विषय में अपनी निश्चित धारणा प्रकट की है—

"सालङ्कारा सुवर्णा च सरसा चानुगामिनी।
कामिनीव कृतिर्लोके कस्य नो कामसिद्धये॥"

—जयोदय, २८।८२

कविवर का उक्त कथन काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष के समन्वय हेतु कवि को सावधान करता हुआ सा प्रतीत होता है। काव्य के भाव-पक्ष और कला-

पक्ष दोनों को कवि ने उचित महत्त्व दिया है। उन्होंने यदि एक ओर काव्य में अच्छी कथाओं और छन्दों की उपादेयता स्वीकृत की है, तो दूसरी ओर रस को भी काव्य का आवश्यक तत्त्व माना है। कवि के निम्नलिखित वचन उनके उपर्युक्त मन्तव्य की पुष्टि करते हैं—

"सद्वृत्तकुसुममाला सुरभिकथाधारिणी महत्येषा।
पुरुषोत्तमैः सुरागात्सततं कण्ठीकृता भातु॥
यदालोकनतः सद्यः सरलं तरलं तराम्।
रसिकस्य मनो भूयात्कविता वनितेव सा॥"

—जयोदय, २८।८४-८५

महाकवि के काव्यों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने उक्त तथ्यों को यथाशक्ति अपनी रचनाओं में समाविष्ट किया है। उनका काव्य-कारों के लिए सन्देश है कि उपमा एवं अपह्नुति इन दो श्रेष्ठ अलङ्कारों का कवि अपने काव्यों में अतिशयता से प्रयोग करें

"यातु वृद्धिसमयात्किलोपमापह्नुतिप्रभृतिकं च बुद्धिमान्।
भूरिशो ह्यभिनयानुरोधिनी वागलङ्करणनेऽभिबोधिनी॥"

—जयोदय, २।५४

श्री ज्ञानसागर ने अपने काव्यों में लोकोक्तियों का यथास्थान प्रयोग किया है। इनके माध्यम से वह कवियों को सन्देश देते हुए प्रतीत होते हैं कि सूक्तिमुक्तामय हारावली से शोभित कविता-कामिनी शीघ्र ही सामाजिकों द्वारा ग्राह्य होती है।

महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों में अन्त्यानुप्रास-शैली एक ऐसी अभिनव वस्तु है, जिससे कवि की मौलिकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। यह कवि द्वारा साहित्य-समाज को अनूठी देन है। यह शैली हमें कालिदास, अश्वघोष, माघ, भारवि, श्रीहर्ष इत्यादि में नहीं मिलती है। इस शैली के माध्यम से कवि-विरचित काव्यों में एक रमणीय प्रवाह दृष्टिगोचर होता है और दार्शनिक-सिद्धान्त-जन्य रूक्षता भी नहीं चुभती है। कवि की यह शैली भी उसका संस्कृत-साहित्य-समाज में एक विशिष्ट स्थान निर्धारित करने में समर्थ है। वास्तव में संस्कृत-भाषा में रचित महाकाव्यों में तुलसीदासकृत रामचरितमानस की चौपाई-शैली के समान शैली अपनाना अपने आप में ही एक संस्तुत्य कार्य है।

कविवर ने भारवि और माघ की परम्परा में चित्रकाव्य की भी रचना की है। लेकिन अनुलोम, प्रतिलोम, यमक, एकाक्षर, द्व्यक्षर इत्यादि दुर्बोध चित्रालङ्कारों से अपने काव्यों को बचाने का सफल प्रयास किया है। फलस्वरूप वह कठिन-काव्य के प्रेत की संज्ञा से भी बच गये और आसानी से कालिदास की परम्परा के कवि भी मानने योग्य हो गये।

नैषध काव्य की परम्परा में हम उनके काव्यों में प्रत्येक सर्ग के अन्त में कवि-परिचय का एक श्लोक देखते हैं—

(क) 'श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं
वाणी भूषणवर्णिनं घृतवती देवी च यं धीचयम्।
तस्योक्तिः प्रतिपर्व सद्रसमधीयं चेक्षुयष्टिर्यथाऽ-
ऽमुं सम्ग्येति मनोहरं च दशमं सर्गोत्तमं संकथा ॥'

—जयोदय, १०। सर्ग का अन्तिम श्लोक।

(ख) 'श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणी भूषणवर्णिनं घृतवती देवी च यं धीचयम्।
तेनास्मिन् रचिते सतीन्दुसमिते सर्गे समावर्णितं
सर्वज्ञेन दयावता भगवता यत्साम्यमादेशितम् ॥"

—वीरोदय १७। सर्गान्त का श्लोक।

(ग) 'श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणी भूषणवर्णिनं घृतवती देवी च यं धीचयम्।
तेन प्रोक्तसुदर्शनस्य चरितेऽसौ श्रीमतां सम्मतः
राज्ञोचेतसि मन्मथप्रकंपकः षष्ठोऽपि सर्गो गतः ॥'

—सुदर्शनोदय, ६। सर्गान्त का श्लोक।

(घ) 'श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं
वाणी भूषणवर्णिनं घृतवती देवी च यं धीचयम्।
प्रोक्ते तेन शुभे दयोदयपदे लम्बोऽत्र वेदोपमः
यस्मिन् सोमसमन्वितस्य विषयाऽऽख्यातो विवाहक्रमः ॥"

—दयोदयचम्पू, ४। लम्ब का अन्तिम श्लोक।

इसके अतिरिक्त वह ऐसी कविता करने में भी कुशल हैं, जिसमें पद्य के प्रत्येक चरण का प्रथम अक्षर मिलाने से एक सार्थक वाक्य की संरचना हो जाती है; उदाहरण प्रस्तुत है—

'भूपो भवेन्नीतिसमुद्रसेतुः
राष्ट्रं तु निष्कण्टकभावमेतु।
मनाङ् न हि स्यादभव विस्मवादि
लोकस्य चित्तं प्रभवेत् प्रसादि ॥१॥
दिशेदेतादृशीं दृष्टिं श्रीमान् वीरजिनप्रभुः।
तन्त्रमेतत् पठेन्मर्म शर्म कर्म लभेत भूः ॥२॥

—दयोदयचम्पू, अन्तिम मङ्गलकामना १-२

उपर्युक्त पद्यों में प्रथम पद्य के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षरों को तथा द्वितीय पद्य के प्रथम तथा तृतीय चरणों के प्रथम अक्षरों को मिलाने से 'भूराम-

लोदितम्' वाक्य बनता है। स्मरण रहे कि महाकवि का पारिवारिक नाम भूरामल ही था।

इस प्रकार साहित्य और दर्शन, भावपक्ष और कलापक्ष और प्राचीन शैली और आधुनिक शैली का अद्भुत समन्वय करने वाले श्री ज्ञानसागर निश्चित ही संस्कृत-साहित्य के श्रेष्ठ कवियों में स्थान पाने के अधिकारी हैं। साहित्यकार किसी धर्म या जाति-विशेष का प्रतिनिधित्व करने मात्र से साहित्य-समाज में उचित स्थान पाने के अयोग्य नहीं हो जाता। यदि सभी साहित्यिकों को सदृष्टि से देखा जाय, धर्मनिरपेक्ष एवं जातिनिरपेक्ष होकर उनकी समालोचना की जाय तो सनातनधर्मियों द्वारा उपेक्षित जैन एवं बौद्ध कवि अथवा जैनधर्मावलम्बियों और बौद्धधर्मावलम्बियों द्वारा उपेक्षित सनातनधर्मावलम्बी कवि भी साहित्य-समाज में योग्य स्थान पाने के अधिकारी हो सकते हैं। इस दृष्टि से अस्मदालोच्य महाकवि ज्ञानसागर कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, हर्ष इत्यादि विख्यात महाकवियों की शृङ्खला के कवि हैं, और आधुनिक संस्कृत-कवियों में तो उनका उच्च स्थान होना ही चाहिए।

(ख) कवि श्रीज्ञानसागर के संस्कृत-काव्यग्रन्थों का संस्कृत-साहित्य में स्थान

स्पष्ट है कि जो कवि संस्कृत-साहित्य में श्रेष्ठ कवियों में स्थान पाने का अधिकारी है, उसकी काव्यकृतियाँ भी संस्कृत-साहित्य में उच्च स्थान पाने की अधिकारिणी अवश्य होंगी। कवि ज्ञानसागर ने जयोदय, सुदर्शनोदय, श्रीसमुद्रदत्त-चरित्र—ये चार महाकाव्य और दयोदय नामक एक चम्पू काव्य की रचना की है। उनके इन पांचों काव्यग्रन्थों का संस्कृत-साहित्य में जो स्थान हो सकता है, वह इस प्रकार है—

(क) जयोदय—

यह श्री ज्ञानसागर विरचित २८ सर्गों का महाकाव्य है। इसका आद्यो-पान्त परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि वह बृहत्त्रयी की परम्परा में आने के योग्य है।

इस काव्य में शृङ्गार रस रूपिणी यमुना और वीररसरूपिणी सरस्वती का शान्तरसरूपिणी गङ्गा के साथ अद्भुत सङ्गम किया गया है। बृहत्त्रयी की परम्परा में प्रौढ़-संस्कृत-भाषा में इस काव्य की रचना हुई है। प्रचलित-अप्रचलित विविध छन्दों का अतिशय प्रयोग भी इसे बृहत्त्रयी की परम्परा में ले जाता है।

इस काव्य में जयकुमार के परिचय, स्वयंवर में राजाओं के एकत्र होने, दासी द्वारा सुलोचना के समक्ष राजाओं का परिचय देने आदि का वर्णन इसे निस्सन्देह "नैषधीयचरित" के समकक्ष कर देता है। अनवद्यमति मन्त्री का अर्ककीर्ति

को समझाना भारवि के अर्थगौरव की झाँकी प्रस्तुत करता है। पर्वत-वर्णन, वन-विहार-वर्णन, सन्ध्या-वर्णन और प्रभातवर्णन इसे माघ के 'शिशुपालवध' की तुलना में ले जाते हुए लगते हैं।

किन्तु एक बात यह द्रष्टव्य है कि उक्त सनातनधर्मावलम्बी कवियों ने अपने काव्यों के माध्यम से धर्म-दर्शन एवं मुनियों की जीवन-चर्चा उस प्रकार से नहीं की है, जिस प्रकार से अस्मदालोच्य महाकवि श्री ज्ञानसागर ने की है। कालिदास काव्यों में हमें वन्य-जीवन एवं मुनियों के आचार-व्यवहार की झाँकी यत्र-तत्र मिल जाती है, किन्तु उसका प्रस्तुतीकरण श्रीज्ञानसागर के काव्यों में वर्णित मुनियों के आचार-व्यवहार के समान नहीं है। जयोदय के जयकुमार को गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में उपदेश देने वाले मुनि एवं मोक्ष मार्ग में दीक्षित करने वाले तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव के वर्णन कालिदास के काव्यों में वर्णित गुरु वसिष्ठ और महर्षि कण्व के वर्णन से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। बल्कि कहीं-कहीं तो इन जैन मुनियों ने अपने आचार-व्यवहार के कारण वसिष्ठ और कण्व से भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है।

साहित्य के माध्यम से दर्शन को प्रस्तुत करने की कला का अंशमात्र भी हमें सनातनधर्मावलम्बी कवियों में देखने को नहीं मिलता जबकि श्रीज्ञानसागर इस कला में सिद्धहस्त हैं। 'जयोदय' में उद्देश्य है—अपरिग्रह व्रत की शिक्षा देना। पाठक को रुक्षता का अनुभव न हो, इसलिए कवि ने जयकुमार एवं सुलोचना के कथानक के माध्यम से अपना उद्देश्य पूरा कर लिया है।

कहना न होगा कि जयोदय काव्यशास्त्रीय, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और दार्शनिक दृष्टियों से कालिदासोत्तर काव्यों के मध्य में रखने के पूर्णतः योग्य है। भले ही सुकुमारता की दृष्टि से यह काव्य कालिदास के काव्यों की बराबरी न कर पाए, पर समालोचक यदि निष्पक्ष होकर इसकी समीक्षा करेंगे तो इसको भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों के समान तो अवश्य पाएंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

(ख) वीरोदय—

यह भगवान् महावीर के त्याग एवं तपस्यापूर्ण जीवन पर आधारित २२ सर्गों का महाकाव्य है। इस काव्य के द्वारा कवि ने ब्रह्मचर्य एवं चारित्रिक दृढ़ता की शिक्षा दी है। इसके परिशीलन से ज्ञात हुआ है कि यह काव्य एक ओर तो शैली की दृष्टि से कालिदास के काव्यों की श्रेणी में आ जाता है; और दूसरी ओर दर्शनपरक होने के कारण बौद्ध-दार्शनिक महाकवि अश्वघोष के काव्यों के समकक्ष आ जाता है।

जब हम इस काव्य को काव्यशास्त्रीय दृष्टि से देखते हैं तो यह उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य की श्रेणी में आ जाता है। जब इसकी घटनाओं को देखते हैं तो यह

इतिहास ग्रन्थ एवं पुराण-ग्रन्थ प्रतीत होता है। इसमें धर्म का स्वरूप जिस कौशल से प्रस्तुत किया गया है, उसको देखते हुए यह धर्मशास्त्र ग्रन्थ की भी श्रेणी में आ जाता है। काव्य के साथ ही इसमें जैन-दर्शन की भी व्याख्या मिलती है, फलस्वरूप इसमें दर्शनग्रन्थ की भी विशेषताएं देखने को मिल जाती हैं।

इस काव्य में ब्रह्मचर्य-व्रत के अतिरिक्त अहिंसा एवं अपरिग्रह—इन दो व्रतों की भी शिक्षा बड़े कौशल के साथ दी गई है।

इस काव्य का ऋतुवर्णन माघ के ऋतु-वर्णन के समान ही प्रभावशाली है। वर्षा ऋतु का भगवान् के गर्भावतरण के साथ, वसन्त ऋतु का भगवान् के जन्म के साथ, शीत-ऋतु का भगवान् के चिन्तन के साथ, ग्रीष्म-ऋतु का भगवान् के उग्र-तपश्चरण के साथ और शरद्-ऋतु का भगवान् महावीर के निर्वाण के साथ वर्णन करके कवि ने ऋतु-वर्णन को नई दिशा दी है। श्री ज्ञानसागर के पूर्व के काव्यों में ऋतुओं का ऐसा प्रासङ्गिक वर्णन देखने को नहीं मिलता। वास्तव में प्रकृति मानव की चिरसहचरी और उसके विचारों का समर्थन करने वाली है, यह बात महाकवि ज्ञानसागर के इस काव्य के पढ़ने से स्पष्ट हो जाती है।

उपजाति छन्द, उपमा, अपह्नुति अलङ्कार, सुकुमार भाषा-शैली, शान्त-रस इन सभी काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का काव्य में बड़ा सन्तुलित प्रयोग देखने को मिलता है।

'जयोदय' महाकाव्य जहाँ काव्यमर्मज्ञों के बौद्धिक-विलास का साधन है, वहाँ वीरोदय महाकाव्य सहृदयहृदयग्राह्य है। इस काव्य का पुनर्जन्मवाद और कर्मवाद मानव-मात्र को अच्छे-अच्छे कार्य करने की प्रेरणा देता है।

प्रस्तुत काव्य में देवियों द्वारा वर्धमान की माता प्रियकारिणी की सेवा सौधर्मेन्द्र द्वारा भगवान् का जन्माभिषेक, कुबेर एवं इन्द्र द्वारा समवसरण मण्डप का निर्माण आदि घटनाएं देवों और मानवों को एक सूत्र में बाँधने का अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयास प्रस्तुत करती हैं। साथ ही ये घटनाएँ यह भी बताती हैं कि महा-पुरुष अपनी विशेषताओं से मानव रूप में उत्पन्न होकर भी देववन्द्य हो जाते हैं।

इस काव्य का उद्देश्य पाठक को अहिंसा, ब्रह्मचर्य एवं जैन-दर्शन के महत्त्व का ज्ञान कराना है। यदि दर्शन के सिद्धान्तों को सीधे-सीधे प्रस्तुत कर दिया जाता तो सहृदय सामाजिक इनको पढ़ने में नीरसता का अनुभव करते। अतः सामाजिक के लिए इन सिद्धान्त रूपी औषधियों को कवि ने काव्यानन्दरूपी चाशनी से पाग कर प्रस्तुत किया है। कवि अपने इस प्रस्तुतीकरण के प्रयास से दार्शनिकों और कवियों—दोनों की रुचियों को सन्तुष्ट करने में समर्थ हो सका है। अतः कवि का यह काव्य भी संस्कृत-साहित्य की महान् काव्यकृतियों में स्थान पाने योग्य है।

(ग) सुदर्शनोदय—

यह नौ सर्गों का एक छोटा सा महाकाव्य है। इस काव्य के द्वारा कवि ने पञ्चनमस्कार-मन्त्र के महत्त्व से पाठक को अवगत कराना चाहा है। साथ ही पातिव्रत्य, एकपत्नीव्रत, सदाचार, सम्यक्चरित्र इत्यादि गुणों की भी शिक्षा दी है।

'जयोदय' और 'वीरोदय' की अपेक्षा इस काव्य में पाठक अधिक अच्छी रसचर्वणा कर सकता है। इसमें शृङ्गार रसाभास पर शान्तरस की अद्भुत विजय दिखाई गई है।

कपिला ब्राह्मणी की कामुकता, अभयमती का घात-प्रतिघात, देवदत्ता वेश्या की कुचेष्टाएँ और काव्य के नायक सुदर्शन की इन सब पर विजय काव्य के मार्मिक स्थल हैं। ये सभी स्थल पाठक को सच्चरित्र की शिक्षा देते हैं।

इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है—इसके गीत। साहित्य, सङ्गीत एवं दर्शन का अद्भुत सम्मिश्रण काव्य को उत्कृष्ट बनाने में सहायक हैं। अन्तर्द्वन्द्व, प्रसन्नता, भक्ति, प्रेम इत्यादि मनोभावों को प्रकट करने में सहायक विभिन्न राग-रागिनियों की शैलियों में बद्ध इन गीतों का प्रयोग कवि का अद्भुत प्रयास है। कवि के इस काव्य की यह विशेषता हम कालिदास के काव्यों में भी नहीं पाते, फिर अन्य कवियों के विषय में क्या कहा जाए? यद्यपि जयदेव के 'गीत-गोविन्द' में गीत भी संस्कृत-साहित्य में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, किन्तु ये गीत संवादों या घटनाओं के बीच-बीच में न होकर क्रमशः हैं। जबकि हमारे आलोच्य कवि ने विशिष्ट भावों को प्रकट करने के लिए घटनाओं और संवादों के बीच में इन गीतों को प्रयुक्त किया है।

सेठ-सुदर्शन के जीवन-वृत्तान्त द्वारा इस काव्य में कवि ने सहिष्णुता की शिक्षा दी है। तीन-तीन बार विपत्ति आ जाने पर और प्राणों की बाजी लग जाने पर भी सेठ सुदर्शन न तो कर्त्तव्य-पथ से डिगे और न उन्होंने अपने प्रति दुर्व्यवहार करने वालों के प्रति कटुवचन कहे। यह सहिष्णुता तो सुदर्शन जैसे महापुरुषों का ही अलङ्करण हो सकती है। सामान्य मनुष्य तो किञ्चित् विपत्ति से ही घबरा जाते हैं, घोर उपसर्गों को सहने की क्षमता उनमें कहाँ?

कवि ने स्थान-स्थान पर मुनियों के आचार, आहार-व्यवहार आदि की शिक्षा अवसरानुकूल दी है। कथा के माध्यम से प्रस्तुत किए जाने के कारण यह शिक्षा कोरा उपदेश न रहकर पाठक के हृदय पर छा जाने की भी क्षमता रखती है।

काव्य के उपजाति, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित आदि छन्द, उपमा, विरोधाभास आदि अलङ्कार, अन्त्यानुप्रास की तुकबन्दी सुन्दर पदों वाली भाषा और सुकुमार शैली से समृद्ध कलापक्ष का भावपक्ष के साथ अद्भुत समन्वय इस काव्य की एक अन्यतम विशेषता है।

इस काव्य के पढ़ने से शासक-वर्ग यह जान सकता है कि बिना विचारे कोई कार्य नहीं करना चाहिए। अपराधों को समाप्त करने के लिए सर्वप्रथम उनको दूर करने के उपाय अपने ही पारिवारिक जनों पर करने चाहिएँ और वास्तविक अपराधी को ही दण्ड मिलना चाहिए। निरपराध व्यक्ति दण्डित किया जाय, यह बात राजा के हित में नहीं है।

स्पष्ट है कि काव्य, काव्यशास्त्रियों, सामाजिकों, शासकों, दार्शनिकों और धार्मिकों को शिक्षा देने में एवं उनको सन्तुष्ट करने में समर्थ है। अतः यह काव्य भी संस्कृत-साहित्य में उच्च स्थान पाने का अधिकारी है।

(घ) श्रीसमुद्रदत्तचरित्र—

इस काव्य में 'सुदर्शनोदय' के समान ही ९ सर्ग हैं। इसमें भद्रमित्र नामक काव्य-नायक के जन्म-जन्मान्तरों का वर्णन है। इसके माध्यम से कवि ने अस्तेय नामक महाव्रत की शिक्षा दी है और चोरी एवं असत्य-भाषण के दुष्प्रभाव से बचने के लिए पाठक को सावधान किया है।

इस काव्य में पुनर्जन्मवाद और कर्मफलवाद का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि पाठक पूर्वजन्म और वर्तमान जन्म का तालमेल बिठाते समय वास्तविक कथा भूल जाता है। वैसे भी इस काव्य को रचने का उद्देश्य किसी रोचक घटना विशेष को प्रस्तुत करना नहीं है। कथा तो काव्य के उद्देश्य (अस्तेय की शिक्षा) की सहायिका के रूप में आई है। सम्पूर्ण काव्य पढ़ने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है—'सत्यमेव जयते नानृतम्।' इसके अतिरिक्त इस काव्य की रचना का दूसरा उद्देश्य है—काव्य के माध्यम से जैन-दर्शन के सिद्धान्तों को प्रस्तुत करना।

दर्शन-प्रधान एवं धर्मोपदेशप्रधान होते हुए भी इस काव्य के कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं। यथा—धनार्जन हेतु विदेश जाते हुए भद्रमित्र का अपने माता-पिता से संवाद, रानी द्वारा द्यूत-क्रीड़ा से राज्य के पुरोहित की कलई खुलना, राजा की मृत्यु के बाद रामदत्ता का आर्यिका बन जाना आदि। इन सभी घटनाओं में कवि के भावपक्ष का सामर्थ्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

श्री ज्ञानसागर के पूर्व ऐसे काव्य नहीं के बराबर रचे गये, जिनमें महाकाव्य और चरितकाव्य की विशेषताएँ साथ-साथ दृष्टिगोचर होती हैं। श्रीसमुद्रदत्तचरित्र ऐसा ही काव्य है।

परिसंख्या, विरोधाभास आदि से अलंकृत, सरल भाषा से सुसज्जित सुकुमार शैली में प्रस्तुत, उपजाति, द्रुतविलम्बित आदि छन्दोबद्ध इस काव्य का कथापक्ष एवं जन्मवृत्तान्तों का आधिक्य शान्तरस की चर्वणा में बाधक नहीं होता है।

अतः यह काव्य आबालवृद्ध, सभी के लिए हितोपदेशात्मक है। दार्शनिकों

एवं काव्यशास्त्रियों को एक साथ सन्तुष्ट करने वाला यह काव्य वास्तव में संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है।

(ङ) दयोदयचम्पू—

कवि ने 'जयोदय', 'वीरोदय' जैसे महाकाव्यों को रचने के साथ 'दयोदय' नामक चम्पू-काव्य की भी रचना की है। संस्कृत-साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि चम्पू-काव्य की परम्परा मुख्य रूप से त्रिविक्रमभट्ट विरचित 'नलचम्पू' से प्रारम्भ हुई है, तत्पश्चात् तो चम्पूरामायण, चम्पूभारत, यशस्तिलकचम्पू जैसे अनेक चम्पू काव्यों की रचना हुई। जब हम दयोदयचम्पू को उक्त चम्पूकाव्यों की दृष्टि से देखते हैं, तो हमें अपने आलोच्य कवि श्री ज्ञानसागर का प्रयास सर्वथा नवीन प्रतीत होता है। उपर्युक्त चम्पू-काव्य बृहत्काय है, पर दयोदयचम्पू लघुकाय। उक्त काव्यों में श्लेष एवं परिसंख्या के कठिन प्रयोग हैं, जबकि हमारे कवि इस प्रकार के प्रयोगों से सर्वथा बचे हैं। इसका कारण यह है कि त्रिविक्रमभट्ट आदि कवियों के मन में इन काव्यों की रचना के समय पाण्डित्य-प्रदर्शन की भी इच्छा रही होगी, जबकि हमारे कवि का उद्देश्य, मात्र-प्रदर्शन नहीं रहा है।

ज्ञानसागर जी का यह चम्पूकाव्य भी एक शिक्षाप्रद काव्य है। इस काव्य के माध्यम से कवि ने अहिंसा नामक व्रत की शिक्षा दी है, जो सभी मनुष्यों के पालने योग्य है। पुरुष को चाहिए कि वह यथासम्भव इस व्रत का पालन करे। साथ ही परोपकार, अतिथिवत्सलता, योग्य व्यक्ति के सम्मान आदि गुणों की भी शिक्षा दी गई है।

समाज में अहिंसा-व्रत का सब पालन करें, इसलिए इस चम्पूकाव्य में एक धीवर, जिसकी जीविका ही हिंसा से चलती है, के द्वारा अहिंसाव्रत का पालन करवाया गया है। यह इसी व्रत का प्रभाव है कि दूसरे जन्म में वह बार-बार सम्भावित मृत्यु के मुंह से बच जाता है।

काव्य में गद्य-पद्य का सुन्दर सन्तुलन है। सरल मुहावरेदार भाषा, सुकुमारशैली, स्वाभाविक अलङ्कार अवसरानुकूल छन्द, अन्तर्द्वन्द्व और संवाद आदि से समृद्ध कलापक्ष इस काव्य में भावपक्ष को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त करता है। यदि पाठक नलचम्पू इत्यादि प्राचीन चम्पूकाव्यों की तुलना में इस चम्पू को पढ़ें, तो अवश्य ही उन्हें इसके पढ़ने में अपेक्षाकृत अधिक आनन्द की प्राप्ति होगी। क्योंकि उक्त काव्यों में अलङ्कारों के प्रयोग के मोह के कारण कवि कथा को प्रवाह देने में अपनी सामर्थ्य खो बैठे हैं, जबकि 'दयोदयचम्पू' के अलङ्कार अवसरानुकूल हैं। इसमें वाक्य भी बहुत लम्बे-लम्बे नहीं है। इसीलिए इस काव्य की कथा के प्रवाह में कोई रुकावट नहीं आई। पाठक शब्द-जालों में उलझे बिना कथा का आनन्द ले सकता है।

अतएव जहाँ 'नलचम्पू' जैसे चम्पूकाव्य केवल बौद्धिक-विलासियों और प्रौढ़-संस्कृत-भाषा के ज्ञाताओं के ही परिशीलन का विषय है, वहाँ 'दयोदय-चम्पू' संस्कृत भाषा के साधारण जानकार के भी पढ़ने योग्य है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कविवर का चम्पू-काव्य परम्परा में यह श्लाघ्य प्रयास है। उन्होंने जहाँ चम्पू-काव्य विधा की समृद्धि की है, वहाँ सहृदय सामाजिकों की इच्छा का भी पूरा ध्यान रखा है। अतः इस काव्य को भी संस्कृत साहित्य की एक प्रेरक निधि मानना चाहिए।

सारांश

स्पष्ट है कि श्री ज्ञानसागर के ये पाँचों संस्कृत-काव्य-ग्रन्थ संस्कृत-साहित्य में अपना-अपना विशिष्ट स्थान पाने के योग्य हैं। काव्य के माध्यम से दर्शन की शिक्षा देने में जैन-धर्म की वकालत करने में कविवर को स्पृहणीय सफलता मिली है। व्यक्ति या तो कवि ही होता है या दार्शनिक ही। किन्तु हमारे कवि दार्शनिक भी हैं। इसलिए उनको संस्कृत-साहित्य में आधुनिक अश्वघोष की संज्ञा दी जानी चाहिए। अनुप्रास की व्यापक एवं नवीन परम्परा को चलाने और निभाने के कारण 'उपमा कालिदासस्य' के समान ही 'अनुप्रासो ज्ञानसागरस्य' की उक्ति भी असङ्गत नहीं होगी। प्रायः शब्दालङ्कारों का प्रयोग करने के कारण कवियों के काव्य दुरूह हो जाते हैं, जबकि हमारे कवि के काव्य अन्त्यानुप्रास के सुष्ठु प्रयोग से और भी अधिक प्रवाहमय हो गए हैं। अतः पाठकों से निवेदन है कि जातीयता और साम्प्रदायिकता को भुलाकर श्रीज्ञानसागर का संस्कृत कवियों में और उनके काव्यों का संस्कृत-काव्यों में उच्च स्थान स्वीकृत करें।

प्रथम परिशिष्ट

महाकवि ज्ञानसागर की संस्कृत-भाषा में लिखित दार्शनिक कृतियाँ

श्रीज्ञानसागर ने संस्कृत-भाषा में काव्यग्रन्थों के अतिरिक्त दो दार्शनिक कृतियाँ भी लिखी हैं। इनमें से एक तो कवि की मौलिक कृति है और दूसरी अनुवादकृति। वैसे तो इन दोनों कृतियों का परिचय हमें उनके संस्कृत काव्य-ग्रन्थों के साथ ही देना चाहिए था, किन्तु अपने शोधप्रबन्ध के शीर्षक के अनुसार उनके संस्कृत काव्यग्रन्थों की समीक्षा ही हमारा वर्ण्य विषय है। अतः उनकी इन दार्शनिक कृतियों की समीक्षा वहाँ न करके यहाँ परिशिष्ट में ही संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :—

मौलिक कृति

सम्यक्त्वसारशतक—

श्रीज्ञानसागर ने इस ग्रन्थ में जैनधर्मानुसार बताया है कि आत्मा की शुद्धता एवं सर्वज्ञता की अवस्था को सम्यक्त्व कहते हैं। सम्यक्त्व के तीन प्रकार हैं :—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। आत्मा की इसके विपरीत अवस्था का नाम मिथ्यात्व है। वस्तु के दो रूप हैं—चेतन और अचेतन। चेतन आत्मा है। अचेतन वस्तु धर्म, आकाश, काल और पुद्गल के भेद से पाँच प्रकार की है। इनमें से प्रथम चार अमूर्त्त हैं और पुद्गल मूर्त है। जीव और पुद्गल की गति में सहायक को धर्म कहते हैं जो इन दोनों की स्थिति में सहायक नहीं है उसे अधर्म कहते हैं। सब वस्तुओं का आश्रय स्थान आकाश है। वस्तुओं में परिवर्तन करने की शक्ति का नाम काल है। अपने कर्त्तव्य के विषय में सोचना कर्मचेतना या लब्धि कहलाता है। यह लब्धि देशना, विशुद्धि, प्रयोगिका और काल—चार प्रकार की है। इन लब्धियों से व्यक्ति सुविधा पूर्वक सम्यक्त्व लाभ कर सकता है। इसके अतिरिक्त एक लब्धि और है—करणलब्धि। इनके तीन रूप हैं :—अधः करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। जब उपर्युक्त लब्धियों की सहायता से व्यक्ति कर्मों का उपशमन कर लेता है, तब उसे सम्यक्त्रय की प्राप्ति होती है। ऐसा पुरुष, देव, विद्याधर का जन्म एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है। सम्यग्दृष्टि पुरुष के गुण हैं :—वात्सल्य, धर्म-प्रभावना, त्याग तथा सन्तोष। इन्हीं गणों की सुधरी हुई दशा सम्यक्त्व है, और बिगड़ी हुई दशा मिथ्यात्व।

श्रीज्ञानसागर ने उपर्युक्त विषयवस्तु संस्कृत के १०० श्लोकों में लिखकर उसकी सरल एवं विस्तृत व्याख्या भी की है। उपलब्ध पुस्तकों में ९१ ही श्लोक एवं उनकी व्याख्या मिलती है। यह पुस्तक जैन-दर्शन के जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है।[1]

अनुवाद कृति—

प्रवचनसार

प्रस्तुत ग्रन्थ मौलिक रूप में श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य जी ने ही लिखा है। इसकी भाषा प्राकृत है। इनमें क्रमशः तीन अधिकार हैं—ज्ञानप्ररूपक अधिकार, ज्ञेयाधिकार और चरित्राधिकार। प्रथम अधिकार में ९४, द्वितीय में १०८ और तृतीय में ९५ गाथाएं हैं।

श्रीज्ञानसागर जी ने प्राकृत भाषा में रचित उक्त गाथाओं का संस्कृत भाषा में अनुष्टुप् श्लोकों में पूर्णरूपेण छायानुवाद किया है। साथ ही उनका हिन्दी पद्यानुवाद एवं सारांश भी लिख दिया है। अतः इस ग्रन्थ को कविवर की मात्र हिन्दी रचना न कहकर संस्कृत एवं हिन्दी की मिश्रित रचना मानना चाहिए।

जैन-दर्शन के जानने का इच्छुक इस ग्रन्थ के अध्ययन से द्रव्य, गुण, पर्याय, शुभोपयोग, अशुभोपयोग, शुद्धोपयोग, मोह, स्याद्वाद, द्रव्य-भेद, जीव एवं पुद्गल का स्वरूप, आत्मतत्त्व, ध्यान एवं उसके प्रकार, उत्तम आचरण, मुनियों के भेद, पाप-भेद, स्त्रीमुक्ति इत्यादि विषयों को आसानी से समझ सकता है।[2]

---

१. यह ग्रन्थ श्री दिगम्बर जैन समाज, हिसार से सन् १९५६ ई० में प्रकाशित हुआ है।

२. यह ग्रन्थ श्री महावीर साङ्गाका, पाटनी, किशनगढ़ रेनवाल ने सन् १९७२ ई० में प्रकाशित करवाया है।

द्वितीय परिशिष्ट

महाकवि ज्ञानसागर की हिन्दी रचनाएं

श्रीज्ञानसागर ने हिन्दी भाषा में चौदह रचनाएँ लिखी हैं। इन रचनाओं में उनकी अधिकांश रचनाएं मौलिक हैं और कुछ टीका कृतियां भी हैं। एक दो को छोड़कर उनकी इन रचनाओं का प्रकाशन भी हो चुका है। यहाँ अति संक्षेप में उनका समीक्षोन्मुख परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे आशा है कि संस्कृत-साहित्य समीक्षाजगत् भी अपने इस उत्कृष्ट साहित्यकार की सम्पूर्ण साहित्यसम्पदा से परिचित हो सकेगा।

मौलिक कृतियां—

ऋषभावतार

श्रीज्ञानसागर जी ने महापुराण में वर्णित आदि ऋषभदेव[1] तीर्थङ्कर भगवान् के कथानक के आधार पर अपना यह हिन्दी काव्य लिखा है। इसमें ऋषभदेव के ८ पूर्वजन्मों और वर्त्तमान जन्म का विस्तृत वर्णन है। काव्य के अन्त में ऋषभदेव के यहाँ भरत एवं बाहुबली के जन्म लेने का और ऋषभदेव द्वारा तीर्थङ्कर-पद-प्राप्ति का वर्णन है।

इस काव्य में सत्रह अध्याय हैं। काव्य की कुल पद्य-संख्या ८११ है। ये पद्य रोला, हरिगीतिका इत्यादि हिन्दी के प्रसिद्ध छन्दों में निबद्ध हैं। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर कवि ने दोहा अथवा कुण्डलिया नामक छन्द प्रयुक्त किये हैं।

काव्य में शृङ्गार, शान्त, वीर, करुण, अद्भुत, वत्सल आदि रसों का यथास्थान सम्यक् परिपाक हुआ है। काव्य की समाप्ति भक्तिभाव की अभिव्यञ्जना के साथ हुई है।

कवि के इस काव्य में स्थान-स्थान पर उपमा[2], रूपक[3], उत्प्रेक्षा[4]

---

१. महापुराण (आदिपुराण भाग-१)
२. ऋषभावतार, १।५४, ६७, ६।५, १०।२
३. वही, २।३१, ४।४४, ११।२६
४. वही, २।३४, ३।३६, ११।१३

व्यतिरेक[1], विरोध[2], परिसंख्या[3] और अपह्नुति[4] अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

काव्य की भाषा सरल, सुबोध और खड़ी बोली है। भाषा अनावश्यक अलङ्कारों के बोझ से दबी हुई नहीं है। इस काव्य में कवि ने सुकुमार शैली का प्रयोग किया है।

इस काव्य में कवि का प्रकृतिवर्णन एवं वस्तु-वर्णन भी उल्लेखनीय है। उदाहरण के रूप में विजयार्ध पर्वत,[5] ऊर्मिमालिनी नदी,[6] अलकापुरी,[7] पुण्डरीकिणी[8], सुसीमा[9] एवं अयोध्या[10] के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कवि ने काव्य के माध्यम से जैन-धर्म एवं दर्शन के सिद्धान्तों को पाठक तक पहुँचाने का अद्भुत प्रयास किया है, जिनमें प्रोषधोपवास,[11] ध्यान-भेद,[12] दैगम्बरी-दीक्षा[13], पञ्चसमिति[14], एकादशव्रत[15] मुनिस्वरूप[16] एवं द्रव्यस्वरूप[17] उल्लेखनीय हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कर्मकाण्ड का कवि ने विरोध किया है।[18]

क्योंकि इस काव्य में आचार्य-सम्मत महाकाव्य के अधिकांश लक्षण दृष्टिगोचर हो जाते हैं, अतः हमें इस काव्य को महाकाव्य की संज्ञा देने में सङ्कोच नहीं करना चाहिये।[19]

---

१. वही, २।५३
२. वही, ३।३८, ६।४४
३. वही, ६।२७-३०
४. ऋषभावतार, १०।३८-२९
५. वही, १।६
६. वही, १।५
७. वही, १।६
८. वही, २।२
९. वही, ६।१
१०. वही, ९।१-७
११. वही, १।७
१२. वही, १।८, ३९, ४२, २।१६, १९, १३।३८, १६।१६
१३. वही, १।५५, २।४८
१४. वही, ३।१
१५. वही, ९।१२
१६. वही, ६।१४-२३
१७. वही, १७।२-७
१८. वही, ४।२१
१९. यह ग्रन्थ श्री दिगम्बर जैन समाज, मदनगंज से सन् १९५७ ई० में प्रकाशित हुआ है।

धन्यकुमार का चरित (भाग्योदय)

इस काव्य में धन्यकुमार का जीवन-वृत्तान्त बड़े रोचक ढङ्ग से प्रस्तुत किया गया है। धन्यकुमार के विस्तृत-वर्तमान-जन्म-वर्णन के साथ ही उसके दो पूर्वजन्मों का भी वर्णन इस काव्य में किया गया है। इस काव्य का नायक (धन्यकुमार) अद्भुत व्यक्तित्व का स्वामी है। उसके गुणों को देखकर जहाँ उसके अग्रज अन्त-अन्त तक ईर्ष्या के अग्नि में सुलगते रहते हैं, वहीं कुसुमश्री, सोमश्री, सुभद्रा, मञ्जरी, गीतकला, सरस्वती, लक्ष्मीवती और गुणवती—ये आठ राजकुमारियाँ एवं श्रेष्ठिपुत्रियाँ उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसकी पत्नियाँ बन जाती हैं।

काव्य में शृङ्गार, वीर, अद्भुत, करुण इत्यादि रसों की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है। किन्तु ये सभी रस इस काव्य के प्रधान रस शान्त रस के अङ्ग ही हैं। धन्यकुमार के पिता धनसार के दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् काव्य में शान्त-रस अबाध रूप से अभिव्यञ्जित हुआ है; और उपर्युक्त सभी रसों की परिणति भी उसी में हुई है।

कवि ने काव्य का प्रणयन-कथारम्भ, दुबारा भाग्यपरीक्षा, नगरसेठपदप्राप्ति, गृहत्याग, गृह-कलह, विवाह-प्रक्रम, कुटुम्ब-समागम, धन्य कौशाम्बी में धन्ना का समन्वेषण, न्यायप्रियता, कौशाम्बी से प्रस्थान, प्रायश्चित्त और धन्यकुमार का वैराग्य—इन तेरह शीर्षकों में किया है। काव्य में प्रयुक्त समस्त पद्यों की संख्या ८५८ है। ये पद्य कुण्डलिया, हरगीतिका, अडिल्ल, गीतिका, दोहा, कुसुमलता, चप्पय, गजल, रेखता आदि हिन्दी के छन्दों में निबद्ध हैं। कहीं-कहीं पर कव्वाली नामक गायन शैली भी प्रयुक्त की गई है।

काव्य में दृष्टान्त[1], उत्प्रेक्षा[2], अर्थान्तरन्यास[3], रूपक;[4] उपमा[5], परिसंख्या[6], और विरोधाभास[7] अलङ्कारों की भी छटा यत्र-तत्र दिखाई दे जाती है।

काव्य की भाषा शैली सरल है। कवि ने आवश्यकतानुसार मुहावरे एवं उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

---

१. धन्यकुमार का चरित, २।१, ८।१७
२. वही, २।११, १६, ३।२८
३. वही, ३।५२
४. धन्यकुमार का चरित, ४।२, ३४
५. वही, ५।११, ६।७५, ७७
६. वही, ८।२८-२६
७. वही, १२।१-२

इस काव्य में नर्मदा नदी,[1] गङ्गा नदी[2] सोरठ देश[3] और वाराणसी नगरी[4] के वर्णन विशेष उल्लेखनीय हैं।

एक स्थल पर जैन-धर्म एवं दर्शन के सिद्धान्त भी प्रस्तुत किये गये हैं।[5]

एक स्थल पर लक्ष्मी के दोषों का भी आकर्षक वर्णन मिलता है।[6]

कहना न होगा कि इस काव्य के माध्यम से कवि ने मानव को आस्तिकता कर्मठता, सत्यवादिता, सहिष्णुता, त्यागप्रियता और परोपकार-परायणता की शिक्षा देने के प्रयास में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। ऋषभावतार के समान ही यह काव्य भी महाकाव्य की संज्ञा पाने के योग्य है।

इस काव्य की समाप्ति सन् १९५३ ई० (वि० सं० २०।३) में हुई थी।[7]

पवित्र मानव-जीवन—

प्रस्तुत पुस्तक की रचना सरल हिन्दी भाषा में पद्यों में की गई है। पूरी पुस्तक में १९३ पद्य हैं। इस पुस्तक के द्वारा श्रीज्ञानसागर ने व्यक्तियों को समाज-सुधार, परोपकार, आवश्यकतापूर्त्ति, कृषि एवं पशुपालन, भोजन के नियम, स्त्री का कर्तव्य एवं उसका समाज में स्थान, बालकों के प्रति अभिभावकों के कर्तव्य, आधुनिक दोषपूर्ण शिक्षा-पद्धति, उपवास, गृहस्थ और त्यागी में अन्तर इत्यादि जानने योग्य विषयों का रोचक प्रतिपादन किया है।[8]

सरल जैन विवाह विधि—

हिन्दी भाषा में रचित गृहस्थियों के लिये उपयोगी इस पुस्तक में जैन-विवाह-विधि वर्णित है। इसमें विवाह के लिये शुभमुहूर्त्त, तीर्थङ्करों एवं देवगणों का पूजन तथा पति-पत्नी के परस्पर कर्तव्य क्रमशः पद्यों के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें दोहा, सोरठा, त्रोटक, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, आर्या आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। मन्त्रोच्चारण संस्कृत-भाषा में है, परन्तु

---

१. वही, ४।३८-४०
२. वही, ५।१८-२०
३. वही, १।४
४. वही, ५।१७-१९
५. वही, १२।४९-५२
६. वही, २।५७-५८
७. (क) वही, १३।७५-७६
   (ख) यह ग्रन्थ श्री जैनसमाज, हाँसी से सन् १९५७ ई० में प्रकाशित हुआ है।
८. यह ग्रन्थ-दिगम्बर जैन महिला समाज, पंजाब से सन् १९५६ ई० में प्रकाशित हुआ है।

सामान्य नागरिकों की सुविधा के लिये मन्त्रों का अनुवाद हिन्दी में कर दिया गया है।[1]

कर्त्तव्यपथ प्रदर्शन—

इस पुस्तक में ८२ शीर्षकों द्वारा पाठकों को सामान्य व्यवहार की शिक्षा दी गई है। शिक्षा को रोचक बनाने के लिये अनेक कथाओं को भी प्रयुक्त किया गया है। इस पुस्तक में उल्लिखित नियमों को यदि व्यक्ति आत्मसात् कर ले तो वह कलह से दूर हो सकता है, और सच्चा मानव बन सकता है।[2]

सचित्तविवेचन

प्रस्तुत पुस्तक में सचित्त (जीवन्मुक्त) और अचित्त (जीवरहित) पदार्थों का अन्तर समझाया गया है, जिससे मनुष्य को किन-किन खाद्य एवं पेय पदार्थों का सेवन करना चाहिये ? और किन-किन का परित्याग करना चाहिये—यह बात पाठक की समझ में आसानी से आ जाती है। बीच-बीच में कुन्द-कुन्दाचार्य के तत्त्वार्थसूत्र', आशाधर के जैनधर्मामृत' इत्यादि ग्रन्थों के उद्धरण भी, विषय की पुष्टि के लिये ग्रहण किये गये हैं। ग्रन्थ की भाषा-शैली सरल एवं सुबोध है। सामान्य ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी इस पुस्तक को पढ़कर लाभ प्राप्त कर सकता है।[3]

स्वामी कुन्द-कुन्द और सनातन जैन धर्म

इस पुस्तक में श्रीज्ञानसागर ने स्वामी कुन्द-कुन्द का जैनधर्माचार्यों में मूर्धन्य स्थान निर्धारित किया है, साथ ही उनका जीवन-परिचय और देशकाल भी बताया है। स्त्री-मुक्ति, केवल-ज्ञान आदि का भी इस पुस्तक में विवेचन किया गया है।[4]

टीका कृतियाँ—

तत्त्वार्थ सूत्र टीका—

यह जैन धार्मिकों का सर्वमान्य शास्त्र-ग्रन्थ है। कविवर श्रीज्ञानसागर ने इसकी टीका दश अध्यायों में लिखी है। इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में सम्यक्त्व, जीव, अजीव, द्रव्य, ज्ञान, निर्मल आत्मा आदि का स्वरूप क्रमशः वर्णित हैं। दूसरे अध्याय में कर्मों के उपशमन, उपयोग स्वरूप, मन का स्वरूप एवं भेद, स्थावर

---

१. यह ग्रन्थ दिगम्बरजैन समाज, हिसार से सन् १९४७ ई० में प्रकाशित हुआ है।

२. यह ग्रन्थ दिगम्बर जैन पञ्चायत, किशनगढ़, रैनवाल से सन् १९५९ ई० में प्रकाशित हुआ है।

३. यह ग्रन्थ श्री जैन समाज, हांसी से सन् १९४६ ई० में प्रकाशित हुआ है।

४. इस ग्रन्थ को खजानसिंह विमलप्रसाद जैन, मुजफ्फर नगर ने सन् १९४२ ई० में प्रकाशित कराया है।

पदार्थ, जीवों के भेद, लब्धि स्वरूप, इन्द्रियों के स्वरूप, प्राणी की विभिन्न अवस्थाओं, शरीरभेद आदि का वर्णन है। तीसरे अध्याय में भूमि, नरक, समुद्र, द्वीप, देश, खण्ड, पर्वत, सरोवर, नदियों, १२ प्रकार के कालों, पक्षों, मनुष्य, आर्य, म्लेच्छ जीवों की आयु आदि का परिचय है। चतुर्थ अध्याय में देवों के प्रकार, स्वर्गों के प्रकार, देवगणों का शासन, देवगणों का आचार-व्यवहार, व्यन्तर एवं उनके प्रकार, स्वर्गों में रहने वाले देवगणों की आयु आदि वर्णित हैं। पाँचवें अध्याय में जीव और अजीव का भेद, द्रव्य के भेद, अणु, स्कन्ध एवं द्रव्य की परिवर्तनशीलता का वर्णन है। छठे अध्याय में योग, उसके भेद, पाँच अव्रत एवं कर्मों के आठ प्रकार वर्णित हैं। सप्तम अध्याय में व्रत-स्वरूप, पञ्चसमिति, पञ्च-महाव्रत, व्रती पुरुष के भेद, अणुव्रतों के प्रकार, सल्लेखना, व्रतों से दोषों को दूर करना, सचित्त और अचित्त पदार्थ का अन्तर, ११ प्रतिमाएँ, त्यागोन्मुख श्रावक का आचार-व्यवहार आदि वर्णित हैं। आठवें अध्याय में बन्धन के कारण एवं उसके भेद वर्णित हैं। इसी अध्याय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय—ये आठ कर्म घातिया और अघातिया—दो भागों में विभक्त होकर आत्मा के गुणों का किस-प्रकार हनन करते हैं, वर्णित है। इसी अध्याय में यह भी स्पष्ट किया गया है कि कर्मों के निष्फल होने की स्थिति को निर्जरा कहते हैं। नवम अध्याय में संवर, गुप्ति, समिति, तप, क्षमा, मार्दव, आर्जव-शौच, सत्य, संयम, त्याग और ब्रह्मचर्य अनुप्रेक्षा, २२ प्रकार के परीषहों, विनय, उपाधि, ध्यान एवं उसके भेदों का परिचय कराया है। अन्त में दशम अध्याय में मोक्ष का स्वरूप एवं उसकी प्रक्रिया के विषय में विचार किया गया है।

सन् १९५३ ई० (वि० सं २०१०) को पूर्ण होने वाले[1] इस ग्रन्थ में श्री ज्ञानसागर जी ने जैनधर्म एवं दर्शन के मूल-भूत सिद्धान्तों से पाठक को परिचित कराने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। बीच-बीच में रोचक उद्धरणों से ग्रन्थ की दर्शन-जन्य रुक्षता कम की गई है।[2]

विवेकोदय—

जैन-दार्शनिक कुन्दकुन्दाचार्य जी की एक अति प्रसिद्ध रचना है—समय-सार। विवेकोदय' इसी 'समयसार' का हिन्दी पद्यानुवाद है। इसमें १० 'अधिकार' हैं, जिनमें क्रमशः जीव का स्वरूप, जीव के दुःख का कारण, अपने को कर्ता समझने का मिथ्याभिमान, शुभ-कर्म, अशुभ-कर्म, राग इत्यादि का बन्धन, सम्यग्ज्ञान, कर्मों को नष्ट करना, बन्धन का कारण, मोक्ष का स्वरूप एवं स्याद्वाद सिद्धान्त का वर्णन है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त पद्यों की संख्या २२६ है, ये सभी पद्य अत्यन्त सरल भाषा में रचे गये हैं। पद्यों के अतिरिक्त इस कृति में जैन-धर्म के

---

१. श्रीतत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र की टीका, पृ० सं० १८१

२. यह ग्रन्थ दिगम्बर जैन समाज, हिसार से सन् १०५८ ई० में प्रकाशित हुआ है।

सिद्धान्तों की हिन्दी में ही सरल एवं विस्तृत व्याख्या भी श्रीज्ञानसागर जी ने कर दी है।[1]

समयसार—

प्रस्तुत ग्रन्थ मौलिक रूप में तो कुन्द-कुन्दाचार्य द्वारा प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसमें दश अधिकार हैं, जिनके नाम क्रमशः जीवाजीवाधिकार, अजीवाधिकार, कर्तृकर्माधिकार, पुण्यपापाधिकार, आस्रव अधिकार, संवराधिकार, निर्जराधिकार, बन्धाधिकार, मोक्षाधिकार, और सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार हैं। इस ग्रन्थ में कुल ४३७ गाथाएं हैं और इस ग्रन्थ पर जयसेनाचार्य ने संस्कृत भाषा में तात्पर्य नाम की टीका लिखी है। परहमारे महाकवि आचार्य श्रीज्ञानसागर ने उक्त ग्रन्थ की इसी तात्पर्यावृत्ति पर अपनी हिन्दी टीका लिखी है। संस्कृत एवं प्राकृत को न जानने वाले सामाजिकों के लिये इस ग्रन्थ की यह हिन्दी टीका अतीव उपयोगी है।[2]

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त ज्ञानसागर की हिन्दी भाषा में रचित चार रचनाएं और हैं, जो अभी प्रकाशित नहीं हो पाई हैं।[3] यहाँ अतिसंक्षेप में उनका उपलब्ध परिचय प्रस्तुत है :—

गुणसुन्दर वृत्तान्त

यहाँ कविवर का एक रूपक काव्य है। इसमें राजा श्रेणिक के समय में युवावस्था में दीक्षित एक श्रेष्ठिपुत्र के गुणों का सुन्दर वर्णन किया गया है।[4]

देवागमस्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद

यह क्रमशः जैन गजट में प्रकाशित हुआ है।[5] किन्तु आज यह अनुपलब्ध है।

नियमसार का पद्यानुवाद

यह भी क्रमशः जैन गजट में प्रकाशित हुआ है,[6] किन्तु आज यह अनुपलब्ध है।

अष्टपाहुड का पद्यानुवाद

यह क्रमशः 'श्रेयोमार्ग' में प्रकाशित हुआ है,[7] किन्तु आज यह भी अनुपलब्ध है।

श्रीज्ञानसागर की उपर्युक्त सभी रचनाओं को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें संस्कृत-भाषा में साहित्य रचने की जितनी क्षमता है, सरल हिन्दी भाषा में भी रचना करने में वह उतनी ही क्षमता रखते हैं। उन्होंने अपने अथक परिश्रम से जैन-दर्शन एवं साहित्य में अपूर्व वृद्धि की है।

---

१. इस ग्रन्थ को बाबू विश्वम्भरदास जैन, हिसार ने, सन् १९४७ में प्रकाशित कराया है।
२. यह ग्रन्थ दिगम्बर जैन समाज, अजमेर से सन् १९६९ ई० में प्रकाशित हुआ है।
३. पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, बाहुबली सन्देश, पृ० सं० १३-१४
४. वही — दयोदयचम्पू, प्रस्तावना, पृ० सं० ५।
५. वही, — वही, — वही, पृ० सं० ८।
६. वही, — वही, — वही, — वही।
७. वही, — वही, — वही, — वही।

तृतीय परिशिष्ट

महाकवि ज्ञानसागर की सूक्तियाँ

अपनी बात को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए वाग्विदग्ध व्यक्ति बीच-बीच में कुछ ऐसे वाक्य कह देता है, जिनका श्रोता पर विशेष प्रभाव पड़ता है, वह इनसे व्यवहार की शिक्षा ग्रहण करता है और इन्हें याद रखता है। काव्य के 'कान्ता-सम्मितोपदेश' रूप प्रयोजन के लिए भी इन सूक्तियों का विशिष्ट महत्त्व है। अतः कवि भी यथास्थान अपने काव्यों में इनका प्रयोग करता है। अस्मदालोच्य महाकवि श्रीज्ञानसागर ने भी अपने सभी संस्कृत-काव्य ग्रन्थों में इनका प्रयोग स्थान-स्थान पर किया है। इनके भाव-कौशल का परिचय देने वाली सूक्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

क्र०सं०	सूक्ति	ग्रन्थनाम	श्लोकसंख्या
१.	अगदेनैव निरेति रोगः	वीरोदय	५।३१
२.	अनेकशक्त्यात्मकवस्तु तत्त्वम्।	वीरोदय	१६।८
३.	अन्यस्य दोषे स्विदवाग्विसर्गः।	वीरोदय	१८।३८
४.	अर्थक्रियाकारितयास्तु वस्तु।	वीरोदय	१६।८
५.	असुहृताविव दोषशिखास्वरं शलभ आनिपतत्यपसम्वरम्	जयोदय	२५।२५
६.	अहो जगत्यां सुकृतैकसन्ततेरभीष्टसिद्धिः स्वयमेव जायते।	जयोदय	२३।३६
७.	अहो दुरन्ता भवसम्भवाऽवनिः।	जयोदय	२३।१६
८.	अहो दुराराध्य इयान् परो जनः।	सुदर्शनोदय	१।४२
९.	अहो मरीमर्ति किलाकलत्रः।	वीरोदय	६।३५
१०.	अहो मायाविनां माया मा यातु सुखतः स्फुटम्।	जयोदय	७।४
११.	अहो सज्जनसम्भोगो हि जयतामापदुद्धर्ता।	जयोदय	२३।४४
१२.	आचार एवाभ्युदयप्रदेशः।	वीरोदय	७।२६
१३.	आत्मा यथा स्वस्य तथा परस्य।	वीरोदय	७।६
१४.	इन्द्रियाणि विजित्यैव जगज्जेतृत्वमाप्नुयात्।	वीरोदय	८।३७
१५.	इन्द्रियाणां तु यो दासः स दासो जगतां भवेत्।	वीरोदय	८।३७
१६.	उच्छालितोऽर्काय रजःसमूहः पतेच्छिरस्येव...।	वीरोदय	१६।५

१७.	उन्मार्गगामी निपतेदनच्छे ।	वीरोदय	१८।४२
१८.	उपद्रुतोऽप्येष तरू रसालं फलं श्रपत्यङ्गभृते त्रिकालम् ।	वीरोदय	१।१२
१९.	उररीक्रियते न किं पिकाय कलिकाम्रस्य शुचिस्तु सम्प्रदायः ?	जयोदय	१२।२९
२०.	ऋते तमः स्यात्क्व रवेः प्रभावः ?	वीरोदय	१।१८
२१.	ऋद्धिं वा रजनीव गच्छति वनी ।	वीरोदय	६।३७
२२.	कदा हरेत्प्रार्थयतः पिपासां स चातकस्याम्बुद इत्यमाशा ।	जयोदय	१९।३८
२३.	करोत्यनूढा स्मयकौतुकं नः ।	सुदर्शनोदय	२।२१
२४.	कर्त्तव्यमञ्चेत् सततं प्रसन्नः ।	वीरोदय	३७।१०
२५.	कर्पूरखण्डादिषु सत्सु सोऽरमश्नात्यहो वह्नि-कणांश्चकोरः ।	जयोदय	१९।३९
२६.	कर्त्रे स्वयं कर्म फलेदिहातः समस्ति गर्तं खनकस्य पातः ।	दयोदय	१।९
२७.	कलिनुं वर्षावसरोऽयमस्तु ।	वीरोदय	४।६
२८.	कस्मै भवेत्कः सुखदुःखकर्ता स्वकर्मतोऽङ्गीपरि-पाकभर्ता ।	वीरोदय	१६।१०
२९.	का गतिर्निशि हि दीपकं विना ?	जयोदय	२।९२
३०.	किं कदैतन्मया बोधि कीदृशी मयि वीरता ?	वीरोदय	१०।२८
३१.	किं मल्लिमाला वयते कुशेण ?	जयोदय	२०।३५
३२.	किन्तु सम्भालनीयानां सम्भालनन्तु कर्त्तव्य-मस्ति ।	दयोदय	२।पृ० सं० १९
३३.	किन्नाम मूल्यं बलविक्रमस्य ?	वीरोदय	१८।४
३४.	किन्नु खलु शृगालोऽपि पञ्चाननतनयाया भर्त्ता भवितुमर्हतीति ?	दयोदय	३।पृ० सं० ५२
३५.	किन्नु काकगतमप्युपाश्रयत्यत्र हंसवत् कुचिताशयः ?	जयोदय	२।९
३६.	किमु बीजव्यभिचारि अङ्कुरः ?	सुदर्शनोदय	३।८
३७.	किमु सम्भवतान्मोदो मोदके परभक्षिते ?	वीरोदय	८।१
३८.	किलापत्काले मर्यादा नास्तीति ।	दयोदय	२।पृ० सं० १९
३९.	कूपके च रसकोऽप्युपेक्ष्यते?	जयोदय	२।१६
४०.	कृतज्ञतां ते खलु निर्वहन्तितमामसुम्योप्यमलास्तु सन्ति ।	जयोदय	१५।३

४१.	कृतिना स्वेष्टसम्पत्तये समुपायः कर्त्तव्य एव ।	दयोदय	३।पू० सं० ५५
४२.	को नाम वाञ्छेच्च निशाचरत्वम् ?	वीरोदय	१८।३६
४३.	कोषैकवाञ्छामनुसन्दधाना वेश्यापि भावेव कवीश्वराणाम् ।	वीरोदय	२।४४
४४.	क्व निलयोऽनिलयोग्यविहारिणः किमर्थं नाम समर्थविचारिणः ? ।	जयोदय	६।६५
४५.	खलितोत्तमाङ्ग एव करकोपनिपातः सम्भाव्यते ।	दयोदय	५।पू० सं० १०३
४६.	खलु दोषगणोऽपि गुणो हि भवेन्निरतायसमष्टि जनस्य भवे ।	जयोदय	२३।३२
४७.	गतं न शोच्यं विदुषा समस्तु गन्तव्यमेवाश्रयणीयवस्तु ।	वीरोदय	१४।३४
४८.	गायक एव जानाति रागोऽत्रायं भवेदिति ।	वीरोदय	१५।२
४९.	गावस्तृणमिवारण्येऽभिसरन्ति नवं नवम् ।	जयोदय	२।१४६
५०.	गुणभूमिर्हं भवेद्विनीतता ।	वीरोदय	७।५
५१.	गुणं जनस्यानुभवन्ति सन्तः ।	वीरोदय	१।१४
५२.	गुणिसम्प्रयोगतः गुणी भवेदेव जनोऽवनावितः ।	श्रीसमुद्रदत्त चरित	३।१६
५३.	गृहच्छिद्रं परीक्ष्यताम् ।	सुदर्शनोदय	८।१०
५४.	चिन्तामणिं प्राप्य नरः कृतार्थः किमेष न स्याद्विदिताखिलार्थः ?	जयोदय	२४।६८
५५.	चिन्तारत्नं समुत्क्षिप्तं काकोड्डायनहेतवे ।	दयोदय	६।१२
५६.	जलेऽज्जिनीपत्रवदत्र भिन्नः सर्वत्र स ब्राह्मण-सम्पदङ्गः ।	वीरोदय	१४।४०
५७.	जित्वाऽक्षाणि समावसेदिह जगज्जेता स आत्म-प्रियः ।	वीरोदय	१६।२७
५८.	झञ्झानिलोऽपि किं तावत् कम्पयेन्मेरुपर्वतम् ?	वीरोदय	१०।३६
५९.	तथापि यस्याभिरुचिर्यतो भवेन्निवार्यते किं खलु सा जवंजवे ?	श्रीसमुद्रदत्तचरित	४।७
६०.	तपति भूमितले तपने तमः परिहृतौ किमु दीप-परिश्रमः ?	जयोदय	२।५
६१.	तावदूषरटके किलाफले का प्रसक्तिरुदिता निरर्गले ।	जयोदय	२।५
६२.	तिष्ठेत्सदाचारपरः सदार्यः ।	सुदर्शनोदय	६।६०
६३.	तुल्यावस्था न सर्वेषाम् ।	वीरोदय	१७।३०

६४. दैवं निहत्य यो विजयते तस्यात्र संहारकः कः स्यात् ?। वीरोदय १।२०

६५. दोषानुरक्तस्यः खलस्य चेश, काकारिलोकस्य च को विशेषः ?। वीरोदय १।२०

६६. दौर्जन्यं यदन्येषां पथप्रस्थायिनामपि किलाप-करणम्। दयोदय ६ पृ० सं०१२१

६७. धर्मानुकूला जगतोऽस्तु नीतिः। वीरोदय २२।४२

६८. धर्माम्बुवाहाय न कः सपक्षी ? सुदर्शनोदय ४।१७

६९. धान्यमस्ति न विना तृणोत्करम्। जयोदय २।३

७०. धीमतां...धिया किमसाध्यम् ? जयोदय ४।३३

७१. न काचिदन्या प्रतिभाति भिक्षा। वीरोदय ५।४

७२. न कोऽपि कस्यापि बभूव वश्यः। वीरोदय १।३८

७३. नानुवर्तिनि रवौ प्रतियाते दीपके मतिरुदेति विभाते। जयोदय ५।२३

७४. नाम्बुधौ मकरतोऽरिता हिता। जयोदय २।७०

७५. नारीं विना क्व नरच्छाया निःशाखस्य तरोरिव। वीरोदय ८।२४

७६. नार्थस्य दासो यशसश्च भूयात्। वीरोदय १८३।७

७७. नित्यं यः पुरुषायनामादरवान् वीरोऽसकौ सम्प्रति। वीरोदय २२।३३

७८. नित्यं विभावमयदोषविशोधनाय पङ्केरुहस्य पुरतः शशिनोऽभ्युपायः। जयोदय २०।१०

७९. निम्बादयश्चन्दनतां लभन्ते श्रीचन्दनद्रोः प्रभवन्तु अन्ते। वीरोदय १४।४५

८०. निर्गतेऽवसरे पश्चात् कुतश्च न भवेदतः ? दयोदय ४।१७

८१. निहन्यते यो हि परस्य हन्ता। वीरोदय १६।७

८२. नीतिरेव हि बलाद्बलीयसी। जयोदय ७।८०

८३. नैव लोकविपरीतमञ्चितुं क्षुद्रमप्यनुमतिर्गृहीशितुः। जयोदय २।१५

८४. पतिव्रतानां खलु सम्पदापदं निषेवते याति तथापदाऽऽपदम्। जयोदय २०।६५

८५. परस्य शोषाय कृतप्रयत्नं काकग्रहाराय यथैव रत्नम्। वीरोदय १४।३३

८६. परस्यापात एव स्यादुदिगान्त्यमिति गच्छतः। वीरोदय ८।१५

८७. पराधिकारे त्वयनं यथाऽपन्निजाधिकाराच् च्यवनं च पापम् । वीरोदय ४।१७
८८. प्रयोजनाधीनक वन्दतस्तु विलोकते क्वापि जनो न वस्तु । जयोदय २७।५२
८९. पातास्तु पूज्यो जगतां समस्तु । वीरोदय १६।७
९०. पापप्रवृत्तिः खलु गर्हणीया । १४।२२
९. पापाद् घृणा किन्तु न पापिवर्गाद् । वीरोदय १७।७
९२. पापादपेतं विदधीत चित्तम् । वीरोदय १७।२३
९३. पापं विमुच्यैव भवेत्पुनीतः स्वर्णं च किट्टि-प्रतिपाति हीतः । वीरोदय १७।७
९४. प्रायः प्राग्भवभाविन्यौ प्रीत्यप्रीती च देहिनाम् । सुदर्शनोदय ४।१६
९५. प्रायोऽस्मिन् भूतले पुंसो बन्धनं स्त्रीनिबन्धनम् । वीरोदय ८।३०
९६. पितुर्विलङ्घ्याङ्गुलिमूलतातिर्यथेष्टदेशं शिशुकोऽपि याति । वीरोदय ४।८
९७. पीडा ममान्यस्य तथेति । वीरोदय १४।३७
९८. पीतं मूलेन पानीयं फले व्यक्तीभवत्यहो । दयोदय ५।१४
९९. पीयूषं नहि शेषं पिबन्नेव सुखायते । दयोदय १।२५
१००. फलतीष्टे सतां रुचिः । सुदर्शनोदय ३।४३
१०१. बलीयसी संगतिरेव जाते । वीरोदय २१।४
१०२. भवति दीपकतोऽञ्जनवत्कृतिर्नं नियमा खलु कार्यकपद्धतिः । जयोदय ९।८१
१०३. भाले विशाले दुरितान्तकाले भवन्ति भावा रमिणां रमासु । जयोदय २१।८८
१०४. मतिर्विभिन्ना प्रतिदेहि जायते तथा गतिस्तस्य किलार्हतां मते । श्रीसमुद्रदत्त चरित्र ४।८
१०५. मनस्वी मनसि स्वीये न सहायमपेक्षते वीरोदय १०।३७
१०६. मनुष्यता ह्यात्महितानुवृत्तिर्नं केवलं स्वस्य सुखे प्रवृत्तिः । वीरोदय १७।६
१०७. महात्मनामप्यनुशिष्यते धृतिरहो नयावद्विनिरेति संसृतिः । जयोदय २३।३६
१०८. मितो हि भूयादसदोऽपि सेव्यः । वीरोदय ५।३४
१०९. मुञ्चेदहन्तां परतां समञ्चेत् । वीरोदय १८।३८
११०. मुहुरहो स्वदते ज्वलिताधरः स्विदभिलाषवरो मरिचीं नरः । जयोदय २५।२४

१११.	मूर्ध्ना न वाह्यते भूमौ वहनीयं किमिन्धनम् ?	दयोदय	३।७
११२.	मूलं विना स्कन्ध उत च्छदाद्या भित्तिस्तदस्याश्च परिच्छदा वा ।	जयोदय	१९।३८
११३.	मूलोच्छेदं विना वृक्षः पुनर्भवितुमर्हति ।	वीरोदय	१३।३६
११४.	मूल्यं मणेः सन्मणिमाणवो हि कुर्यात्कुतो दारु भराबरोही ।	जयोदय	१९।६४
११५.	मङ्गलकर्मणि दीर्घसूत्रता.....नोचिता...।	दयोदय	४।पृ० सं० ८३
११६.	यत्रैव पतितं मुशलं तत्रैव क्षेमं कुशलं च ।	दयोदय	४।पृ० सं० ९९
११७.	यदङ्कुरोत्पादनकृद्घनागमः फलत्यहो तच्च शरत्समागमः ।	जयोदय	२३।३८
११८.	वह्निः किं शान्तिमायाति क्षिप्यमाणेन दारुणा ?	सुदर्शनोदय	९।४४
११९.	वामा गतिर्हि वामानां को नामावेत्तु तामितः ?	जयोदय	२।१५२
१२०.	वार्विन्दुरेति खलु शुक्तिषु मौक्तिकत्वम् ।	सुदर्शनोदय	४।३०
१२१.	वार्धिकं जलमपीह निर्मलं कथ्यते किल जनैः सरोजलम् ।	जयोदय	२।३३
१२२.	विपत्सु सम्पत्स्विव तुल्यतैवमहो तटस्था महतां सदैव ।	जयोदय	१५।२
१२३.	विवेचनायाह न नीतिमानिति, ददाति वक्तुं प्रतिवादिने स्थितिम् ।	श्रीसमुद्रदत्तचरित्र	४।१
१२४	वेलातिगानन्दपयोधिवृद्धिर्लोकस्य नो कस्य पुनः समृद्धिः ।	जयोदय	११।६३
१२५.	रमणीरमणीयत्वं पतिर्जानाति नो पिता ।	जयोदय	२८।८३
१२६	रसोदयाकाङ्क्षि मनो मनस्विनाम् ।	जयोदय	२४।९८
१२७.	रसोऽगदः स्रगिव पारदेन ।	वीरोदय	१४।४४
१२८.	वाञ्छा वन्ध्या सतां नहि ।	वीरोदय	८।२
१२९.	विभेति मरणाद्दीनो न दीनोऽयामृतस्थितिः ।	वीरोदय	१०।३१
१३०.	लोहोपपार्श्वंस्पवशाऽञ्चति हेमसत्त्वम् ।	सुदर्शनोदय	४।३०
१३१.	शक्यमेव सकलैर्विधीयते को नु नागमणिमाप्तुमुद्यतेत् ?	जयोदय	२।१६
१३२.	शपन्ति क्षुद्रजन्मानो व्यर्थमेव विरोधकान् । सत्याग्रहप्रभावेण महात्मा त्वनुकूलयेत् ॥	वीरोदय	१०।३४
१३३.	शिरसि सन्निहितांश्छगलो बलादपि धृतोऽस्ति मुदा यवतन्दुलान् ।	जयोदय	२५।३६

१३४.	श्रोत्रवद्विरलो लोके बहिः छिद्रं प्रकाशयन् । शृणोति सुखतोऽन्येषामुचितानुचितं वचः ॥	वीरोदय	१०।८
१३५.	सत्सम्प्रयोगवशतोऽङ्गवतां महत्त्वम् ।	सुदर्शनोदय	४।३०
१३६.	सञ्चरेदेव सर्वत्र विहायोच्चयमीरणः ॥	वीरोदय	१०।११
१३७.	सत्यानुयायिना तस्मात्संग्राह्यस्त्याग एव हि ।	वीरोदय	१३।३६
१३८.	समस्तु पितुननुबालचारः ।	श्रीसमुद्रदत्तचरित्र	१।१२
१३९.	सम्पतति शिरस्येव सूर्यायोच्चालितं रजः ।	सुदर्शनोदय	६।३६
१४०.	समुच्छ्रिताशेषपरिच्छदोऽपि अमुत्र सिद्ध्यै दुरितैकलोपी ।	वीरोदय	१८।४०
१४१.	समन्ततोधिष्ण्य कुलाकुला वा ज्योतिष्मती रात्रिरुतेन्दुभावात् ।	जयोदय	१।३५
१४२.	सहेत विद्वानपदे कृतो रतः ।	जयोदय	२।१४२
१४३.	सुतमात्र एव सुखदस्तीर्थेश्वरे किम्पुनः ?	वीरोदय	४।६२
१४४.	सुगन्धयुक्तापि सुवर्णमूर्त्तिः ।	सुदर्शनोदय	१।३५
१४५.	सूच्या न कार्यं खलु कर्तरीतः ।	वीरोदय	१७।३
१४६.	सूर्योदये का खलु चोरभीतिः ?	जयोदय	१६।११०
१४७.	स्वप्नवृन्दमफलं न जायते ।	वीरोदय	४।६१
१४८.	स्वस्थितं नाञ्जनं वेत्ति वीक्ष्यतेऽन्यस्य लाञ्छनम् चक्षुर्यथा तथा लोकः परदोषपरीक्षकः ॥	वीरोदय	१०।७
१४९.	स्वार्थाच्च्युतिः स्वस्य विनाशनाय ।	वीरोदय	१७।११
१५०.	स्वभावतो ये कठिनाः सहेरन् कुतः परस्याभ्युदयं सहेरन् ।	सुदर्शनोदय	२।४४
१५१.	स्वातन्त्र्येण हि को रत्नं त्यक्त्वा काचं समेष्यति ?	जयोदय	७।१५
१५२.	स्खलत्यलं चेदुषघाततस्तु तदत्र किन्ते खलु दोषवस्तु ।	जयोदय	२६।३२
१५३.	स्वता कुतः स्यात्परतामुतर्त्ते गतस्य कर्त्ता. विपतेद्धि गर्ते ।	जयोदय	१६।७४
१५४.	हिंसा सदूषयति हिन्दूरियं निरुक्तिः ।	वीरोदय	२२।१३
१५५.	हृषीकाणि समस्तानि माद्यन्ति प्रमदाश्रयात् ।	वीरोदय	८।३१

चतुर्थ परिशिष्ट

महाकवि ज्ञानसागर की अन्यकृत प्रशस्तियाँ

थे ज्ञानसागर गुरु, मम प्राण प्यारे
थे पूज्य साधु गण से, बुध मुख्य न्यारे।
शास्त्रानुसार चलते, मुझको चलाते
वन्दू उन्हें विनय से शिर को झुकाते॥

—'स्मारिका' (Souvenir) में आचार्य श्रीविद्यासागर।

गुरो ! दल-दल में मैं था फंसा, मोह पाश से हुआ था कसा।
बंध छुड़ाया दिया आधार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१॥

पाप पंक से पूर्ण लिप्त था, मोह नींद में सुचिर सुप्त था।
तुमने जगाया किया उपचार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥२॥

आपने किया महान् उपकार, पहनाया मुझे रतनत्रयहार।
हुए साकार मम सब विचार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥३॥

मैंने कुछ न की तव सेवा, पर तुमसे मिला मिष्ट मेवा।
यह गुरुवर की गरिमा अपार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥४॥

निज धाम मिला, विश्राम मिला, सब मिला उर समंकित पद्म खिला।
अरे ! गुरुवर का वर उपकार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥५॥

अंध था, बहिर था, था मैं अज्ञ, दिए नयन व करण बनाया विज्ञ।
समझाया मुझको समयसार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥६॥

मोह मल धुला, शिव द्वार खुला, पिलाया निजामृत घुला, घुला।
कितना था गुरुवर उर उदार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥७॥

प्रवृत्ति का परिपाक संसार, निवृत्ति नित्य सुख का भंडार।
कितना मौलिक प्रवचन तुम्हार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥८॥

रवि से बढ़कर है काम किया, जनगण को बोध प्रकाश दिया।
चिर ऋणी रहेगा यह संसार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥९॥

स्व पर हित तुम लिखते ग्रन्थ, आचार्य उवझाय थे निर्ग्रन्थ।
तुम सा मुझे बनाया अनगार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१०॥

इन्द्रिय दमन कर, कषाय शमण, करत, निशदिन निज में ही रमण।
क्षमा था तव सुरम्य शृङ्गार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥११॥
बहु कष्ट सहे, समन्वयी रहे, पक्षपात से नित दूर रहे।
चूँकि तुममें था साम्य संचार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१२॥
मुनि गावे तव गुण-गण-गाथा, झुके तव पाद में मम माथा।
चलते, चलाते समयानुसार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१३॥
तुम थे द्वादश-विध-तप तपते, पल-पल जिनप नाम-जप जपते।
किया धर्म का प्रसार-प्रचार, मन प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१४॥
दुर्लभ से मिली यह 'ज्ञान' सुधा, विद्या' पी इसे मत खो मुधा।
कहते यों गुरुवर यही 'सार', मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१५॥
व्यक्तित्व की सत्ता मिटा दी, उसे महासत्ता में मिला दी।
क्यों न हो प्रभु से साक्षात्कार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१६॥
करके शिक्षा दी सल्लेखना, शब्दों में हो न उल्लेखना।
सुर नर कर रहे जय-जयकार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१७॥
आधि नहीं थी, थी नहीं व्याधि, जब आपने ली परम समाधि।
अब तुम्हें क्यों न वरे शिवनार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१८॥
मेरी भी हो इसविध समाधि, शेष, तोष नशे, दोष उपाधि।
मम आधार सहज समयसार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥१९॥
जय हो! ज्ञानसागर ऋषिराज, तुमने मुझे सफल बनाया आज।
और इक बार करो उपकार, मम प्रणाम तुम करो स्वीकार ॥२०॥

—स्मारिका में पृ० सं० ५२-५३ पर आचार्य श्रीविद्यासागर।

३. श्रीलाल जी वैद्य ने महाकवि ज्ञानसागर को लौकिक पुरुष न मानकर, संतापहारी देव के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने सनातनधर्मियों के ही समान महाकवि के षोडशोपचारकल्प पूजन का विधान किया है। साथ ही उनके पूजन के लिए उन्होंने भजनों की भी रचना की हैं। क्रमशः पूजनविधि एवं भजन प्रस्तुत हैं :—

दोऊ कर जोरुँ हाथ स्वामी, चरण नवाऊं माथ।
तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, नाथ ॥
हृदय वास करो, दीन दुखी दुखयारा, तुम विन फिरता मारा-मारा,
यासे लीना नाथ सहारा, दुःख का नाश करो।
स्वामी कर्म बड़े बलदाई, इनने दुर्गति अधिक बनाई,
इनसे पार न मेरी जाई, इनका नाश करो ॥
ऐसी घोट पिलाई बूंटी, सारी ज्ञान निधि मम लूटी,
जासे हृदय की भी फूटी, घर प्रकाश करो ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिराज ज्ञानसागर अत्र अवतर सं वौषट्।
ॐ ह्रीं श्री मुनिराज ज्ञानसागर अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ।
ॐ ह्रीं श्री मुनिराज ज्ञानसागर अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

× × ×

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागर जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निवेदयामि स्वाहा।

× × ×

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागर भवतापविनाशाय चन्दनं निवेदयामि स्वाहा।

× × ×

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागर अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निवेदयामि स्वाहा।

× × ×

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागर कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निवेदयामि स्वाहा।

+ + +

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागरक्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निवेदयामि स्वाहा।

+ + +

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागर मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निवेदयामि स्वाहा।

+ + +

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागर अष्टकर्मदहनाय धूपं निवेदयामि स्वाहा।

+ + +

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागर मोक्षफलप्राप्तये फलं निवेदयामि स्वाहा।

+ + +

ॐ ह्रीं श्री मुनिज्ञानसागर अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निवेदयामि स्वाहा।

—श्रीलाल जैन, वैद्य, हिस्सार, 'मुनिपूजन', पृ० सं० ३-५

४. जिन्हों का दर्श करने को सभी प्राणी तरसते हैं।
हर्षते नाम सुन-सुन कर, वही ये ज्ञानसागर हैं॥

जगाते पामरों को भी, बताते सत्य शिव मारग।
मिटाते फूट आपस की, वही ये ज्ञानसागर हैं॥

नहीं है प्रेम भक्तों से, नहीं है द्वेष द्रोही से।
दृष्टि है एक सी सब पर, वही ये ज्ञानसागर हैं।
सौम्य मुस्कान सूरत है, सरल मृदु बैन बोले हैं।
कपट अभिमान नहीं जिनके, वही ये ज्ञानसागर हैं॥

नहीं अटवी भयानक है, नहीं मरघट डरावन है।
नहीं अहि व्याघ्र की शङ्का, वही यह ज्ञानसागर हैं॥

अनेकों भव्य जीवों को; लगाया सत्य मारग पर।
बताया मार्ग शान्ति का, वही ये ज्ञानसागर हैं ॥
सहें हिम धूप की बाधा, न हर तूफान वर्षा का।
अकम्पन आत्मा जिनकी, वही ये ज्ञानसागर हैं ॥
श्रेष्ठ आदर्श साधु हैं, अचल चारित्र है इनका।
आर्षमार्गानुगामी जो, वही ये ज्ञानसागर हैं ॥
परीक्षा की कसौटी पर, साधुपन को परख करके।
सभी ने सर नमाया है, वही ये ज्ञानसागर हैं ॥

—श्रीलाल जैन बैद्य, हिसार (पंजाब), 'मुनि-पूजन मुखपृष्ठ के भीतरी भाग पर।

५. धन्य मुनिराज ज्ञानसागर जी, शक्ति नहीं गुणवर्णन की।
मैं दुखिया संसारी हूँ, नाथ मैं मायाचारी हूँ।
बिगड़ी दशा मेरे जीवन की, शक्ति नहीं गुणवर्णन की ॥
पंच महाव्रत धारी हो, करो तपस्या भारी हो।
ममता नहीं है कुछ तन की, शक्ति नहीं गुणवर्णन की ॥
तुम प्रभु पर हितकारी हो, जग-जन के उपकारी हो।
फांसी तोड़ी कर्मन की, शक्ति नहीं गुणवर्णन की ॥
प्रभु तुम दर्श दिखा देना, ज्ञान सुधा बरसा देना।
मुझे चाह नहीं है, कुछ धन की, शक्ति नहीं गुणवर्णन की ॥
तुम शिव आनन्दकारी हो, शिवपुर के अधिकारी हो।
शरण लही तुम चरणन की, शक्ति नहीं गुण-वर्णन की ॥

—श्रीलाल जैन, मुनिपूजन, भजन संख्या, पृ० सं० ८

६. मुनीश्वर ज्ञानसागर का लगा दरबार भारी है।
तजे हैं मात सुत भाई, तजा है राज वैभव को ॥
त्याग कर वस्त्र आभूषण, दिगम्बर मुद्राधारी है ॥मुनि०॥
लगाकर अचल आसन को, धरा है ध्यान आतम का।
करा है लोंच केसों का, कमण्डल पीछी धारी है ॥मुनि०॥
गमन करें ईर्ष्या समिति से निरख करके प्रभु भूमि को।
करें सब जीव की रक्षा-दया हृदय में धारी है ॥मुनि०॥
धर्म के भूप तुम प्रभु हो, ये सब प्रजा तुम्हारी है।
ज्ञान की जगाकर जोती, धर्म की वर्षा करते हैं ॥मुनि०॥
यहाँ संयम दान बंटता है, खड़े लाखों भिखारी हैं।
धर्म प्रचार होता है, प्रभु की वाणी सुन-सुन के ॥
यह जय जयकार होती है, यह सब महिमा तुम्हारी है ॥मुनि०॥

—श्रीलालजैन, 'मुनिपूजन', भजन संख्या ६, पृ० सं० १२

७. गुरु ज्ञान के सागर में हम गोते लगायेंगे,
लूटेंगे मोती ज्ञान के जग को लुटायेंगे ।।
बह जायें इनकी भावना के संग-संग हम,
मन का धोकर के मैल हम निर्मल बनायेंगे ।
लूटेंगे मोती.....।।१।।
ऐसी जो पुण्य आत्मा से प्रीत करके हम,
गुरुवर के पद पे चलके ही जीवन बितायेंगे ।
लूटेंगे मोती.....।।२।।
मिट्टी की देह को आपने कंचन बना लिया,
श्रद्धा के फूल चरणों में हम तो चढ़ायेंगे ।
लूटेंगे मोती.....।।३।।
यही है सच्चा मार्ग जिसपे चल दिखा दिया,
कुछ पा दिखा दिया,
उर ला सन्देश तुम्हारा, जग को भी सुनायेंगे,
लूटेंगे मोती..... .....।।४।।
मरना तो है इक दिन हमें, कुछ करके ही मरें,
ऐसे अवसर को अब ना हम यहीं गवायेंगे,
लूटेंगे मोती०.....।।५।।
—श्रीमोतीलाल पंवार, 'बाहुबली सन्देश', पृ० सं० ११

८. फूल भावना के लेकर के, आज गुरु मैं अर्पण करता ।
श्रद्धा से नत मस्तक होकर, ज्ञानसिन्धु को वन्दन करता ।।१।।
तुम थे गौरव जैन धर्म के, करुणा की मूरत साकार ।
विश्व धर्म ही इसे बताते, सत्य अहिंसा जिस आधार ।।२।।
राजस्थान ग्राम राणोली, घृतबली देवी के थे नन्द ।
लाल चतुर्भुज गोत्र छाबड़ा, किया समुज्ज्वल बनकर चन्द ।।३।।
जल में भिन्न कमलवत् रहकर, घर में किया पठन-पाठन ।
बाल ब्रह्मचारी रह कीना, उदासीन जीवन यापन ।।४।।
गृह तज सूरि वीरसिंधु संघ, साधु वर्ग अध्ययन करा ।
क्षुल्लक ऐलक क्रम से बनकर, मुनि बनने का भाव भरा ।।५।।
संवत् दो हजार सोलह में, जयपुर नगर खानियां मांय ।
शिवाचार्य से दीक्षा लेकर, ज्ञानसिंधु मुनिराज कहाय ।।६।।
भ्रमणशील रह नगरों गावों, आतम हित उपदेश दिया ।
ज्ञानसाधना तपश्चरण कर, अनेकान्त को पुष्ट किया ।।७।।

हिन्दी संस्कृत प्राकृत के थे, आज गुरु उद्भट विद्वान् ।
विविध विषय धार्मिक आध्यात्मिक, सरल बता करवाते भान ॥८॥
अनुपम ग्रन्थों की रचनाकर, कीना आप परम उपकार ।
भाषा सरल बनाकर कीनी, टीका समयसार तैय्यार ॥९॥
प्रमुख ग्रन्थ में से हैं कतिपय, सुदर्शनोदय' अरु 'भद्रोदय' ।
'वीरोदय' 'विवेक' 'जयोदय'. 'शतकसारसम्यक्त्व' 'दयोदय' ॥१०॥
जैन समाज संघ एकत्रित, पद आचार्य नसीराबाद ।
दो हजार पच्चीस की संवत्, दिया हर्ष से कर जयनाद ॥११॥
कर कल्याण समाज आपने, दीने फिर अनुपम नररत्न ।
रहे प्रज्वलित ज्ञान ज्योति जो, कर शिक्षा दीक्षा सम्पन्न ॥१२॥
परम शिष्य मुनि विद्यासागर, ऐलक 'सन्मति' मुनि 'विवेक' ।
क्षुल्लक 'संभव' 'विनय'रु सुख थे, है 'स्वरूप' लाखों में एक ॥१३॥
नश्वर देह क्षीणता लखकर, कर दीना फिर पद परित्याग ।
'मुनि विद्या' आचार्य बनाकर, व्रत सल्लेखन पथ पग लाग ॥१४॥
दो हजार अरु तीस की संवत्, मृत्यु को करके आह्वान ।
कृष्ण ज्येष्ठ अमावस के दिन, स्वर्ग लोक को किया प्रयाण ॥१६॥
धन्य-धन्य ऐसे योगीश्वर, बसें सदा ही 'प्रभु' मन धाम ।
स्वर्ग जाय जो बढ़कर आगे, करेंगे सिद्धशिला विश्राम ॥१७॥

—श्री प्रभुदयाल जैन, 'बाहुबली सन्देश', पृ० सं० १५-१६

९. 'निर्ग्रन्थमपि सग्रन्थं सश्रुतञ्चापि विश्रुतम् ।
ज्ञानसागरनामानमाचार्यं विनमाम्यहम् ॥'

—पन्नालाल साहित्याचार्य, बाहुबली सन्देश, पृ० सं० १७

१०. "आ० ज्ञानसागर जी महाराज यथानाम तथा गुण तपस्वी थे ।
वे प्रथम विद्यान्वेषी समाराधक थे, बाद में निर्ग्रन्थ रूपधारी
आचारवान् ।"

—'स्मारिका' (souvenir) में श्री हेमचन्द्र जैन ।

११. "परमपूज्य चरित्र चक्रवर्ती श्री १०८ श्री ज्ञानसागर जी
महाराज अनुपम ज्ञाननिधि तथा चरित्रनिष्ठ तपस्वी साधुराज थे ।
उनकी ज्ञानगरिमा दिव्य थी । अनेक ग्रन्थों के समर्थ
रचयिता पूज्य आचार्य श्री निस्सन्देह ज्ञानसागर थे ।'

—'बाहुबली संदेश' में श्रीभागचन्द सोनी ।

१२. दिवंगत आचार्य श्री यथानाम तथानुरूप ज्ञान के आगार तथा आत्मशक्ति के पुंज थे।'

—'बाहुबली सन्देश' में श्री चांदमल सरावगी पांड्या।

१३. 'परमपूज्य बालब्रह्मचारी चारित्रविभूषण ज्ञानमूर्त्ति वयोवृद्ध १०८ आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज समाज की एक निधि थी।'

—श्री स्वरूपचन्द कासलीवाल, 'बाहुबली सन्देश' पृ० सं० २१

१४. .....वे जैन संस्कृति के ही रक्षक नहीं थे, बल्कि भारत की आर्य संस्कृति के भी पूर्ण रक्षक थे। समन्वय नीति को सामने रखते हुए आपने उदारतापूर्वक दृष्टिकोण से जैन धर्म की विशेषताएं सिद्ध की हैं।

—ब्रह्मचारी पं० विद्याकुमार सेठी, बाहुबली सन्देश, पृ० सं० १५

पञ्चम परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संस्कृत ग्रन्थ

१. आदिपुराण, भाग-१, आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी, द्वि० सं० १९६३।

२. आदिपुराण, भाग-२, आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी द्वि० सं० १९६५।

३. आराधना कथाकोश, ब्रह्मचारी श्री नेमिदत्त, नेमीचन्द वाकलीवाल, कमल-प्रिंटर्स, मदनगंज, प्र० सं० १९६२।

४. उत्तरपुराण, आचार्य गुणभद्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि० सं० १९६८।

5. औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० १९६८।

६. कथारत्नाकर, हेमविजयगणि, जैनग्रन्थमाला, अहमदाबाद, प्र० सं० १९४०

७. कामसूत्र, वात्स्यायन, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी तृतीय सं०, सन् १९८२।

८. काव्यादर्श, दण्डी, भण्डारकर इनस्टीट्यूट, पूना, प्र० सं०, सन् १९३८।

९. काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई. द्वि० सं०, सन् १९३४।

१०. काव्यमीमांसा, राजशेखर, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, सन्-१९५४।

११. काव्यप्रकाश, मम्मट, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, द्वि० सं०, सन् १९६०।

१२. काव्यालङ्कार, भामह, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी प्र० सं०, सन् १९२८।

१३. काव्यालङ्कार, रुद्रट, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, सन् १९६५।

१४. काव्यालङ्कारसूत्र, वामन, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० सन् १९७१।

१५. कालिदास ग्रन्थावली, अनुवादक पं० सीताराम चतुर्वेदी, श्री बद्रीप्रसाद वर्मा, तृ० सं०, सन् १९३२।

१६. किरातार्जुनीय, भारवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि० सं०, सन्-१९७२।

१७. कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, द्वि० सं० सन्-१९६३।
१८. चन्द्रप्रभचरित, वीरनन्दी, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्र० सं०, सन्-१९७१।
१९. चित्रकाव्यकौतुक, चित्रकवि पण्डित रामरूप पाठक, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र० सं०, सन् १९७१।
२०. छन्दोमञ्जरी, गङ्गादास, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, च० सं० सन्-१९५९।
२१. छन्दःशास्त्र, पिङ्गलाचार्य, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, तृ० सं० सन् १९३८।
२२. छन्दोऽनुशासन, हेमचन्द्र सूरि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, द्वि० सं० सन्-१९३४।
२३. जयोदय, श्रीज्ञानसागर, ब्रह्मचारी सूरजमल, जयपुर, प्र० सं०, सन् १९५०।
२४. जैन धर्मामृत, संपादक-पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी, द्वि० सं० सन् १९६५।
२५. दयोदयचम्पू, श्रीज्ञानसागर, प्रकाशचन्द जैन, ब्यावर, प्र० सं०, सन् १९६६।
२६. दशरूपक, धनञ्जय, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, दिल्ली, द्वि० सं० सन्-१९७१।
२७. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, प्र० सं० सन् १९६२।
२८. नलचम्पू, त्रिविक्रम भट्ट, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० सन्-१९३२।
२९. नाट्यशास्त्र, भरत मुनि, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्रथम सं० सन्-१९६४।
३०. पुण्यास्रव कथाकोश, श्रीरामचन्द्र मुमुक्षु, जैन संस्कृति संघ, सोलापुर, प्र० सं० सन् १९६४।
३१. बृहत्कथाकोश, हरिषेणाचार्य, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, प्र० सं०।
३२. भक्तिरसामृतसिन्धु, रूपगोस्वामी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली प्र० सं० सन् १९६३।
३३. रसगङ्गाधर, पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय सं०, सन् १९७०।
३४. वक्रोक्तिजीवित, कुन्तक, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० सन्-१९६७।
३५. वीरोदय, श्रीज्ञानसागर, प्रकाशचन्द्र जैन, ब्यावर, प्र० सं०, सन् १९६८।
३६. वृत्तरत्नाकर, केदारभट्ट, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि० सं०, सन् १९६६।

३७. विनुपाख्यान, माघ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम, सन् १९५२।
३८. श्रावकाचारसंग्रह, भाग-१, सम्पादक—पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर, प्र० सं०, सन् १९७६।
३९. श्रावकाचारसंग्रह, भाग-२, वही, वही, प्रथम सं० १९७६।
४०. श्रीसमुद्रदत्तचरित्र, श्रीज्ञानसागर, दिगम्बर जैनबाल जैन समाज, अजमेर, प्र० सं० सन् १९६९।
४१. समयसार, श्रीज्ञानसागर, दिगम्बर जैन समाज, अजमेर, प्र० सं० सन् १९६९।
४२. सम्यक्त्वसारशतक, श्रीज्ञानसागर, श्री दिगम्बर जैन समाज, हिसार, प्र० सं० सन् १९५६।
४३. सर्वदर्शनसंग्रह, श्रीमन्माधवाचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं० सन् १९६४।
४४. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, वही, वही, सन् १९६९।
४५. सुदर्शनोदय, श्रीज्ञानसागर, प्रकाशचन्द्र जैन, ब्यावर, प्र० सं०, १९६६।
४६. सुदर्शनचरित, विद्यानन्दी, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० सन् १९७०।
४७. सुवृत्ततिलक, क्षेमेन्द्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० सन् १९६८।

प्राकृत ग्रन्थ

१. द्रव्यसंग्रह, नेमिचन्द्र मुनि, जैनेन्द्र साहित्य सदन, ललितपुर (झाँसी) तृ० सं० सन् १९७४।
२. प्रवचनसार, श्रीज्ञानसागर, श्रीमहावीर साङ्गाका, पाटनी, किशनगढ़, रैनवाल, प्र० सं० १९७२।
३. सुदंसणचरिउ, मुनि नयनन्दी, प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोधसंस्थान वैशाली (बिहार), प्र० सं० १९७०।

हिन्दी ग्रन्थ

१. अग्निपुराण—काव्यशास्त्रीय भाग, सम्पादक—रामलाल वर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० सं० सन् १९६९।
२. ऋषभावतार, श्रीज्ञानसागर, श्री दिगम्बर जैन समाज, मदनगंज, प्र० सं० सन् १९५७।
३. कर्तव्यपथप्रदर्शन, श्रीज्ञानसागर, श्री दिगम्बर जैन पंचायत किशनगढ़ रैनवाल तृ० सं० १९५९।
४. काव्यमनीषा, डा० मनोरथ मिश्र, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, प्र० सं०, सन् १९६९।

५. काव्यशास्त्र, डा० भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृ० सं०, सन् १९६६।
६. काव्यदर्पण, विद्यावाचस्पति पं० रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना-४ द्वि० सं० सन् १९५१।
७. जैन विवाह विधि, श्रीज्ञानसागर, दि० जैन समाज, हिसार, प्र० सं० सन् १९४७।
८. जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी, साहित्यमाला ठाकुर द्वार, बम्बई द्वि० सं० सन् १९५६।
९. जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान, मुनि श्रीनागराज, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र० सं० सन् १९५९।
१०. जैन धर्म, कैलाशचन्द्रशास्त्री, जैनसंघ, मथुरा, प्र० सं०, सन् १९४८
११. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-१, बेचरदास दोषी, बी० एच० यू०, वाराणसी, प्र० सं०, सन् १९४८।
१२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-२, डा० जैन तथा डा० मेहता, बी० एच० यू०, वाराणसी, प्र० सं०।
१३. तत्त्वार्थसूत्र टीका, श्रीज्ञानसागर, दिगम्बर जैन समाज, हिसार, प्र० सं०,
१४. तिलकमञ्जरी : एक समीक्षात्मक अध्ययन, डा० हरिनारायण दीक्षित, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली-७, प्र० सं० १९८२।
१५. पवित्र मानव जीवन, श्रीज्ञानसागर, श्री दिगम्बर जैन महिला समाज, पंजाब, प्र० सं०, १९५६।
१६. भाग्योदय (भाग्यपरीक्षा), श्रीज्ञानसागर, श्री जैनसमाज, हांसी, प्र० सं०, सन् १९४५।
१७. भारतीय काव्यशास्त्र, उदयभानु सिंह, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली-६
१८. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, नागरी मुद्रणालय, काशी, षष्ठ सं०, सन् १९६०।
१९. भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी, द्वि० सं० सन् १९६४।
२०. मुनिपूजन, श्रीलाल जैन वैद्य, हिस्सार, श्रीमती कमलादेवी जैन बघाल (जयपुर) प्र० सं० १९६४।
२१. रसमीमांसा, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, चतुर्थ सं०, सन् १९६६।
२२. रागविज्ञान, पं० विनायकराव पटवर्धन, सङ्गीत गौरव ग्रन्थमाला, पुणे-२ (महाराष्ट्र), सप्तम सं० सन् १९६७।

२३. विवेकोदय, श्रीज्ञानसागर, बाबू विश्वम्भरदास जैन, हिसार, प्र० सं० सन् १९४७।
२४. वीरशासन के प्रभावक आचार्य, डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर एवं डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र० सं० सन् १९७५।
२५. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (प्रथमभाग), डा० गोविन्द त्रिगुणायत, भारतीय साहित्य मन्दिर फव्वारा, दिल्ली, प्र० सं०।
२६. सचित्र विवेचन, श्रीज्ञानसागर, श्री जैन समाज, हांसी, प्र० सं०, सन् १९४६।
२७. समीक्षा शास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं० सन् १९५४।
२८. सङ्गीत कौमुदी, विक्रमादित्य सिंह निगम, हरिनगर (लखनऊ), च० सं० सन् १९६७।
२९. सङ्गीत प्रवीण दर्शिका, पं० नारायण लक्ष्मण गुणे, पुरा, ढाकू, कीटगंज, इलाहाबाद-३, द्वि० सं० सन् १९७२।
३०. सङ्गीत विशारद, वसन्त, सङ्गीत कार्यालय, हाथरस, स० सं० सन् १०६८।
३१. सङ्गीतशास्त्र दर्पण, शान्ति गोवर्धन, पाठक पब्लिकेशन, २७ महाजनी टोला, इलाहाबाद-३, द्वि० सं०, सन् १९७३
३२. संस्कृत आलोचना, बलदेव उपाध्याय, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी, प्र० सं०, सन् १९५७।
३३. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी० वी० काणे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र० सं० सन् १९५६।
३४. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, प्र० सं० सन् १९६८।
३५. स्वामी कुन्द-कुन्द और सनातन जैनधर्म, श्रीज्ञानसागर, खजानसिंह विमलप्रसाद जैन, मुजफ्फरनगर, प्र० सं० सन् १९४२।
३६. हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति, पं० विष्णुनारायण भातखण्डे, सङ्गीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०), प्र० सं० सन् १९६३।

विविध—

पाण्डुलिपि

१. श्रीसुदर्शनचरित, भट्टारक श्री सकलकीर्ति, पं० हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री ब्यावर सन् १५८४।

शोध-ग्रन्थ

१. संस्कृत हिन्दी शब्द कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि० सं० सन् १९६६।

पत्र-पत्रिकाएँ

१. जैन मित्र, अज्ञात, जैन प्रकाशन, सूरत, अप्रैल, सन् १९६६ ई०।
२. जैन गजट (साप्ताहिक), डा० पं० लालबहादुरशास्त्री, श्रीभारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा, अजमेर, मई, सन् १९७५ ई०।
३. जैन सिद्धान्त (मासिक प्रपत्र), श्री इन्द्र प्रभाकर जैन, पं० चम्पालाल जैन, विशारद, नसीराबाद, जुलाई, सन् १९७० ई०।
४. बाहुबली सन्देश (मासिक प्रपत्र), सं० पं० चम्पालाल जैन, श्रीबाहुबली दिगम्बर जैन पाठशाला, नसीराबाद, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, सन् १९७३ ई०।
५. वीरोदय (मासिक प्रपत्र), श्री इन्द्रप्रभा जैन, पं० चम्पालाल जैन, विशारद नसीराबाद, फरवरी सन् १९६९ ई०।
६. संस्मरण—श्रीज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय। मुनिसंघ व्यवस्था समिति नसीराबाद (राजस्थान) सन् १९७४ ई०।
७. स्मारिका, श्रीधर्मचन्द्र मोदी। जैन मुनिसंघ व्यवस्था समिति, ब्यावर, सन् १९७३ ई०।

अनुक्रमणिका

अ

अङ्ग २०, ३६, ८०; ८४, १३१, १३३, २०७, २०९, २११; २२७, २२८, २३०, २३४, २३५, ३०९
अच्युतस्वर्ग ६९, ७४
अजमेर ८, ११, १२
अतिमुक्तकश्मशान ७५
अध्यात्मतरङ्गिणी १५
अभिज्ञानशाकुन्तल १९९
अयोध्या १९, २३, ४८, ६३, ७१, १२१, २३४
अलका ४५, ४९, १०४, १३५; २०३, २३४
अवन्ती ५१, १०६, १०९, २०७
अश्वघोष १, ४३०, ४३१, ४३३, ४३४
अष्टपाहुड का पद्यानुवाद ७
अष्टसाहस्री १५
अस्ताचल २२१

आ

आचार्य नेमिदत्त ८०, ८९, १०१, १०६, ११२
आचार्य श्रीधर २३१
आनन्दवर्धन ५९
आप्टे, वामन शिवराम ४३, १५६, ३११
आराधनाकथाकोश ६०, ८०, ८९, ९७, १०१, १०५, १०६, १०९, ११२, ११४, ११५
आर्यावर्त २७, ५१, २२६, २२७
आसनाभिधानवन ४७, २०५, २८०

इ

इन्द्रपुरी २१०, २३३

उ

उज्जयिनी ५१, ७५, १०७, १११, ११२, १४१, १८३, १८४, १८६, १८८, १९१, १९४, २२८, २३१, ३९५
उत्तररामचरित ५९
उदयाचल १५८, २२३, २७४, २८१
उशीरवती ६७
उष्ट्रदेश २२८

ऋ

ऋजुकूला नदी ७५, ७९
ऋषभदेवचरित २, ६
ऋषभावतार ७

क

कञ्चनगिरि ४९, २००, २०४
कटनी ५८
कठारिया रतनलाल ५७
कणाद १
कपिल १
कर्णाटक २०, २२८
कर्तव्यपथप्रदर्शन ७
कलकत्ता ४
कलिङ्ग २०, ७१, २२८
कल्पवृक्षवन २०५
काञ्ची २०, ३०६
कातन्त्ररूपमालाव्याकरण १५
कात्यायन १
कादम्बरी १९९, २२५
कापिष्ठस्वर्ग ४९, १००
काबुल २०
कामसूत्र ३१२
कालकपुर १००, १०४
कालवन ९९
कालिदास १, १९९, ४३०, ४३१, ४३३, ४३४, ४३६
काव्यादर्श १२०, १४०
काव्यानुशासन १४०
काव्यप्रकाश ११८, २४५, २४६,

२४७, २८५, २८८, २९९, ३०१, ३०३, ३०४, ३०६, ३०८, ३१४, ३१६, ३२२, ३२४, ३२६, ३२८, ३२९, ३३७, ३८०
काव्यालङ्कार १२०, ३१५, ३१७
काशी ३, ४, १९, २१, २४, ६४, ८८, १२१, १५९, १६०, १६२, १९२, २०७, २२८, २३३, १३५, ३३०, ३९५
काश्मीर २०
कासलीवाल कस्तूरचन्द १, ४, ६, १५
किशनगढ़ १२, १४, १६
कुण्डनपुर २७, ३०, ३२, ७४, ७७, १२६, १२८, १६२, १६३, १६५, १९३, २०७, २१५, २२८, २३०, २३४, २३६, २३८, २४४, २७०, ३२६, ३९५
कुण्डलपुर ५८
कुरुजाङ्गल ६०
कुलाद्रि २०२
कुवलयानन्द ३१८, ३२१, ३२७
कूचामन २
कूलग्राम ७५; ७९
केसरगंज ८
कैरव २०
कैलाश ६८
कौशाम्बी १०९, ११२, २३४
कौशल ४८, ८८, ९९, २३४

ग

गङ्गा २२, २४, ६०, ६३, ७०, ७२, ८१, ९३, १५८, १६०, २०४, २०५, २०७, २०८, २१९, २२१, २२३, २२६, २२७, २३८, २४२, २४४, २८१, ३२०, ३३०, ३४३
गङ्गावाल, ताराचन्द १७
गया ६
गान्धार ६७
गीतगोविन्द ४३६
गुणभद्र १, ६०, ६९, ७६, ७७, १३५
गुणे, नारायण लक्ष्मण ३७४
गुणसुन्दरवृत्तान्त ७
ग्रैवेयकस्वर्ग ४९, १००, १३५, १३७, १८१
गौतम १
गौरी ६७

च

चक्रपुर ४९, १००, १३५, १९३, २२८, २३२, ३२६, ३९५
चतुर्थ नरक १००, १८२
चम्पापुरी ३६, ३८, ८०, ८१, ८३, ८८, १३१, १३३, १७१, १७२, १७४-१७६, १७८, २२८, २३०, २३४, २३६, ३२६, ३९५
चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं साहित्यिक अध्ययन १४०
चम्पूभारत ४३८
चम्पूरामायण ४३८
चौधरी, मूलचन्द २, ६

छ

छत्रपुरी, ३२, २३४
छन्दोऽनुशासन ३७०
छन्दोमञ्जरी ३६७, ३६८, ३७०

ज

जबलपुर ५८
जम्बूद्वीप ९७, १२८, २००, २१० २११, २२६, २२७, २३२, २३४,
जयदेव १, ४३६
जयधवल ९
जयपुर १,१०,११
जयोदय ७, १२, १८, ६०, ६९ ७०, ७४, ११९-१२५, १२६ १३३, १३४, १४५, १४८, १५६ १६२, १९२, १९५, २००-२०२, २०४, २०६, २०८, २१८-२२४, २३२, २४१, ३४३, २४९,२५२, २६९, २८५, २८६, २८८-२९२

३०२-३०४, ३०६, ३०९, ३१०, ३१४-३१६, ३१८, ३१९, ३२९, ३२३-३२५, ३२८, ३३०-३५९, ३६५, ३७२, ३७८-३८०, ३८२, ३८४, ३८७-३८९, ३९४, ३९५, ३९९, ४०८, ४१२, ४१३, ४१६, ४१९, ४२१,४२२,४३०,४३६,४३८
जिनभद्र १
जिनसेन ६०, ६९
जृम्भिकग्राम ७५, ७९
जैन, अमृतलाल १०
जैन, इन्द्रप्रभाकर २, ४, ८, १३
जैन गजट २, ४, ६, ७, १२
जैन, गौरीलाल ८
जैन, चम्पालाल २, ३, ६, ९, १२, १४, १७
जैन, जगन्मोहनलाल शास्त्री ५८
जैन, देवकुमार १
जैन धर्मामृत ५, ८, १०, ४०८, ४११, ४१२, ४१५, ४१९, ४२३, ४२५, ४२९
जैन, पन्नालाल ५७
जैन, प्रकाशचन्द्र ३, ५, ५६
जैन, प्रभुदयाल १०, ११, १३, १४, १६, १७
जैनमित्र १, ३
जैनविवाहविधि ७
जैनेन्द्रव्याकरण १५
जैन, शान्तिस्वरूप ६
जैन, श्रीलाल जी १, ८, १०, ११
जैनसिद्धान्त १२, १४, १५
जैन, हीरालाल ९०
जैमिनि १
जोधपुर ५८
जोहरापुरकर, विद्याधर १, ४, ६, १५

ज्ञ

ज्ञानसागर १, २, ७, १०-१८, ५७ ६०, ६९, ७६, १०१, १०५, १०६, ११२, ११४, ११५, ११९, १२५, १३४, १३५, १४४, १४६, १४८, १५१, १५६, १९३, १९५, १९५, १९७, १९९-२०१, २०४-२०६, २०९-२११, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२८, २३५, २३८, २४०, २४३, २४५, २४९, २६१, २८५, २८८, २९४, २९९-३०१, ३०३, ३०४, ३०६, ३०८, ३१०, ३११, ३१३, ३१५, ३१७, ३२४-३२९, ३६४-३६८, ३७१-३७३, ३७८, ३८२, ३८३, ३८७, ३९०, ३९२, ३९४-३९७, ४००, ४०३-४०८, ४१२-४१४, ४१६-४२३, ४२५, ४२६, ४२८-४३१, ४३३, ४३५, ४३७-४३९

त

तत्त्वार्थसूत्रटीका ७
तिलकमञ्जरी २२५
तुलसी १, ४३१
त्रिपाठी, छविनाथ १४०
त्रिविक्रम १४०, २२५, ४३०, ४३८

द

दण्डी १२०, १४०
दमोह ५८
दयोदयचम्पू १-९, ११, ५१, १०६, ११२, ११५, ११८, १३८, १४०-१४३, १४५, १४६, १४८, १५५, १८३, १९१, १९३-१९५, २०७, २०९, २११, २१८, २१९, २२१-२२३, २२७, २३१, २३४, २३५, २३७, २४९, २६०, २६१, २८२-२८५, २८८, २९७-३००, ३०३-३०६, ३०८, ३१०, ३२०, ३२२, ३२१, ३२६, ३२९, ३६५-३७०, ३७२, ३७८, ३८१, ३८२, ३८६, ३९०, ३९३, ३९५, ३९८-४०७, ४१३-४१६, ४१८,

४२२, ४२८, ४३०, ४३२, ४३३, ४३८, ४३९
वचनदूतक १५७, १६१, १६३, १६८
दांता ७
दिगम्बर जैनसमाज, ब्यावर, स्मारिका ६, १३, १६, १७
दिल्ली ८, ११, २३४
देवागमस्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद ७
देवगिरि ६५
द्रव्यसंग्रह ४११, ४२५

ध

धनपाल २२५, ४३०
धरणीतिलक ४९, १००, १०४, २३४
धर्मसंग्रहश्रावकाचार ४०८, ४०९, ४११, ४१२
धवला २९
धान्यकमाल ६५, ६६, ६७
ध्वन्यालोक ५९

न

नन्दनवन २०३
नलचम्पू १४०, २२५, ४३८, ४३९
नसीराबाद २-४, ६, ११, १३, १४, १६, १७
नागमन्दिर २९, १०८, ११३, ११४, १८५, २३७
नाट्यशास्त्र २४८, २५०
नित्यमनोहर चैत्यालय ६३, ७१
नियमानुसार का पद्यानुवाद ७
निर्वृन्ददेश २२८
निगम, विक्रमादित्यसिंह ३७६
नैषध २२५, ४३२, ४३३

प

पंवार, मोतीलाल १३
पद्मप्रभनरक १९, १८२
पञ्चतन्त्र १५
पञ्चास्तिकाय १५
पटवर्धन, विनायकराव ३७३
पण्डितराज जगन्नाथ ११८, २४८
पं० लाल बहादुर शास्त्री २-४, ६, ७, १०, १२
पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री १-६, ८-१२, ५७, ५८, ६०
पतञ्जलि १
पद्मखण्ड ४४, ६७, ६८, १०२, १०४, १७९, २३४
पल्लवदेश २२८
पाटनी, चेतनप्रसाद ५८
पाटलिपुत्र ४३, ८३, ८७, ८८, १७४, १७८
पाणिनि १
पाणिनीय शिक्षा ११७
पावानगर ३५, ७६, १२६, २३४
पार्श्वनाथमन्दिर २३७
पुण्डरीकिणी ३२, ६५, ६७, ७४, २३४
पुण्यास्रवकथाकोश ६०, ८०, ८९, ११४, ११५
पुष्करिणी ३२, ६५
पुष्कल ३२, २२८
पुष्कलावती ६५, ७४
पृथ्वीतिलक ५०, १००
पोदनपुर ३२, ४८, ६९, २३४
प्रभातनगर १००, १०४
प्रमेयरत्नमाला १५
प्रवचनसार ७, ११९, १४६

फ

फतेहपुर ११
फुलेरा ११

ब

बङ्ग २०
बम्बई २३४
बाणभट्ट १९९, २२५, ४३०
बाहुबली सन्देश २, ३, ५-१७
बृहत्कथाकोश ६०, ८०, ८३, ८६, ८९-९३, ९७, १०१-१०६, १०९, ११२-११५, १३०, १३५, १४१
बेलगाँव (जिला) २२

व्यावर ११, १३, १६, १७, ५७
ब्रह्मलोक ६५

भ

भक्तिरसामृतसिन्धु २४८
भद्रोदय १३८, २०३-२०५
भरतमुनि १, २४८, २५०
भरतक्षेत्र ४८, ४६, ६०, ६७, ६६, १२८, २२७, २३२, ३२८
भवभूति १, ५६
भाग्योदय ७
भातखण्डे, विष्णुनारायण ३७५
भामह १, १२०
भारतवर्ष १, २७, ३६, ४४, ४५, १२८, २०२, २०३, २०७, २१०, २११, २१६, २२६, २३४, २३५
भारवि ४३०, ४३१, ४३३, ४३४
भास्करपुर ४६, १०४, २३४
भूरामल २-६, ८-१०
भोगपुर ६७

म

मञ्जुभाषिणी वेश २२८
मथुरा २३४
मदनगंज १२, १६
मधुवन ७४
मध्यप्रदेश ५८
मनसुरपुर ६
मनोहरवन ४७, ७५, ७६, ७६
मम्मट १, ११८, २४५-२४८, ३७७-३८०
महापुराण ६०, ६६-७४, ७६-८०, ११४, ११५, ११६, १२१, १२५, १३५
महाबन्ध ६
महाशुक्र स्वर्ग ३२, ४६
माघ ४३०, ४३१, ४३३-४३५
मानवजीवन ७
मानव २०, ५१, २०६, २११, २२७, २३१, २३४, २३५, ३२०
माहेन्द्रस्वर्ग ३२, ७७
मिथिला २३४
मुनि नयनन्दि ८०, ८३, ८६, ६३, ११५
मुनि नेमिचन्द्र ४११, ४१२, ४२५
मुनिभूषण १, ६, ८, १०, ११
मुनिमनोरञ्जनशतक ७, ५६-५८, ११६, १४३-१४५, ३६५, ३६६
मृणालवती ६६
मेड़ा ग्राम ११
मैसूर १२, २२८
मोदी, धर्मचन्द ६

य

यशस्तिलकचम्पू ४०६, ४१०, ४३८

र

रत्नद्वीप ४५-४७, ६७, १०१-१०३, १३६, १७६, २११
रत्नसागर ११८, २४८
रामकल्पद्रुमाङ्कुर ३७५
रामविज्ञान ३७३
राणोली १, २, ५
राजगृह ३२, ७६, ८३, २३४
राजस्थान १, ११, १२, १४, १६, १७, ५७
रामगढ़ ७
रामचन्द्र मुमुक्षु ८०, ८६
रामायण ५६
रामचरितमानस ४३१
रुद्रट ३१५, ३१६
रूपगोस्वामी १४८
रैनवाल ६, १४
रौरव नरक ३१

ल

लान्तव स्वर्ग ३२

व

वत्सदेश ८८
वर्धक ६६
वसन्त ३७३, ३७६
वात्स्यायन ३१२

वाराणसी ३, ४, १२, ६०, ६१, ७०, ६०
वाल्मीकि ५६
विजयार्द्धपर्वत ४५, ४६, ६५, ६७, १००, १२६, १३५, २००, २०३, २२६, ३२७, ३२८
विदेह ३५, २७, ६५, ७४, १६५, २०७, २०६, २२६, २२८, २३४, ३२६
विद्यानन्दि ८०, ६०
विन्ध्यपुरी ६४, ८८
विन्ध्यवन ८८, ६६
विपुलाचल ७६
विमलकान्तारवन ६८
विवेकोदय ७
विशाला १०६
विश्वनाथ १२०, १४०, २४६, २४८, २५०, २८६
विश्वलोचनकोश २३१
वीरोदय (मासिक) २, ४, ८-११, १३
वीरोदय (महाकाव्य) ३, ५, ७, ११, २७, ७४, ७७-८०, ११४, ११५, ११६, १२६-१२६, १३३, १३४, १४५, १४८, १४६, १६२-१६७, १६२, १६३, १६५, २००-२०३, २०५, २०७, २०६-२११, २१३-२१८, २२०, २२१, २२६, २२८-२३०, २३४-२३८, २४२, २४६, २५२-२५४, २७०-२७३, २८५, २६२-२६४, ३०२, ३०३, ३०५, ३०७, ३०६, ३१०, ३१६, ३१७, ३१६, ३२२-३२४, ३२६-३२६ ३५६-३६२, ४६५-३७०, ३७८-३८०, ३८१, ३८२, ३८४, ४८७, ३६५, ३६७-३६६, ४०१, ४०३-४०८, ४१२, ४१४, ४१८-४२३, ४२५-४३०, ४३२-४३६, ४३८
वीरशासन के प्रभावक आचार्य १, ४, ६, १५
वृत्तरत्नाकर ३६८, ३६६, ३७१
वृद्ध ४८
व्यास १

श

शान्तिगोवर्धन ३७६
शिशुपालवध ४३४
शिशपा ५१, १०६, १८४
शिप्रा ५१, ५२, १०६, १०६, १४१, २०७
शिरीषग्राम १०६
शोभानगर ६४

श्र

श्रावकाचारसंग्रह ६, ४०८-४१२, ४२४
श्रीज्ञानसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय २-४, ६, ११, ११, १४, १८, १७
श्रीधवल ६
श्रीपुर ६७
श्रीपुरुषपर्वत २६, २००, ३०२, २०४
श्रीसमुद्रदत्तचरित्र ७, ४४, ६७, १०२-१०६, ११४, ११५, ११६, १३४-१३८, १४५, १४६, १४८, १५०, १७६-१८३, १६३-१६५, २०४, २११, २३२, २३४, २३७, २४६, २५८-२६०, २७६, २८०, २८१, २८२, २८५, २८७, २८८, २६६, २६७, ३००, ३०२-३०५, ३०७, ३०८, ३१०, ३२०, ३२३, ३२५, ३२७, ३६५-३६६, ३७८, ३८१, ३८२, २८५, ३८६, ३६०, ३६२, ३८५, ४००-४०७, ४१२-४१४, ४२१, ४२२, ४२५, ४२८, ४३०, ४३३, ४३७
श्रीस्वरूपानन्द १३, १५
श्रीहर्ष २२५, ४३०, ४३१, ४३३, ४३४
श्रुतबोध ३७०

ष

षण्डवन

स

सङ्गीतकौमुदी ३७६
सङ्गीतप्रवीणप्रदर्शिका ३७४
सङ्गीतविशारद ३७३, ३७४, ३७६
सङ्गीतशास्त्रदर्पण ३७६
संस्कृत हिन्दी कोश ४३, १५६, ३११
सकलकीर्ति ८०, ८६, ६०, ११५
सचित्तविवेचन ७
सदलगा १३
समयसार ७, १५
समयसार कलश १५
सम्यक्त्वसारशतक १, ७, ६, ११६, १४६, ४०३
सरयू ६४-७२
सर्वदर्शनसंग्रह ३१, ४१८-४२०, ४२२ ४२६
सहस्रारस्वर्ग ३२ ४७, १००
साकेत ३२, ६६
सालवन २०५
साहित्यदर्पण १२०, १४०, १४४, १७१, २४६, २४७, २७८, २५०
सागरधर्मामृत ४०७
सिंहपुर ४६, ४७, ६७, ६६, १०१-१०३, १८०, १८१, १८३, १६३, २३४
सिद्धकूट ४६, ६७, १००, २३७
सिन्धु देश २०
सिन्धु नदी २२६, २२७
सीकर ग्राम १
सीतानदी ७४
सुदर्शनचरित (विद्यानन्दिविरचित) ८०, ६०
सुदर्शनचरित (सकलकीर्तिविरचित) ८०, ८६, ११४, ११५
सुदर्शनोदय ७, ३६, ८०, ६०-६७, ११४, ११५, ११६, १३०-१३४, १४५, १४६, १४८, १४६, १६७-१७६, १६३, १६५, २०७, २०६, २११, २१३, २१८, २१६, २२२, २२३, २२७, २२८, २३१, २३५, २३६, २४६, २५५-२५७, २७४-२७६, २८५-२८७, २६४-२६६, २६६-३०५, ३०७, ३०६, ३१०, ३१४-३१८, ३२०, ३२२, ३६२, ३६३, ३६५-३७६, ३७८, ३८०, ३८२, ३८५, ३८६, ३६१, ३६५, ३६८-४०६, ४१२-४१५, ४१७, ४२२, ४२६, ४२७, ४३०, ४३२, ४३३, ४३६, ४३७
सुदंसणचरिउ ८०, ८३, ८६, ६०, ६३-६७, ११४, ११५
सुमेरु २६, ३०, ३६, ३७, ७४, १२६, १६३, १६८, २००-२०२, २०४, २११, २३६, २६७
सुवृत्ततिलक ३६७-३७१
सूर १
सेठी, विद्याकुमार १२
सौधर्मस्वर्ग ६१, ७४, ७७
स्तबकगुच्छ ३५, १३६, २२८, २३१, २३२, २८०
स्वामी कुन्द कुन्द और सनातन जैन-धर्म ७

ह

हरिषेण ८०, ८३, ६०, १०१, १०६, १०६, १३०, १३५, १४१
हस्तिनापुर १८, २४ २६ ६०, ६४, ६६, ७२, १२१, १५६, २२८, २३२, २६०, ३३०, ३६५
हिन्दुस्तानी सङ्गीतपद्धति ३७५
हिमालय २६, १२६, १५७, १५८, १७०, १६८, २००-२०२, २०५, २१५, २२१, २२६, २३६, २४४, २८६
हिसार १, ८, ६, ५७
हेमचन्द्र १४०

परमपूज्य आचार्य 108

श्री ज्ञानसागर जी महाराज की

साहित्य साधना -

संस्कृत साहित्य –

१. जयोदय महाकाव्यम् (2 भाग में)
२. वीरोदय महाकाव्यम्
३. सुदर्शनोदय महाकाव्यम्
४. भद्रोदय महाकाव्यम्
५. दयोदय चम्पू
६. सम्यकत्वसारशतकम्
७. मुनि मनोरञ्जनाशीति
८. भक्ति संग्रह
९. हित सम्पादकम्

हिन्दी साहित्य –

१०.भाग्य परीक्षा
११.ऋषभ चरित्र
१२.गुण सुन्दर वृतान्त
१३.पवित्र मानव जीवन
१४.कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन
१५.सचित्त विवेचन
१६.सचित्त विचार
१७.स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म
१८.सरल जैन विवाह विधि
१९.इतिहास के पन्ने
२०.ऋषि कैसा होता है

टीका ग्रन्थ –

२१.प्रवचसार
२२.समयसार
२३.तत्त्वार्थसूत्र
२४.मानवधर्म
२५.विवेकोदय
२६.देवागमस्तोत्र
२७.नियमसार
२८.अष्टपाहुड़
२९.शांतिनाथ पूजन विधान

परमपूज्य आचार्य 108
श्री ज्ञानसागर जी महाराज का

जीवन परिचय

-:: जन्म ::-
सन् १८९१
-:: जन्मस्थान ::-
राणोली-ग्राम (जिला-सीकर) राज.
-:: जन्मनाम ::-
भूरामल शास्त्री
-:: ब्रह्मचर्य व्रत ::-
सन् १९४७ (वि. सं. २००४)
-:: क्षुल्लक दीक्षा ::-
सन् १९५५ (वि. सं. २०१२)
-:: क्षुल्लक दीक्षा नाम ::-
क्षुल्लक १०५ श्री ज्ञानभूषण महाराज
-:: ऐल्लक दीक्षा ::-
सन् १९५७ (वि. सं. २०१४)
-:: दीक्षा गुरु ::-
आ. १०८ श्री शिवसागर जी महाराज
-:: मुनि दीक्षा ::-
सन् १९५९ (वि. सं. २०१६)
-:: दीक्षा गुरु ::-
आ. १०८ श्री शिवसागर जी महाराज
-:: मुनि दीक्षा नाम ::-
मुनि १०८ श्री ज्ञानसागर जी महाराज
-:: आचार्य पद ::-
७ फरवरी सन् १९६९
(फाल्गुनवदी ५ सं. २०२५)
-:: आचार्य पद त्याग एवं
सल्लेखनाव्रत ग्रहण ::-
२२ नवम्बर, १९७२ (मंगसिर वदी
२ सं. २०२९)
-:: समाधिस्थ ::-
१ जून १९७३ (ज्येष्ठ कृष्ण
अमावस्या सं. २०३०)
-:: पट्टशिष्य ::-
पू. आ. श्री विद्यासागरजी महाराज
-:: सल्लेखना अवधि ::-
६ मास १३ दिन (मिति अनुसार)
६ मास १० दिन (दि. अनुसार)

लेखिका का संक्षिप्त परिचय

नाम – डॉ. (कु.) किरण टण्डन

पितृनाम – श्री रामबिहारी टण्डन

जन्मस्थान – नैनीताल (उ.प्र.)

जन्मतिथि – ७-७-१९५१ ई.

शिक्षा – एम.ए. (आगरा विश्व-विद्यालय, आगरा), पी. एच. डी. (कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल), साहित्याचार्य (वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)।

वृत्ति – अध्यापन। (क) राजेन्द्र प्रसाद डिग्री कालेज, मीरगंज (बरेली) उ.प्र., (ख) आर्य कन्या महाविद्यालय, अल्मोड़ा (उ.प्र.), सम्प्रति (ग) कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उ.प्र.)के संस्कृति विभाग में प्राध्यापक पद पर कार्यरत।

रचना –
(क) प्रकाशित –
(१) छन्दोऽलङ्कारपरिचयः।
(२) महाकवि ज्ञानसागर के काव्य : एक अध्ययन।
(ख) अप्रकाशित –
संस्कृत साहित्य का इतिहास।

आवास –
परबॅक लॉज, बी
राजभवन मार्ग,
नैनीताल (उ. प्र.)